॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१४५

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री

एम०, ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

संस्कृत-विभागाध्यक्ष

शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय

अध्यक्ष, संस्कृत-अध्ययन-विभाग

इन्दौर विश्वविद्यालय



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९७३

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२९
मूल्य : २५-००

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

प्रधान कार्यालय
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर लेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१
फोन : ६३१४५

THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA
145

BAGHELAKHANDA KE SAMSKṚTA KĀVYA

(Sanskrit Poems of Baghelkhaṇḍa)

By
DR. RĀJĪV LOCHAN AGNIHOTRĪ
M. A., LL. B.; Ph. D.
Professor of Samskṛta
Govt. Arts & Commerce College
Head of the Deptt. of Samskṛta Studies
University of Indore

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1973

Post Box No. 69
Chowk, Varanasi-1 (India)
1973
Phone : 63076

First Edition
1973
Price Rs. : 25-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Oriental Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 63145

जननी

के

पावन चरणों में



महाराज विश्वनाथसिंह

[जन्म १७८६ ई०,   राज्य १८३४-१८५४ ई०]

बघेलखण्ड के यशस्वी संस्कृत कवि और दार्शनिक नरेश

प्रस्तुति

बघेलखण्ड के संस्कृत-साहित्य के प्रति मेरे उन्मुख होने का एक लघु वृत्तान्त है। १९५५ ई० में विन्ध्यप्रदेश के सूचना एवं प्रकाशन-विभाग (रीवा) की ओर से साहित्यिक पुरस्कारों में संस्कृत-विषय को भी जोड़ा गया। इसका श्रेय तत्कालीन पदाधिकारी डॉ० विद्यानिवास मिश्र को है। रीवा के किले में अवस्थित सरस्वती-कोष-भाण्डार में संस्कृत की प्रचुर पाण्डुलिपियाँ हैं। उक्त पुरस्कार-योजना में भाग लेने के लिए मैंने इस साहित्य का परिचय 'संस्कृत-साहित्य को बान्धवनरेशों की देन' नामक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। पुस्तक पुरस्कृत हुई और रीवा-नरेश के औदार्य से १९५७ ई० में प्रकाशित भी हो गई। १९५६ ई० में मैंने महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा प्रणीत 'राधावल्लभीय-मत-प्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-भाष्य' या 'चतुःसूत्र्यन्त' हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया। यह भी पुरस्कृत हुआ। १९५७ ई० में विन्ध्य-संस्कृत-विश्व-परिषद् रीवा की ओर से रूपणि शर्मा द्वारा १६७८ ई० में रचित 'बघेलवंश-वर्णनम्' का मैंने सम्पादन और प्रकाशन कराया, जिसमें रीवा के अनेक विद्वानों से प्रोत्साहन मिला।

उपर्युक्त साहित्य का विशेष अध्ययन प्रस्तुत करने की रुचि जाग्रत हो जाने से मैंने १९५८ ई० में छतरपुर से सागर-विश्वविद्यालय में विषय पंजीयित कराया। १९५९ ई० में मेरी नियुक्ति इन्दौर में हो गई और मानव-जन्तुओं ने बाधाएँ उपस्थित कर दीं। सफलता को संशयग्रस्त देख कर मैंने अनुसन्धान का विचार त्याग दिया।

१९६२ ई० में मेरे परमसखा डॉ० राजेन्द्र शुक्ल (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने मुझे पुनः प्रवृत्त किया और विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में अनुसन्धान की अनुमति मिल गई। १९ दिसंबर १९६४ ई० को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हो गई। वही प्रबन्ध अब प्रकाश में आ रहा है।

कानपुर के श्रद्धेय डॉ० हरिदत्त शास्त्री और वाराणसी के आदरणीय डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, दोनों कर्मनिष्ठा की साकार मूर्तियों ने इस प्रबन्ध को

स्वीकृति दी। इन्दौर के प्रो० धुं० गो० सप्रे ने सुयोग्य निर्देशन दिया। मैं इनका सदा ऋणी रहूँगा।

रीवा-निवासी आचार्य श्री अख्तर हुसेन निजामी ने बघेलखण्ड के इतिहास पर सञ्चित अपनी ज्ञानराशि मुझे सहज स्नेह के साथ सौंप दी। रीवा के ही गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री, आचार्य श्री चिन्तामणि मालवीय, लाल महावीरसिंह, पं० नन्दकिशोर पौराचार्य, मौलाना ऐयाज अली, मानपुर के श्री रामभद्र गौड़ और भरतपुर के लाल भानुसिंह बाघेल ने बघेल-इतिहास की अपनी जानकारियाँ मुझे सद्भाव के साथ लिखवाईं और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दिखलाए। रामनगर (जिला सतना) के बाबू शारदाप्रसाद जी का वात्सल्य मैं भूल नहीं सकता। सतना के डॉ० भगवानदास सफड़िया मुझे अंकुश-प्रयोग से अग्रसर करते रहे। सरस्वतीकोष-भाण्डार रीवा के अधिकारी-गण पाण्डुलिपियाँ देखने में मेरी पूरी सहायता करते रहे। मेरे प्रिय अनुज चि० अवधेश अग्निहोत्री ने प्रबन्ध को आकार देने में सहायता की। इन्दौर के डॉ० लक्ष्मण नारायण शुक्ल, डॉ० नारायणदत्त शर्मा, श्री रवीन्द्र शास्त्री, डॉ० ध्यानचन्द्र अग्रवाल, श्री मेहरबान ईरानी तथा अनेक शिष्य और सहकारी मेरी इस सिद्धि में सुख का अनुभव करते रहे। इन सबका मैं कृतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक मेरे १० वर्षों के परिश्रम का परिणाम है। यह मेरी संबद्ध जानकारियों की विशृङ्खल कड़ियों का जोड़ है और एक विशिष्ट अवधि (१५००–१९०० ई०) में बघेलखण्ड जनपद (वर्तमान रीवा संभाग) में रचित संस्कृत काव्यसाहित्य का निचोड़ है। उपयोगिता की दृष्टि से मैंने इस प्रबन्ध पर कभी विचार नहीं किया। यह मेरे लिये केवल 'स्वान्तःसुखाय' है और मैंने अपनी इस प्रस्तुति से सच-मुच आत्म-तृप्ति का अनुभव किया है।

वैदिक-साहित्य में उल्लेख मिलता है—'इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते।'[1] यह प्राणियों की जीवनाधायक सामग्री के अर्थ में अभिहित हुआ है। वैदिक युग के प्रायः मध्य काल में सोमरस की उद्भावना प्रबल हो उठी। सोमरस में इरा का पोषक तत्त्व निहित था, साथ ही उसमें सुरा का मादक, आह्लादक तत्त्व भी समाविष्ट हो गया था। सम्भवतः इसी मिश्रण ने सोमरस को वैदिक काल में सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की। आगे चल कर सुरा का तत्त्व

१. ऋग्वेद : ५।८३।४

पृथक् हो गया; सुरा विलास का साधनमात्र रह गई और सुरा-पान का निषेध भी हुआ। इसी प्रकार इरा तत्त्व शस्य-भैषज्य के क्षेत्र में सीमित हो गया।

हम इस कल्पना को काव्य के क्षेत्र में उतार कर देखें। इरा काव्य का शिव तत्त्व है और सुरा उसका सुन्दर तत्त्व। कालिदास जैसे उत्तम कवियों की कृतियों में इन दोनों तत्त्वों का समानुपातिक सम्मिश्रण रहने से उन्हें सोनरस वाली लोकप्रियता उपलब्ध हुई। परवर्ती काव्यों में आह्लादन, आस्वादन या उन्मादन तत्त्व का अतिरेक हो गया। उनमें शिव-तत्त्व का बहुत थोड़ा अंश शेष रहा। वे वैभव और विलास में तैरने वालों के लिये मनोरंजन के साधन मात्र रह गए और जन-जीवन से दूर हो गए। हमारी दृष्टि में भावी कवियों को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उनकी रचना में इन दोनों में से किसी भी तत्त्व की उपेक्षा न हो; तभी उनकी काव्यकृति उपादेय और आह्लादक रह सकती है।

इस सम्मति के साथ अपने अन्तःकरण की भूमिका पर अङ्कुरित इस प्रबन्धवल्ली के शब्द-सुमन नई पीढ़ी को समर्पित हैं।

इन्दौर,
दुर्गानवमी, सं० २०२९ वि०
१६ अक्टूबर, १९७२ ई०

—राजीवलोचन अग्निहोत्री

विषय-विवरण

पृष्ठ

सन्दर्भ-सङ्केत

(Abbreviations)

(क) अंग्रेजी ग्रन्थ और निबन्ध

अक० : Akbarnamah of Abul Fazl : Tr. H. Beveridge : 1907.

आइडेंटिफिकेशन० : 'Identification of Virabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental Journal : Vol. II–1935 : pp. 254–258.

आईन० : Ain-i-Akbari of Abul Fazl : Tr. Blochmann : Calcutta : 1873.

आफ्रे० : Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.

आ० रि० इ० : Archaeological Survey Reports of India by A. Cunningham.

इ० ऐ० : Indian Antiquary.

इ० क० : Indian Culture.

इ० गा० : Imperial Gazetteer of India by Hunter.

इन्स० भावनगर० : A Collection of Prakrit & Sanskrit Inscriptions in the Bhavanagar Archaeological Department.

इ० हि० : Indian Historical Quarterly.

ई० डा० : Elliot and Dowson : History of India.

ए० इ० : Epigraphica Indica by Buhler.

ए डेस्० कै० : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Royal Asiatic Society of Bengal—Calcutta : Vol. vii–1934 by M. M. Har Prasād Shastri.

एनल्स० - Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute : Poona.

ओ० चा० : Origin of the Chālukyas : by Ranjit Singh Satyasray : Calcutta : 1938.

ओ० ज० : Calcutta Oriental Journal.

कि० भा० : The Kiraṇāvalī—Bhāskara of Padmanābha Miśra : Gopīnātha Kavirāja : Sarasvati Bhawan Texts No. 1. Banaras : 1920.

कैटे० अलवर : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Ulwar State.

कैटे० अवध : Catalogue of Sanskrit Manuscripts Existing in Oudh.

कैटे० उदयपुर : Menaria—M. L. : *Catalogue of Manuscripts in* the Library of H. H. The Maharana of Udaipur.

कैटे० काश्मीर : Catalogue of Manuscripts in Kashmir.

कैटे० तंजोर : Shastri—P. P. S. : Catalogue of Manuscripts in the Palace Library, Tanjore.

कैटे० बीकानेर : Mitra—R. L. : *A. Catalogue of* Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaneer.

कैटे० बंगाल : Shastri—H. P. : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal । Vol. iv : Calcutta : 1923.

कैटे० मैसूर : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library, Mysore and Supplement.

ग० मै० ला० : Government Manuscripts Library : Poona.

ग्लो० गु० : Glory that Was Gurjar Desa : by K. M. Munshi : Bharatiya Vidya *Bhavan : Bombay : 1954.*

चौ० गु० : Chaulukyas of Gujrat : by A. K. Majumdar : Bharatiya Vidya Studies IV–Bombay : 1956.

ज० ए० सो० : ज० रा० ए० सो० : Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.

ज० गं० इ० : Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad.

ज० बि० ओ० सो० : Journal of the Bihar and Orissa Research Society : Patna.

टर्मिनस० : 'Terminus ad quem for the Date of Bhānudatta : the Author of the Rasa-Mañjarī : by P. K. Gode : Annals : Poona : Vol. xvi–1935 : pp. 147–48.

डा० हि० ना० इ० : Dynastic History of Northern India : by H. C. Ray : Vol. II. Calcutta : 1936.

दि० पोयट भानुकर० : 'The Peot Bhānukara' : by Dr. Har Dutt *Sharma : Annals : Vol. XXVII–Part 3 : 1936.*

नाइन जेम्स० : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasiṃha of Rewa' : by A. H. Nizami : Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad : Vol. VIII–Part 4 : Aug. 1951.

न्यू० इ० ऐ० : New Indian *Antiquary.*

पद्य० : The Padya-Racanā of Lakṣmaṇabhatta : Kāvyamālā : Bombay.

पद्यवेणी० : The Padya-Veṇī of Venīdatta : Prācyavāṇī : Calcutta : 1944.

पद्यामृत० : The Padyāmṛta-Taraṅgiṇī of Haribhāskara : Prācyavāṇī : Calcutta : 1941.

पीटर्सन० : Petersons Reports of the Operations in Search of Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.

फर्दर नोट्स० : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of Rewa' : by Dr. Hiranand Shastri : Journal of the Bihar and Orissa Research Society : 1930.

बघेल डायनैस्टी० : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' : by Dr. Hiranand Shastri : Baroda : 1925.

भा० ओ० रि० इ० : Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.

भानु० : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta-Author of the Rasa-Mañjarī' : by P. K. Gode : Indian Culture : Vol. III–1937 : pp. 751–56.

मित्रा० : Notices of Sanskrit Manuscripts by Rajendra Lal Mitra : Calcutta : 1871.

मुस्लिम पैट्रनेज० : Muslim Patronage to Sanskrit Learning : J. B. Chaudhuri : Vol. I : Prācyavāṇī : Calcutta : Second Edition : 1954.

रसिक० : The Rasikajīvana of Gadādhara Bhaṭṭācārya : Prācyavāṇī : Calcutta.

रा० ए० सो० : The Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.

रामचन्द्र भट्ट ए प्रोटेज० : 'Rāmacandra Bhaṭṭa' A Protege of King Pahārasiṃhadeva, Son of King Vīrasiṃhadeva of Bundel-Khand' : by P. K. Gode : Adyar Library Bulletin : Vol. XVIII–Part I & II.

राम० प्र० : The Rāmacandra-Yaśaḥ-Prabandha of Govinda Bhaṭṭa alias Akbariya Kālidāsa : Prācyavāṇī : No. 7 : Calcutta : 1946.

वाघेल रूलर्स० : 'Some Vāghela Rulers and the Sanskrit Poets Patronised by them' : by Dr. Har Dutt Sharma : Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume : Ahmedabad : pp. 48–54.

वीर० अंग० : The English Summary of the Vīrabhānūdaya Kāvyam by K. K. Lele, published at the end of the work.

वीर० क्रि० पृ० : Critical Analysis of the Vīrabhānūdaya Kāvyam by Dr. Hiranand Shastri : Published with the Kavya : Baroda : 1938.

वीर० चम्पू० : The Vīrabhadra-Campū of Padmanābha Miśra : Prācyavāṇī : Vol. XII : Journal of the Prācyavāṇī : Calcutta : Vol. IX : 1952.

सभ्या० : The Sabhyālaṅkaraṇa of Govindajit : Prācyavāṇī : Calcutta : 1947.

सम् डेटा० : 'Some Data of the Identification of Vīrabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental Journal : Vol. II–1935 : pp. 197–199.

सा० सं० : Sāra-Saṅgraha of Śambhūdasa Pandita : RASB-31-A.

साहित्यसुधा० : 'Date of Sāhitya-Sudha, A Commentary on the Rasa-Taraṅgiṇī of Bhānudatta' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental Journal : Vol. I, 1944, pp. 217–220.

सूक्ति० : The Sūkti-Sundara of Sundaradeva : Prācyavāṇī : Calcutta.

संस्कृत एण्ड हिन्दी वर्क्स० : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa—Between 1813 and 1853' by P. K. Gode : New Indian Antiquary : BORI : Poona : Vol. IX–Nos. 4–6 : April–June : 1947.

संस्कृत वर्क्स० : 'Sanskrit Works of Mahārāja Viśvanātha Simha by Chintaharan Chakravarti : *Journal of Royal Asiatic* Society of Bengal : Vol. V : Calcutta : 29th October 1939.

हि० क्ला० सं० लिट्० : History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar : Madras : 1937.

(ख) संस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थ

आ० रघु० : आनन्द रघुनन्दन नाटक (हिन्दी) : विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन : रीवा : १९६०।

कन्दर्प० १ : कन्दर्प-चूडामणि (वीरभद्रदेव) : सं० : जीतन सिंह : वेंकटरमण प्रेस : रघुराजनगर (सतना) : १९०८।

कन्दर्प २ : कन्दर्प-चूडामणि (वीरभद्रदेव) : सं० रामचन्द्र शास्त्री : संस्कृत पुस्तकालय : लाहौर : १९२६।

गीत० : गीतगोविन्द (जयदेव) : निर्णयसागर : बम्बई १९२९।

दतिया० : दतिया पुस्तकालय : विन्ध्यप्रदेश सूचना विभाग : रीवा।

पद्दे० : श्री जगन्नाथ शास्त्री पद्दे सम्मानाङ्क : बड़ौदा : १९६४।

बघेल० : बघेलवंशवर्णनम् : (रूपणि मिश्र) : सं० राजीवलोचन अग्निहोत्री : विन्ध्य-संस्कृत-विद्वपरिषद् : रीवा : १९५७।

मासिर० : मासिर-उल-उमरा (समसाम उद्दौला-१७७० ई०) : अनु० ब्रजरत्नदास : प्रकाशित-काशी।

वि० प्र० इ० : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा : १९५४।

वीर० : वीरभानूदयकाव्यम् (माधव) : प्रकाशित : रीवा : १९३८।

शारदागम० : चन्द्रालोक-शारदागम टीका : (पद्मनाभमिश्र) नारायण शास्त्री खिस्ते : चौखम्बा-काशी : १९२९।

स० को० भा० : सरस्वती कोष-भाण्डार, किला रीवा।

सु० हा० : सुभाषित-हारावली।

सङ्गीत० : सङ्गीत-रघुनन्दनम् (विश्वनाथसिंह) : स० को० भा०।

सं० बा० दे० : संस्कृत-साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन : राजीवलोचन अग्निहोत्री : रीवा : १९५७।

हि० सा० को० : हिन्दी साहित्य-कोष : ज्ञानमण्डल लिमिटेड : बनारस : भाग १ : सं० २०१५ : भाग २ : सं० २०२० वि०।

वन्दनम्

(१)

जानक्या स्निग्धया दत्ते मुक्ताहारेऽतिभास्वरे ।
विचिन्वन्तं परं राममाञ्जनेयमुपाश्रये ॥

(२)

समुद्रैर्धौत-पादाब्जां शुभ्रां हिमकिरीटिनीम् ।
भारतीं जननीं वन्दे शस्य-श्याम-चलाञ्चलाम् ॥

(३)

गीतं रामायणं काव्यं येन तन्मय-मूर्त्तिना ।
आद्याय च वरिष्ठाय तस्मै वाल्मीकये नमः ॥

(४)

कल्पते प्रतिभा-लब्ध्यै यस्य काव्येऽवगाहनम् ।
महाभारत-कर्त्तारं वन्दे व्यासं महामतिम् ॥

(५)

बुध-शस्यानि वर्द्धन्ते यत्काव्यामृतवर्षया ।
तं शब्दाकाश-संव्याप्तं कालिदासाम्बुदं भजे ॥

(६)

स्वलङ्कृता कवेर्वाणी रसावर्जन-कारिणी ।
रागिणीव रसज्ञस्य सद्यो नर्तयते मनः ॥

(७)

उद्दीप्तस्य रसस्यैव स्व-चेतसि सुभाषया ।
सङ्क्रान्तिः परचेतस्सु कवि-कर्म निगद्यते ॥

(८)

सदा तदनुसन्धेयमास्वादन-परैर्बुधैः ।
न पुनः पण्डितम्मन्यैर्वाचालैस्तर्क-कर्कशैः ॥



बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

विषय-निर्धारण

सामान्यतः यह धारणा रूढ़िबद्ध सी है कि संस्कृत एक ऐसा प्राचीन विषय है, जिससे देश का सम्बन्ध सहस्रों वर्ष पूर्व टूट चुका है। संस्कृत को 'मृतभाषा' नाम देने में यह धारणा सहायक होती है। इस धारणा को भ्रामक सिद्ध करने के लिए आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति जैसे महान कवियों की प्राचीन कृतियाँ सहायक साधन के रूप में हमारे लिये उपयोगी नहीं हो सकतीं। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में निर्मित संस्कृत साहित्य का अनुसन्धान करना होगा। यह देखना होगा कि मुसलमानों के आक्रमण और शासन के काल में तथा परवर्ती अंग्रेजी शासन-काल में भी, दासता के इन सहस्र वर्षों में देश संस्कृत को नहीं भूला। यही नहीं, इस अवधि में ही देश के विभिन्न अञ्चलों, राजधानियों, विद्या-केन्द्रों एवं मठों में इतिहास को गौरवान्वित करने वाले साहित्य का प्रचुर मात्रा में सर्जन हुआ। नवद्वीप, मिथिला, व्रजमण्डल, काशी, विजयनगर, काञ्ची, पाटन, धारा, श्रीनगर आदि केन्द्रों में संस्कृत की रचनाएँ चलती रहीं। दर्शन के क्षेत्र में चैतन्य, वल्लभ, हित हरिवंश, प्रियादास, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, मध्व, रामानन्द, मधुसूदन सरस्वती और विद्यारण्य तथा इनके शिष्य-प्रशिष्यों की अमूल्य कृतियाँ इसी आक्रान्त युग की उपलब्धियाँ हैं। काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत साहित्यदर्पण, रस-गङ्गाधर, रस-मञ्जरी, प्राकृत-पिङ्गल कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों को भुलाया नहीं जा सकता। इसी तरह अनेक स्तुति-ग्रन्थ, कोश, सुभाषितों के संग्रह, आयुर्वेद, कामशास्त्र, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पशु-विज्ञान और नीति-शास्त्र-परक ग्रन्थों की भी रचनाएँ चलती रहीं। प्रबन्धकाव्य, लघुकाव्य, चम्पू, नाटक, गद्य-प्रबन्ध आदि रसमय साहित्य के क्षेत्र में अप्पय दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ, भानुदत्त, रूप गोस्वामी, मित्रमिश्र, मेरुतुङ्गाचार्य, गोविन्द भट्ट और विश्वनाथ सिंह तथा दक्षिण के अगणित विद्वानों का योगदान अविस्मरणीय है। आधुनिक युग में पण्डिता क्षमा राव, अम्बिकादत्त व्यास, हृषीकेश शास्त्री, मथुरानाथ आदि अनेक कलाकारों की कृतियाँ भारती के भाण्डार में जुड़ती चली गई हैं। पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में मूल्यवान् निबन्ध-साहित्य एवं कविताओं का नवोन्मेष होता जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रपति के महान् पद पर प्रतिष्ठित स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद की जो प्रेरणाएँ संस्कृत-प्रेमियों को प्राप्त हुई हैं तथा आज राजनीतिक विश्व के उच्च अन्तरिक्ष का स्पर्श करते [redacted] भी सामान्य पत्रों और शुभकामनाओं तक में स्वरचित संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग करने वाले डा० चिन्तामणि द्वारकादास देशमुख जैसे दुर्लभ मनीषी जिस सुरुचि का परिचय दे रहे हैं[1], वह संस्कृत के भावी उत्थान के लिये सुस्थिर प्रकाश-सङ्केत है। देश के हितैषी निरवधि काल में कभी-न-कभी अवश्य ही समानधर्मा होकर उस पण्डित-परम्परा का अपरिमित ऋण समवेत स्वर से स्वीकार करेंगे, जिसने संस्कृत-साहित्य की यथाशक्ति रक्षा कर एवं उसके मूल को सींच कर उसे प्रस्फुटनशील बनाए रखा है; जिसके बल पर अपनी अनादि राष्ट्रीयता का परिचय पाकर हम सदा अपना मस्तक गर्वोन्नत रख सकेंगे।

संस्कृत-सर्जन की धारा शासकों के द्वारा पोषण के अभाव में या देश और समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में मन्द पड़ी होगी, या उसके स्तर में अन्तर आया होगा, पर वह समाप्त नहीं हुई। समाज की रुचि संस्कृत-साहित्य में बनी रही आई है। लोकभाषाओं के कवियों और विद्वानों ने आज तक ऐसे अनेक तत्त्वों और मतों का प्रसार बनाए रखा है, जिनके आधार-स्थल संस्कृत के ग्रन्थ हैं। इस प्रकार संस्कृत का मूल्य बराबर बना रहा है। वह मृत नहीं अपितु मृत-सञ्जीवनी अमृत-भाषा रही आई है। इस तथ्य के अधिकाधिक पोषण के लिये ही हमें ईसा की दूसरी सहस्राब्दी के संस्कृत साहित्य का शोध और मूल्याङ्कन करना होगा।

यह परवर्ती संस्कृत साहित्य बहुत कुछ बेठनों में बंधा हुआ पड़ा है। मन्दिरों और राजाओं के महालयों में इस साहित्य को तालों में बन्द रह कर कीटों का भक्ष्य बनना पड़ रहा है। आज हमें इसे प्राप्त कर इसका आकलन, सङ्कलन और यथोचित प्रकाशन करना होगा तथा संस्कृत के आधुनिक इतिहासों में इसे समाविष्ट करना होगा।

विशेष रूप से बारहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत साहित्य की सर्जना करते रहने की लगन और रुचि जिन विद्वानों ने दिखाई है, वे चाहे उँगलियों पर गिने जा सकें, हमें उनके अध्यवसाय का लोहा मानना होगा, उनके साहस और धैर्य की स्तुति करनी होगी। उनका मूल्याङ्कन करते समय हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि उन्हीं के साहित्यिक योगदान के बल पर हम आज कह पा रहे हैं कि संस्कृत भाषा का साहित्य सुदूर अतीत के इतिहास का ही निदर्शन नहीं है, अपितु वह भारतीय जीवन की

१. पदे० : शुभकामना : पृ० ६ : 'जगन्नायेति धीधरसुतपदे०……।'

रचि से आज तक सम्पृक्त है और ऐसा रहा आयेगा। आधुनिक युग में भी संस्कृत का साहित्य अभिनव वेश में साकार होकर युग के अनुकूल सामग्री प्रदान कर सकेगा; देश के खण्डों को एक सूत्र में गुम्फित कर सकेगा; अमर राष्ट्र की यह अमर-भारती अनन्त काल तक विश्व के दिगन्तरों को प्रतिध्वनित करती रहेगी।

उक्त दृष्टिकोण को लक्ष्य बनाकर यह आवश्यक है कि उपर्युक्त परवर्ती साहित्य को हम काल-सीमा और क्षेत्र-सीमा में बँध कर ढूँढ़ें; क्षेत्रीय अथवा आञ्चलिक साहित्य के रूप में इसका अनुसन्धान करें। जिन मठों, विद्या-केन्द्रों, मुस्लिम या हिन्दू राज-सभाओं या सांस्कृतिक इकाइयों में परवर्ती संस्कृत साहित्य का उन्मेष एवं स्फुरण हुआ है, उन्हें पृथक्-पृथक् कर हम उसका अनुशीलन करें। भारत में ऐसे अञ्चल अनेक मिलेंगे।

बघेलखण्ड[1] की इकाई को यहाँ अञ्चल के रूप में लिया गया है। यहाँ के बघेल नरेशों का क्रमिक इतिहास पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग से उपलब्ध होता है और सोलहवीं शती में वे संस्कृत साहित्य में रुचि लेने वाले एवं स्वयं काव्यकर्ता के रूप में प्रकट होते हैं। अतः प्रस्तुत वर्ण्य विषय की काल-सीमा १५०० से १६०० ई० तक रखी गई है। इस विषय के अन्तर्गत उक्त काल-सीमा के भीतर प्राप्त उतना ही संस्कृत साहित्य है, जो गहोरा, बान्धवगढ़ और रीवा की राजधानियों पर शासन करने वाले बघेलों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है।

इस प्रबन्ध से प्रकट होगा कि विगत अन्तिम शतियों में भी संस्कृत साहित्य का सर्जन होता चला आया है। हम जिन क्षेत्रों को राजनीतिक दृष्टि से अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रमों के विचार से अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते रहे, वहाँ भी खोजने पर संस्कृत-साहित्य का निर्माण होता रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में १२वीं शती के पीछे की जिन संस्कृत-रचनाओं की उपेक्षा की हुई है, उनके सङ्कलन, विवरण, प्रकाशन, सूची-निर्माण आदि कार्यों की ओर अब विद्वानों का ध्यान जा रहा है। इसी शुभ कार्य में सहयोग के रूप में हमारा भी यह लघु प्रयास है।

बघेलखण्ड में १५०० से १६०० ई० के बीच प्रमुख रूप से संस्कृत के आठ कवियों की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये कवि हैं—१ : भानुकर, २ : माधव ऊज्झ, ३ : गोविन्द भट्ट अथवा अकबरी कालिदास, ४ : पद्मनाभ मिश्र, ५ : वीरभद्रदेव (नरेश), ६ : रूपनि मिश्र, ७ : विश्वनाथसिंह (नरेश) और ८ : रघुराजसिंह (नरेश)। इनके सम्बन्ध में अभी तक निम्नलिखित रूप में कार्य हुआ है—

१—देखिये आगे अध्याय २ (क) : 'बघेलखण्ड शब्द से तात्पर्य।'

डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी ने प्राच्यवाणी मन्दिर कलकत्ता से मुस्लिम-कालीन संस्कृत साहित्यकारों की कृतियों पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकें प्रकाशित की हैं। साथ ही आपने कुछ सुभाषित-सद्ग्रह भी प्रकाशित किये हैं।[१]

इन सुभाषित-सद्ग्रहों में भानुकर और अकब्बरी कालिदास की रचनाएँ प्राप्त हैं। भूमिकाओं में आपने इन कवियों के जीवन और कृतियों पर प्रकाश डाला है। वीरभद्रचम्पू काव्य में डा० चौधुरी ने वीरभद्रदेव और पद्मनाभ मिश्र का आलोचनात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत ग्रन्थों की सूची प्रकाशित की थी,[२] जिसमें आपने रूपणि मिश्र की कृति (पाण्डुलिपि) पर प्रकाश डाला है। यह कृति सन् १६५७ में रीवा से प्रकाशित की गई थी[३], जिसमें रूपणि के सम्बन्ध में जानकारी प्रस्तुत की गई थी। उक्त सूची में वीरभद्र की कृतियों का भी उल्लेख है। डा० हरदत्त शर्मा ने अपने कुछ निबन्धों में भानुकर, अकब्बरी कालिदास, विश्वनाथसिंह, पद्मनाभ, वीरभद्रदेव और रूपणि मिश्र की कृतियों की चर्चा की है।[४]

भानुकर (या भानुदत्त), पद्मनाभ, वीरभद्र और विश्वनाथसिंह की कृतियों पर पी० के० गोडे के निबन्धों से भी प्रकाश पड़ा है[५]। ये निबन्ध

---

१. देखिये प्राच्यवाणी कलकत्ता की प्रकाशन सूची : सम्बद्ध पुस्तकें निम्नलिखित हैं—

क-मुस्लिम पैट्रनेज०, ख-पद्यामृत०, ग-सूक्ति०, घ-रसिक० ङ-पद्यवेणी, छ-सभ्या०, ज-राम० प्र०, झ-वीर० चम्पू०।

२. ए डेस० कै० भाग ७ : क्र० ५२६४ और ५२९८।

३. बघेल०।

४. (१) दि 'पोयट भानुकर०' : एनल्स० ग्रन्थ २० भाग १ : १९३९
(२) इ० हि० : ४७८।
(३) ओ० ज० : भाग ३ : १३३, १३६।
(४) 'बाघेल रूलर्स०'।

५. (१) 'साहित्यसुधा०' : ओ० ज० भाग १ : १९३४ : पृ० २१७-२०।
(२) 'सम डेटा०' : ओ० ज० : भाग २ : १९३५ : पृ० १६७-९९।
(३) 'आइडेंटीफिकेशन०' : ओ० ज० भाग २ : १९३५ : पृ० २५४-५८
(४) 'टर्मिनस०' : एनल्स० : ग्रंथ १६ : १९३५ : पृ० १४७-४८।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। महाराज विश्वनाथसिंह की कृतियों का श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने भी विवरण दिया है।[१] रूपणि मिश्र एवं तत्कालीन विद्वानों का संक्षिप्त विवरण श्री अख्तरहुसेन निजामी के लेखों से भी प्राप्त होता है।[२] रघुराजसिंह और माधव ऊरव्य के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी कवियों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहासों में भी जानकारी मिलती है।[३]

वीरभद्रदेव (नरेश) और उनके सहचर पद्मनाभ मिश्र पर निबन्धों के रूप में कुछ और जानकारी प्रकाशित हुई है। काशी से किरणावली-भास्कर[४] और चन्द्रालोक की शरदागम टीका[५] तथा कन्दर्पचूडामणि का द्वितीय संस्करण[६] प्रकाशित हो चुका है, जिनकी भूमिकाओं में विद्वत्तापूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। कन्दर्पचूडामणि के प्रथम संस्करण[७] में केवल सामान्य परिचय मिलता है।

वीरभानूदय काव्य पर केवल डा० हीरानन्द शास्त्री ने प्रकाश डाला है। आपने पहले दो निबन्ध प्रकाशित कराए और पीछे काव्य के प्रकाशन के समय भूमिका में इतिहास-परक समीक्षा प्रकाशित की।[८]

महाराज विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह के जीवन और कार्य पर पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास में संक्षिप्त प्रकाश पड़ा है।[९] कुछ वर्षों पूर्व विश्वनाथसिंह का हिन्दी ग्रन्थ आनन्द-रघुनन्दन नाटक प्रकाशित हुआ है, जिसकी भूमिका में कवि के सम्बन्ध में जानकारी दी गई है।[१०]

---

(५) 'भानु०' : इ० क० : ग्रन्थ १ : १९३७ : पृ० ७५१-५६।
'संस्कृत एण्ड हिन्दी वर्क्स' ।

(६) 'न्यू इ० ऐ०'—ग्रन्थ ९ : क्र० ४-६ : १९४७।

१. 'संस्कृत वर्क्स०' : ज० ए० सो०, अक्टू० १९४०।

२. 'नाइन जेम्स०' : ज० गं० इ० : ग्रन्थ ८ भाग ४ : अगस्त-१९५१।

३. हि० क्ला० सं० लिट्० ।

४. कि० भा० ।

५. शरदागम० ।

६. कन्दर्प० २ ।

७. कन्दर्प० १ ।

८. (१) 'बघेल डायनेस्टी०' : बड़ौदा : १९२५।
(२) 'फर्दर नोट्स०' : ज० बी० ओ० सो० : १९३०।
(३) वीर० क्रि० ए० ।

९. प्रकाशित—काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८ वि० : पृष्ठ ३२७-२८ तथा ५५४।

१०. आ० रघु० ।

बघेलखण्ड के इन संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में मेरे निम्नलिखित लेख प्रकाशित हो चुके हैं—

१—बघेल राजवंश और साहित्यिक विकास	: 'विन्ध्यभूमि',	रीवा	१९५६
२—पद्मनाभ मिश्र	: ,,		,,
३—अश्वधरी कालिदास	: ,,		,,
४—जयसिंहदेव की रचनाएँ	: ,,		,,
५—विन्ध्य के प्राचीन साहित्यकार	: ,,		,,
६—रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ	: 'विन्ध्यशिक्षा'	(रीवा)	१९५६
७—वीरभद्रचम्पू के ऐतिहासिक उल्लेख	: 'विन्ध्यप्रदेश',	(रीवा)	१९५६
८—विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ	: 'मध्यप्रदेश सन्देश'		

ग्वालियर, मार्च, १९६२

इनके अतिरिक्त मेरी प्रकाशित पुस्तक 'संस्कृत-साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन'[1] में उपर्युक्त सभी कवियों का तथा उनकी उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बघेलखण्ड का यह संस्कृत साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में कलकत्ता[2], अलवर[3], बीकानेर[4], उदयपुर[5], जोधपुर[6], रीवा[7], तथा रामवन[8] आदि स्थानों के पुस्तकालयों में सुरक्षित है। इनका उल्लेख आफ्रे की सूची में मिलता है।[9] बहुत सी पाण्डुलिपियाँ अब लुप्त हो चुकी हैं।

उपर्युक्त कार्यों को समग्र रूप से देखने से ज्ञात होगा कि अभी तक बघेलखण्ड के साहित्य एवं इतिहास पर आधारित क्रमबद्ध और सूत्रबद्ध कार्य नहीं हुआ है। बहुत सा कार्य निबन्धों के रूप में है, जिनमें काव्यकृतियों की तिथि, विषय और रचनाकार के सम्बन्ध में सामान्य अपूर्ण विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। एक आञ्चलिक इकाई के रूप में बघेलखण्ड को ग्रहण कर उसमें प्राप्त

---

१. मार्तण्ड प्रेस, रीवा : १९५७।
२. रा० ए० सो०।
३. कैटे० अलवर।
४. कैटे० बीकानेर।
५. कैटे० उदयपुर।
६. महाराजा लाइब्रेरी, जोधपुर।
७. सरस्वती कोष भाण्डार, किला, रीवा।
८. तुलसी सङ्ग्रहालय, रामवन (सतना)।
९. आफ्रे०।

संस्कृत साहित्य को समग्र रूप में देखने और तत्पश्चात् उसका समीक्षात्मक मूल्याङ्कन करने की आवश्यकता है, जिससे हम उनका महत्त्व समझ सकें। इसी दिशा में केवल काव्यग्रन्थों पर यह प्रयास है।

सोलहवीं शती और उसके पीछे बघेलखण्ड के बघेलनरेशों की तीन राजधानियाँ रही हैं—

१—गहोरा, जो अब बाँदा जिला (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत एक ग्राम है;

२—बान्धवगढ़, जो शहडोल जिला (मध्यप्रदेश) की एक पहाड़ी में प्राचीन दुर्ग के अवशेष के रूप में है और

३—रीवा, जो वर्तमान मध्यप्रदेश का उत्तरी सम्भागीय केन्द्र है। ये राजधानियाँ अपने-अपने काल में साहित्य-सर्जना की स्थलियाँ रही हैं।

बघेलों का शासन आरंभ होने से पूर्व इस जनपद में महोबा-कालिंजर के चन्देल नरेशों और डाहल-मण्डल, त्रिपुरी-रत्नपुर के कलचुरि राजाओं का वैभव और प्रताप छाया हुआ था। उनके आश्रय में संस्कृत के शिला-लेख, नाटक, महाकाव्य आदि अनेक ग्रन्थ रचे गए थे। हमारा विवेचन इसके पश्चात् सोलहवीं शती से आरम्भ होता है, जब यह नर्मदोत्तर प्रदेश बघेलों द्वारा शासित था। गहोरा, बान्धवगढ़ और रीवा राजधानियों में और यदा-कदा उनके परिसर में नरेशों द्वारा तथा उनके आश्रित विद्वानों द्वारा उन राजाओं के सम्बन्ध में अथवा स्वतन्त्र रूप से जिन संस्कृत काव्यों का सर्जन १५०० से १९०० ई० के बीच हुआ, उन्हीं का समीक्षात्मक मूल्याङ्कन इस प्रबन्ध का विषय है।

संयोग से इन सीमाओं के अन्तर्गत हमें एक ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य, वीरभानूदय सुलभ है। इसके साथ ही वंशावली-काव्य, प्रशस्ति, स्तुति, चम्पू, नाटक आदि अनेक प्रकार का काव्य-साहित्य भी उपलब्ध है, जिसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्यायों में करेंगे। इस प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य को देखने से विदित होगा कि बघेलखण्ड के इन संस्कृत काव्यों ने संस्कृत साहित्य की रुचि को जीवित-जाग्रत् रखा है और सर्जन की परम्परा को सुचारू रूप से आगे बढ़ाया है। अपने इस योगदान से इन संबद्ध कवियों ने बघेलखण्ड अञ्चल को गौरव प्रदान किया है।



पृष्ठभूमि

(क) बघेल शब्द की व्युत्पत्ति

बघेलखण्ड जनपद[1] की अनुश्रुतियों के अनुसार 'रीवा'[2] के बघेलवंशीय क्षत्रियों का मूल पुरुष व्याघ्रदेव था; उसका मुख बाघ के मुख की भाँति था और इसी कारण उसकी सन्तान 'बाघेल' या 'बघेल' कहलाए। रीवा महाराज की ओर से प्रकाशित कैलेंडरों में 'बघेलवंश-चित्रावली' छापी जाती है, जिसके बीच में स्थित व्याघ्रदेव का मुख बाघ के मुख के सदृश रखा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस अनुश्रुति पर विचार करना निरर्थक है।

स्थानीय लेखों के आधार पर रीवा-जनपद के बघेल क्षत्रिय गुजरात से आए हुए सोलंकी[3] हैं। गुजरात में पाटन के चौलुक्यों और बाघेलों [redacted] लिए अनेकशः सोलंकी शब्द प्रयुक्त हुआ है। सोलंकी शब्द चालुक्य या चौलुक्य का ही अपभ्रंश है।

गुजरात में पाटन (प्राचीन अनहिलपाटक) से प्रायः १० मील दक्षिण-पश्चिम दिशा में *'व्याघ्रपल्ली' नामक गाँव अवस्थित है*[4]। गुजरात के चौलुक्य-नरेश कुमारपाल (११४३-७२ ई०) ने अपनी मौसी के पुत्र अर्णोराज

---

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के चार उत्तरी जिलों—रीवा, सतना, सीधी और शहडोल से सीमित बघेली बोली का जनपद।

२. विगत रीवा या बान्धव राज्य की राजधानी, विन्ध्यप्रदेश की राजधानी, एवं वर्तमान सम्भागीय केन्द्र (मध्यप्रदेश)।

३. क्षत्रियों की एक शाखा-विशेष। देखिये, रीवा स्टेट गजेटियर पृ० १२। विस्तृत चर्चा के लिये देखिये, *'ओरिजिन आफ दि चालुक्याज'* : (रनजीतसिंह सत्याश्रय) : पृष्ठ ४८-४९, ७७, ९६; साथ ही देखिये— बाम्बे गजेटियर, जिल्द प्रथम—भाग १, पृ०१५६।

४. मजूमदार—अशोक कुमार : चौलुक्याज आफ गुजरात : भारतीय विद्या स्टडीज चतुर्थ, बम्बई: १९५६ : पृ० १६९।

(या आनाक) को इस व्याघ्रपल्ली गाँव का सामन्त बनाया था। अर्णोराज के पुत्र लवणप्रसाद को 'व्याघ्रपल्लीय' लिखा गया है।[१]

उदयप्रभसूरि के अनुसार उक्त अर्णोराज को कुमारपाल ने भीमपल्ली का सामन्त-पद प्रदान किया था[२]। श्री मजूमदार का कथन है कि सम्भवतः 'भीमपल्ली' और 'व्याघ्रपल्ली' समानार्थक हैं।[३] श्री निज़ामी के अनुसार भीमपल्ली अर्णोराज को पैतृक परम्परा से प्राप्त हुई तथा व्याघ्रपल्ली कुमारपाल से[४]।

लवणप्रसाद व्याघ्रपल्लीय का पुत्र वीरधवल था। उसका पुत्र वीसलदेव गुजरात का प्रथम बाघेल सम्राट् (१२४५-६१ ई०) बना। चौलुक्यों की मूल शाखा की समाप्ति के पश्चात् बघेलों की यह शाखा १२४४ ई० से १३०४ ई० तक गुजरात में शासन करती रही।[५]

इस प्रकार यह तर्कसङ्गत प्रतीत होता है कि 'व्याघ्रपल्ली' गाँव के कारण ही यहाँ के अर्णोराज के वंशधर सामन्त 'व्याघ्रपल्लीय' नाम से प्रसिद्ध हुए और कालान्तर में लोकभाषा में ये इसी आधार पर 'बाघेल' या 'बघेल' कहलाए।[६]

गुजरात के साहित्य में इन बाघेल सम्राटों को अन्य शाखा के चौलुक्य ही लिखा गया है।[७] उक्त प्रथम बाघेल सम्राट वीसलदेव के खम्भात—शिलालेख[८] में बाघेलों का वंशारम्भ लगभग उसी रूप में है जिस रूप में पूर्व चौलुक्य-नरेशों का है—

१. जिन विजयमुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (मेरुतुङ्गकृत) : कुमारपाल-प्रबन्ध : पृष्ठ ९४ : 'अथ कदाचिदाताकनामा मातृष्वस्रीयस्तत्सेवागुणतुष्टेन राज्ञा दत्तसामन्तपदोऽपि......।' तथा पृष्ठ १८१—'श्रीमद्भीमदेवराज्यचिन्ताकारी व्याघ्रपल्लीय-सङ्केतप्रसिद्धः श्रीमदानाकनन्दनः श्री लवणप्रसादः.......।'

२. सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी : श्लोक ७४।

३. चौ० गु० : पृष्ठ १६९।

४. निज़ामी : 'बघेलाज़ इन गुजरात' : दि रीवा इन्फर्मेशन : ग्रन्थ १ भाग ३ : जुलाई, १९४०।

५. चौ० गु० : अध्याय १० 'बाघेलाज़' : पृष्ठ १६९-८५।

६. वही।

७. कीर्तिकौमुदी : सोमेश्वर कृत : ३।६२ : भीम द्वितीय के वर्णन के साथ—
'अथ तत्रैव चौलुक्यवंश्यो शाखान्तरोद्गतः।
अर्णोराजः स राजर्षिस्तन्नामर्पत विप्लवम्॥'

८. इन्स०भावनगर : क्र० २१४, साथ ही देखिये चौ० गु० : पृ० १६९।

'''''ब्रह्मा जब इस प्रकार विचार-मग्न था, तब सहसा उसके 'चुलुक' से एक योद्धा प्रकट हुआ। '''इसी वीरपुरुष से 'चौलुक्य' उद्गत हुए। इस वंश में अर्णोराज उत्पन्न हुआ''''।'

यह अर्णोराज धवल का पुत्र था।[1] धवल ही इसकी शाखा का प्रथम ज्ञात व्यक्ति है।[2] सोमेश्वर कवि के अनुसार (पाटन में) मूलराज प्रथम[3] के वंशजों के समाप्त हो जाने पर वाघेलों का राज्य प्रारम्भ हुआ।[4]

मूलराज से पूर्व सौराष्ट्र के चौलुक्य शासन की स्थापना कल्ल ने की थी। इसी वंश का राजि था, जिसके पुत्र मूलराज ने पाटन का चौलुक्य-राज्य स्थापित किया।[5] अतः सम्भव है कि मूलराज से पूर्ववर्ती सौराष्ट्र [redacted] चौलुक्यों की कोई शाखा व्याघ्रपल्ली में आकर बसी हो और इसी वंश में धवल और अर्णोराज हुए हों, जिनके वंशज वाघेल कहलाए।

गुजरात के चौलुक्यों और वाघेलों का गोत्र भारद्वाज था तथा उनके वर्तमान वंशधरों का यही गोत्र है।[6]

रीवा के बघेल नरेश भी भारद्वाज गोत्र के हैं।[7] अतः बघेलों की यह परम्परा कि गुजरात के चौलुक्यों और वाघेलों के साथ उनकी वंशगत एकात्मता है, मान लेने में कोई कठिनाई नहीं है।

रीवा के बघेलों का मूलपुरुष 'व्याघ्रदेव' विवाद का विषय है। ऐसे कोई अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिनके बल पर व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक व्यक्ति मान लिया जाय। दूसरी ओर रीवा तथा अन्य स्थानों के बघेल, जो अपने को

---

१. कीर्तिकौमुदी २।६३ तथा वसन्तविलास-महाकाव्यः (बालचन्द्रसूरिकृत) बड़ोदा : १९१७ : ३।१८-
'एतस्य सामन्ततवृत्तमर्णोराजस्चुलुक्यो धवलाङ्गजन्मा।'
२. चौ० गु० : पृ० १६९
३. गुजरात के चौलुक्य-राजवंश का मूल पुरुष।
४. ए० इ० : दभोई-प्रशस्ति (संवत् १३११ में सोमेश्वर द्वारा रचित) : १।२० 'श्री मूलराजकुलजेषु मृगाङ्कमौलि-भक्तेषु भूपतिषु तेषु दिवङ्गतेषु।'
५. 'ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश'—मुंशी कन्हैयालाल माणिक्यलाल-बम्बई १९५४ : पृ० ४०६-७।
६. औ० पा० : पृष्ठ ४८-४६, ७७, ६६।
७. वीरभानूदय-काव्यम् : रीवा : १९२८ : सर्ग १। श्लोक १९ : 'भारद्वाजारिष्टनेमि-वंशजौ सङ्गतौ नृपौ।' श्लोक २८ : 'भारद्वाजो मुनीन्द्रः''' व्याघ्रपादः—तद्वंशे वीरसिंहः।'

व्याघ्रदेव से निर्गत मानते हैं, व्याघ्रदेव की ऐतिहासिकता के प्रबल पक्षपाती हैं और व्याघ्रदेव से उन्होंने अनेक अनुश्रुतियाँ भी जोड़ रखी हैं।

१७३२ ई० के कुछ पीछे और १७५५ ई० के पूर्व लिखा हुआ एक बघेली भाषा का लेखपत्र 'एकत्रा बाँचीगड़',[१] प्रथम उपलब्ध लेख है और वह सम्पूर्ण वंशसूची प्रस्तुत करता है, जो पीछे के अनेक लेखों में प्राप्त होती है तथा जो रीवा में मान्य है। इसमें पहली बार व्याघ्रदेव के गुजरात से आने का उल्लेख है। यह कहना कठिन है कि इससे पूर्व यह मान्यता थी या नहीं। इसमें कर्णदेव को व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया गया है।

इससे कुछ ही वर्षों पूर्व १६७८ ई० में लिखित संस्कृत काव्य 'बघेलवंश-वर्णनम्' में पहला नाम कर्णदेव है। यह गुजरात में उत्पन्न बतलाया गया है,[२] और व्याघ्रदेव की यहाँ कोई चर्चा नहीं है, जब कि लेखक रूपणि शर्मा इसी वंश के रीवा-नरेश भावसिंह का सभासद है और उसका वंश लिखने का लक्ष्य भी भावसिंह को तुष्ट करना ही है।[३]

इससे लगभग सवा सौ वर्ष पहले लिखित वीरभानूदयकाव्य में, जो इसी वंश के नरेश वीरभानु का चरितवर्णन है, भीम से वंशवर्णन प्रारम्भ होता है। उक्त बघेलवंशवर्णन काव्य में प्राप्त अनेक प्रारम्भिक नाम, जो समस्त परवर्ती सूचियों में है, वीरभानूदय में नहीं है। यह काव्य १५५६ ई० के निकट लिखा गया। इस आधार पर इसी काव्य की समीक्षा में डा० हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानूदय में अप्राप्त व्याघ्रदेव, कर्णदेव, सोहागदेव, सारंगदेव, बीसलदेव, दलकेश्वर, मलकेश्वर और बरियारदेव—इन आठ नामों को कल्पित कहा है।[४]

वीरभानूदय में बघेलों को भारद्वाज व्याघ्रपाद्-गोत्रीय एवं व्याघ्रपाद मुनि के वंशज बतलाया गया है।[५] ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल (सोलहवीं शती के मध्य भाग) में व्याघ्रपाद एक गोत्र-प्रवर्तक मुनि रूप में कल्पित है। इसके पश्चात् सभाओं के कवि व्याघ्रदेव को छोड़कर अन्य नाम वंश के पूर्वजों के रूप में अनुश्रुतियों के आधार पर जोड़ देते हैं और भावसिंह के काल[६] तक कर्णदेव को गुजरात से आया हुआ माना जाता है। इसके पीछे ही शीघ्र भावसिंह के काल

१. देखिये परिशिष्ट १ (क)।
२. बघेल० श्लोक ४ : 'स कर्णदेवः प्रबभूव गुर्जरे''''''।'
३. बघेल० श्लोक ९८ : 'भावसिंहस्य तोषायालेखि रूपणिशर्मणा।'
४. वीर० क्रि० ए०: पृष्ठ १६-१७।
५. वीर० १।१९ : 'व्याघ्रपाद्गोत्रं''''श्री वीरभानुं''''।'
और १।२१ : 'व्याघ्रपादमुनिवंशजलोकैः।'
६. १६७५-९४ ई०।

को सूची यथार्थ मान कर १८वीं शती के आरम्भ में गोत्र-प्रवर्तक मुनि व्याघ्रपाद को मूलपुरुष व्याघ्रदेव क्षत्रिय मान लिया जाता है[१], जो गुजरात से आकर गहडा-कालिंजर क्षेत्र में प्रभावशाली हुआ।[२] दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि व्याघ्रदेव ऐतिहासिक व्यक्ति हो, इसी को वीरभानूदय में व्याघ्रपाद मुनि लिखा गया हो। इस पक्ष में निम्नलिखित अनेक तर्क हैं—

एक मत यह है कि चौलुक्य नरेश भीमदेव प्रथम (१०२२-६४ ई०) के चौथे पुत्र सारंगदेव के पुत्र वीरसिंह को सिद्धराज जयसिंह (१०६४-११४३ ई०) ने जागीर में बघेला गाँव दिया था। वीरसिंह का पुत्र बाघराव साधारण जागीर से सन्तुष्ट न हुआ। यही बाघराव व्याघ्रदेव हैं, जिसने बघेलखण्ड की सत्ता स्थापित की।[३]

इस मत को मानने में पहली कठिनाई यह है कि गुजरात के तत्कालीन ग्रन्थों में ये नाम प्राप्त नहीं हैं। भीमदेव के केवल तीन पुत्रों—मूलराज, कर्णदेव और क्षेमराज या हरिपाल[४] के नाम मिलते हैं, सारंगदेव का नहीं। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि भीमदेव मूलराज प्रथम का ही वंशधर था, जब कि बघेलों की शाखा मूलराज से पृथक् मानी जाती है।

कनिंघम की सूची[५] में, जिसमें मूलतः बारा-कसौटा[६] घराने के बघेलों की वंश-सूची पर विचार किया गया है, व्याघ्रदेव को सिद्धराज (जयसिंह) का पुत्र लिखा गया है। किन्तु यह विदित तथ्य है कि सिद्धराज-चौलुक्य निस्सन्तान मरा, इसीलिए दूसरी शाखा का कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ।

---

१. परि० १ (क) : एकत्रा वाग्योगः—
'बघेलन [redacted] कौलादि लिखा जबते गुजरात ते आये। पुरखा ठाकुर कहाँ लागि। पुरखा १-जैसिंहदेव १, वीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३। गुजरात ते आए पुरखा तीनि मैं है—कर्णदेव ४ सोहागदेव ५ सारंगदेव ६। कालिंजरहिं आइ दुइ भाई भए राजा के चाकर मैं—बीसलदेव ७ जेठे भीमल लहुरे।'

२. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७-८।

३. कसौटा के बाघेलों का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : संवत् २००६ : कसौटा (उ० प्र०) : पृ० ४४ तथा 'विन्ध्यप्रदेश का इतिहास', वही : रीवा १९५४ ई० : पृ० १३४।

४. गलो० गु० : पृ० ३३५।

५. आ० रि० इ० : जिल्द २१, पृ० १०७।

६. जिला इलाहाबाद। इस घराने का मूलपुरुष कन्धरदेव है, जिसे व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया जाता है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार 'गुजरात के राजा का भाई व्याघ्र लगभग १३वीं शती के मध्य में उत्तर भारत में आया और उसने मड़का दुर्ग[१] पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र कर्णदेव ने मण्डला की हैहय राजकुमारी से विवाह कर दहेज में बान्धवगढ़[२] प्राप्त किया।'[३]

कुछ जमाबन्दियों में व्याघ्रदेव के पिता का नाम वीरमदेव और पितामह का जैसिंहदेव मिलता है।[४] रीवा के इसी वंश के प्रसिद्ध कवि रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) ने व्याघ्रदेव से पहले 'वीरध्वज' नाम दिया है।[५] एकत्र बान्धोगढ़ में भी यही नाम है।[६] कुछ वंशावलियों[७] तथा रीवा स्टेट गजेटियर[८] में व्याघ्रदेव को वीरधवल का पुत्र लिखा गया है।

तेरहवीं शती के मध्य भाग में गुजरात में चौलुक्य वंश से निर्गत बघेलों का प्रथम उदय प्राप्त होता है, जिसमें वीरधवल[९] और उसके भाई वीरमदेव के विवरण उपलब्ध हैं। साथ ही इस काल में वीरधवल का पुत्र वीसलदेव (१२४५-६२ई०) प्रथम बघेल-सम्राट् के रूप में प्रकट होता है।[१०] उपर्युक्त सूचनाओं के अनुसार व्याघ्र को गुजरात के राजा का भाई मानने से इसी वीरधवल या वीरमदेव का पुत्र मानना होगा। कठिनाई यह है कि इस अनुमान का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। वीरधवल के दो पुत्रों, प्रतापमल्ल और वीसलदेव के उल्लेख हैं, पर व्याघ्रदेव का नहीं। इसी प्रकार वीरम के पुत्र के रूप में भी गुजरात के लेखों में व्याघ्रदेव का नाम उपलब्ध नहीं है।[११]

---

१. कालिंजर से १२ मील उत्तर-पूर्व। ध्वंसावशेष प्राप्त है। देखिये—आ० रि० इ०: जिल्द २१ भाग १-२ पृष्ठ १८-१९, १३१।
२. जिला शहडोल, म० प्र०। उमरिया स्टेशन से रीवा को सड़क पर।
३. इ० ग०: जिल्द ६: पृष्ठ ८७-८८।
४. देखिये परिशिष्ट १—(ख, ग)।
५. आनन्दाम्बुनिधि (१८५४ ई० में रचित): पृष्ठ ६: 'वीरध्वज व्याघ्रदेव'।
६. परिशिष्ट १ (क)।
७. अजवेश कवि कृत वंशावली, १८३१ ई०। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी से प्रकाशित।
८. लुआर्ड (कैप्टेन)—१९१० ई०: पृष्ठ १२।
९. मृत्यु १२३८ ई०—देखिये ग्लो० गु०: पृष्ठ २०५ तथा इ० ऐ० ६।१९०।
१०. ग्लो० गु०: अध्याय १०।
११. वही।

कृष्णाराम गणपतराम भट्ट द्वारा गुजराती भाषा में लिखित बघेल-वंशावली में व्याघ्रदेव के पूर्वजों के नाम भुवन, करण, चन्द्रादित्य, सोमादित्य, भुवनादित्य और राज (राजि) मिलते हैं। राज के दो पुत्र मूलराज और गंगामह बतलाए गए हैं, जिनमें से गंगामह का पुत्र व्याघ्रदेव है।[१] यद्यपि ये नाम गुजरात के लेखों में हैं, इतिहासकारों ने इनकी सत्ता पर सन्देह प्रकट किये हैं[२], साथ ही गंगामह का नाम अन्यत्र कहीं नहीं है।

राजशेखर सूरि ने कुमारपाल चौलुक्य (११४३-७२) के समकालीन एक व्याघ्रराज भट का उल्लेख किया है,[३] किन्तु उसका बघेल होने का उल्लेख नहीं है। साथ ही राजशेखर की अधिकांश ऐतिहासिक सूचनाएँ अप्रामाणिक एवं अनुश्रुतियों पर आधारित हैं।

इस प्रकार यथार्थ सूचना के अभाव में रीवा के बघेलों के मूल पुरुष व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक कहना सन्देह से परे नहीं है, दूसरी ओर परवर्ती साक्ष्यों, अनुश्रुतियों और विश्वासों को देखते हुए उसे पूर्णतः अस्वीकृत भी नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष यह है कि चौलुक्यों की व्याघ्रपल्ली की एक शाखा १२वीं-१३वीं शती में कभी फूट कर यमुना के दक्षिण गहड़ा-कालिंजर में पहुँची और उसने नये बघेल राज्य की स्थापना की, जिसकी परम्परा अब तक विद्यमान है।

बघेलखण्ड शब्द से तात्पर्य

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार २०°४० तथा २५°० उत्तरी अक्षांश और ८०°१०' तथा ८२°५७ पूर्वी देशान्तर के बीच में स्थित यह क्षेत्र बघेल राजपूत जाति के नाम पर, जो गत ६-७ सौ वर्षों से इस क्षेत्र के शासक रहे, बघेलखण्ड कहा जाता है। पूर्व में सोन नदी और पश्चिम में टोंस नदी है। उमरिया में कोयले की खदान है। चचाई प्रपात (जिला रीवा) और अमरकण्टक (*नर्मदा का उद्गम, जिला शहडोल*) दर्शनीय स्थान हैं। इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और मिर्जापुर जिले हैं, पूर्व में छोटा नागपुर, दक्षिण में मध्यप्रदेश के बिलासपुर और मण्डला जिले तथा पश्चिम में जबलपुर जिला और बुन्देलखण्ड के राज्य (पन्ना जिला) हैं।

---

१. बघेला-वृत्तान्त : प्रकाशित १९१७ ई०।

२. चौ० गु० : अध्याय १०।

३. जिनविजय मुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्धकोश' : शान्तिनिकेतन : १९३५ ई० : पृष्ठ ५०-५१ :

"....अथ स व्याघ्रराजाख्यो वमाये.... ।"

सन् १८७१ तक यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड एजेंसी के अन्तर्गत शासित होता रहा। इसके पश्चात् बघेलखण्ड एजेंसी स्थापित हुई, जिसमें रीवा के अतिरिक्त नागोद, मैहर, सोहावल, कोठी के राज्य (वर्तमान सतना जिला) तथा सितपुरा, बरौंधा, जसो, पालदेव, पहरा, तरांव, भैसौंधा और कामता-रजौला की जागीरें[१] थीं। केवल रीवा सन्धि-राज्य था तथा शेष सनद द्वारा शासित थे।

१८५७ ई० के पश्चात् रीवा दरबार तथा मैहर, नागोद, सोहावल और कोठी के लिए पोलिटिकल आफिसर नियुक्त किया गया। १८६२ ई० में रीवा दरबार की प्रार्थना पर उसे वापस बुला लिया गया तथा राज्यों को बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट (नौगांव छावनी, जिला छतरपुर) के अन्तर्गत कर दिया गया। १८७१ ई० में सतना केन्द्र बना कर पृथक् अधिकारी नियुक्त किया गया। १८७६ ई० में बरौंधा, जसो तथा ५ चौबे जागीरें बुन्देलखण्ड से बघेलखण्ड एजेंसी में स्थानान्तरित कर दी गईं।[२]

बघेलखण्ड क्षेत्र में ९४ प्रतिशत निवासी बघेलखण्डी बोली बोलते हैं।[३]

बघेलखण्ड की स्थापना और विस्तार

इस जनपद का नाम 'बघेलखण्ड' या 'बघेलों का देश' सत्रहवीं-अठारहवीं शती से पूर्व प्रचलित नहीं रहा होगा। यह नाम मुस्लिम इतिहासकारों ने कभी नहीं लिखा। उन्होंने इसे गहोरा या भाठ-गहोरा लिखा है।

मुस्लिम शासन-काल के पूर्व यह क्षेत्र 'डाहल' या 'चेदि' कहा जाता था। विशेषतः रीवा के दक्षिणी क्षेत्र, जिसका कुछ अंश सोहागपुर परगना (जिला शहडोल) है तथा मध्यप्रदेश क्षेत्र का नाम 'चेदि' रहा है।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ तथा महाभारत, रामायण और पुराण सभी इस क्षेत्र को हैहय, कलचुरि या चेदि जाति से सम्बद्ध करते हैं। धीरे-धीरे चेदि माहिष्मती से पूर्व की ओर हटे। कृष्ण चेदि ने कालिंजर (जिला बाँदा) को केन्द्र बनाकर उस क्षेत्र पर राज्य-विस्तार किया, जिसे अब बघेलखण्ड कहा जाता है। चौथी-पाँचवीं शती में मगध के गुप्त राजा इस क्षेत्र के सार्वभौम थे। उच्छकल्प और खोह (वर्तमान जिला सतना) के परिव्राजक राजा उनके सामन्त थे। समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ पर अङ्कित लेख के अनुसार डाहल तथा १८ आटविक राज्यों में से कुछ हैहय हो सकते हैं। छठवीं शती में बादामी नरेश मंगलीश ने

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के सतना और पन्ना तथा उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले में सम्मिलित।

२. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्द ६ : पृष्ठ १८५-८८।

३. वही, जिल्द २१ (१९०८ ई०) : पृष्ठ २८२।

चेदि के बुधवर्मन् कलचुरि को परास्त किया। सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में कलचुरियों ने त्वरित गति से चेदि देश कहे जाने वाले इस क्षेत्र पर सार्वभौमता प्राप्त कर ली। उनका विरुद 'कालञ्जराधीश्वर' था। यशोवर्मन् चन्देल (९२५-५५ ई०) ने पहली बार उनसे कालिंजर दुर्ग और परिसर का जनपद छीन लिया। चन्देल 'कालञ्जराधीश्वर' बन गए। १२ वीं शती तक कलचुरि इस क्षेत्र में रहे आए।[1]

यह पूर्णतः निश्चित नहीं है कि इस जनपद पर बघेलों ने कब अधिकार किया। मुसलमानों की बाढ़ ने जब कलचुरियों की सत्ता तोड़ दी, तब इस क्षेत्र पर भर, चौहान, सेंगर, गोंड़ और अन्य जातियों ने अधिकार कर लिये।[2] हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि '१९२५-२६ ई० में नागरी लिपि में लिखित एक भग्न शिलालेख कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम के आर्कियालाजिकल सेक्शन को भेंट किया गया था। शिलालेख सतना में प्राप्त हुआ था। शास्त्री जी ने रिपोर्ट उसी वर्ष पढ़ी थी। उनके मत में असन्दिग्ध रूप से यह बघेल-राजवंश का ही शिलालेख है और उसमें शालिवाहन, कंधरदेव और नाहरदेव नाम हैं, जो अवश्य ही रीवा के बघेल राजाओं के नाम होंगे तथा नाहरदेव (वीरभानूदय काव्य का नरहरिदेव हो सकता है।'[3]

रीवा से एक पीढ़ी नीचे के माने जाने वाले बारा-कसौटा घराने के बघेल व्याघ्रदेव के पुत्र 'कंधरदेव' को अपना मूलपुरुष मानते हैं।[4] रीवा की वंशावलियों में भी कंधरदेव व्याघ्रदेव का पुत्र है। अतः शिलालेख के 'कंदडदेव' का इस 'कंधरदेव' के साथ तादात्म्य किया जा सकता है। यह सम्भावना व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक मानने में सहायक है।

शास्त्री जी को करवी (जिला बाँदा) में सं० १४१७ (१३६० ई०) का गहोरा शिलालेख मिला था, जिसे उन्होंने बल्लालदेव बघेल (वीरभानूदय काव्य का बल्लारदेव) द्वारा खुदवाया हुआ माना था।[5]

वंशावलियों में बल्लालदेव को करियारदेव का पुत्र माना गया है। करियारदेव का काव्य में उल्लेख नहीं है, किन्तु बघेलखण्ड में 'वीरराजदेव' नाम से १३४७ ई० का शिलालेख रामपुर गाँव में रानियों के सती-स्तूपों[6] के रूप में

---

१. ई० ग० : जिल्द ६ : पृ० १८५-८८।
२. वही।
३ वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७।
४. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७।
५. वीर० क्रि० ए० पृष्ठ १७।
६. प्राचीन-लेख-मणि-माला : श्यामसुन्दरदास : बनारस : तथा आ० रि० इ० : जिल्द ९ : पृष्ठ २४०।

प्राप्त हुआ है, जिसका समय-स्थान आदि आधारों पर वरियारदेव के साथ तादात्म्य किया जा सकता है।

कनिंघम ने मुस्लिम लेखों[१] के दलकी व मलकी को बघेलवंश के दलकेश्वर-मलकेश्वर मान लिया था। इस सम्बन्ध में कनिंघम का कथन इस प्रकार है:—

'पहले मैंने यह सोचा था कि यह सशक्त योद्धा (दलकी व मलकी), जो कालिंजर और मालवा के राजाओं की अधीनता से मुक्त था, अवश्य ही चेदि या डाहल का कलचुरि राजा होगा—किन्तु अब मैंने बघेलों की प्राचीन सूची में दो राजाओं—दलकेश्वर और मलकेश्वर के नाम क्रमपूर्वक देखे हैं। मैं इन्हें मुसलमान लेखकों के मौलिक नाम दलकी व मलकी समझता हूँ। यदि यह तादात्म्य स्वीकार्य हो तो १२४७ ई० में ही बघेल राज्य सुदृढ़ बन चुका था और जिस दुर्गम स्थान में वह राजा छिप गया था, अवश्य ही वह बान्धोगढ़ का विख्यात दुर्ग होगा।'[२]

इन आधारों पर वर्तमान इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है कि 'यमुना के ठीक दक्षिण, महोबा और हमीरपुर (उत्तरप्रदेश) के बीच रीवा के उदीयमान बघेल, जो पिछली दो पीढ़ियों में चुनार के दक्षिण और टोंस नदी के तट-भाग पर प्रायः समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर चुके थे, न केवल दक्षिण की ओर तुर्कों का प्रसार रोक रहे थे, अपितु यमुना के तटीय क्षेत्र को भी सङ्कट-ग्रस्त बना रहे थे। अवध के प्रशासक द्वारा माठ-महोरा क्षेत्र पर किये हुए आक्रमण इस उदीयमान सत्ता को नियन्त्रित नहीं कर सके, यहाँ तक कि १२४७ ई० में कालिंजर और कड़ा के क्षेत्र पर बलबन द्वारा पूरी शक्ति के साथ किया हुआ आक्रमण भी राजा के अड्डों की लूट से आगे कुछ करने में असफल रहा।'[३]

श्री हेमचन्द्र राय[४] के अनुसार 'कलचुरियों के पश्चात् तेरहवीं शती के आरम्भ में परमर्दिदेव का पुत्र त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल कैमोर पृष्ठ के उत्तरी भाग पर तथा पूर्व में सोन नदी के तट-भाग तक अपनी सत्ता का विस्तार किये हुए

१. तबकात-नासिरी (अनु० रैवर्टी): पृष्ठ २४७, ६७९-८३, ८१६-१७: तथा तारीखे-फरिश्ता (ब्रिग्स): जिल्द १ पृष्ठ २३७।
२. आ० रि० इ०: जिल्द २१: पृष्ठ १०५-६।
३. 'दि स्ट्रगल फार एम्पायर': भारतीय विद्याभवन: बम्बई: १९५७: पृष्ठ १४६।
४. डायनैस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया: जिल्द २: कलकत्ता: १९३६: पृष्ठ ७२४-२६ तथा कनिंघम: आ० रि० इ० जिल्द २१: भाग १-२, पृष्ठ १४२-४८।

था। रीवा के ताम्रकों से विदित होता है कि ककरेड़ो[१] के सामन्त कौरव-वंशीय महाराणक, जो पहले त्रिपुरी के कलचुरियों के अधीनस्थ थे, अब १२४०-४१ ई० के पूर्व त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल के अधीनस्थ बन चुके थे। १२४१ ई० के पश्चात् त्रैलोक्यवर्मन् का कोई लेख नहीं मिलता।'

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल के राज्य-काल तक बघेल चन्देल-सत्ता के अधीनस्थ रूप में गहोरा और मड़फा के क्षेत्रों में पहले ही फैल चुके थे। कनिंघम के कथनानुसार मड़फा दुर्ग के उत्तर-पूर्व और दक्षिण की ओर प्रायः १२-१३ मील दूरी पर बघेलबारी और बघोलन नाम के दो बड़े गाँवों का अस्तित्व है, जो व्याघ्रदेव द्वारा बसाये हुए बतलाए जाते हैं।[२] जमाबन्दियों के अनुसार व्याघ्रदेव के वंशधर (या पुत्र) बीसलदेव और भीमलदेव कालिंजर आकर भर शासक की सेवा में रहे। भीमलदेव ने कालिंजर की ओर से गहोरा के लोधियों को मारा और उसे सेवा के पुरस्कार के रूप में 'गहोरा की जागीर' और 'ठाकुर' का पद मिला। भीमल का पुत्र रानिक और पौत्र बलनदेव[३] था। वीरभानूदय काव्य में इसी भीमल (भीम-नरेन्द्र) से वंशवर्णन प्रारम्भ किया गया है तथा उसके पुत्र राणिगदेव और पौत्र बालनदेव को गहोरा का शासक बतलाया गया है।[४] इन उल्लेखों से भीम (भीमलदेव) की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है।

मिनहाजउद्दीन ने इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में कुछ और जानकारियाँ दी हैं— '६४० हिजरी (१२४२ ई०) में ताजुद्दीन संजरी किकलूक ने कालिंजर और महोबा को नष्ट करने का निश्चय किया। ६४१ हिजरी (१२४३ ई०) में कमरुद्दीन ने भाठ-गहोरा को, जिसका केन्द्र कालिंजर था, कई बार लूटा और

---

१. वर्तमान ककरेड़ी, उत्तरी अक्षांश २४°५६ और पूर्वी देशान्तर ८१° १७ यमनीघाट पर स्थित, जहाँ से पश्चिमी मार्ग बाँदा, कालिंजर और महोबा को जाते हैं।

२. आ० रि० इ० : जिल्द २१ भाग १-२ : पृष्ठ १०३।

३. परिशिष्ट १ (क) : एकत्रा०,—'कालिंजरहिं आइ दुइ भाई भर राजा के चाकर भें। बीसल्देव जेठे, भीवमल (भीमल) लहुरे ... ... गहोरहिं आए। पुरिखा सात भरि गहोरा रहें। ठाकुर कहावें लागे। भीमलदेव गहोरा के लोधिन कहँ मारि के गहोरा छंड़ाइ लीन्हेंनि।'
   तथा परि० १ (ख) : वंशावली बांधीपति एवं बघेल० श्लोक १२।

४. सर्ग १। श्लोक ६-२० 'लब्ध्वा गहोरां तपन-प्रतापः।'

कर वसूल किया। ६४४ हिजरी (१२४६ ई०) में मलिक कराकश खां अतगिन को, जो कड़ा (इलाहाबाद) का प्रशासक था, मार डाला गया।'[1]

इन उल्लेखों से हम दलकी व मलकी पर, जो बघेल-वंश-सूची में दलकेश्वर-मलकेश्वर बतलाए गए हैं, बलबन के आक्रमण की पृष्ठभूमि समझ सकते हैं। यहाँ 'भाठ-गहोरा' का उल्लेख वास्तव में बघेल सत्ता के लिए है, चन्देल-सत्ता के लिए नहीं। यह भी प्रतीत होता है कि १२४१ ई० के पश्चात् त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल के निधन से चन्देल शक्ति दुर्बल हो गई होगी और बघेलों ने, कम से कम कुछ समय के लिए कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया होगा। रैवर्टी ने उक्त आक्रमण के प्रसङ्ग में लिखा है कि 'भाठ-गहोरा सोन के पश्चिमी तट का क्षेत्र है। राणा (दलकी व मलकी) का अधिकार-क्षेत्र स्पष्ट रूप में टौंस नदी के पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम में निर्दिष्ट है। उसके छिपने की जगह वह पहाड़ी दुर्गम इलाका है, जो सोन नदी के बाएँ किनारे पर फैला हुआ है, जिसे कनिंघम ने बान्धवगढ़ माना है। मिनहाज के 'दलकी व मलकी' में से कम से कम एक नाम किसी राजा का अवश्य है[2]।' फरिश्ता के अनुसार 'इन दो राजाओं ने मालवा से कड़ा तक सुलतान की फौजों के अड्डे नष्ट कर डाले थे। वे कालिंजर में रहते थे।'[3] हबीबुल्ला का मत है कि 'मिनहाज का भाठ-गहोरा टौंस नदी की घाटी का पुराना नाम है। इस क्षेत्र पर अवध के शासक तैमूर खां के कई आक्रमणों का उल्लेख स्पष्ट रूप से बघेलों की वर्धमान सत्ता पर आक्रमण का सूचक है।'[4]

१२३४ ई० में मलिक नुसरत-उद्दीन तायसई ने चन्देलों से कालिंजर छीन लिया था।[5] १२४०-४१ ई० में प्राप्त त्रैलोक्यवर्मन् से सम्बद्ध रीवा-ताम्रपत्र उसे 'त्रिकलिङ्गाधिपति' घोषित करते हैं,[6] किन्तु 'कालञ्जराधिपति' नहीं। सम्भव है, अपने अन्तिम दिनों में त्रैलोक्यवर्मन् तेरहवीं शती में अल्पप्राय

---

१. तबकात-नासिरी (रैवर्टी) : पृष्ठ ७१५, ७४३, ७४७।

२. वही, टिप्पणियाँ : पृष्ठ ७४३, ८१६-१७, ९८३।

३. तारीखे-फरिश्ता (ब्रिग्स) : जिल्द १, पृष्ठ २३७।

४. 'दि फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया' (१२००-९० ई०) : प्रकाशित, १९४५ : पृष्ठ १०१-२, १४२-४३।

५. तबकात-नासिरी : पृष्ठ ८२४।

६. डा० हि० ना० इ० : जिल्द २ : पृ० ७२४-२६।

कलचुरियों[१] की असमर्थता का लाभ उठा कर डाहल-प्रदेश में कालिंजर और मजयगढ़ (पन्ना) से दक्षिणपूर्व की ओर बढ़ा हो और इसी अवधि में गहोरा-कालिंजर तथा बघेलखण्ड के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में बघेल क्रमशः प्रबल हुए हों। त्रैलोक्यवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् कालिंजर भाठ-गहोरा राज्य को बघेल-सत्ता का केन्द्र बन गया होगा, जहाँ कमरुद्दीन का उपर्युक्त आक्रमण हुआ था।

उक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि बघेलों का इन क्षेत्रों में राज्य-स्थापना का आरम्भ बारहवीं शती के मध्य में हुआ, जब सम्भवतः व्याघ्रदेव ने मड़फा दुर्ग के समीप बघेलवारी और बाघोलन गाँव बसाए।[२] इनके भाई कर्णदेव गुजरात में ही रहे आए[३] किन्तु बान्धवगढ़ उन्हें दहेज में मिला (जैसी स्थानीय मान्यता[४] है) और सम्भवतः उनके पुत्र सोहागदेव और पौत्र सारंगदेव बान्धवगढ़ के अधिकारी रहे। यहाँ कर्णदेव का वंश समाप्त हो गया और बान्धवगढ़ का अधिकार व्याघ्रदेव की शाखा को प्राप्त हुआ।[५] व्याघ्रदेव (अन्त में व्याघ्रपाद मुनि) के दो पुत्र बोसल और भीमल (या भीम) ने कालिंजर आकर चंदेलों के भर-वंशीय किलेदारों की सेवा स्वीकार की। भीमल ने वीरता प्रकट की और भर राजाओं के सेनापति रूप में गहोरा पर अधिकार किया। इन्हें गहोरा की जागीर और 'ठाकुर' का पद मिला।[६] व्याघ्रदेव का अन्य पुत्र कन्धरदेव बारा-कसौटा घराने का संस्थापक बना।[७] भीम का पुत्र रानिक और पौत्र वलन तथा उसके दो प्रतापी पुत्रों—दलकेश्वर और मलकेश्वर ने कालिंजर पर प्रभुता प्राप्त की और टोंस तथा सोन के तटीय भागों पर, बान्धवगढ़ दुर्ग पर एवं यमुना से दक्षिण कालिंजर से कड़ा तक अधिकार किया और १२४७ ई० में बलबन का सामना किया।[८] मलकेश्वर का पुत्र बरियार हुआ। उसका पुत्र बल्लार या बल्लालदेव प्रथम महाराज हुआ। इसने पठानों से युद्ध किया[९]

---

१. ना० हि० ना० इ० : जिल्द २ : पृष्ठ ८०० ।
२. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।
३. बघेल० : श्लोक ५ ।
४. वीर० कि० ए० : पृ० २७ : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी ।
५. परिशिष्ट १ (ख) वंशावली बांधोपति : 'करनदेव के वंशावली गुजराति मा तीनि-करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १...' ।
६. वही ।
७. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।
८. तबकात-नासिरी : पृष्ठ ६७९–८३, ८१६–१७ ।
९. परिशिष्ट १ (क) : एकवा : 'बोल्लारदेव ते राजा भें।' तथा परि० १ (ख) : वंशावली बांधोपति—'बल्लारदेव पठानन मारा' ।

और १३६० ई० में शिलालेख खुदवाया।[१] बल्लार का पुत्र सिंहदेव पिता के सामने ही दिवङ्गत हुआ, अतः बल्लार ने अपने पौत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया[२]। १३९५ और १४१३ ई० में वीरम को कालपी के महमूद से संघर्ष करना पड़ा[३]। वीरम ने रीवा और कैमोर पृष्ठ पर पूर्ण अधिकार किया[४]। इसके पुत्र का नाम नरहरि और पौत्र का भेददेव था।[५] भेददेव से आगे क्रमिक इतिहास मिलने लगता है।

भौगोलिक सीमाओं में क्रमिक परिवर्तन

बघेलखण्ड नाम के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मुसलमान लेखकों ने इस नाम का प्रयोग नहीं किया, यह नाम अंग्रेज शासकों द्वारा दिया हुआ नहीं हो सकता। बघेल नरेशों के निजी व्यवहारों में ही 'बघेल' शब्द पर आधारित राज्य-क्षेत्र का नामकरण 'बघेलखण्ड' किया गया होगा। निजी व्यवहारों में इसका प्रयोग भी अवश्य होता रहा होगा।

व्यावहारिक रूप में बघेलखण्ड का प्रथम स्वरूप मड़फा में स्थापित सत्ता को ही मानना उचित होगा। इसी के परवर्ती स्वरूप गहोरा-राज्य, बान्धव-राज्य और रीवा-राज्य कहलाए। गहोरा-राज्य की स्थापना का आनुमानिक समय बारहवीं शती का अन्तिम भाग माना जा सकता है। १२४० ई० के आसपास इस राज्य का केन्द्र कालिंजर बना और बघेल चन्देलों की अधीनता से मुक्त हो कर फैल गये होंगे। इस समय यमुना का दक्षिणी भाग कालिंजर से कड़ा तक और दक्षिण में बान्धवगढ़ तथा सोन का पश्चिमी तट बघेलों के अधिकार में रहा होगा। १२८० ई० के पूर्व कालिंजर पर चन्देलों का स्वामित्व पुनः स्थापित हो चुका था,[६] जो चौदहवीं शती के प्रारम्भ तक अवश्य बना रहा।[७] १३६० ई०

१—वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७।

२—वीर० ३।३१–४४।

३—परिशिष्ट २ : तारीखी–मुहम्मदी : पृष्ठ ४७२–साथ ही देखिये : निजामी : मलिकजादा डायनेस्टी आफ कालपी : मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् : भोपाल ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख : पृष्ठ २–३।

४—परि० १ (ख) : वंशावली बांधोपति : 'राजा वीरमदेव, रीमा पाठे पर अमल भा'।

५—वीर० ३।४०–५१।

६. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ ७४ : साथ ही देखिये, श्यामसुन्दर-दास : प्राचीन-लेख-मणिमाला : पृष्ठ ५२ : वीरवर्मदेव का राहि-दानपत्र–१२८० ई०।

७. ए० इ० जिल्द १६ : पृष्ठ १० टि० ४–'कालिञ्जराधिपति-श्रीमद् हम्मीरवर्मदेवः' ·······संवत् १३६५।

के निकट बल्लालदेव ने अन्तर्वेद में प्रवेश कर पठानों से कुछ युद्ध जीते।[१] उसके पौत्र वीरमदेव को १३९९ ई० के आसपास कालपी के सुलतानों से संघर्ष करना पड़ा,[२] किन्तु उसने दक्षिण-पूर्व की ओर रीवा के पठार पर अधिकार बढ़ा लिया। दिल्ली की सत्ता के साथ भी उसका संघर्ष हुआ।[३] पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग तक वीरम का पौत्र भेददेव गहोरा राज्य का अत्यन्त प्रबल शासक बन चुका था। उसने काशी, प्रयाग और गया तक राज्य-विस्तार कर लिया। उसका एक विवाह बगीसर (बक्सर) में हुआ था।[४] भेददेव जौनपुर के शर्की सुलतान हुसेनशाह का मित्र और सहायक था। १४८८ ई० में उसने बहलोल लोदी के विरुद्ध हुसेन को सहायता की थी। इस समय उत्तर में कन्तित, अरैल और मिर्ज़ापुर तक, पश्चिम में कालिंजर और गहोरा और दक्षिण में सुरगुजा और बान्धवगढ़ तक भेददेव का प्रबल राज्य विस्तृत था। १४९२ ई० में उसने लोदियों द्वारा नियुक्त कड़ा के प्रशासक मुबारक खाँ लोहानी को बन्दी बना लिया था। १४९४ ई० में सिकन्दर लोदी ने भेददेव पर चढ़ाई की और अरैल को लूटा। भेददेव के पौत्र वीरसिंहदेव ने गहोरा की ओर बढ़ते हुए सिकन्दर लोदी का १४९५ ई० में सामना किया। खानघाटी (या हंड़ियाघाट) पर युद्ध हुआ। बघेलों की हार हुई। सिकन्दर लोदी ने पपोंध (तहसील ब्योहारी, जिला शाहडोल, म. प्र.) तक बघेल सेना का पीछा किया, पर वह स्वयं घिर गया। वह कठिनाई से निकल कर बनारस की ओर आया। उसने भेददेव के पुत्र शालिवाहन से सन्धि कर ली और बनारस से १३ मील दूर पर शालिवाहन की सहायता से हुसेन को परास्त कर दिया। इस समय सिकन्दर ने शालिवाहन से उसकी लड़की का डोला माँगा था। परिणामस्वरूप १४९८ ई० में सिकन्दर ने गहोरा पर पुनः आक्रमण किया। शालिवाहन बान्धवगढ़ के दुर्ग में जा छिपा।

---

१. परिशिष्ट १ (ख): वंशावली बाघोपति—'बल्लारदेव पठानन मारा, अंतरवेद (अन्तर्वेद) अमल भा।' बल्लालदेव के गहोरा शिलालेख (१३६० ई०) के लिए देखिये—वीर० क्रि० ए०; पृष्ठ १७।

२. परिशिष्ट २: तारीखे मुहम्मदी: पृष्ठ ४७२: कालपी के सुल्तान नासिरुद्दीन ने गहोरा के मुकद्दम वीरम पर १३९९ ई० में दो चढ़ाइयाँ कीं।

३. वंशावली बाघोपति-'राजा वीरमदेव। रीमा पाठे पर अमल भा।' तथा वीर० १।३९, ४४।

४. वीर०, १।५६—'काशीं प्रयागं च गयां च जित्वा......' तथा श्लोक ६२।

१४९९ ई० में सिकन्दर ने बान्धवगढ़ को घेर लिया, पर उसे ले न सका। तब उसने बान्धवगढ़ से गहोरा के बीच का सारा बघेल राज्य उजाड़ दिया।[१]

इस प्रकार सोलहवीं शती के आरम्भ होने से पूर्व हम यमुना और गङ्गा के दक्षिण सोन और टोंस नदियों के द्वारा सिञ्चित भू-भाग पर बघेलों की प्रबल सत्ता को प्रतिष्ठित पाते हैं। इस अवधि में यह सत्ता दिल्ली और द्वाब के मुस्लिम शासकों के लिए विशेष चिन्ता का विषय बनी हुई थी।

आगे हम देखेंगे कि सोलहवीं शती में तथा उसके पश्चात् उन्नीसवीं शती तक यह बघेल सत्ता, जिसे हम बघेलखण्ड नाम से व्यवहृत करेंगे, देश की ऐतिहासिक परिस्थितियों से किस प्रकार प्रभावित हुई तथा इन्हीं बघेलों के क्षेत्र बघेलखण्ड में संस्कृत साहित्य का किस रूप में सर्जन हुआ।

आधुनिक स्वरूप

वर्तमान काल में मध्यप्रदेश के उत्तरी-पूर्वी छोर पर रीवा नाम से एक सम्भागीय और जिला-केन्द्र है, जो १९४८ ई० तक उपर्युक्त बघेलों के वंशधरों की राजधानी था। वर्तमान वंशधर महाराजाधिराज मार्तण्डसिंह जू देव का जन्म १९२३ ई० में हुआ था। १९४६ ई० में इनका रीवा-नरेश के रूप में अभिषेक हुआ। मई, सन् १९४८ ई० को आपने राजसत्ता भारत सरकार को सौंप दी और नवनिर्मित विन्ध्यप्रदेश राज्य के राजप्रमुख पद पर आसीन हुए। जुलाई, १९४८ ई० से बघेलखण्ड की पृथक् सत्ता पूर्णतः समाप्त कर उसे बुन्देलखण्ड के राज्यों से एकीकृत कर संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गई। विन्ध्यप्रदेश इस समय 'बी' श्रेणी का राज्य था और रीवा उसकी राजधानी थी। दिसम्बर सन् १९४९ में विन्ध्यप्रदेश को 'सी' श्रेणी का राज्य बनाकर राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया गया। कुछ वर्षों तक विन्ध्यप्रदेश का शासन चीफ-कमिश्नर करते रहे। १९५२ ई० में प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन के परिणामस्वरूप जनतन्त्रीय सरकार की स्थापना हुई। १ नवम्बर, १९५६ ई० से विन्ध्यप्रदेश

१. ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ५ : नियामतउल्लाह कृत 'तारीखे खानजहान लोदी' : पृष्ठ ८९, ९३-९५ : ब्रिग्स : तारीखे-फरिश्ता : जिल्द १ पृष्ठ ५६९-७४ तथा लो—डब्लू. एच. : अल-बदाओनी : जिल्द १ पृष्ठ ४०८, ४१७। साथ ही देखिये—ईलियट-डाउसन जिल्द ४ : अब्दुल्ला कृत 'तारीखे दाउदी' पृष्ठ ४६२ और जिल्द ६ पृष्ठ २०-२१ : दि बघेला डायनेस्टी आफ रीवा : निजामीकृत : जर्नल आफ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : द्वितीय भाग पृष्ठ २ : मई १९५८।

नवनिर्मित मध्यप्रदेश का अङ्ग बना दिया गया[१]। महाराज मार्तण्डसिंह के एक पुत्र श्री पुष्पराज प्रताप सिंह हैं।[२] वर्तमान रीवा सम्भाग में रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, पन्ना, छतरपुर और टीकमगढ़ कुल सात जिले हैं, जिनमें से प्रथम चार जिलों को सामान्य रूप से वर्तमान बघेलखण्ड माना जा सकता है। यहाँ की मातृभाषा 'बघेली' है, जो अवधी हिन्दी से मिलती-जुलती है।

देश की परिस्थिति का बघेलखण्ड पर प्रभाव

हम पीछे लिख चुके हैं कि भेददेव और शालिवाहन का लोदियों के साथ भीषण संघर्ष हुआ था और वीरसिंहदेव ने युद्ध में प्रमुख रूप से भाग लिया था। सोलहवीं शती के आरम्भ में वीरसिंहदेव ने लोदियों के साथ सन्धि कर ली[३]। इस समय वीरसिंहदेव ने बघेल-सत्ता को अत्यन्त सुदृढ़ और विस्तृत कर लिया। गहोरा-राजधानी को उसने सड़कों, भवनों और मन्दिरों से सुसज्जित किया।[४] उसने नरो[५] दुर्ग के परिहार-राजा विक्रमादित्य को परास्त किया और नरो में रह कर उसे सुसज्जित किया। उसके आक्रमण करते ही गढ़ा का (गोंड़) राजा (अमानदास) भाग गया।[६] नारायण नामक कुरु (या कौरव वंशी) राजा से

१. विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा १९५६ : पृष्ठ २००-२१४।
२. जन्म, जुलाई १९६१।
३. वीर०-२।६१—'दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम्।'
४. वही, २।७-१०।
५. सतना से लगभग १० मील दक्षिण-पूर्व की एक पहाड़ी, जहाँ भग्नावशेष प्राप्त हैं।
६. वीर० २।५६-५८ : साथ ही देखिये, ईलियट और डाउसन : जिल्द २ : कलकत्ता-१९४९ : अबुलफ़ज़ल कृत अकबरनामा : पृष्ठ ३०-३४ तथा शेख फ़ैजी सरहिन्दी कृत अकबरनामा : पृष्ठ १२१ : गढ़ा-कटंगा—वर्तमान जिला जबलपुर के अन्तर्गत गढ़ा-मण्डला। राजधानी का नाम गढ़ा और दुर्ग का चौरागढ़ था। अमानदास अपने पिता अर्जुनदास से विद्रोह कर वीरसिंहदेव की शरण में आया। उसे राजा ने पुत्रवत् रखा और स्वयं सिकन्दर लोदी से मिलने चला गया। अमानदास ने गढ़ा लौटकर पिता का बध कर डाला। अर्जुनदास के सरदारों ने वीरसिंहदेव को बुलाया। उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। अमानदास भाग गया, किन्तु बाद में उसने वीरसिंहदेव को 'पिता' कहकर क्षमा माँग ली। वीरसिंहदेव ने उसे राज्य लौटा दिया। अमानदास ने

भेदनीति द्वारा उसने बान्धवगढ़ जीत कर वहाँ निवास किया और कुरुवंशियों का नाश कर डाला। रत्नपुर के (कलचुरि) राजा को जीतकर उसने कर ले लिया। फिर वीरसिंहदेव ने हहार (डाहल का उत्तरी भाग) और सहजोर (दाहडोल) को भी जीत लिया तथा भर (मंडीम) राजा को परास्त कर दिया।[१] अलर्कपुरी (अरैल-प्रयाग) पर भी वीरसिंह ने अधिकार बनाए रखा। बाबर के साथ उसकी मित्रता थी।[२]

वीरसिंह के पुत्र वीरभानु ने हुमायूँ को शेरशाह के विरुद्ध सहायता दी थी।[३] हुमायूँ से अवकाश पाकर शेरशाह ने वीरभानु को कालिंजर में घेर लिया, पर वीरभानु बच गया। यहीं शेरशाह की मृत्यु हो गई, किन्तु कालिंजर का पतन हो गया। शेरशाह के पुत्र सलेमशाह ने रीवां पर अधिकार कर लिया था किन्तु वह पिता की मृत्यु (१५४५ ई०) सुनकर लौट गया।[४]

बाद में गोविन्द कछवाह के पुत्र दलपत (१५४४-५१) को दत्तक पुत्र बनाया। दलपत का विवाह शालिवाहन चन्देल की कन्या दुर्गावती के साथ हुआ था। अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरनारायण की ओर से दुर्गावती (१५५१-६४) शासन करती रही। आसफ़ खाँ ने दुर्गावती और वीरनारायण को मारकर १५६४ ई० में गढ़ा-कटंगा पर मुगल सत्ता स्थापित कर दी।

१. वीर० २।५९-६१, ६५-६७।

२. वीर० २।६२, ६७ तथा १२।२२ : साथ ही देखिए—'दि बघेल डायनैस्टी आफ़ रीवां' निजामी : विक्रम यूनि० ज० । मई : १९६८ : वीरसिंहदेव ने बाबर के विरुद्ध कनवाहा में १५२७ ई० में राणा सांगा का साथ दिया था।

२. 'बाबर एण्ड हुमायूँ', अर्स्किन् : भाग २ : पृष्ठ १७४। गुलबदन बेगम : हुमायूँनामा : (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६। जौहर कृत हुमायूँनामा (मेमायर्स आफ़ हुमायूँ) : पृष्ठ १८।

४. ईलियट और डाउसन : जिल्द ४ : अब्बास खाँ सरवानी कृत तारीखे-शेरशाही, पृष्ठ ४०७-९। ब्लैकमिन : आईन-अकबरी (अबुलफ़ज़ल कृत) : पृष्ठ ३२१ : राय : सकसेसर्स आफ़ शेरशाह : १९३४ : पृष्ठ ६-७ : श्रीवास्तव : (डा०) आशीर्वादीलाल : मुगलकालीन भारत : तृतीय संस्करण : आगरा : १९५९ : पृष्ठ १०७-३३।

वीरभानु ने अपने ससुर और रत्नपुर के (सम्भवतः कलचुरि) राजा दादूराय को परास्त किया।[१] हुमायूँ से उसकी मैत्री बनी रही।[२]

अकबरी शासन के आरम्भ के कुछ पूर्व (१५५२ ई० से) वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का राज्यारम्भ होता है। तीन वर्ष तक युवराज के रूप में भी ये पूर्ण अधिकारी रहे। मुहम्मद आदिलशाह सूर 'अदलो' (१५५३-५७) रामचन्द्र की शरण में १५५४ ई० में आया। उसे पूरी सहायता दी गई। परिणामस्वरूप शीघ्र ही इब्राहीम सूर ने आक्रमण किया। वह बन्दी बना लिया गया, किन्तु राजा ने उससे सद्व्यवहार किया।[३] इन दिनों तानसेन[४] और बीरबल[५] रामचन्द्र की सेवा में थे।

१५६२ ई० में अकबर के दबाव से रामचन्द्र ने तानसेन को मुगल दरबार में भेज दिया। १५६३-६४ ई० में अकबर द्वारा नियुक्त कड़ा के प्रशासक अब्दुल मजीद आसफ खाँ ने रामचन्द्र पर दो आक्रमण किये और बान्धवगढ़ में उन्हें घेर लिया। सम्भवतः बीरबल की मध्यस्थता से घेरा उठवा लिया गया और रामचन्द्र ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। रामचन्द्र ने १५६९ ई० में अकबर के हाथों कालिंजर सौंपकर युवराज वीरभद्र को मुगल दरबार में भेज दिया, किन्तु अकबर का हस्तक्षेप बढ़ता गया। १५८३-८४ ई० में अकबर ने प्रयाग में प्रसिद्ध दुर्ग बनवाया। अकबर के दरबार में १५८४ ई० में रामचन्द्र को उपस्थित होना पड़ा। सम्भवतः उन्हें इटावा का परगना मिला। १५९२ ई० में रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र वीरभद्र भी अगले वर्ष दिवङ्गत हुए। अकबर ने वीरभद्र के अल्पायु पुत्र विक्रमादित्य को राजा नहीं माना, उन्हें दरबार में बुलाकर रोक लिया तथा वीरभद्र के दूसरे पुत्र दुर्योधन को मान्यता दे दी। बान्धवगढ़ में सरदारों ने विद्रोह किया। अकबर के द्वारा प्रेषित पत्रदास ने ८ माह २५ दिन के घेरे के पश्चात् बान्धवगढ़ को ध्वस्त कर दिया और १५९७ ई० में पूर्ण अधिकार कर लिया। १६०२ से १६०५ ई० तक दुर्योधन

---

१. वीर० ७, ६८-७०, ७५।

२. वही, १२।२२।

३. वीर०। १०।१३—'स ईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राण-मुहम्मदादिः।' तथा अर्स्किन : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ पृष्ठ ४५४ : ५०१-४ : लो : अल-बदाओनी, भाग १ : पृष्ठ ५४२-४४, ५५३-५४।

४. वीर० : १०।२६-३१।

५. लो : अल-बदाओनी : भाग २ पृष्ठ ३४५।

शासन करता रहा, पर जहांगीर ने विक्रमादित्य को ही रीवा-बान्धो का राजा स्वीकार किया[१]। इस समय (१६०२) से रीवा राजधानी बना[२]।

इन प्रकार हम देखते हैं सोलहवीं शती बघेलों की सार्वभौम सत्ता के उत्थान और पतन की शती है। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से अकबर के आक्रमणों के पहले तक यह सत्ता अन्तर्वेद (दाब) से कलिंग तक छाई हुई थी और काशी, प्रयाग, अमरकंटक, रतनपुर और चौरागढ़ जैसे महत्व-पूर्ण स्थानों से घिरा हुआ विस्तृत भू-भाग बघेलों के अधिकार या प्रभाव में था। सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में यह सत्ता क्रमशः क्षीण होती चली गई और सत्रहवीं शती का प्रारम्भ होते-होते बघेल मुगलों के जागीरदार मात्र रह गये। बाबर ने बघेल सत्ता को भारत की तीन प्रबल सत्ताओं में से एक माना था।[३]

सत्रहवीं शती में बघेलखण्ड के पश्चिम में ओरछा केन्द्र बना कर बुन्देलों की प्रबल सत्ता उठ खड़ी हुई, जिसने रीवा की शक्ति को बार-बार प्रभावित किया। १६०२ ई० में दुर्योधन बघेल को राज्य देते समय अकबर ने भारतीचन्द को उसका संरक्षक नियुक्त किया था। १६१० ई० में विक्रमादित्य ने मुगल प्रभाव से मुक्त होना चाहा, तब जहांगीर ने मानसिंह बुन्देल के पुत्र महासिंह को भेज कर उसका दमन कराया। विक्रमादित्य के पुत्र अमरसिंह ने १६२६ ई० में मुगलों की पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली। १६३५ ई० में उसने रतनपुर के जमींदार के विरुद्ध शाहजहां के सेनापति अब्दुल्ला खां की सहायता की तथा दिल्ली भी गया। इस बीच गढ़ा के जमींदार भीमनारायण को मार कर जुझारसिंह बुन्देल

१. ब्लाकमैन : आईन-अकबरी : कलकत्ता १८७३ : ई० पृष्ठ ३६७, ४०६, ४०७, ४६१, ४७५, ३५७-५८ : बेवरिज : अकबरनामा (अबुलफजल कृत) भाग २ : पृष्ठ २२१, २०१-८३ : अल-बदायूनी (अनु० लो), भाग २ : पृष्ठ ३४१ तथा ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द २ : फैजी सरहिन्दी कृत अकबरनामा : पृष्ठ ११९-२०, मासिर-उल-उमरा (अनु० ब्रजरत्नदास) : समसाम उद्दौला द्वारा १७४७ ई० में लिखित : पृष्ठ ३३०-३४, ३५४-२९ : ईलियट एण्ड डाउसन : १९५२ : निजामुद्दीन अहमद कृत 'अकबर' : पृष्ठ १२१ : इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२।

२. परिशिष्ट १ (क) : एकना०—'रीमा का किला.........विक्रमादित्य ने किले आएं।'

३. ब्लाकमैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०६ : बाबरनामा (मेमायर्स आफ बाबर) का उल्लेख।

मुगलों से विद्रोह कर बैठा। अब्दुल्ला खाँ के साथ अमरसिंह को भी जुझारसिंह को दबाने के लिए भेजा गया। १६५० ई० के निकट गढ़ा पर जुझारसिंह का भाई पहाड़सिंह बुन्देल अधिकार किये हुए था। उक्त भीमनारायण का पुत्र दयाराम (या हृदयराम) पहाड़सिंह से हार कर अमरसिंह बघेल के पुत्र अनूपसिंह (१६४१-७५) की शरण में आया। पहाड़सिंह ने अनूपसिंह को खदेड़ कर रीवा पर भी अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त १६५६ ई० में *अनूपसिंह को रीवा-बान्धो का राज्य पुनः मिला।*[१]

बघेलों की एक शाखा, जो वीरभानु के छोटे भाई यामिनीभानु (जमुनीभान) से फूटी थी, रीवा के अधीन रह कर मैहर पर राज्य करती रही। १६७२ ई० में छत्रसाल बुन्देल ने मैहर पर आक्रमण कर राजा से अधीनता मनवाई और चौथ ली। छत्रसाल ने क्रमशः कोठी, नागौद, जसो, वीरसिंहपुर और सोहावल में फैल कर सम्पूर्ण पश्चिमी बघेलखण्ड को अधीनस्थ कर लिया। सम्भवतः इसी समय गहोरा बघेलों के हाथ से सदा के लिए चला गया। अनूपसिंह के उत्तराधिकारी भावसिंह ने १६७५ से १६९४ ई० तक राज्य किया। उसकी मृत्यु पर उसके दत्तक पुत्र अनिरुद्धसिंह को *मऊगंज (जिला रीवा) के सेंगर राजपूतों ने मार* डाला। अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूतसिंह के राज्य-काल में १७२६ ई० में छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह ने छत्रसाल की इच्छा के विरुद्ध लगभग आधे बघेलखण्ड पर अधिकार कर लिया, किन्तु मुगलों के दबाव से उसे हटना पड़ा।[२] अवधूतसिंह के पुत्र अजीतसिंह (१७५५-१८०९) के राज्य-काल में बाजीराव द्वितीय पेशवा के एक पौत्र नवाब अलीबहादुर ने बुन्देलों की सहायता से नर्मदा के उत्तरी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उसके सेनापति यशवन्तराव नायक ने १७९८ ई० में *बघेलखण्ड का पश्चिमी भाग अधिकृत कर रीवा को घेर लिया।* ६ माह

---

१. ब्लाकमैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०७ तथा मासिर-उल-उमरा (*बजरत्नदास*) : पृष्ठ १८६, २२७, ३३३-३४, ३५४-५९ : *बेवरिज :* जहाँगीरनामा : १९०९ पृष्ठ १; साथ ही देखिये—ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ६ तृतीय संस्करण : कलकत्ता : १७५१ : इनायत-उल्लाह कृत 'तकमिलाई' 'अकबरनामा' : पृष्ठ ११५।

२. भगवानदास गुप्त (डा०) : 'महाराजा छत्रसाल बुन्देला', आगरा : १९५८ : पृष्ठ ४३, ८२-८३, १२३-२४ तथा गोरेलाल तिवारी : 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' : पृष्ठ १८४। साथ ही देखिये इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८१-८२।

के पश्चात् यह घेरा हटा और नायक मारा गया तथा उसकी सेना नष्ट हो गई। अजीतसिंह ने अली बहादुर का सामन्त बनना स्वीकार नहीं किया।[१]

उन्नीसवीं शती के बघेलखण्ड का इतिहास अंग्रेजों के साथ बघेलों के सम्बन्धों का इतिहास है। १८०३ ई० में अजीतसिंह ने अंग्रेजों के साथ सन्धि का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जयसिंह (१८०९-३४ ई०) ने १८१२ ई० में 'सहायक सन्धि' पर हस्ताक्षर कर दिया। १८१४ ई० तक दो सन्धियाँ और हुई तथा रीवा राज्य क्रमशः अंग्रेजी शासन से नियंत्रित हो गया। महाराज की ओर से इस समय उनके पुत्र विश्वनाथसिंह शासन का कार्य देखते थे। विश्वनाथसिंह के पुत्र रघुराजसिंह (१८५४-८०) ने १८५७ ई० में अंग्रेजों की सहायता की और सोहागपुर तथा अमरकंटक (दक्षिणी बघेलखण्ड) के परगने पुरस्कार-रूप प्राप्त किये। १८६२ ई० में रघुराजसिंह को गोद लेने को सनद मिली। इनकी मृत्यु के समय इनके पुत्र वेंकटरमणसिंह (१८८०-१९१८) केवल ४ वर्ष के थे, अतः बघेलखण्ड १५ वर्षों तक अंग्रेजी संरक्षण में रहा। १८९५ ई० में वेंकटरमणसिंह को पूरे अधिकार मिल गए। इन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१९) में अंग्रेजों की सहायता की थी।[२] इनके पुत्र गुलाबसिंह (१९१८-४२) खुलकर अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं हुए किन्तु वे सुशासक एवं सुधारक थे। शङ्कित होकर तथा आन्तरिक कारणों का आधार लेकर अंग्रेजी शासन ने इन्हें १९४२ ई० में पदच्युत कर दिया। १९४६ ई० में उनके पुत्र मार्तण्डसिंह को पुनः राज्य लौटा दिया गया, जो १९४८-४९ ई० में विन्ध्यप्रदेश के राजप्रमुख बने। दिसम्बर, १९४९ ई० में राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार बघेलखण्ड की राज्यसत्ता का अन्तिम अध्याय पूर्ण हो गया।[३]

---

१. निजामी—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा' : जर्नल आफ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : जिल्द २ क. २ : मई, १९५८ : रिप्रिंट : पृष्ठ ४-५ तथा दुर्गादास कवि : अजीत-फतेह या नायक-रासता : रीवा : १९०२ और 'ग्लोरी आफ बान्धो' : रीवा : १९४८ : पृ० ८।

२. ऐचिसन—सी० यू० : 'रीवा अण्डर दि क्राउन' ट्रीटीज ऐण्ड सनद्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट' (१८०० से १९३० ई० तक) : दिल्ली १९३३ : पृष्ठ २५० तथा आगे। साथ ही देखिये-निजामी—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा' वि० यू० ज० २।२ मई १९५८-रि प्रिंट पृष्ठ ५-६ तथा ग्लोरी आफ बान्धो-रीवा : १९४८ : पृष्ठ ८-९।

३. रामप्यारे अग्निहोत्री : विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रीवा : १९५६ : पृष्ठ १००-१४।

(ग) पिछली चार शताब्दियों में देश में संस्कृत-सर्जना की धारा

भारत की राजनीतिक उथल-पुथल और मुस्लिम-शासन की स्थापना से निश्चित रूप से संस्कृत-सर्जना की स्वाभाविक गति आहत हुई। संस्कृत के कवियों और पण्डितों को नवीन आश्रयदाताओं की आवश्यकता पड़ी और संस्कृत-विद्या के संरक्षण का नया प्रश्न सामने आ गया। गुजरात, मालवा, मध्यभारत, बिहार और बंगाल के वे केन्द्र, जो अब तक संस्कृत विद्या का पोषण कर रहे थे, प्रायः समाप्त हो गये। परीक्षा का वह काल-खण्ड बीता। क्रमशः केन्द्र बदले। अवशिष्ट हिन्दू-नरेशों की राज-सभाओं तथा उपासना-केन्द्रों ने यथाशक्ति संस्कृत-साहित्य के नवनिर्माण को प्रोत्साहित किया।

इस काल में उर्दू-फारसी का प्रभाव बढ़ रहा था; साथ ही, हिन्दी आदि भाषाओं में भी साहित्य-सर्जन की रुचि पनप रही थी। इस स्थिति में भी भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृत की मान्यता और रुचि बनी रही। भाषाओं का अध्ययन करने वाले लोग उनके स्रोत और आधार संस्कृत का भी अध्ययन करते थे। हिन्दी आदि भाषाओं के कवि अपने प्रबन्ध-काव्यों और लक्षण-ग्रन्थों का स्रोत संस्कृत में पाते थे। सूरदास ने सूरसागर में हिन्दी भाषा में अपनी भावनाओं का समावेश किया, किन्तु उसमें प्राप्त समस्त कृष्ण-कथा श्रीमद्भागवत से ग्रहण की। तुलसीदास ने भाषा-बद्ध काव्य रामचरितमानस के प्रणयन के लिए वाल्मीकि-रामायण एवं अन्य अनेक प्राचीन कथा-काव्यों के अध्ययन किये, जो संस्कृत में थे। इस प्रकार एक ओर भाषा-काव्यों के उपजीव्य के रूप में संस्कृत के प्रति विद्वानों की दृष्टि रही, दूसरी ओर संस्कृत में नवीन साहित्य का निर्माण भी होता रहा। काशी, काञ्ची, मिथिला, नवद्वीप, व्रजमण्डल आदि क्षेत्रों में तथा मैसूर आदि स्थानों की राज-सभाओं में अनवरत रूप से पुष्पित-पल्लवित होने वाले संस्कृत साहित्य का १५०० से १९०० ई० के बीच अपार मात्रा में सर्जन हुआ, यह एक ठोस तथ्य है।

उपर्युक्त शताब्दियों में ऐतिहासिक शैली की रुचि का अपेक्षाकृत अधिक दिग्दर्शन होता है। संस्कृत के कवियों ने नवीन शासकों की सभाओं में भी स्थान प्राप्त कर लिया और उनकी भी प्रशस्तियाँ लिखने लगे। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कुछ मुसलमान और अंग्रेज सत्ताधारियों ने भी संस्कृत भाषा में निहित गुणों को समझा और चाहे राजनीतिक लाभ के लिए ही क्यों न हो, संस्कृत को महत्त्व देते हुए उसमें उन्होंने स्वयं भी रुचि ली।

सोलहवीं शती में भानुकर, अकब्बरी कालिदास और चिन्तामणि आदि कितने ही कवियों द्वारा मुस्लिम शासकों के प्रति लिखी हुई प्रशस्तियाँ सुभाषित संग्रहों में संकलित हैं। इसी शती में फारसी के अकबरनामा का संस्कृत

अनुवाद हुआ तथा अकबर ने कई संस्कृत ग्रन्थों के फारसी में अनुवाद कराये। रहीम खानखाना, दाराशिकोह और शाइस्ता खान जैसे मुस्लिम विद्वानों ने संस्कृत में रचनाएँ भी कीं। मुगल-शासनकाल में टोडरमल-काव्य और खान-खानान-चरितम् लिखे गए। जहाँगीर की प्रशस्ति में विरुदावली तथा जहाँगीरशाह-चरितम् गद्यकाव्य की रचना हुई। पण्डितराज जगन्नाथ ने आसफ खाँ के लिए आसफ-विलास गद्यकाव्य और दाराशिकोह के लिए जगदाभरण काव्य लिखा। १६८९ ई० में चतुर्भुज ने शाइस्ता खान के लिए रसकल्पद्रुम ग्रन्थ की रचना की। १८वीं शती में लक्ष्मीपति ने फारसी शब्दों के मेल के साथ अब्दुल्ला-चरितम् लिखा।

१६वीं शती में अंग्रेजों का प्रभाव स्थापित हो जाने से संस्कृत-काव्य की एक धारा अंग्रेजों की प्रशस्ति की ओर अभिमुख होती हुई परिलक्षित होती है। १८०१ ई० में विनायक भट्ट ने अंग्रेज-चन्द्रिका लिखी। १८१३ ई० के ग्रन्थ इतिहासतमोमणि में अंग्रेजों द्वारा भारत-विजय का चित्रण प्रस्तुत है। इसी कड़ी में रामस्वामी राजा का राजाङ्गल-महोद्यान, राजराज वर्मा का आङ्गल-साम्राज्य, परवस्तु रङ्गाचार्य का आंगलाधिराज-स्वागत तथा विक्टोरिया के शासन पर विद्यालङ्कार भट्टाचार्य का विजयिनी-काव्य आदि ग्रन्थ मिलते हैं। बीसवीं शती के आरम्भ में भी अंग्रेजों को लक्षित करके संस्कृत काव्यों की सृष्टि हुई है।

हिन्दू राज-सभाओं का प्रोत्साहन पाने वाले अनेक कवियों ने इस काल में ऐतिहासिक शैली के सुन्दर काव्यों के प्रणयन किये हैं। १६वीं शती के मध्य भाग में माधव कवि ने वीरभानु बघेल पर १२ सर्गों का वीरभानूदय महाकाव्य लिखा। प्राज्यभट्ट और उनके शिष्य शुक ने १५८६ ई० तक का काश्मीर का हिन्दू-राज्य-कालीन इतिहास राजावली-पताका नाम से पूरा किया। विजयनगर के अच्युत राय पर राजनाथ तृतीय ने १२ सर्गों का अच्युतरायाभ्युदय लिखा। चन्द्रशेखर ने २० सर्गों का काव्य राज-सुर्जन-चरित्र लिखा। अकब्बरी कालिदास ने रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध नामक प्रशस्ति-काव्य लिखा। रुद्र कवि ने मयूरगिरि के राठौर-राजवंश को लक्ष्य बनाकर १५९६ ई० में २० सर्गों के राष्ट्रौढ-वंश काव्य की सर्जना की तथा वाणीनाथ ने ७ सर्गों का जाम-विजय ग्रन्थ लिखा।

परवर्ती शतियों में पण्डितराज जगन्नाथ का कामरूप के नरेश प्राणनारायण पर प्राणाभरण-काव्य लिखा गया। इस काल में दक्षिण भारत में अधिक काव्य-सृष्टि परिलक्षित होती है। तंजौर केन्द्र में रघुनाथ-कृत अच्युतेन्द्राभ्युदय १६१४ ई० की रचना है। रानी रामभद्राम्बा ने रघुनाथाभ्युदय तथा यज्ञनारायण और राजचूड़ामणि दीक्षित ने पृथक्-पृथक् रघुनाथ-भूपविजय काव्य रचे। महा-

राष्ट्र के कवियों में परमानन्द ने ३१ अध्यायों का शिवभारत, जयनाथ ने पर्नाल-पर्वत-ग्रहाख्यान, केशव पण्डित ने ५ सर्गों का राजाराम-चरित्र एवं शिवराज-चरित्र और श्रीधर वेंकटेश ने ८ सर्गों का शाहेन्द्र-विलास काव्य रचा। सुमतीन्द्र कवि ने शाहू-विलास, गंगाधर ने भोसला-वंशावली, देशावलपति ने कोसल-भोसलीयम् और कालिदास विद्याविनोद ने शिवाजी-चरित का प्रणयन किया। अन्य क्षेत्रों में रूपणि शर्मा ने १६७८ ई० में बघेलवंशवर्णन लिखा और वैद्यनाथ मैथिल ने २० सर्गों का ताराचन्द्रोदय काव्य ताराचन्द्र नरेश को लक्ष्य बनाकर लिखा। शंकरलाल ने १९वीं शती में रावजी-राज-कीर्तिविलास ग्रन्थ लिखा तथा केरल-कालिदास केरल वर्मा ने विशाखराज-महाकाव्य रचा।

इस कालावधि में मुनियों और धर्मगुरुओं के चरित तथा धर्मकेन्द्रों के इतिहास भी लिखे गये। मेघविजयगणि ने देवनन्दाभ्युदय, शान्तिनाथ-चरित और दिग्विजयमहाकाव्य का सर्जन किया। इसी काल के अन्य शङ्कराभ्युदय, पतञ्जलि-चरित और महावीरचरित हैं। घनश्याम ने भागवतपाद-चरित और वेंकटेश-चरित ग्रन्थ लिखे। डिण्डिम कवि ने विवेकपत्रमाला नाम से विजयनगर के कवियों का वंशेतिहास लिखा और सुन्दरराज आचार्य ने श्रीनिवास-दीक्षितेन्द्र-चरित रचा। राम वर्मा ने स्यानन्दूरपुर-वर्णन लिखा। १७४० ई० में गुरुवंश नाम से शृङ्गेरी मठ का इतिहास लिखा गया। विजयपुर-कथा, चोलवंशावली-चरित, रामविनोद और वीरभद्रविजय आदि अन्य अनेक ग्रन्थ भी इसी काल के हैं। सोमनाथ के व्यासविजय, वादिराज के तीर्थ-प्रबन्ध और सङ्कर्षण के शरय-भाधाभ्युदय को इसी कड़ी में गिना जा सकता है।

यह समझना भूल होगी कि कवि२. ने इस अवधि में पौराणिक आधारों पर काव्य-निर्माण की उपेक्षा की। ऐसे काव्यों की सूची सुदीर्घ है। १६वीं शती में स्वयम्भूनाथ ने १४ सर्गों का कृष्णविलास और अप्पय दीक्षित ने रुक्मिणी-परिणय लिखा। रघुनाथ ने १६१४ ई० में नलाभ्युदय, वेङ्कटेश ने १६३५ ई० में ३० सर्गों का रामचन्द्रोदय और रत्नसिंह ने १६७१ ई० में प्रद्युम्नचरित लिखे। १७वीं शती के अन्य गणनीय काव्य हैं—मधुरवाणी का रामायण-काव्य, श्रीनिवास दीक्षित का शितिकण्ठविजय, राजचूडामणि दीक्षित का रुक्मिणी-परिणय, नीलकण्ठ दीक्षित का शिवलीलार्णव, चक्र कवि का ८ सर्गों का जानकी-परिणय, ईश्वर सुमति का पार्वती-परिणय और कृष्ण कवि का ताराशशाङ्क काव्य। इसी प्रकार १८वीं शती के ग्रन्थों में अनन्त नारायण का १२ सर्गों का राघव-चरित, वेङ्कट कृष्ण का ७ सर्गों का नटेश-विजय, भगवन्त का १० सर्गों का मुकुन्दविलास, राम कवि का ८ सर्गों का विष्णुविलास,

२० सर्गों का राघवीय काव्य तथा कंसवहो (प्राकृत) एवं राम वर्मा का १२ सर्गों का रामचरित उल्लेखनीय है।

सम्बद्ध शतियों में चम्पू काव्यों की रचना अच्छी संख्या में हुई। इनमें से पद्मनाभ मिश्र का वीरभद्रदेव चम्पू, शङ्कर दीक्षित का चेतो-विलास, वेङ्कटेश का भोंसलावंशावली चम्पू और वल्लीसहाय का आचार्यदिग्विजय चम्पू आदि *ऐतिहासिक आधारों पर प्राप्य हैं।* पौराणिक आधारों पर १६वीं शती में श्रीनिवास दीक्षित ने भैष्मीपरिणय, तिरुमलम्बा ने वरदाम्बिका-परिणय, स्वयम्भूनाथ ने शङ्करानन्द. राजनाथ तृतीय ने भागवत चम्पू, कवि कर्णपूर ने आनन्द-वृन्दावन और भोगनाथ ने व्यासयोगिचरित नामक चम्पू ग्रन्थ लिखे। अकेले नारायण भट्टपाद (१५६०-१६४६ ई०) ने राजसूय, मत्स्यावतार, पाञ्चाली-स्वयम्बर आदि २३ चम्पू ग्रन्थ लिखे।

१७वीं शती में जीवगोस्वामी का गोपालचम्पू, नृसिंह और श्री शैल के पृथक्-पृथक् त्रिपुर-विजय, चिदम्बर का पञ्चकल्याण, वेंकयज्वा और कृष्णनाथ का आनन्दलतिका, राजचूड़ामणि का भारत-चम्पू, कालहस्ति का वसुचरित्र, वेङ्कटाध्वरिन् का विश्वगुणादर्श और वरदाभ्युदय, मानवेद का चम्पू-भारत, नीलकण्ठ दीक्षित का नीलकण्ठ-विजय, मित्र मिश्र का आनन्दकन्द आदि चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं। १८वीं शती में सरमोजी ने कुमारसम्भव, वेङ्कटकृष्ण ने उत्तर-चम्पू-रामायण, अप्पा शास्त्री ने गौरीमयूर, वीरराघव ने वैकुण्ठविजय, नारायण ने विक्रमसेन, घनश्याम ने राधामाधव-विलास, शङ्कर दीक्षित ने गङ्गावतार और बाणेश्वर ने चित्रचम्पू लिखा। १९वीं शती में परकालयति का रङ्गराजविलास, अच्युत शर्मा का भागीरथीचम्पू, विश्वनाथसिंह का रामचन्द्र-चम्पू और गोपाल चम्पू, पन्त विट्ठल का गजेन्द्रचम्पू एवं आसुरि अनन्ताचार्य का चम्पूराघव आदि ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य चम्पू काव्य भी लिखे गये।

काव्यों की इस कड़ी को बढ़ाने में अनेकार्थक या चित्रकाव्यों की परम्परा का भी योग रहा है। अनन्ताचार्य का यादव-राघव-पाण्डवीय, चिदम्बर का राघव-यादव-पाण्डवीय और सूर्य कवि का राम-कृष्ण-विलोम काव्य १६वीं शती के गणनीय ग्रन्थ हैं। १७वीं शती में वेङ्कटाध्वरिन् ने यादव-राघवीय, वेङ्कटेश्वर ने चित्रबन्ध-रामायण, मेघविजयगणि ने सप्त-सन्धान, राजचूड़ामणि दीक्षित ने रत्नखेटविजय (यमक-काव्य), चित्रमञ्जरी तथा राघव-यादव-पाण्डवीय, वेङ्कटेश ने रामयमकार्णव, श्रीकण्ठ ने शौरिचरित और रघूदय, पण्डितराज ने अन्यापदेश और चक्र कवि ने चित्र-रत्नाकर नामक ग्रन्थों की रचनाएं कीं। परवर्ती शतियों

में भी हमें घनश्याम का प्रबोधाकर, गोपालराय का रामचन्द्रोदय, हरदत्त का राघवनैषधीय, रामभट्ट का पर्यायोक्ति-निष्यन्द, कृष्णमूर्ति का कङ्कणबन्ध रामायण तथा विट्ठलउपमक वेङ्कटेश्वर का रामायण-संग्रह या चतुश्चित्रगर्भ आदि ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

लघु काव्यों के क्षेत्र में इस कालावधि में अपार साहित्य लिखा गया। स्तोत्रों या स्तुतियों की रचना सर्वाधिक संख्या में हुई। वैष्णव-दर्शन की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सन्तों ने दक्षिण भारत के मन्दिरों और मठों में तथा उत्तर भारत में अयोध्या, मिथिला, नवद्वीप, व्रजमण्डल, चित्रकूट और काशी आदि अनेक तीर्थ-स्थलों में स्तुति काव्यों के अम्बार खड़े कर दिये। इनके अतिरिक्त सन्देश-काव्य, लहरी-काव्य, उपाख्यान एवं सूक्तियाँ भी उपलब्ध हैं। इनकी गणना सम्भव प्रतीत नहीं होती। गौराङ्ग चैतन्य का प्रेमामृत, रूपगोस्वामी का उद्धवसन्देश, वल्लभाचार्य का प्रेमामृत, विट्ठल का रस-सर्वस्व, रामचन्द्र का कृष्ण-कुतूहल, कृष्णदेवराय का मदालसाचरित, रघुनाथ का पारिजातहरण और यश-मान, विश्वनाथसिंह का सङ्गीत-रघुनन्दन, तुलसी जी का सङ्गीतरामामृत, पण्डितराज के ५ लहरी ग्रन्थ, अप्पय दीक्षित के अनेक स्तुति-काव्य, रघुराजसिंह का जगदीशशतक, भानुदत्त का गीत-गौरीश, परमानन्द का शृङ्गार-सप्तशती, कृष्णमूर्ति का श्लोकोल्लास, नारायण भट्टपाद का नारायणीय, मेघविजयगणि का मेघदूत-समस्या-लेख, अकबरी कालिदास का स्तुतिमालिका और वीर राघव का पार्वती-स्तोत्र आदि अनेक उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं।

इस काल में शास्त्रीय एवं लक्षणग्रन्थों के भी पर्याप्त संख्या में लिखे जाने की जानकारी प्राप्त होती है। केशवभट्ट का रसिक-सञ्जीवनी, गङ्गानन्द का काव्य-मन्दाकिनी, रामचन्द्र का रसिक-रञ्जन, भानुदत्त का रसमञ्जरी, प्रभाकर का रसप्रदीप, गोविन्द का काव्य-प्रदीप, धर्मसुधी का साहित्य-रत्नाकर, पौण्डरीक रामेश्वर का रसाब्धु तथा गोपीनाथ के रीतिवृत्त-लक्षण, श्रीनिवास दीक्षित क साहित्य-सञ्जीवनी आदि सात ग्रन्थ और शृङ्गार-रस-मण्डन १६वीं शती की रचनाएँ हैं। १७वीं शती में अप्पय दीक्षित ने चित्रमीमांसा, वृत्तिवार्तिक और कुवलयानन्द नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। भीमसेन ने कुवलयानन्द और पण्डित-राज जगन्नाथ ने चित्रमीमांसा का खण्डन किया। पण्डितराज ने रस-गङ्गाधर और भामिनीविलास जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे। इनके अतिरिक्त शान्तलुरिकृष्ण सूरि का अलङ्कार-मीमांसा, विद्याधर का अलङ्कार-सुधानिधि, राजचूड़ामणि का काव्य-दर्पण, नीलकण्ठ दीक्षित का चित्रमीमांसा-दोष-धिक्कार, कृष्णदीक्षित का रघुनाथभूपालीय आदि ग्रन्थ इसी शती के हैं।

१८वीं शती में बलदेव ने साहित्यकौमुदी, विश्वेश्वर पाण्डेय ने अलङ्कार-कौस्तुभ और रसचन्द्रिका, रामदेव चिरञ्जीव भट्टाचार्य ने काव्य-विलास और शृङ्गार-तटिनी, सुखलाल मिश्र ने शृङ्गारमाला और अलङ्कार-मञ्जरी, हरिप्रसाद ने काव्यार्थगुम्फ और काव्यालोक आदि ग्रन्थ लिखे। १९वीं शती में अनुरदमण्डन ने अलङ्कारलना एवं मुग्ध-मेधाकर, कृष्णसुधी ने काव्यकला-निधि, रत्नभूषण ने काव्यकौमुदी और राजशेखर ने साहित्य-कल्पद्रुम की रचना की। इसी कड़ी में नृसिंह का नञ्जराजयशोभूषण, सदाशिव-मखिन् का रामवर्म-यशोभूषण, वेङ्कट शास्त्री का अप्पाराय-यशश्चन्द्रोदय और कच्छेश्वर दीक्षित का रामचन्द्र-यशोभूषण जैसे ग्रन्थ जोड़े जा सकते हैं।

सङ्गीत और नृत्य के क्षेत्र में लक्ष्मीधर का भरतशास्त्र, रघुनाथ का भारतसुधा और सङ्गीतसुधा, गोविन्द दीक्षित का सङ्गीत-सुधानिधि, रामामात्य का स्वरमेलकलानिधि, क्षेमकर्ण का रागमाला, सोमनाथ का राग-विबोध, वेद कवि का सङ्गीतमकरन्द, अहोबिल का सङ्गीत-पारिजात, बालरामवर्मन् का बालराम-भरतम्, तुलजा राज का नाट्यवेदागम और सङ्गीत-सारामृत और पुण्डरीक विट्ठल का राग-नारायण उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इसी अवधि में सिद्धान्त-कौमुदी एवं मध्यकौमुदी नामक व्याकरण के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ, काव्यों और काव्य-शास्त्रों पर कितनी ही टीकाएँ तथा दर्शन, धनुर्वेद, नीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये।

इस काल में सुभाषितों के अनेक सङ्ग्रह किये गए। विजयसेन सूरि ने सूक्ति-रत्नावली, गोविन्द भट्ट ने पद्य-मुक्तावली, हरिदास ने प्रस्ताव-रत्नाकर, हरि कवि ने सुभाषित-हारावली, सुन्दरदेव ने सूक्ति-सुन्दर, गोविन्दजित् ने सभ्यालङ्करण, वेणीदत्त ने पद्यवेणी, शम्भूदास ने सार-सङ्ग्रह-सुधार्णव, रूप-गोस्वामी ने पद्यावली, हरिभास्कर ने पद्यामृत-तरङ्गिणी, व्रजनाथ ने पद्य-तरङ्गिणी लक्ष्मणभट्ट ने पद्य-रचना, गोपीनाथ ने सुभाषित-संग्रह और गदाधर भट्ट ने रसिकजीवन नाम से सूक्तियों के सङ्कलन किये। इनके अतिरिक्त सुभाषित-सार-समुच्चय आदि ग्रन्थ भी हैं।

कथासार गद्य और पद्य दोनों में लिखे गये हैं। इस क्षेत्र में कृष्णदेवराय का सकल-कथा-सार और रामायण-सार-सङ्ग्रह, अप्पय दीक्षित का दशकुमारचरित सङ्ग्रह और रामायण-सार-सङ्ग्रह, वीरभद्रदेव का दशकुमार-पूर्वकथासार, कृष्णाराम का नैषधचरितसार, रघुनाथ का रामायणसार-सङ्ग्रह, गोविन्द दीक्षित का हरिवंश-सारचरित, सुमतीन्द्र का अभिनव-कादम्बरी और कृष्णराज उदयर तृतीय के कृष्णकथापुष्पमञ्जरी तथा रामायण-कथा-पुष्पमञ्जरी आदि ग्रन्थ प्राप्त हैं।

संबद्ध शतियों में दृश्य काव्य के क्षेत्र में प्राप्त ग्रन्थों की संख्या बहुत है। इनमें उत्कृष्ट नाटक तथा अन्य रूपक भी हैं। १६वीं शती के उल्लेखनीय नाटक हैं—कृष्णदेवराय का ऊषा-परिणय और जाम्बवती-कल्याण, शठगोप का वासन्तिकापरिणय, कर्णपूर का चैतन्यचन्द्रोदय, रूपगोस्वामी के विदग्धमाधव और ललितमाधव, मल्लिकार्जुन का सत्यभामा-परिणय, कुमारताताचार्य का पारिजात और श्रीनिवास दीक्षित का भैमीपरिणय। १७वीं शती में यज्ञनारायण ने रघुनाथ विलास, राजचूडामणि ने आनन्दराघव, अतिरात्र-यज्वन् ने कुश-कुमुद्वतीय, नीलकण्ठ ने नलचरित, रघुनाथ ने नलाभ्युदय और मानवेद ने कृष्णगीत नाटक का प्रणयन किया।

परवर्ती शतियों में घनश्याम के प्रचण्ड-राहूदय और आनन्दसुन्दरी, वेङ्कटकृष्ण का कुश-लव-विजय, मल्लन चक्रवर्ती का दमयन्ती-कल्याण, आनन्द का विद्या-परिणय, रामकवि के ललित-राघवीय और पादुका-पट्टाभिषेक, वेङ्कटरङ्गनाथ का मञ्जुल-नैषध, विश्वनाथसिंह का आनन्द-रघुनन्दन, रामशास्त्री का मुक्तावली, बल्लीसहाय कवि का ययाति-तरुण-नन्दन, सुन्दरवीरराघव का रम्भा-रावणीय, वैद्यनाथ का चैत्रयज्ञ, शङ्करलाल के सावित्री-चरित्र आदि ७ नाटक, सुन्दरराज आचार्य के पद्मिनी-परिणय आदि ५ नाटक लिखे गये। नारायण शास्त्री ९२ नाटकों के प्रणेता बतलाये जाते हैं। त्रिवेणी नामक कवयित्री ने १९वीं शती में रङ्गराजसमुदय और तत्त्वमुद्राभद्रोदय दो नाटकों की रचना की है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नाटकों की जानकारी मिलती है।

अन्य रूपकों में भाणों की संख्या सर्वाधिक प्रतीत होती है। रूपगोस्वामी का दानकेलि-कौमुदी, रामवर्मा का रस-सदन, घनश्याम का मदन-सञ्जीवन, राजचूडामणि का शृङ्गार-सर्वस्व, गीर्वाणेन्द्र का शृङ्गार-कोष, रामभद्र का शृङ्गार-तिलक, अम्मालाचार्य का वसन्ततिलक, वरदाचार्य के चोल और अनङ्गब्रह्म-विलास, चोक्कनाथ का रस-विलास, अप्पा शास्त्री का मदन-भूषण, जगन्नाथ का अनङ्ग-विजय, त्रिविक्रम का पञ्चायुध-प्रपञ्च, श्रीनिवास का रसिकरञ्जन और स्वयम्भूनाथ का मदनगोपाल आदि कितने ही भाण-ग्रन्थ हैं।

मैसूर के प्रधानी वेङ्कटभूपति ने कामकला विलास भाण, रुक्मिणी-परिणय अङ्क, कुक्षिम्भरि-भैक्षव प्रहसन, उर्वशी-सार्वभौम ईहामृग, विबुध-दानव समवकार, वीरराघव-विजय व्यायोग और सीता-कल्याण नामक वीथी ग्रन्थों की रचना की। रामचन्द्र ने शृङ्गार-सुधार्णव भाण, जामदग्न्य-विजय व्यायोग और वासन्तिका नाटिका का प्रणयन किया। घनश्याम ने नवग्रहचरित सट्टक और चण्डारञ्जन

प्रहसन लिखे। अरुणगिरिनाथ ने वीरभद्र-विजय डिम और सोमवल्ली-योगानन्द प्रहसन की रचना की। रामकवि ने चन्द्रिका वीथी और मदनकेतु चरित प्रहसन का निर्माण किया। रुद्रदास ने चन्द्रलेखा सट्टक लिखा।

इनके साथ-साथ प्रकरणों में श्रीनिवास कुमार का अनङ्गसेन-हरिनन्दिनी, तरङ्गदत्त के पुष्प-दूषितक, पद्मावती-परिणय और प्रयोगाभ्युदय, चन्द्रकान्त का कौमुदी-सुधाकर और गणपति शास्त्री का माधवी-वासन्तीय प्राप्त हैं। प्रहसनों में सामराज का धूर्तनर्तन, गोपीनाथ का कौतुकसर्वस्व, वेङ्कटेश्वर का वेङ्कटेश प्रहसन और हरिजीवन मिश्र के प्रासङ्गिका आदि ४ प्रहसन उल्लिखित हैं। अन्य उल्लेखनीय रूपकों में हैं—शाहजी का चन्द्रशेखरविलास, अप्पा शास्त्री का शृङ्गार-मञ्जरी साट्टकीय, कवि वल्लभ का अभिराम-चित्रलेख, कृष्णदास का कलावती-कामरूप और राजचूड़ामणि का कमलिनी-कलहंस।

कुछ गद्य-काव्यों की चर्चा की जा चुकी है। १५२४ ई० में राजवल्लभ पाठक ने चित्रसेन-पद्मावती कथा और १५९९ ई० में देवविजय गणि ने रामचरित की रचना की। जगन्नाथ मिश्र ने १७वीं शती में कथाप्रकाश ग्रन्थ लिखा। १७१३ ई० में ढुण्ढिराज व्यास ने अभिनव-कादम्बरी का प्रणयन किया। एकाम्बर दीक्षित का वीरभद्रविजय और विश्वेश्वर का मन्दारमञ्जरी भी १८वीं शती के गद्यकाव्य हैं। १९वीं शती में गद्य-लेखन की रुचि बढ़ी हुई प्रतीत होती है। श्रीनिवासाचार्य के श्रीकृष्णलीलाशिस और शार्ङ्गोपाख्यान, तिरुमल्लाचार्य का श्रीकृष्णाभ्युदय, अहोबिल नृसिंह का त्रिमूर्ति-कल्याण, अप्पा शास्त्री का लावण्यमयी, शिवकुमार शास्त्री का यतीन्द्र-जीवनचरित, श्रीनिवास का कृष्णराज-जयोत्कर्ष और शङ्करलाल के चार कथा-ग्रन्थ अनसूयाभ्युदय, भागवती-भाग्योदय, चन्द्रप्रभा-चरित तथा महेश-प्राणप्रिया इसी शती की देन हैं।

उक्त शतियों में हमें प्रियम्वदा, वैजयन्ती, त्रिवेणी, सुन्दरी और कमला आदि कवयित्रियों के नाम भी मिलते हैं। त्रिवेणी ने ६ लघुकाव्य और दो नाटक लिखे हैं।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि १५०० से १९०० के बीच संस्कृत-साहित्य की महत्त्वपूर्ण एवं प्रचुर मात्रा में सर्जना हुई है, जिसमें प्रेरणा देने की शक्ति है।

ऊपर लिखे गये ग्रन्थों में कुछ काव्य-ग्रन्थ बघेलखण्ड के भी हैं। *अतः इन* शताब्दियों में संस्कृत-सर्जन की धारा में कुछ प्रवाह बघेलखण्ड से भी सम्मिलित हुए हैं।

---

१. हि० क्ला० सं० लिट्० पर आधारित। उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थों की जानकारी के लिए लेखक आभारी है।

बघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य :

बघेलखण्ड में जो संस्कृत-साहित्य निर्मित हुआ है, वह यथार्थतः समग्र रूप में उपलब्ध नहीं है। अनुपलब्ध ग्रन्थों के सम्बन्ध में तथा कुछ उपलब्ध प्रकाशित ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी अनुमान के आधार पर भ्रम उत्पन्न किये गए हैं। इन पंक्तियों में हम यह विचार करेंगे कि वास्तव में बघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य कितना है उसके प्रणेताओं की स्थिति कहाँ है एवं इस साहित्य में काव्य कितने हैं, जिनका समीक्षात्मक रूप आगे प्रस्तुत किया जाय।

सारावली और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त :

श्री सुधाकर द्विवेदी ने गणक-तरङ्गिणी[1] की भूमिका में सारावली नामक ज्योतिष ग्रन्थ[2] के निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोक उद्धृत किये हैं :—

'देवग्राम-पुर-प्रपोषणबलाद् ब्रह्माण्ड-सत्पञ्जरे,
कीर्तिर्हंसविलासिनीव सहसा यस्येह भास्वानता।
श्रीमद्व्याघ्रपदीश्वरो रचयति स्पष्टां स सारावलीं
होराशास्त्र विनिर्मलीकृतमनाः कल्याणवर्मा कृती॥
होरा-तृष्णार्त्तानां शिष्याणां स्फुटतरार्थ-शिशिर-जला।
कल्याणवर्म-शैलाग्नदीव सारावलीप्रसृता॥'

इस कल्याणवर्मा को श्री द्विवेदी ने '६१५' ई० में रीवा नगर में सिंहासन पर बैठने वाले व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के साथ एकात्म्य किया है।[3] आपने यह भी लिखा है कि "विष्णुगुप्त का पौत्र ब्रह्मगुप्त रीवा नगर के अधिपति व्याघ्र भटेश्वर (व्याघ्रपदीश्वर) का सेवक था। उसके पिता विष्णुगुप्त व्याघ्रमुख राजा के यहाँ रहते थे। ब्रह्मगुप्त ५९८ ई० में पैदा हुए। ३० वर्ष की आयु में ६२८ ई० में इन्होंने 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' की रचना की।"[4]

---

१. प्रकाशित, काशी।

२. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : १९२८ : अध्याय ५१-६, पुष्पिका में— 'इति कल्याणवर्मविरचितायां—' उल्लेख है। श्री द्विवेदी ने 'व्याघ्र-पदीश्वर' के स्थान पर 'व्याघ्रभटेश्वर' तथा अन्य पाठभेद लिखे हैं।

३. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : १९२८ : संस्कृत भूमिका—मन्मतेऽयमेव कल्याणवर्मा नृपतिर्वघेलवंशीयानां रीवानगराधिपतीनां मूलपुरुषः। सारावल्यादिश्लोकेन देवग्रामपयः (पुर) प्रपोषणबलादित्यादिना रीवा राजधानीतोऽग्निविदिशियोजनचतुष्टयान्तरे 'देवरा' नाम्नः प्रसिद्ध-ग्रामस्य *निवासी।*

४. 'गणक-तरङ्गिणी' : भूमिका।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने चापवंशीय व्याघ्रमुख का उल्लेख किया है।[1] इस व्याघ्रमुख और उक्त व्याघ्रमटेश्वर को श्री द्विवेदी ने एक ही व्यक्ति मान लिया है तथा कल्याणवर्मा (कर्णदेव) को ५०० शकाब्द में रखा है।[2]

सम्भवतः इसी आधार पर श्री रामप्यारे अग्निहोत्री ने लिखा है कि 'महाराज कर्णदेव (बघेल) संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। इन्होंने 'सारावली' नामक ज्योतिष-शास्त्र का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है। इनका आश्रित ब्रह्मगुप्त संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् था, जिसने ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त लिखा।'[3]

श्री द्विवेदी का उक्त मत तथा उस पर आधारित श्री अग्निहोत्री का उल्लेख भ्रामक है। श्री सदाशिव काणे ने कल्याणवर्मा की तिथि ६५० ई० निश्चित की है।[4] दूसरी ओर हम पीछे लिख चुके हैं कि व्याघ्रदेव और कर्णदेव बारहवीं शती में हुए होंगे। चापवंशीय व्याघ्रमुख सातवीं शती में गुर्जरदेश का शासक था। ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का प्रणेता इसी की सभा में था।[5] रीवा के बघेल राजवंश से इसका सम्बन्ध नहीं हो सकता। १५०० ई० से पूर्व बघेलखण्ड के बघेल राजाओं से संबद्ध संस्कृत-साहित्य प्राप्त नहीं है।

सोलहवीं शती के ग्रन्थ :

रामचन्द्र भट्ट का रामचरित-काव्य और रामचन्द्र कवि के स्फुट श्लोक :

डा० हरदत्त शर्मा[6] के अनुसार सोलहवीं शती के आरम्भ में वीरसिंहदेव

---

१. श्रीचापवंशतिलके श्री व्याघ्रमुखे नृपे शकनृपालात् ।
पञ्चाशत्संयुक्तैर्वर्षशतैः पञ्चभिरतीतैः ॥
ब्राह्मःस्फुटसिद्धान्तः सज्जन-गणितज्ञ-गोलवित्प्रीत्यै ।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुत-ब्रह्मगुप्तेन ॥'
देखिये ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त : काशी ।

२. 'गणक-तरङ्गिणी' : भूमिका । साथ ही देखिये—'संस्कृत साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन' : रीवा : १९५७ : पृष्ठ ३३-३६ ।

३. वि० प्र० इ० : पृष्ठ १४२-१४४ ।

४. 'कल्याणवर्मन्स सारावली—फ्रेश लाइट्स आन इट्स डेट:' आल इण्डिया ओरिएण्टल कांफ्रेंस; बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी—१२वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध-निबन्धों का सारांश : श्री ए० एस० अल्तेकर द्वारा १९४३ ई० में प्रकाशित ।

५. श्लो० गु० : पृष्ठ ४५७ ।

६. 'बघेल रूलर्स०' । साथ ही देखिये, हि० क्वा० सं० लिट्० पृष्ठ ३१० ए : ओ० ज० भाग ३।१३३ में प्रकाशित हरदत्त शर्मा के निबन्ध का उल्लेख ।

बघेल की प्रेरणा से (किसी) रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित-काव्य लिखा।[१] शर्मा जी के मत से यह रामचन्द्र भट्ट वही कवि है, जिसने रसिक-रञ्जन और रोमावलीशतक का प्रणयन किया तथा जो लक्ष्मण भट्ट का पुत्र है। इसने सं० १५८० (१५२३ ई०) में लिखित अपने ग्रन्थ रसिकरञ्जन की स्वयं ही टीका लिखी। टीका का अन्त इस प्रकार होता है—

'शृङ्गार-वैराग्यशतं स पञ्चविंशत्यमयोध्या नगरे व्यधत्त।
अब्दे विद्वारण-बाण-चन्द्रे श्री रामचन्द्रोऽनु च तस्य टीकाम् ॥
......इति श्री लक्ष्मणभट्टसूनु—श्रीरामचन्द्रकविकृतं सटीकं रसिकरञ्जनं नाम शृङ्गारवैराग्यार्थकमाव्यं काव्यं सम्पूर्णम्।'[२]

हम देखते हैं कि रसिकरञ्जन की यह टीका अयोध्या नगर में लिखी गई। पद्यामृततरङ्गिणी में अयोध्या के रामचन्द्र भट्ट का एक श्लोक प्राप्त है।[३]

डॉ० यतीन्द्र विमल चौधुरी ने इस आधार पर लिखा है कि १५२० ई० में अयोध्या में वीरसिंह का राज्य था। यह वीरसिंह प्रतापरुद्र का पौत्र और मधुकरशाह का पुत्र था। अतः रसिकरञ्जन और राधाचरित का प्रणेता रामचन्द्र भट्ट अयोध्या के वीरसिंह का आश्रित होगा।'[४]

श्री पी० के० गोडे[५] ने लिखा है कि (एक) रामचन्द्र भट्ट ने श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध की टीका[६] लिखी है, जिसका नाम पहारसिंही टीका भी है; अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है :—

'इति श्री दशमस्कन्धे सामन्त-चक्र-चूडामणि-मरीचि-रञ्जि (त)—पादपीठ-बुन्देल-महाराजाधिराज-वीरसिंह- तस्यात्मज-महाराजाधिराज - श्रीपहारसिंहदेवस्य निदेशतः विश्वेश्वरभट्टात्मज-रामचन्द्रभट्टकृतायां टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अष्टौ अष्ट नृपाब्देव ॥१६॥८८॥ मितेऽब्दे मासि कार्तिके।
कृता च रामचन्द्रेण टीकेयं च सुबोधिनी ॥'[७]

---

१. आफे० भाग १।१०९६ एवं १०७६।
२. काव्यमाला चतुर्थ : निर्णयसागर प्रेस, बंबई : १९३७ : पृष्ठ १४८-१४९।
३. श्लोक० १३ : 'मया वारं वारं.... ।—अयोध्याक-रामचन्द्रभट्टस्य'।
४. पद्यामृत० अंग्रेजी भूमिका—रामचन्द्र भट्ट : पृष्ठ ९६१-८०।
५. 'रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटेज०'।
६. आफे० २।९० : साथ ही देखिये ग० मै० का० : १८८४-८७ का क्र० ११०।
७. 'रामचन्द्र भट्ट ए प्रोटेज' : पृष्ठ २ :
"... ....पहारसिंहदेवस्य (निदेशतः कृतायां) पहारसिंही टीकायां..............'।

स्पष्ट है कि यह रामचन्द्र भट्ट विश्वेश्वर भट्ट का पुत्र था, जिसने वीरसिंह बुन्देल के पुत्र पहारसिंह के निदेश से सुबोधिनी (या पहारसिंही) टीका लिखी।

गोडे का कहना है कि डॉ॰ श्यामसुन्दरदास के मतानुसार[1] पहारसिंह की मृत्यु १६५३ ई॰ में हुई, क्योंकि इस प्रसङ्ग पर शोक-ग्रस्त रानी हरदेवी के समाधान के लिए राघवदास ने हिन्दी में ज्ञानप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें वंशवृक्ष भी है।[2]

श्री गोडे ने यह भी बतलाया है कि डॉ॰ पी॰ वी॰ काणे के अनुसार[3] मित्र मिश्र ने आह्निक-प्रकाश में (पहारसिंह देव के पिता) वीरसिंहदेव का वंशवृक्ष प्रस्तुत किया है। वीरसिंहदेव (१६०५-२७) की राजधानी ओरछा थी। भानुदत्त की रसमञ्जरी के टीकाकार अनन्ताश्रम[4] ने भी, जिनके आश्रय-दाता वीरसिंह के पुत्र चन्द्रभानु (या चित्रभानु) थे, १६१५ ई॰ में टीका के साथ आश्रयदाता की वंश-परम्परा सूचित की है। इन विवरणों के आधार पर वंश सूची इस प्रकार है—[5]

मेदिनीमल्ल (काशिराज—वंश्य)
|
अर्जुनदेव (बुन्देलखण्ड)
|
मलखान
|
प्रतापरुद्र (या रुद्रप्रताप, ओरछा राज्य का संस्थापक)
|
मधुकरशाह
|
वीरसिंह (देव) (१६०५-२७)
|
जुझारसिंह | चन्द्रभानु | पहारसिंह = हरदेवी (१६४१-५३)

१. वही पृष्ठ ३ तथा 'हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण' प्रयाग : १९१२ : पृष्ठ ५३।
२. वही।
३. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र : भाग १ : पूना : १९३० : पृष्ठ ४४४-४६।
४. श्री कृष्णमाचारियर ने सम्भवतः इसी टीकाकार का नाम अनन्त पण्डित लिखा है, जिसने बनारस में 'स्वर्गाविन्' वीरसिंह के पुत्र 'काशी-नरेश चित्रभानु' के आश्रय में १९३६ ई॰ में 'रसमञ्जरी' पर टीका लिखी। देखिये—हि॰ क्ला॰ सं॰ लिट्॰ पृष्ठ ७७५ टि॰ ३।
५. 'रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटेज॰'।

बुन्देलों के एक वंशवृक्ष में चन्द्रभानु (या चित्रभानु) का नाम नहीं मिलता, किन्तु उसमें वीरसिंहदेव के चार पुत्र—जुझारसिंह, पहारसिंह, भगवानदास और हरदौल बतलाए गए हैं।[१]

वीरसिंहदेव ने सलीम की इच्छानुसार १६०२ ई० में अबुलफ़ज़ल को मारा था, बाद में वह अकबर के एक सेनापति पत्रदास द्वारा पराजित होकर भागा था।[२] सलीम के बादशाह होने पर वीरसिंहदेव ने १६०५ ई० में अपने भाई भारथ (या भारतीचन्द) को अपदस्थ कर ओरछा पर अधिकार किया था।[३]

शाहजहाँ ने १६५० ई० में ओरछा के राजा पहारसिंह बुन्देला को चौरागढ़ (गढ़ा) की जागीर दी थी।[४]

इन तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डॉ० चौधुरी ने जिस अयोध्या के राजा 'वीरसिंह' को प्रतापरुद्र का पौत्र और मधुकरशाह का पुत्र लिखा है, वह उपर्युक्त वंशवृक्ष को देखते हुए वास्तव में ओरछा का वीरसिंह (देव) है और वह सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में है। 'रसिकरञ्जन' का कर्त्ता रामचन्द्र भट्ट, जो लक्ष्मण भट्ट का पुत्र था और सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में था, ओरछा के बुन्देल राजा वीरसिंह की सभा में नहीं था। दूसरी ओर वीरसिंह (देव) और उनके पुत्र पहारसिंह के शासन काल में सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में कोई अन्य रामचन्द्र भट्ट हुआ, जो विश्वेश्वर भट्ट का पुत्र था और जिसने भागवत की 'पहारसिंही' टीका लिखी।

यदि हरदत्त शर्मा का यह मत ठीक है कि 'राधाचरित' और 'रसिकरञ्जन' दोनों ग्रन्थों का कर्ता एक ही रामचन्द्र भट्ट है, तब कालक्रम की दृष्टि से यह कवि वीरसिंहदेव बघेल (१५००-१५३५) के समकालीन ठहरता है। हम ऊपर लिख चुके हैं [illegible] इस कवि ने १५२३-२४ ई० (सं० १५८०) में संस्कृत *'रसिकरञ्जन' की टीका लिखी।* इतिहास की दृष्टि से हम इसी काल में वीरसिंहदेव बघेल को भी पाते हैं, क्योंकि वह बाबर (१५२६-३०) का

१. गोरेलाल तिवारी—'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' : परिशिष्ट ४ : वंशवृक्ष।

२. आईन० : पृ० ४६९ : पत्रदास।

३. मासिर० : पृष्ठ २७५।

४. आईन० पृ० ४०७ : 'राजा रामचन्द्र बघेला' : तथा इ० ग० : भाग २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२ और मासिर० पृष्ठ २२७, १३४।

समकालीन था। इसके पूर्व वह सिकन्दर लोदी का भी समकालीन था।[1] एक अन्य निम्नलिखित आधार भी है, जिसके बल पर कहा जा सकता है कि 'रसिकरञ्जन' के कर्ता 'रामचन्द्र भट्ट' का सम्बन्ध वीरसिंहदेव बघेल से हो सकता है।

अयोध्या में 'रसिकरञ्जन' की टीका लिखने वाला रामचन्द्र भट्ट लक्ष्मण भट्ट का पुत्र और प्रसिद्ध दार्शनिक स्वामी वल्लभाचार्य का अनुज था। इसका जन्म १४८४ ई० में हुआ था। इसने कृष्णकुतूहल और गोपाललीला नामक काव्य भी लिखे।[2]

वल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्ठलेश्वर का बघेलखण्ड के राजाओं से घनिष्ठ सम्पर्क था। पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग में अपनी दिग्विजय-यात्रा करते हुए वल्लभाचार्य चित्रकूट (जिला सतना) और अमरकण्टक (जिला शहडोल) गये थे। इसी अवधि में उन्होंने यमुना के पश्चिम-दक्षिण तट पर प्रयाग के दूसरे पार अरैल को अपना धर्म-प्रसार का केन्द्र बनाया। वहाँ वे लगभग १५१० ई० से मृत्युपर्यन्त (१५३० ई० तक) रहे। अरैल में वल्लभाचार्य के प्रथम शिष्य पद्मनाभदास तथा एक प्रमुख शिष्य माधव आदि अन्य लोग भी रहे। वल्लभाचार्य के दोनों पुत्र गोपीनाथ और विट्ठलनाथ (या विट्ठलेश्वर) भी साथ रहते थे। गोपीनाथ अन्त (१५४२ ई०) तक वहीं रहे। १५६६ ई० में विट्ठलनाथ ने अरैल पर मुसलमानों का आक्रमण हो जाने से अरैल त्याग दिया और बान्धवगढ़ ('बान्धो') में, जहाँ का राजा (वीरसिंहदेव बघेल का पौत्र) रामचन्द्र उनका घनिष्ठ मित्र था, सपरिवार चले गये। वहाँ कुछ समय रहकर वे रानी दुर्गावती के पास गढ़ा और वहाँ से प्रयाग चले गए।[3]

श्री दौलत के अनुसार विट्ठलेश्वर की यह (बान्धवगढ़) यात्रा १५६०-६१ ई० में हुई होगी। गायक तानसेन से (जो १५६२ ई० में बान्धवगढ़ से अकबर की सभा में आ चुका था)[4] बान्धवगढ़ में उनकी भेंट हुई थी।

---

१. वीर० २।६७ तथा १२।२२ : साथ ही देखिये—ई० डी० भाग २ : कलकत्ता १९४९ : अबुल्फजलकृत अकबरनामा, पृष्ठ १२-१३ : '—राजा (वीरसिंह) सुल्तान सिकन्दरलोदी के दरबार में हाजिरी देने गया।'

२. हि० कन्ट्रि० सं० लिट्० पृष्ठ २११ : साथ ही देखिये—पद्मपुर० भूमिका—पृष्ठ १६३-१८०।

३. भाई मणिलाल पारेख : 'श्री वल्लभाचार्य' : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ १८, ७६, ९३-९८, १०१, १०४, १४९, १६३-६४, २६८-६९।

४. अक० भाग २ : पृष्ठ २७९-८०।

डा० हरदत्त शर्मा ने यह भी लिखा है कि रामचन्द्र बघेल की स्तुति (किसी) रामचन्द्र कवि ने की है। 'रामनृपति' के सम्बन्ध में पद्य-रचना में एक श्लोक[१] प्राप्त है। शर्मा जी के मत से यह 'राम-नृपति' (बान्धवगढ़ का) राजा रामचन्द्र बघेल ही है, (जो वीरभानु का पुत्र और उक्त वीरसिंह बघेल का पौत्र है)[२]।

सूक्ति-सुन्दर में भी रामचन्द्र (कवि) का एक श्लोक 'राम' राजा के सम्बन्ध में उपलब्ध है।[३]

ऐतिहासिक स्थितियों को देखते हुए, वल्लभाचार्य का सम्बन्ध वीरसिंहदेव बघेल से रहा होगा, यह मानना असङ्गत न होगा। अरैल बघेलों के अधिकार में था। सन् १४९४ ई० में वीरसिंह के पितामह भेदेव के राज्य-दौर अरैल को सिकन्दरलोदी ने लूटा था और १४९५ ई० में वीरसिंह ने सिकन्दर का सामना किया था।[४] हुमायूँ के समय के मुसलमान लेखकों ने वीरसिंह के पुत्र वीरभानु को, जिसने १५३९-४० ई० में शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता की थी, 'अरैल का राजा' लिखा है।[५] वीरभानु का पुत्र रामचन्द्र बहुत समय तक प्रयाग का भी स्वामी था।[६]

इस प्रकार रसिकरञ्जन का कर्ता रामचन्द्र भट्ट, जो अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणेता था और विट्ठलेश्वर का चाचा था, सम्भव है अरैल में भी रहता रहा हो। अपने अयोध्या-वास के समय उसने रसिक-रञ्जन की टीका (१५२३-२४ ई० में) लिखी होगी, किन्तु बघेलों के जनपद से भी उसका सम्बन्ध रहा होगा और १५६१-६२ ई० में, जब मुस्लिम आक्रमण से डर कर विट्ठलेश्वर सपरिवार राजा रामचन्द्र बघेल के समीप बान्धवगढ़ गए, तब यह भी साथ रहा होगा। इन्हीं दिनों मुसलमानों के साथ हुए युद्धों में राजा रामचन्द्र ने जब शौर्य-प्रदर्शन किये, तब सम्भव है, इसी कवि ने उनकी स्तुति में वे श्लोक लिखे हों, जो

१. प्रकाशित : काव्यमाला : बंबई : १०१९ : 'वाणी कण्ठाभरण……'।
२. 'बघेल रूलर्स'।
३. श्लोक १५२ : 'सत्यं त्वं पुरुषोत्तमोऽसि नियतं तत्रापि रामो भवान्'।
४. ई० डॉ० : भाग ५ : नियामतउल्लाह : तारीखी खानजहान लोदी : पृष्ठ ८९, ९३–९५
५. गुलबदन बेगम कृत हुमायूँनामा (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५–३६ तथा अर्स्किन : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४–७५ टि० : 'दि राजा आफ अरिल (अरैल) परमान (वीरभान)'।
६. बघेल० ५५।

रामचन्द्र कवि की उक्तियों के रूप में सङ्कलित हैं। अतः प्रतीत होता है कि डॉ० हरदत्त शर्मा का यह मत कि रसिक-रञ्जन के कर्ता और लक्ष्मण भट्ट के पुत्र रामचन्द्र भट्ट ने वीरसिंहदेव बघेल की प्रेरणा से 'राधाचरित काव्य' की रचना की है, ठीक है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि यही रामचन्द्र भट्ट अपने दीर्घ जीवन में कम से कम बघेल नरेशों की तीन पीढ़ियों (वीरसिंह, वीरभानु और रामचन्द्र) से सम्बद्ध रहा। इसका जीवन-काल १४८८ ई० से लगभग १५६४ ई० तक माना जा सकता है।

'वीरसिंह' के सम्बन्ध में कुछ और श्लोक सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं, किन्तु उनमें कवि का निर्देश नहीं है। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन है कि ये किस वीरसिंह के सम्बन्ध में हैं। इनमें से एक श्लोक सूक्तिसुन्दर और पद्यवेणी में तथा दो श्लोक सुभाषित-रत्नभाण्डागार[1] में हैं। सूक्तिसुन्दर सत्रहवीं शती के प्रारम्भ का सङ्कलन बतलाया जाता है। इसमें उल्लिखित भानुकर, अकबरी कालिदास आदि कवि सोलहवीं शती के हैं।[2] ओरछा का वीरसिंहदेव सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में था। इसलिए प्रतीत होता है कि सूक्तिसुन्दर में प्राप्त 'वीरसिंह' वीरसिंहदेव बघेल होगा, जो सोलहवीं शती के आरम्भ में था। सुभाषितरत्नभाण्डागार में प्राप्त श्लोक भी सूक्तिसुन्दर के श्लोक से मिलते-जुलते हैं। अतः ये दोनों श्लोक वीरसिंहदेव बघेल से सम्बद्ध हो सकते हैं।

---

१. 'वैकुण्ठाभः प्रकामं कमलयुतशिराः कुञ्जराक्रान्तदृष्टिः
कोदण्डोदारनामाऽप्यमितपरिजनो विश्वविख्यातकीर्तिः।
कुन्दर्याश्रक्तचित्तः समरणविजयी कङ्कणाहारयुक्तो
वीर श्रीवीरसिंह त्वमिव तव रिपुः किन्तु दुष्टादिवर्णः॥'

(सू० सु० : श्लोक ४५ : पद्यवेणी : श्लोक ६२)

'यस्योच्छिन्ना न वेदा मनसि सदयता दूषणानामभावो
दस्रो दूरे कुदृष्ट्या जहति कठिनतां दानशक्तिर्गरिष्ठा।
आधत्ते यश्च कुन्दं शिरसि दरवतां यश्च दूरीकृतार्तिः
स श्रीमान् वीरसिंह त्वमिव तव रिपुस्तत्र दम्भं प्रतीमः॥'

'वीरसिंहारिनारीणामञ्जनाक्ताश्रुबिन्दवः।
सरोजे पतिता रेजुः सरोजे मधुपा इव॥'

(परब: सुभाषितरत्न-भाण्डागारम्: निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९११)

२. हि० वल्ला० सं० लिट्० पृष्ठ १९० ए, १९० बी।

वीरभानूदय-काव्यम्

१६वीं शती के मध्य भाग में माधव कवि द्वारा रचित इस द्वादश-सर्गात्मक महाकाव्य का सविस्तार विवरण आगे तीसरे अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

कवि भानुकर

सुभाषित-सङ्ग्रहों में भानुकर के दो स्फुट श्लोकों में 'वीरभानु' और एक श्लोक में वीरभान' उल्लेख है।[१]

रागमञ्जरी के प्रणेता पुण्डरीक विट्ठल ने अपने आश्रयदाता कच्छवाहवंशीय माधवसिंह का उल्लेख किया है। माधवसिंह अकबर (१५५६-१६०५) के कृपापात्र मानसिंह का भाई था। ये दोनों भगवन्तदास के पुत्र और भानु के पौत्र थे। श्री गोडे ने इसी भानु को भानुकर के श्लोकों में उल्लिखित 'वीरभानु' माना था।[२] श्री चौधुरी ने भी इस सम्भावना का उल्लेख किया है।[३] किन्तु आगे चलकर श्री चौधुरी कहते हैं, 'यह अधिक सम्भव है कि भानुकर रीवा के बघेल वीरभानु का उल्लेख कर रहा हो। तिथियों में कोई कठिनाई नहीं आती। साथ ही, वीरभानु द्वारा सोलहवीं शती के संस्कृत कवियों को उदारता-पूर्वक आश्रय देने के उल्लेख प्राप्त हैं।[४]

---

१. मुस्लिम पैट्रनेज० 'भाग १ : पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयट भानु-कर'। श्लोक निम्नलिखित हैं—

(१) 'लङ्काधामनि वीरभानु-नृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापोदयं....... ।'
(पद्यवेणी०, ६८ : सूक्ति०, १०२ : शा० सं० : पद्य० १३।२२ : रसिक० १३, २३)।

(२) 'दिल्लीशो द्वारदेशे.. ।
वीर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं वीर-लक्ष्मी-कपोले ॥ (शा० सं०)

(३) भेरीभाङ्कृतिभिस्तुरङ्ग-निनदैः कुम्भीन्द्र-कोलाहलैः
प्रस्थाने तव वीरभान दलितं ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरम् ।'
(पद्यवेणी, ११४ : सूक्ति० १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९, ए।७६ :) इन पद्यों की समीक्षा के लिये देखिये अध्याय चतुर्थ : ६।

२. 'सम डेटा०' : भो० ष० : १९३४ : पृष्ठ १९७ और आगे।

३. 'मुस्लिम पैट्रनेज' : भाग १, पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयेट भानु-कर' पृष्ठ २४२-टिप्पणी।

४. 'मुस्लिम पैट्रनेज० : भाग १ : पृष्ठ ९-१०।

डा० हरदत्तशर्मा ने इस आश्रयदाता वीरभानु को बघेल ही माना है और कच्छरवंशीय भानु को अस्वीकृत किया है। आपका तर्क इस प्रकार है :—

'वीरभानु (बघेल) कुछ समय तक सिकन्दर लोदी के दरबार में रहे।[१] सिकन्दर लोदी की मृत्यु १५१७ ई० में हुई। वीरभानु का पुत्र रामचन्द्र १५५५ ई० में सिंहासन पर बैठा। इसलिए वीरभानु अवश्य ही सोलहवीं शती [illegible] प्रारम्भ में सिंहासन पर बैठे होंगे और सिकन्दर लोदी के राज्यकाल के अन्तिम भाग में उसके दरबार में रहे होंगे।'[२]

बघेली भाषा के लेखों में वीरभानु का जन्म १५४३ वि० (१४८६ ई०) बतलाया गया है।[३] अबुलफजल के अनुसार (१५०० ई० के निकट) गुजरात के बहादुरशाह का समकालीन चोरागढ़ का गोंड़ राजकुमार अमानदास बघेल राजा नरसिंहदेव (वीरसिंह देव) की शरण में आया था। जब राजा (वीरसिंह देव) सिकन्दर लोदी के दरबार में हाजिरी देने गया तब वह अमानदास को अपने पुत्र 'परविहान' (वीरभानु) के पास छोड़ता गया।[४] अन्य स्रोतों से यह भी ज्ञात है कि राजा वीरसिंहदेव १५२७ ई० में बाबर से लड़ा था और उसने बाद में उससे सुलह भी की थी।[५] रीवा के इतिहासों में वीरभानु का राज्य १५४० ई० से १५५५ ई० तक बतलाया गया है।[६] किन्तु सन् १५३६ ई० में ही वह अवश्य राजा था। इस समय उसने शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता की थी।[७]

---

१. इ० ग० : भाग २१ : पृष्ठ २७६ और आगे।

२. 'दि पोयेट मानुकर' पृष्ठ २५२-५३।

३. परि० १ (क)—एकत्रा—'राजा वीरभानदेव [illegible] जन्म सं० १५४३ के साल।'

४. ई० डा० : कलकत्ता : १९५२ : अबुलफजलकृत अकबरनामा : पृष्ठ ३२-३३।

५. निजामी—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा' : वि० यू० ज० भाग ३।२ : मई, १९५८ : पृष्ठ २-३।

६. आ० रि० इ० : भाग २१ : पृष्ठ १०७।

७. श्रीवास्तव—आशीर्वादीलाल : मुगलकालीन भारत : पृष्ठ ११६, 'रीवा का राजा वीरभान बघेला, जिसे (शेरशाह द्वारा) दरबार में बुलाया गया था, कालिंजर के राजा कीरतसिंह के यहाँ शरण पाने चला गया था। शेरशाह ने चाहा था कि वीरभान को उसे सौंप दिया जाय।' तथा पृष्ठ १४२ 'जब शेरशाह कालिंजर के घेरे में व्यस्त था, जलालखाँ

४ ग०

वीरभानु के अतिरिक्त कृष्ण नृपति की स्तुति में भानुकर के दो श्लोक निजामशाह की प्रशंसा में नो श्लोक और शेरशाह के सम्मान में एक श्लोक प्राप्त है।[१]

हरदत्तशर्मा ने पहले इस निजामशाह को दक्षिण के निजामशाही राजवंश का प्रथम बुरहानशाह निजाम (१५१०–१५५३ ई०) माना था।[२] बाद में उन्होंने लिखा कि वीरभानु और सिकन्दर लोदी में निकट का सम्बन्ध था। सिकन्दर का पूर्व नाम निजाम खाँ था। इसलिए यह तर्क अधिक प्रबल है कि भानुकर ने निजाम खाँ (सिकन्दर लोदी) को ही निजामशाह कहा है तथा उसका वीरभानु बघेल नरेश है, कच्छपवंशीय भानु नहीं। अतः भानुकर को सोलहवीं शती के आरम्भ में रखा जाना चाहिए। शर्मा जी तथा अन्य विद्वानों ने भी 'कृष्ण नृपति' को विजयनगर का राजा कृष्णदेवराय (१५०९-३० ई०) माना है।[३] श्री गोडे और श्री चौधुरी निजामशाह को दक्षिण का बुरहानशाह प्रथम ही मानते हैं। श्री गोडे ने अन्यत्र लिखा है कि यह निजामशाह (बुरहान) 'परशुराम प्रताप' और 'मार्गावर्तन-दीपिका' के प्रणेता साबाजी प्रतापराज का आश्रयदाता था।[४]

हम देख चुके हैं कि सिकन्दर लोदी के राज्य-काल के अन्तिम भाग में भी वीरभानु बघेल युवराज ही था। यदि इन दिनों भानुकर बघेलों की राजसभा में होता तो वह वीरसिंहदेव की स्तुति लिखता, जो कि सिकन्दर की मृत्यु के कम-से कम १० वर्ष बाद तक जीवित था और पराक्रमी शासक था। दूसरे, सिकन्दर

(शेरशाह का पुत्र) को रीवा विजय करने के लिये भेजा गया था।' साथ ही देखिये—गुलबदन बेगम—हुमायूँनामा (बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६ : 'अरैल और कड़ा का राजा वीरसहाम (वीरभानु) सफर, ९४६ हि० (जून १५३९) : अर्स्किन् : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४ : 'राजा परमान एक राजपूत शासक : १५३९ ई०।'

१. मुस्लिम पेट्रनेज : भाग १ : पृष्ठ ६ तथा आगे। शर्मा हरदत्त : दि पोयेट भानुकर : पृष्ठ २४८-२५९।

२. शर्मा-हरदत्त : 'सूक्तिसुन्दर आफ सुन्दरदेव' : औ० ज० : फरवरी १९३६ : पृष्ठ-१३३-१४४।

३. वही, टिप्पणी क्र० १।

४. गोडे : 'साबाजी प्रतापराज'–एनल्स० भाग २४। तृतीय-चतुर्थ : १९४४ पृष्ठ १६६-१६४।

लोदी से सम्बद्ध अन्य संस्कृत कवि की जानकारी उपलब्ध नहीं है। तीसरे, सिकन्दर लोदी १४८९ ई० के पूर्व ही निजाम खाँ (वह भी 'निजाम-शाह' नहीं) कहा जाता था; सुल्तान होने के बाद वह अपने को सिकन्दरशाह कहने या कहे जाने में गौरव मानता था। यदि भानुकर ने उसके लिए श्लोक लिखे होते तो निजाम-शाह या निजाम-धरणीपाल[१], शब्दों के प्रयोग न किये होते। चौथे, श्री गोडे की उपर्युक्त सूचना के अनुसार बुरहानशाह निजाम अन्य संस्कृत-कवियों का भी आश्रयदाता था। अतः भानुकर का 'निजामशाह' अहमदनगर का बुरहानशाह प्रथम ही प्रतीत होता है। विजयनगर के कृष्णदेवराय की सभा में रहनेवाले भानुकर का अहमदनगर के निजाम की सभा में पहुँचना युक्तिसङ्गत है।

हरदत्त शर्मा ने आगे निष्कर्ष निकाला है कि 'भानुकर ने अपने जीवन का अधिक भाग सिकन्दर लोदी के दरबार में बिताया; वहीं वह वीरभानु से मिला होगा (जो सिकन्दर की सभा में रहता था) तथा सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् वह वीरभानु की सभा में गया होगा।'[२] किन्तु वीरभानु का कवि ने 'पराक्रमी योद्धा' और 'नृपति' रूप में वर्णन किया है, जो १५१७ ई० में युवराज वीरभानु के लिए सम्भव नहीं। शर्मा जी आगे लिखते हैं कि 'कुछ काल तक वीरभानु की सभा में रह कर भानुकर दक्षिण में कृष्ण (देव) राय की मृत्यु के पश्चात् पुनः उत्तर लौट कर शेरशाह की सभा में आया होगा।'[३] वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि भानुकर पहले दक्षिण में ही था। कृष्णदेवराय से सम्बद्ध होने से हम कह सकते हैं कि भानुकर का कवि-जीवन १५२९-३० ई० से पूर्व ही और दक्षिण में ही प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक निजाम बुरहानशाह की सभा में भी वह रहा और सम्भवतः १५३० ई० में कृष्णदेवराय की मृत्यु के पश्चात् वह प्रयाग की ओर आया तथा वीरभानु की सभा में १५४० ई० के आस-पास पहुँचा और क्रमशः नवोदित सुरवंशीय सुलतान शेरशाह के दरबार में भी पहुँचा। इस प्रकार हम भानुकर का कविजीवन १५२० ई० से १५५० ई० तक मान सकते हैं।

---

१. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७३ टि० १ : 'तरिकं राजपथे निजाम-'धरणीपालोऽयमालोकितः।' टीकाकार अनन्तभट्ट (१७ वीं शती) ने इस पंक्ति का अर्थ लिखा है-'निजामाख्यो देवगिरिराजः'।' यह अनन्तभट्ट की भूल प्रतीत होती है।

२. 'दि पोयेट भानुकर' ० : पृष्ठ २५४।

३. वही।

कवि को प्रयाग का विशेष आकर्षण हुआ, इसका प्रमाण हम 'रस-तरङ्गिणी'[१] (पृष्ठ ३५) के निम्नलिखित श्लोक में पा सकते हैं—

> 'क्षोणी-पर्यटनं श्रमाय विहितं वादाय विद्यार्जिता
> मानध्वंसन हेतवे परिचितास्ते ते धराधीश्वराः ।
> विश्लेषाय सरोज-सुन्दर-दृशामास्ये कृता दृष्टयः
> शून्यानेन मया प्रयाग-नगरे नाऽराधि नारायणः ॥'

हम पीछे कह चुके हैं कि वीरभानु मुसलमानों द्वारा १५३९ ई० के निकट अरैल (प्रयाग के सामने, यमुना के पश्चिम तट पर) और कड़ा (जि० इलाहाबाद) का राजा लिखा गया है। स्थानीय काव्यों के साक्ष्य से अनुमान होता है कि वह प्रयाग का भी स्वामी था, क्योंकि प्रयाग वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के अधीन लिखा गया है।[२] अतः यह सम्भव है कि प्रौढ़ावस्था में प्रयाग-वास के समय ही भानुकर का सम्बन्ध वीरभानु बघेल से आया हो। हरदत्त शर्मा [redacted] यह कहना ठीक ही है कि कवि तीन श्लोकों में वीरभानु या वीरभान की ही स्तुति कर रहा है, भानु की नहीं।[३]

स्थानीय इतिहास-सम्बन्धी सूचनाओं में अधिक स्थलों पर (संस्कृत काव्यों को छोड़कर) इस राजा का नाम वीरभान ही मिलता है।[४]

शर्मा जी ने चन्द्रालोक की प्रद्योतन भट्टाचार्य कृत शरदागम टीका का उल्लेख कर निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

> अस्य स्थितितो नगरी भवतोऽयोध्या भवत्पालिता ।
> इति रघुवंशादधिको जयति बघेलाऽभिधो वंशः ॥ ३ ॥
> देवपतेरिव शचितर्यस्य जये भूभृतां प्रथिता ।
> श्री वीरभद्रदेवस्तत्र धराऽऽखण्डलो जातः ॥ ४ ॥
> दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह वीरभानु-भूपालः ।
> आबद्ध-धर्मसेतुर्जगति समुद्रे समुद्भूतः ॥ ५ ॥[५]

---

१. भानुदत्त कृत। हम आगे के पृष्ठों में भानुकर और भानुदत्त के तादात्म्य पर चर्चा करेंगे।

२. वीर० १०।७ तथा बघेल० ५५ : 'तस्य श्रीरामनृपतेर्विषये तीर्थ-सेवितः। प्रयागोऽस्ति....।'

३. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २५२ टिप्पणी।

४. आ० रि० इ० : भाग २१ पृष्ठ १०७ : 'वीरभानदेव'....... ।
तथा परि० १ (क)—'राजा वीरभानदेव.......'।

५. प्रकाशित काशी, १९२९ : खिस्ते की भूमिका।

शर्मा जी इन श्लोकों पर टिप्पणी में लिखते हैं कि 'यहाँ वीरभानु को वीरभद्र का पुत्र बतलाया गया है। वीरभद्र रामचन्द्र का पुत्र है तथा वीरभानु का पौत्र और वीरभद्र का पुत्र वंशावलियों के अनुसार विक्रमादित्य है। अतः मुझे लगता है कि यहाँ विक्रमादित्य के स्थान पर वीरभानु भूल से समाविष्ट हुआ है।'[1]

वास्तव में भूल ऊपर है जो लिपिकार की है। 'वीरसिंहदेव' के स्थान पर 'वीरभद्रदेव' लिख दिया गया है। 'वीरभानु' का प्रयोग ठीक है और अपने स्थान पर है।

भानुकर या भानुदत्त के साथ तादात्म्य करते हुए श्री चौधुरी ने लिखा है कि भानुकर के नाम से उल्लिखित बहुत अधिक श्लोक भानुदत्त-कृत 'रसमञ्जरी' 'गीत गौरीश', (या गीत-गौरीपति) और 'रस-तरङ्गिणी' (जो सभी प्रकाशित हैं) में उपलब्ध होते हैं।[2] सूक्ति-मञ्जूषाओं में वही श्लोक कहीं भानुकर और कहीं भानुदत्त के नाम से उल्लिखित हैं। भानुकर का एक श्लोक वेणीदत्त की पद्यवेणी पुस्तक में 'गणपतिसुत-भानुकरस्य',[3] इस प्रकार उल्लिखित है और रसमञ्जरी का अन्तिम पद्य तथा मिथिला की परम्पराएँ बतलाती हैं कि भानुदत्त गणपति का पुत्र था[4]।

---

१. 'दि पोयेट भानुकर०' : पृष्ठ ५५३-टिप्पणी।

२. श्री चौधुरी ने इस प्रसङ्ग में भानुदत्त कृत रसमञ्जरी, गीत-गौरीश (या गीत-गौरीपति) और रस-तरङ्गिणी से ३६ और डा० शर्मा ने २७ पद्य उद्धृत किये हैं, जो सभ्यालङ्करण, सुभाषितसारसमुच्चय, सुभाषित-हारावली, पद्यवेणी, पद्यरचना, रसिकजीवन और सूक्तिसुन्दर में भानुकर के नाम से उल्लिखित हैं। इनमें से डा० शर्मा ने रसतरङ्गिणी का एक पद्य (पृष्ठ ७२) 'वीणामङ्के कथमपि सखी' उद्धृत किया है, जिसमें 'तातचरणानाम्' उल्लेख है अर्थात् यह भानुदत्त के पिता गणपति द्वारा रचित है; यह सुभाषितहारावली (२४-७०) में भानुकर के नाम से उल्लिखित है, जो भानुकर को गणपति का पुत्र सिद्ध करता है। देखिये मुस्लिम पैट्रनेज० पृष्ठ ३ तथा दि पोयेट भानुकर० पृष्ठ २४७-४८।

३. 'यशोधन-निधे........' (श्लोक ७८९)।

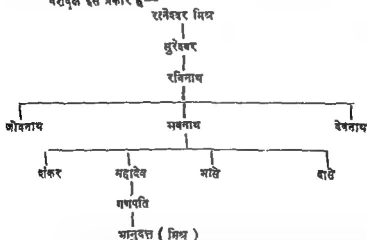
४. 'तातो यस्य गणेश्वरः कवि-कुलालङ्कार-चूडामणि-
देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित्-कल्लोल-किर्मीरिता।
पद्येन स्व-कृतेन तेन कविना श्री भानुना योजिता
वाग्देवी-श्रुति-पारिजात-कुसुम-स्पर्धाकरी मञ्जरी॥'
यह श्लोक भानु और भानुदत्त में भी तादात्म्य प्रस्तुत करता है।

कुमारमार्गवीय चम्पू में प्राप्त वंशवर्णन भी इन पंक्तियों से मेल खा जाता है।[1]

डा० एस० के० दे० ने भी लिखा है कि 'भानुदत्त की रसमञ्जरी पर प्राप्त, शेषचिन्तामणिकृत 'परिमल', गोपालकृत 'विकास' और रङ्गशायिन्-कृत 'आमोद' नामक टीकाओं में कवि का नाम 'भानुकर' मिलता है; कहीं-कहीं साथ में मिश्र भी जुड़ा रहता है।[2] अतः इन तथ्यों को देखते हम कह सकते हैं कि 'भानु', 'भानुकर', 'भानुदत्त', 'भानु मिश्र', 'भानुकर मिश्र' और 'भानुदत्त मिश्र', एक ही व्यक्ति के नाम के भिन्न रूप हैं।

डा० दे० के अनुसार भानुदत्त का काल १२ वीं और १४ वीं शती के बीच है।[3] श्री काणे ने भानुदत्त के पिता 'गणेश्वर' को मैथिल गणेश्वरमन्त्रिन्

१. श्री चौधरी ('मुस्लिम पैट्रनेज' पृष्ठ ५) के अनुसार भानुदत्त का वंशवृक्ष इस प्रकार है—



यह पङ्क्ती भानुदत्त और भानुदत्त मिश्र में तादात्म्य स्थापित करती है। 'कुमारमार्गवीय चम्पू' में भानुदत्त ने अपनी वंशावली दी है, जिसमें सुरेश्वर और रविनाथ के बीच में विश्वनाथ हैं।

२. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २४४ में उधृत—'संस्कृत पोयटिक्स' भाग १।२४५ : भूमिका : शेषचिन्तामणि कृत परिमल (जैनभाण्डार, उज्जमबाई की धर्मशाला, अहमदाबाद) टीका सं० १५८४ की भूमिका में यह उल्लेख है—

'इह खलु……श्री भानुकरनामा कविः।'

३. वही, पृष्ठ २४६।

समझा। यह धीरेश्वर का भाई था, जिसका पुत्र चण्डेश्वर 'विवादरत्नाकर' का प्रणेता था तथा जिसने १३१५ ई० में तुला भर स्वर्णदान किया था। इस प्रकार भानुदत्त की तिथि श्री काणे के अनुसार तेरहवीं शती के अन्तिम भाग में और चौदहवीं शती के प्रारम्भ में ठहरती है।[१]

डा० शर्मा का अनुमान है कि 'डा० बर्नेल ने भानुदत्त को मैथिल माना,[२] इसीलिए यह भूल हुई प्रतीत होती है। भानुदत्त का ग्रन्थ 'गीत-गौरीपति' जय-देव के 'गीतगोविन्द' की अनुकृति होने से इस भूल को बल मिला। इसका पोषण अन्य तथ्य से इस प्रकार हुआ कि गोपाल (या बोपदेव) कृत रसमञ्जरी-विकास (टीका) की एक प्रति स्पष्टतः संवत् १४८८ की लिखी हुई है। (श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार यह शक सं १४९४ है।[३]) स्वर्गीय श्रीधर भाण्डार-कर ने लिखा था कि 'यह शक संवत् १४९४ है।[४] इस प्रकार यह तिथि १५७२ ई० होती है।'[५]

भानुदत्त के पितामह के बड़े भाई शंकर मिश्र ने उपस्कर और खण्डनखाद्य पर टीका लिखी है। कृष्णमाचारियर ने इनका समय शक संवत् १३२७ (१४०५ ई०) के आस-पास लिखा है।[६] उक्त मतों को देखते हुए तथा भानुकर या भानुदत्त के द्वारा लिखित शेरशाह, निजाम, वीरभानु और कृष्णनृपति की स्तुतियों पर विचार करते हुए हमें यह मत कि भानुकर का कवि-काल १५२० ई० से १५५० ई० तक है, स्वीकार है। डा० शर्मा ने लिखा है कि '१५५३ ई० से पूर्व भानुदत्त की कृतियों की कोई टीका नहीं मिलती'[७]।

रसमञ्जरी के अन्तिम पद्य की दूसरी पंक्ति 'देशो यस्य-विदेह-भूः सुरसरित्–' पर पाठभेद मिलता है। कृष्णमाचारियर के अनुसार आफ्रे० की प्रति में 'विदर्भ-भूः' शब्द है तथा कृष्णमाचारियर ने भी एक प्रति में यही पाठ पाया, किन्तु दो अन्य प्रतियों में 'विदेह-भूः' मिला, जैसा डा० बर्नेल ने लिखा है। श्री कृष्णमाचा-रियर का मत है कि 'विदर्भ-भूः' पाठ अशुद्ध है, क्योंकि कवि की जन्मभूमि

---

१. साहित्यदर्पण : भूमिका : पृष्ठ ११८।
२. कैटे० तंजोर०।
३. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७५ टि० ५ : आफ्रे० भाग २।११६ : पीटर्सन० भाग २।३६।
४. भाण्डारकर : रिपोर्ट आफ दि सेकण्ड टूर : १९०४-६ : पृष्ठ ३९।
५. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २४४-४५।
६ हि० क्ला० सं० लिट्० पृष्ठ ७७१।
७. 'दि पोयेट भानुकर०': पृष्ठ २४६।

'सुरसरित्' (गङ्गा) के तरङ्गों के तट भाग पर है, जब कि 'विदर्भ-भूः' नर्मदा का तट-प्रदेश कहलायेगा।[१] भण्डारकर का यही मत है।[२]

डा॰ शर्मा ने लिखा है कि 'शेष चिन्तामणि की परिमल टीका में कवि को 'प्रस्नपुर-निवासिन्' लिखा गया है, जो 'शिवपुर (काशी)-निवासिन्' का पर्याय प्रतीत होता है। 'गीत-गौरीपति' में शिव की स्तुति भी इस मत को बल प्रदान करती है। हम यह भी देखते हैं कि कवि प्रयाग की ओर आकर्षित है[3] तथा एक के अतिरिक्त शेष सभी टीकाकारों के नाम दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं; १९ टीकाकारों में से एक का भी नाम 'मैथिल' नहीं है। प्रयाग और काशी में महाराष्ट्र ब्राह्मणों के अनेक परिवार रहते आए हैं। अतः सम्भवतः कवि मैथिल नहीं, दाक्षिणात्य है, किन्तु इस समस्या का समाधान शेष है।'[४]

हम पीछे के पृष्ठों में देख चुके हैं कि डा॰ चौधुरी द्वारा प्रस्तुत मैथिल पञ्जी में और 'कुमारभार्गवीय' चम्पू में कवि द्वारा उल्लिखित वंशावली में लगभग पूर्ण समानता है। यह तथ्य कवि को मैथिल सिद्ध कर देता है और 'विदेह-भूः' पाठ की शुद्धता की पुष्टि करता है।

भानुकर की कवित्व-शक्ति इसी एक बात से प्रमाणित है कि कम से कम ८ सुभाषित-संग्रहों में उसके श्लोक उद्धृत हैं तथा उसके ग्रन्थों के कम से कम १९ टीकाकार हैं।

भानुकर के निम्नलिखित ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध है—

(१) रसमञ्जरी (सटिप्पणी)[५]

(२) रस-तरङ्गिणी।[६]

(३) गीत-गौरीश (या गीत-गौरीपति-सटिप्पण)।[७]

---

१. हि॰ क्ला॰ सं॰ लिट्॰ : पृष्ठ ७७४-७५।

२. आर॰ जी॰ : 'कलेक्टेड वर्क्स' एन॰ बी॰ उतगीकर द्वारा संपादित। भाग २ : पृष्ठ १२।

३. 'दि पोयेट भानुकर—' पृष्ठ २४६—रसतरङ्गिणी का उल्लेख— 'कुशलेनमया प्रयागनगरे नाराधि नारायणः।'

४. 'दि पोयेट भानुकर', पृष्ठ २४६-४७।

५. प्रकाशित-मद्रास : बम्बई : बनारस (१९०४) : कलकत्ता : तथा दतिया॰ संस्कृत पाण्डु॰ क्रमांक १४३, १४४, ४०३, ५३७, ५५२-५३।

६. प्रकाशित ग्रन्थमाला। तथा पेरिस, १८८४। दतिया॰ क्र॰ ५३८, ७५५, १२४०।

७. आफ्रे॰ : भाग १ : ४०५, ७९३, तथा कैटे॰ लंदन : १४४३-४५।

(४) शृङ्गारदीपिका[१]
(५) अलंङ्कार-तिलक[२]
(६) कुमारभार्गवीयचम्पू[३]

श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार रसमञ्जरी के टीकाकार महादेव, रङ्गशायिन् (या गुरिजालशायिन्), अनन्तपण्डित, नागेश भट्ट (भट्टोजि दीक्षित का पौत्र), बोपदेव (या गोपाल), शेषचिन्तामणि, गोपाल भट्ट, अनन्तशर्मन्, व्रजराज, विश्वेश्वर तथा एक अज्ञात हैं। इसी प्रकार रस-तरङ्गिणी के टीकाकार गङ्गाराम आदि, जीवराज, महादेव, गणेश, अयोध्याप्रसाद, भगवद्भट्ट, दिवाकर, नेमिशाह और वेणीदत्त हैं।[४]

रामचन्द्र-यशःप्रबन्धः

'अकबरी-कालिदास' उपाधिधारी गोविन्दभट्ट कवि की यह रचना वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति है। इस ग्रन्थ का तथा ग्रन्थकार का परिचय चतुर्थ अध्याय (१) में प्रस्तुत किया जायगा।

वीरभद्रदेव के ग्रन्थ : कन्दर्पचूडामणि—

सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हमें उपर्युक्त राजा रामचन्द्र बघेल के पुत्र युवराज वीरभद्रदेव की संस्कृत रचनाएँ प्राप्त होती हैं। संवत् १६३३ वि० (१५७७ ई०) में इन्होंने कन्दर्पचूडामणि नामक ग्रन्थ की रचना की।[५] यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ३६१ आर्या छन्दों में ७ अधिकरणों और ३६ अध्यायों में लिखा गया है।[६] यह सन् १९०८ में तत्कालीन रीवा नरेश श्री वेंकटरमण सिंह की आज्ञानुसार रघुराजनगर (सतना, म० प्र०) से प्रथम बार प्रकाशित किया गया।

---

१. आफ्रे० भाग १ : ६६१।

२. वही, भाग १।३२ : भाग २।६६ : भाग ३।७ : तथा कैटे० तंजोर० भाग ६।४१०७ : कैटे० : मैसूर० २६५ : पीटर्सन० : भाग ६। ए० २६।

३. कैटे० लंदन० १५४० : कैटे० बंगाल० ४७, जिसके साथ गोपाइ भानन्द, भरत मल्लिक और नवनीतराम की टीकाएँ हैं।

४. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७५-७६।

५. कन्दर्प० १ : ७-२-४९ :
'हरलोचन-हरलोचन-रस-शशिमिविश्रुते समये।
फाल्गुन-शुक्ल प्रतिपदि पूर्णो ग्रन्थः स्मर-स्मेरः ॥'

६. वही : ७-२-४६ :
'सप्ताधिकरणमेतत् षट्त्रिंशत्-परिमितस्फुटाध्यायम्।
वात्स्यायनकृतशास्त्रं व्याख्यातं वीरभद्रेण ॥'

रीवा-राज्य दर्पण के लेखक और वेंकट हाईस्कूल सतना के तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री जीतनसिंह ने ग्रन्थ का सम्पादन किया था। ग्रन्थ के साथ-साथ पं० सूर्यप्रसाद द्वारा लिखित वेंकटरहस्य नामक हिन्दी टीका भी प्रकाशित है। इस ग्रन्थ का अन्य संस्करण भी प्रकाश में आ चुका है।[1] संस्कृत साहित्य के इतिहासों में ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त हैं।[2]

यह ग्रन्थ कामशास्त्र पर आधारित है। श्लोकों को देखते हुए कवि की रचना-शक्ति प्रौढ़ प्रतीत होती है। प्रथम अध्याय में कवि ने अपनी वंश-परम्परा बतलायी है।[3]

---

१. संस्कृत पुस्तकालय लाहौर : १९२६ : रामचन्द्र शास्त्री की सुखप्रभा व्याख्या सहित।

इस प्रकाशन का आधार बनने वाली चार प्रतियाँ हैं—

क. बाबू गोविन्ददास, काशी से प्राप्त पाण्डुलिपि (आदर्श पुस्तक)।

ख. सतना से १९०८ में प्रकाशित उक्त प्रति।

ग. भाण्डारकर ओ० रि० इं० पूना की प्रति।

घ. राजकीय पुस्तकालय बीकानेर की प्रति।

२. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८९० टि० ६। कैटे० काश्मीर, क्र० ६४ : पीटर्सन० २।६६ क्र० १०१। ए-१८८३-८४ : साथ ही देखिये माइर्टेटिफिकेशन० : ओ० अ० : भाग २।२५४।

३. वंशः कंसद्विप इव जयति बघेलस्य भूभुजां मान्यः।
अवचन्द्योऽस्ति जगत्यां यस्मादन्यो न भूपालः ॥ ४ ॥

प्रादुर्बभूव वंशे तत्र श्री शालिवाहनो नृपतिः।
इन्दुर्मरन्द-बिन्दुर्यस्य यशः-पुण्डरीकस्य ॥ ५ ॥

प्रादुर्बभूव तस्माद् वीरः श्रीवीरसिंहाह्वः।
यस्य यशोऽम्बुज-कोशे स्फारा मकरन्द-बिन्दवस्ताराः ॥ ७ ॥

वीरस्तदङ्गजन्मा प्रतिभट-पृतना-तमस्विनी-भानुः।
श्री वीरभानुनामाऽधिपतिरभूद् भूभुजां जयति ॥ ९ ॥

कामादप्यभिरामो भीमादपि बाहुशालिनां मान्यः।
कर्णादपि च वदान्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽस्य ॥ ११ ॥

राजोचित-गुणसीमा भीमावरजादिहाधिको धनुषि।
तनयो विनय-समुद्रो जयति तरां वीरभद्रोऽस्य ॥ १३ ॥

दशकुमारपूर्वकथासारः

यह वीरभद्रदेव का दूसरा काव्य-ग्रन्थ गद्य में है।[1] इसका केवल प्रथम परिच्छेद प्राप्त है,[2] जिस पर आगे अध्याय (४–२) में प्रकाश डाला जायगा।

काव्य-सूत्र-टीका

श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार[3] वीरभद्रदेव ने ११७७ ई० में काव्य-सूत्रों पर टीका लिखी है।

वीरभद्रदेवचम्पू

इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार से सम्बद्ध सविस्तार विवरण आगे पञ्चम अध्याय (क) में प्रस्तुत किया जायगा।

व्याख्या-सुधा

किसी 'महीधर-विषयाधिप' कीर्तिसिंह बघेल की आज्ञा से सिद्धान्तकौमुदी के कर्ता भट्टोजि दीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित ने अमरकोष की व्याख्या-सुधा टीका लिखी।[4] इन्हीं भानुजि दीक्षित का समकालीन नीलकण्ठ शुक्ल था, जो भट्टोजि दीक्षित का शिष्य था। इसकी एक रचना १६३५ ई० की बतलाई जाती है। बतलाया जाता है कि भानुजि दीक्षित के पुत्र हरि दीक्षित का पण्डितराज जगन्नाथ, जो शाहजहाँ (१६२७–५८ ई०) के समकालीन थे, विवाद हुआ था। गुरु-शिष्य परम्परा से भानुजि दीक्षित के शिष्य का नाम वत्सराज था,

---

१. ए० डेस० कै० भाग ७ : क्र० ५३८४।

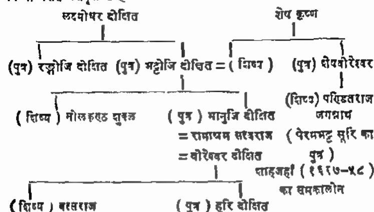
२. रा० ए० सो० : पाण्डु० क्र० : जो। ६३६८।

३. हि० क्ला० सं० लिट० पृष्ठ ७७७–टि० २।

४. अमरकोष : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९४४ :
प्रारम्भ—'वल्लवी-वल्लभं नत्वा गुरुं भट्टोजिदीक्षितम्।
अमरे विदधे व्याख्यां मुनित्रय-मतानुगाम्॥'

पुष्पिका—पृष्ठ १०१—'इति श्री बघेलवंशोद्भव—श्रीमहीधर-विषयाधिप—श्रीकीर्तिसिंह—देवाज्ञया—श्रीभट्टोजिदीक्षितात्मज—श्री भानुजी-दीक्षित-विरचितायाममरटीकायां व्याख्यासुधायां प्रथमकाण्डः—'। पृष्ठ ३५२—'..........द्वितीयकाण्डः...' पृष्ठ ४६३—'व्याख्यासुधाख्यायां तृतीयकाण्डः...'। साथ ही देखिये पी० के० गोडे का लेख—'ए कंटेम्परेरी मैन्युस्क्रिप्ट आफ भानुजि दीक्षितज व्याख्या-सुधा' : ज० बा० जिल्द ११ भाग २ : सितम्बर, १९४२।

जिसने कासोदर्पण-काशिका लिखी। इनके पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित वंशवृक्ष से हो जायगा।[१]



बघेलों के वंशवृक्ष में हमें कीर्ति सिंह और फतेह सिंह दोनों नाम लगभग एक ही कालावधि में प्राप्त हैं।[२] श्री गोडे का अनुमान है कि 'फतेहसिंह (फतेसिंग) ही भानुजि दीक्षित के आश्रयदाता थे, इस नाम का संस्कृत रूप कीर्तिसिंह होगा'।[३] यहाँ यह स्मरणीय है कि उपर्युक्त पुष्पिका में कीर्तिसिंह को 'महीधर-विपमाधिप' लिखा गया है।

जमाबन्दियों में वीरभानु बघेल के छोटे भाई यामिनीभानु (जन्म लगभग १४९० ई०) द्वारा मैहर (जिला सतना, म० प्र०) की जागीर पाने की सूचना है।[४]

---

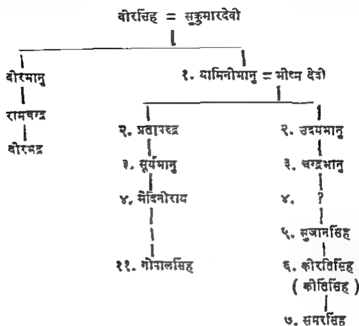
१. पद्यामृत० भूमिका पृष्ठ १२९-३० में डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी का मत।

२. देखिये सं० बा० दे० : पृष्ठ १०४।

३. 'ए कंटेम्पोरेरी मैन्युस्क्रिप्ट आफ भानुजि दीक्षितज व्याख्यासुधा' : अ० बा० : जिल्द ११ भाग २ : सितम्बर १९४२।

४. परिशिष्ट १ (ग) : 'राजा वीरभानदेव का जन्म सं० १५४३ साल। भाई बाबू जमुनीभान मैहर दीन। राजा रामदेव (रामचन्द्र) ते ममक। जमुनीभान के वंशावली ७ पुरिखा। बाबू जमुनीभान १ केन्द्र—२—३—सिंह ४ सुजानसिंह ५. कीरतिसिंह ६. समरसिंह ७. ते जागा छूटि।'
श्री निजामी के अनुसार सन् १५०२ में जमुनीभान को मैहर दिया गया (नोट आन मैहर : भारतीय विद्या : बम्बई : जिल्द ६ : क्र० २ :

वीरभद्रचम्पू में यामिनीभानु के पुत्र-पौत्रों की जानकारी मिलती है।[1] इस आधार पर निम्नलिखित वंश-सूची प्राप्त होती है, जिसका सम्बन्ध मैहर की बघेल शाखा से है—



इस प्रकार यही सम्भव प्रतीत होता है कि अमरकोष की व्याख्यासुधाटीका का प्रणेता भानुजि दीक्षित पण्डितराज जगन्नाथ से ज्येष्ठ होगा, वह मैहर (संस्कृत रूप 'महीधर') के बघेलवंशीय कीर्तिसिंह की ही सभा में होगा। व्याख्यासुधा (द्वितीय काण्ड) की पूना में प्राप्त एक पाण्डुलिपि का लिपिकाल

फरवरी १९४५;) किन्तु वीरभानु की जन्मतिथि (सं० १५४३ सन् १४८६ ई०) को देखते हुए उनके अनुज जमुनीभान इस समय अल्पवयस्क रहे होंगे। श्री रामप्यारे अग्निहोत्री ने यह तिथि सं० १५८५ (१५२८ ई०) लिखी है, जो ठीक प्रतीत होती है (त्रि० प्र० इ० : पृष्ठ ३२५)।

१. पद्मनाभ मिश्र कृत: प्रकाशित : प्राच्यवाणी-कलकत्ता : १९५२ : षष्ठ उच्छ्वास : 'वीरभानुदेवस्य सोदरो यामिनीभानुदेवः। .... सूर्यभानुचन्द्रभानु वीरौ—' साथ ही देखिये : वीर० १।९३।

संवत् १७०५ (१६४९ ई०) है।[१] अतः व्याख्यासुधा का रचना-काल १६४० ई० के निकट माना जा सकता है।

ऊपर उल्लिखित भानुजि दीक्षित के वंशवृक्ष में उनका दूसरा नाम रामाश्रम बतलाया गया है। तंजोर की पाण्डुलिपि (प्रथम काण्ड) में ग्रन्थकार ने अपने को भट्टोजि दीक्षित का शिष्य, गुर्जर-जातीय और रामाश्रम बतलाया है।[२] उक्त वंशवृक्ष में उल्लिखित वत्सराज ने (जो भानुजि का शिष्य था) अपने गुरु का नाम रामाश्रम दिया है।[३] निर्णयसागर द्वारा (व्याख्या-सुधा टीका के साथ) प्रकाशित अमरकोष में भानुजि दीक्षित ने भट्टोजि दीक्षित को अपना गुरु बतलाया है।[४] सिद्धान्त-चन्द्रिका में रामाश्रम को भानुजि दीक्षित लिखा गया है।[५] इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि भानुजि दीक्षित ने ही (सम्भवतः पीछे संन्यासी होकर) रामाश्रम नाम भी धारण किया था।

बघेलवंश-वर्णनम्

१६७८ ई० में प्रणीत और १६५७ ई० में प्रकाशित इस ग्रन्थ का विवरण चतुर्थ अध्याय (३) में प्रस्तुत किया जायगा।

---

१. गोडे : 'ए कंटेम्पोरेरी मैन्युस्क्रिप्ट०—' : पूना की सम्बद्ध पाण्डुलिपि : ग० मै० ला० : क्र० २०० (१८८२-८३) का अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है—

'संवत्-धाराभ्राचल-चन्द्र-माने
गणेश-चन्द्रेऽयसृअश्च कृष्णे।'

२. वही, कैटे० तंजोर० : भाग ९ पृष्ठ ३८२१ (१९३० ई०) : पाण्डुलिपि क्रमाङ्क ४६४८ : पुष्पिका—

'इति श्री-बघेलवंशोद्भवमहीधरविषयाधिप-श्रीकीर्तिसिंह-देवाज्ञया श्री भट्टोजिदीक्षित-शिष्य-गुर्जरजातीय-रामाश्रम-विरचितायाम्—।'

३. पद्यामृत० भूमिका : पृष्ठ १२९-३० : वाराणसी-दर्पण-प्रकाशिका टीका, सं० १६९८ (१६४१ ई०) का प्रारम्भिक उल्लेख—

'भट्टोजिदीक्षितं नत्वा रामाश्रमगुरुं पुनः।
वत्सराजः करोत्येतां काशी-दर्पण-काशिकाम्॥'

४. बम्बई : १९४४ : प्रारम्भ—'गुरुं भट्टोजिदीक्षितम्।'

५. चौखम्बा संस्कृत सिरीज—२०१२ वि०। उत्तरार्द्ध की पुष्पिका—इतिश्री रामाश्रम—(भानुजिदीक्षित) विरचितायां सिद्धान्तचन्द्रिकायाम्—।'

भगवन्त-भास्कर

१८ वीं शती के ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल एक ग्रन्थ 'भगवन्त-भास्कर' का पता चल सका है। यह १९१६ ई० में रीवा के श्री त्रिपुराशंकर बनर्जी के यहाँ मिला था। उसी वर्ष नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेज दिया गया। ग्रन्थ का विषय कर्मकाण्ड और लिपिकाल १८४७ वि० (१७९० ई०) है। रचयिता नीलकण्ठ भट्ट हैं। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'सेंगर-वंशावतंस-महाराजाधिराज-भगवतसिंह-या (?)—अष्टमीमांसक-भट्ट नीलकण्ठकृते······।'

रीवा जिले की मऊगंज तहसील में सेंगर राजपूत रहते हैं। १७ वीं १८ वीं शती में वे रीवा की सत्ता से स्वतन्त्र होने के प्रयत्न में अपने को महाराज भी कहते रहे होंगे।

उन्नीसवीं शती का साहित्य

पिछली अनेक शतियों में बघेलखण्ड में जितने साहित्य का सर्जन हुआ था, उससे कहीं अधिक इस उन्नीसवीं शती में हुआ। यह साहित्य संस्कृत और हिन्दी दोनों क्षेत्रों में रचा गया। इस शती में लगातार जयसिंहदेव (राज्य—१८०९-१३४ ई०) विश्वनाथसिंह (१८३४-५४ ई०) और रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) नरेश-कवि के रूप में मिलते हैं। इनके साथ इनसे सम्बद्ध या सभासद-रूप में अन्य अनेक कवि भी ग्रन्थ-रचना और पाण्डित्य द्वारा रीवा-राजसभा को अलङ्कृत करते रहे। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का यह कथन सर्वथा सत्य है कि ये तीन नरेश 'न केवल विद्वानों के आश्रयदाता थे, अपितु इनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ महान् थीं।'[१]

जयसिंहदेव के एकमात्र प्रकाशित हिन्दी-काव्य 'हरिचरित-चन्द्रिका' (पूर्वार्द्ध) की भूमिका में श्री भवानीदत्त जोशी ने लिखा है कि 'जयसिंहदेव हिन्दी और संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे, किन्तु उन्होंने संस्कृत में रचनाएँ नहीं कीं।'[२] इनके अनेक हिन्दी-काव्य संस्कृत के साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थों पर आधारित हैं।[३]

---

१. 'संस्कृत वर्क्सं०' : ज० रा० ए० सो० : २९ अक्टूबर, १९३९।
२. सरस्वती कोष-भाण्डार, किला, रीवा : बस्ता १।१२ पाण्डुलिपि : रचनाकाल लगभग १८२३ ई०। प्रकाशित १९०३ ई०।
३. देखिये मेरा लेख : 'जयसिंहदेव की रचनाएँ : विन्ध्यभूमि : साहित्य अंक : रीवा—१९५६ : पृष्ठ २३ और आगे।

जयसिंह के प्रथम पुत्र विश्वनाथसिंह थे। दूसरे पुत्र लक्ष्मणसिंह, जो वर्तमान मापोगढ़ (जिला सतना) के इलाकेदार थे, अनेक हिन्दी-काव्य-ग्रन्थों के निर्माता थे।[१]

बलभद्रसिंह के ग्रन्थ

जयसिंहदेव के तृतीय पुत्र तथा विश्वनाथसिंह के कनिष्ठ भ्राता और अमरपाटन के इलाकेदार राजेन्द्र बलभद्रसिंह संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनके चार संस्कृत ग्रन्थ सरस्वती कोष-भण्डार, रीवा में सुरक्षित हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(१) वृत्तिबोध—श्रुतबोध की अनुकृति पर लिखे हुए इस पद्यात्मक ग्रन्थ में वृत्तियों का सटीक वर्णन है। सम्भव है, टीका स्व-रचित हो। इस ग्रन्थ में विश्वनाथसिंह के 'सर्वसिद्धान्त' ग्रन्थ का उल्लेख है, जो विश्वनाथसिंह की युवराज अवस्था (१८३३ ई० से पूर्व) की रचना है। अन्य ग्रन्थों का उल्लेख नहीं है। अतः इस वृत्तिबोध का रचनाकाल १८३० ई० के आस-पास माना जा सकता है।[२]

(२) लोचनग्रन्थ[३]—इसकी केवल एक प्रति प्राप्त है, जिसके १० पत्रों में से अन्तिम चार सुरक्षित हैं, प्रारम्भ के ६ पृष्ठ लुप्त हैं। ग्रन्थ श्रीमद्भागवत से सम्बद्ध है।

---

१. लक्ष्मणसिंह द्वारा प्रणीत हिन्दी-काव्य 'कृष्णायन' १६ खण्डों में सरस्वती-कोष-भण्डार, रीवा में उपलब्ध है। इनके द्वारा सङ्ग्रहीत संस्कृत ग्रन्थ भी प्राप्त हैं।

२. ग्रन्थ का आरम्भ—
'वृत्तीनां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिबोधमविस्तरम्॥'
तुलना के लिये देखिये श्रुतबोध :
'छन्दसां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतबोधमविस्तरम्॥'
आरम्भ में ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण के साथ अपना परिचय दिया है—
'मोतीलालं गुरुं वन्दे परमानन्ददायकम्।
राधावल्लभ-पादाब्ज-स्वस्वरूपप्रकाशकम्॥
तं वृत्तिबोधं रचयामि नत्वा राधापतेः सुन्दरपादपद्मम्॥'

३. अन्तिम पृष्ठ : 'यथार्थ-श्रीमद्भागवत-प्रदर्शक-लोचनो ग्रन्थः।'

(३) कृष्ण-विवरण[१]—३३ पत्रों के इस ग्रन्थ में प्रारम्भ के १२ पत्रा लुप्त हैं। इसमें कृष्ण के ६ नामों—१. कृष्ण, २. नन्द-नन्दन, ३. निकुञ्ज-विहारी, ३. व्रजेश, ५. माथुरेश और ६. द्वारकेश के विवरण प्रस्तुत हैं। उक्त नामों के सम्बन्ध में भागवत के प्रसङ्ग उल्लिखित हैं। ग्रन्थकार ने अपना गुरुकृत नाम 'राधामोहनदास' बतलाया है। 'लोचनग्रन्थ' और 'कृष्ण-विवरण' का रचनाकाल नहीं दिया गया।

(४) ब्रह्मसूत्र-भाष्य[२]—१८७ पत्रों का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संवत् १८९४ (१८१८ ई०) [redacted] पहले की रचना है। विश्वनाथसिंह ने संवत् १८९७ में ब्रह्मसूत्र पर विस्तृत (राधावल्लभीय-मतप्रकाशक) भाष्य लिखा। अतः पूर्ववर्ती होने के कारण बलभद्रसिंह के इस ग्रन्थ का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इसमें राधावल्लभीय मत का स्पष्टीकरण और राधा-कृष्ण का अभेद एवं उपास्यत्व है।

(५) भागवत-टीका—बतलाया जाता है कि बलभद्रसिंह ने श्रीमद्-भागवत पर 'गोपीशा साम्प्रदायिका' नाम से टीका भी लिखी है। यह ग्रन्थ श्री रघुनाथ शास्त्री को रीवा में रहिया गाँव के श्री त्रिलोकीनाथ शास्त्री से उपलब्ध हुआ था, जो नवम्बर १९५७ को काशी नागरी प्रचारिणी सभा को भेजा गया।

विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित अनेक संस्कृत-ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सरस्वती-कोष-भाण्डार में हैं, जिनके ऊपरी पृष्ठ पर उन्हें बलभद्रसिंह के विख्यात ग्रन्थ[३] लिखा गया है। इससे इनकी ग्रन्थ-सङ्ग्रही वृत्ति एवं संस्कृतानुराग का परिचय मिलता है।

---

१. प्रथम विवरण की पुष्पिका—'अनन्तश्री-राधावल्लभीयोपक्रमे श्रीबलभद्र-वर्म-हरि-कृतौ षट्कृष्णसंहितायां आद्यं कृष्ण-विवरणम्।'
अन्तिम पुष्पिका—'राधाकृष्णयोरैकात्म्य-प्रतिपादनं नाम षट्कृष्ण-विवरणं-सम्पूर्णम्।

२. अन्त में उल्लेख—'समाप्तः संवत् १८९४ माह वदि गुरवारे पुष्य नक्षत्रे तद्दिन सम्पूर्णं।' यह लिपिकाल प्रतीत होता है। अन्तिम-उल्लेख (पृष्ठ १८६) :—

'इति श्रीराधिकेशस्य पदसेवाधिकारिणः।
कृपापात्रेण हरिणा बलभद्रेण निर्मिता॥'

तथा पुष्पिका—'......हरिवंशस्वामी-तदीयच्छास्त्र-राधावल्लभ-प्रसाद-लब्ध-गुरुदापितनाम्ना राधामोहनदासेन विरचिते ब्रह्मसूत्रभाष्ये..... ।'

३. 'विज-श्री-जयसिंहदेव-नृपतेः पुनः कनिष्ठो बली,
श्रीमद्-भागवताख्य-ग्रन्थमननात्संल्लब्धभक्तिः सुधीः।
श्री राधापति-पाद-पद्मयुगलंप्रीत्या नमन्शोभते,
तस्य श्री बलभद्रसिंह-गुणिनो विख्यातिग्रन्थः शुभः॥'

अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली

करी (जिला सतना) गाँव के निवासी श्री रंचुकराम अग्निहोत्री ने संवत् १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत पद्यों में प्रस्तुत इस ग्रन्थ में सरयूपार से रीवा आकर अग्निहोत्र करनेवाले मिश्र ब्राह्मणों का वंश-परिचय दिया है। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्री रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा के पास है। यह प्रतिलिपि रंचुकराम के पुत्र वंशधारी राम द्वारा संवत् १९३५ (१८७८ ई०) में तैयार की गई है। रंचुकराम भावसिंह के समकालीन ओरगवि कल्याणदास के वंशधर थे।[1]

संगीत-रत्नाकर-सेतु

२८३ पत्रों में लिखित यह ग्रन्थ सरस्वती-कोष-भाण्डार में पूर्ण सुरक्षित है। यह शार्ङ्गदेव-रचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सङ्गीत-रत्नाकर' की हिन्दी ब्रजभाषा-टीका है, जिसे माथुर चतुर्वेदी तुलाराम के पुत्र गङ्गाराम ने रीवा-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह की सभा में 'नल' नामक संवत्सर में चैत्र शुक्ला नवमी को पूर्ण किया। ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में संस्कृत पद्यों का प्रयोग किया गया है। विश्वनाथसिंह के अनुज बलभद्रसिंह ने गङ्गाराम की विद्वत्ता से सन्तुष्ट हो कर इन्हें उमराही गाँव (अमरपाटन, जिला सतना) दान कर दिया था। इनके वंशज मथुरा के रतनकुंड मोहल्ले में रहते हैं।[2] सेतुकार गङ्गाराम ने स्वयं भी

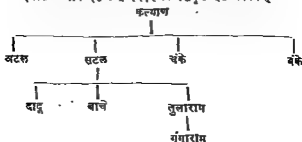
लगभग ९ पाण्डुलिपियाँ विख्यातिग्रन्थ हैं। 'विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त' ग्रंथ में लिपिकार की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'शोधितो भूरि यत्नेन सीतारामाख्य-पण्डितैः।
बघेलराजपुत्रस्य बलभद्रस्य तुष्टये॥'

१. ग्रन्थ की पुष्पिका :
'इति श्री-अग्निहोत्र(त्रि)-जातीय-रंचुकराम-विरचिते-श्रीमग्निहोत्र(त्रि)-कुल-वंशावलिः समाप्तं शुभमस्तु।
श्री श्री संवत् १८८५ वर्षे आषाढ़ सुदि २।
इस ग्रन्थ में ९ परिच्छेद हैं तथा अन्त में वंशवृक्ष है।

२. चतुर्वेदी—गणेशदत्त : 'नोट आन गंगाराम सन आफ तुलाराम' एनल्स—भाग ३४ : ग्रन्थकार का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

कल्याण



अपना परिचय दिया है।[१] इसकी इस हिन्दी टीका का उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त है।[२]

आचार्य प्रियादास के ग्रन्थ

आचार्य प्रियादास हित-हरिवंश (सोलहवीं शती) द्वारा प्रवर्तित राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के एक रत्न थे।[३] ये विश्वनाथसिंह के दीक्षा-गुरु और प्रेरक थे।[४] विश्वनाथसिंह द्वारा बतलाई हुई यह गुरु-शिष्य-परम्परा इस प्रकार है।[५]

---

१. सरस्वती-कोष भाण्डार की प्रति : बस्ता २४७ स्टाक ११७ : अन्त के पृष्ठ में : ।

'सङ्गीत-रत्नाकर-दुर्विगाह्य-वाराँनिधेस्तत्तरणैकहेतुः ।
सेतुस्स रीवेश-नरेन्द्र-विश्वनाथानुकम्पा-बलतः कृतो मे ॥
सङ्गीत-रत्नाकरसेतुरेषं भासः समाप्तिं कृतवान् विमत्य ।
वेदे सिते बाणमनुस्थितो हि वर्षे मासि भाद्रपदेकृष्णपक्षे ॥
तुलाराम-तनूजेन गङ्गारामेण सूरिणा ।
माथुरेण कृतः सेतुविस्तरण-हेतवे ॥'

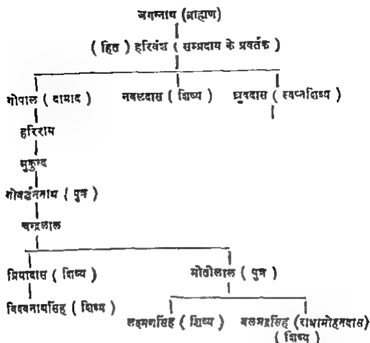
२. निश्शङ्क-शार्ङ्गदेव : सङ्गीत रत्नाकर : हरिनारायण आप्टे : आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि : पूना : १८९६ प्रस्तावना पृष्ठ १-२ : सङ्गीतरत्नाकर की रचना देवगिरि के यादव नरेश सिंहण (१२१०-४७ ई०) के आश्रय में हुई। १८७६ ई० में श्री एस० पी० घोष ने कलकत्ता से इस ग्रन्थ का प्रथम अध्याय सिंह-भूपाल-कृत टीका के साथ प्रकाशित किया था। इस संस्करण की प्रस्तावना में ग्रंथ की ४ संस्कृत, १ हिन्दी और २ बांग्लीय टीकाओं के उल्लेख हैं। यह हिन्दी टीका गङ्गाराम-कृत बतलायी गई है।

३. स० को० भा० : भक्तिप्रभा (प्रियादास कृत) : १८०७ ई० : वन्दना—

'येन मे मोदिता कृष्ण-गीत-माधुर्य-मूर्तिना ।
भारती वदनाब्जाता तं हितहरिवंशं भजे ॥'

४. सर्वसिद्धान्त (विश्वनाथसिंह-कृत) (१८३३ ई० से पूर्व : स० को० भा० : प्रारम्भिक मङ्गलाचरण-'तस्य शिष्योऽस्मदाचार्यः परमानन्दरूप-वान् । भुवने श्री प्रियादासो नित्यं तस्मै नमो नमः ॥'

५. वही। साथ ही देखिये रघुराजसिंह-कृत महागुरुमाल्य : मङ्गलाचरण। स० पी० भा०।



प्रियादास दक्षिण में सूरत के पास रामपुरा गाँव में उत्पन्न हुए थे। १२ वर्ष की आयु में इन्होंने वृन्दावन में गोस्वामी चन्द्रलाल से दीक्षा प्राप्त की। तीर्थयात्रा करते समय ये रीवा-नरेश जयसिंहदेव द्वारा सम्मानित हुए थे तथा पीछे भी कई बार रीवा आये। विश्वनाथसिंह की करुण प्रार्थना से द्रवित होकर इन्होंने उन्हें दीक्षा देने की स्वीकृति दी। संवत् १८७५ (१८१९ ई०) में ये गोलोकवासी हुए। डा० हरदत्त शर्मा ने इनके ग्रन्थ सुसिद्धान्तोत्तम (प्रकाशित) पर सम्पादक की टिप्पणी का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार प्रियादास विश्वनाथसिंह के सभासद थे। यह टिप्पणी भ्रामक है, क्योंकि प्रियादास की मृत्यु तक विश्वनाथसिंह युवराज ही थे। प्रियादास विशुद्ध कृष्णभक्त तपस्वी थे और उनका अधिकांश जीवन गोकुल में ही बीता। शर्मा जी ने १९ वीं शती के प्रथम चतुर्थांश में इनका ग्रन्थ-रचना-काल माना है।[१]

१. शर्मा हरदत्त : 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास एण्ड हिज वर्क्स :' इ० हि० भाग २६ कलकत्ता, १९४०। साथ ही देखिये, रघुराजसिंह : *भक्तमाला (राम-रसिकावली) : (प्रकाशित) बम्बई : प्रियादास का* विवरण : तथा युगलदास : विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा।

ग्रन्थों में प्राप्त रचनाकालों को देखते [redacted] हम इस काल को १८०५ ई० से १८१९ ई० तक मान सकते हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत (स्व-रचित 'महत्प्रिया' टीका सहित)

३३ पत्रों में लिखित यह पाण्डुलिपि कार्तिक कृष्ण एकादशी सं० १८७० (१८१३ ई०) की रचना है। इसमें ब्रह्मसूत्र के ४४ सूत्रों को पराभक्ति एवं ज्ञान, इन दो प्रकरणों में विभाजित कर उनकी व्याख्या की गई है। इसमें राधावल्लभीय मत के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।[१] विश्वनाथसिंह की समस्त दार्शनिक कृतियों का यही ग्रन्थ सैद्धान्तिक स्रोत है। प्रियादास ने अपने अन्तिम समय में इसी ग्रन्थ के आधार पर विश्वनाथसिंह को ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखने की आज्ञा दी थी। विश्वनाथसिंह ने इसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है तथा सुसिद्धान्तोत्तम और सुमार्ग नामक दो और ग्रन्थ प्रियादास-रचित होने की सूचना दी है।[२]

---

१. स० को० भा०, रीवा (बस्ता १५ स्टाक ८६) : अन्तिम पुष्पिका-'इति श्री श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत-टीकायां महत्प्रियायां प्रियादासाचार्य-विरचितायां सकलज्ञानप्रकरणं द्वितीयं सम्पूर्णम्।' तथा प्रारम्भिक श्लोक—'भक्तिं भागवतांश्चैव नत्वा श्री राधिकापतिम्।

कुर्वेऽहं श्रुतिसूत्राणां तात्पर्यामृतमुत्तमम्॥'

भाण्डार में ५ पत्रों की दूसरी खण्डित प्रति (बस्ता १५ स्टाक ७२) तथा तीसरी प्रति वैष्णव रघुवरदास द्वारा 'बाबू विश्वनाथसिंह जू देव' के निमित्त सं० १८७३ में लिखी हुई है। इन प्रतियों में रचना-काल के प्रदर्शक श्लोक नहीं हैं, किन्तु सुसिद्धान्तोत्तम की सम्पादकीय टिप्पणी में किसी प्रति के आधार पर यह उल्लेख प्राप्त है—

'हरिदेवस्य...श्री प्रियादासो निर्ममे ग्रन्थमुत्तमम्।'

२. जिज्ञासागर पुस्तकालय, रीवा में प्राप्त पाण्डुलिपि : राधावल्लभीय-मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् (विश्वनाथसिंह-कृतम्) : पृष्ठ ७ : उपोद्घात—स च सुसिद्धान्तोत्तम-सुमार्ग-श्रुतिसूत्रतात्पर्यामृतादीन् ग्रन्थान् विधाय सकल-मतविरोधं प्रदर्श्य श्रीराधाकृष्णप्रेमाकुल-हृदयश्चिरमिह लोके विचरितुमनिच्छन् मामुपदिश्य निजश्रुतिसूत्रतात्पर्यामृतग्रन्थ-मतानुसारेण श्रीभगवद्-वेदव्यास-सूत्र-विस्तर-व्याख्यां कर्तुमनुशास्य च काञ्चनीयोत्तरातीत-रासमण्डलं गत्वालङ्कृतवान्।...स एवेदानीं श्री बान्धवाधीश्वरमहाराजाधिराज- सिद्धिश्रीजयसिंहदेव-ज्येष्ठ - तनय-विश्व-नाथसिंहदेवनाम्नो मम हृदयकमलस्थित उभयपन्थोपदेशकस्तात्पर्यंवृत्त्या

डा० विजयेन्द्र स्नातक ने विश्वनाथसिंह की इस कृतज्ञता का यहाँ तक भ्रामक आशय निकाला है कि सम्भवतः प्रियादास ने ही (राधावल्लभीय-मत-प्रकाशक) ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखा और उसमें नाम विश्वनाथसिंह का दे दिया। अपने कोई ठोस तर्क न देते हुए एक परम्परा मात्र की ओर सङ्केत किया है कि कविगण राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनके नाम से रचनाएँ करते थे।[1] विजयेन्द्र जी का यह तर्क उस भाष्य के विषय में है जो १८९७ वि० को पूर्ण हुआ, जब कि प्रियादास जी का निधन १८७५ वि० में हो चुका था। इस भ्रम के निवारण के लिए संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि विजयेन्द्र जी के ये तर्क कल्पित एवं आधारहीन हैं। विश्वनाथसिंह के प्रायः समस्त ग्रन्थों में प्राप्त पुष्पिकाएँ, संस्कृत और हिन्दी में रचित उनके ग्रन्थों की बृहत् संख्या, ग्रन्थों में प्राप्त प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार, रघुराजसिंह द्वारा लिखित 'रामरसिकावली' आदि कई ग्रन्थों में तथा युगलदास द्वारा लिखित 'विश्वनाथसिंह-चरित्र' में विश्वनाथसिंह की प्रचण्ड विद्वत्ता और शास्त्रज्ञता तथा तत्कालीन शास्त्रार्थों में उनकी विजयों के उल्लेख यह सिद्ध कर देते हैं कि उन्हें अपने नाम से किसी अन्य विद्वान् द्वारा ग्रन्थ लिखाने की अपेक्षा न रही होगी तथा स्पष्ट रूप से वे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं (जैसा हम आगे देखेंगे); हां अवश्य ही उन्होंने गुरुवचनों का अनुसरण किया।

२. सुसिद्धान्तोत्तम (स्वरचित अनूत्तमा टीका सहित)

इस ग्रन्थ में विरहकारण, द्विविधा भक्ति, जीवदासत्व, सुमतनिर्णय और परमानन्द-प्राप्ति-कारण नाम से ५ विश्राम हैं। यह ग्रन्थ प्रयाग में लिखा गया।[2] ग्रन्थकार ने स्वयं ही 'अनूत्तमा' टीका भी लिखी है तथा अपने गुरु चन्द्रलाल के प्रति वैसी ही कृतज्ञता प्रदर्शित की है जैसी पीछे विश्वनाथसिंह ने उनके प्रति

वाङ्मनोगोचरातीत-श्रीरामचन्द्र-निरूपणे व्यासस्य तात्पर्यमवगत्य तत्सूत्राणां व्याख्यामारभते।'

इस कथन में यह स्पष्ट है कि गोलोकवासी प्रियादास विश्वनाथसिंह के हृदय में स्थित होकर रचना कर रहे हैं। अर्थात् विश्वनाथसिंह ने रचना की।

१. 'राधावल्लभ-संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' शोधप्रबन्ध : दिल्ली : पृष्ठ १२६-३१।

२. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रियादास का विवरण। साथ ही देखिये, सरस्वती भाण्डार की सम्पूर्ण प्रति।

प्रकट की। ग्रंथ पाण्डित्य और प्रमाणों से भरपूर है। रचनाकाल १८११ ई० से पूर्व है, इस वर्ष की एक पाण्डुलिपि प्राप्त है।[1]

सुसिद्धान्तोत्तम ग्रन्थ से चार ग्रन्थों की उत्पत्ति बतलायी गई है—

'एतस्मादुत्तमाच्छास्त्राज्जातं ग्रन्थ-चतुष्टयम्।
'तत्त्वनिश्चय-वेदान्तसार-भक्तिप्रभादिकम् ॥'

इसमें से 'तत्त्वनिश्चय' और 'वेदान्तसार' सरस्वती कोष भाण्डार में प्राप्त नहीं हैं। तीसरा ग्रन्थ 'भक्तिप्रभा' प्राप्त है। 'वेदान्ततत्त्व' और 'सुमार्ग' क्रमशः १९ और २३ श्लोकों में एक ही पत्रा के दोनों ओर लिखित कई पाण्डुलिपियों के रूप में प्राप्त हैं। 'आदिकम्' शब्द से 'सुमार्ग' अभिप्रेत प्रतीत होता है। वेदान्तसार और वेदान्त-तत्त्व पृथक् ग्रंथ ज्ञात पड़ते हैं। भक्तिप्रभा अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। यह चार मयूखों में कुल २७ श्लोकों में है; साथ में ग्रन्थकार द्वारा की हुई टीका 'सुलोचना' भी है। पूरे ग्रंथ में कुल ११८ पत्रा हैं।[2]

---

१. प्रकाशित, काशी : अन्तिम पुष्पिका—'इति श्री सुसिद्धान्तोत्तमे प्रियादासाचार्य-विनिर्मिते परमानन्द-प्राप्ति-कारण-वर्णनो नाम पञ्चमो विश्रामः ॥ टीका के अन्त में 'श्री संवत् १८६७ माघ सुदि दशम्याम्। श्री। टीका के आरम्भ में—'सुसिद्धान्तोत्तमाख्यस्य वक्ष्ये टीका-मनूत्तमाम्।'
'इह खलु सद् गुर्वनुग्रहतो भगवांश्चन्द्रलालाचार्यः 'प्रियादासान्तर्यामी'। तमेव ग्रन्थकारं कृत्वा तद् द्वारा सुसिद्धान्तोत्तमशास्त्रं विरचय्य तस्य व्याख्यामपि चकार।'
सरस्वती कोष भाण्डार में इस ग्रंथ के तृतीय विश्राम की एक पृथक् पाण्डुलिपि १८४० ई० में लिखित है। १८ पत्रों में प्रथम विश्राम की दूसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १९ स्टाक १८) तथा ९७ पत्रों में द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम विश्रामों से युक्त तीसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १७ स्टाक १०५) में लिपिकाल का उल्लेख नहीं है।

२. सरस्वती-कोष-भाण्डार, किला, रीवा : (बस्ता १७।१०७) : सुसिद्धान्तोत्तम के सम्पादक ने वेदान्तसार के रचनाकाल की सूचना दी है—स्वरचित वेदान्तसारटीकायामयमेव प्रियादासाचार्यः—

'समाकारि समाप्राप्ते समासेन सतां प्रियम्।
इदं वेदान्तसारं वै स्वब्ध्यरीभेन्दु-वत्सरे ॥'

अर्थात् संवत् १८६४ (१८०७ ई०) में वेदान्तसार लिखा गया और आचार्य ने स्वयं ही उसकी भी टीका लिखी। भक्तिप्रभा का भी यही रचनाकाल है—देखिये अन्तिम श्लोक 'अब्ध्यरीभेन्दुवत्सरे'।

३. वैष्णव-सिद्धान्त

६ पत्रों और ५४ श्लोकों में यह ग्रन्थ पुष्टि मार्ग का पोषण करता है[१]।

४. दीक्षा-सार-निर्णय

गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में १३ पत्रों में यह पद्यात्मक ग्रन्थ है।[२]

५. चतुःश्लोकी-भागवत

श्रीमद्भागवत के चार श्लोकों पर प्रियादास ने इस नाम से 'सर्वमङ्गला' टीका लिखी है।[३]

डा० हरदत्त शर्मा ने 'चतुःश्लोकी भागवत के अतिरिक्त प्रियादास-कृत उपर्युक्त सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[४]

६. भक्ति-सिन्धु-प्रेम-तरङ्गिणी

इसका लिपिकाल १८९१ वि० है।[५]

७. सुमत-निर्णय—इसका रचनाकाल १८१५ ई० है।[६]

विश्वनाथसिंह के ग्रन्थ :

विश्वनाथसिंह का साहित्य-सर्जन हिन्दी और संस्कृत दोनों क्षेत्रों में है, किन्तु उनका संस्कृतसाहित्य प्रौढ़तर है। वे भगवान् राम के उपासक थे। प्रियादास कृष्णोपासक थे, किन्तु विश्वनाथसिंह की रुचि का उन्होंने ध्यान रखा और उन्हें उभयमन्त्रोपदेश' (कृष्ण और राम दोनों की उपासना) से दीक्षित

---

१. स० को० भा० : बस्ता १३८ स्टाक ३८।

२. वही, माधोराम द्वारा संवत् १८७९ (१८२२ ई०) में लिखित।

३. वही, बस्ता ८०।१५०। इस ग्रन्थ की दो और प्रतियाँ (बस्ता ८०।१५-५ तथा ८०।१५-२) भाण्डार में हैं। पहली सं० १८९२ (१८३५ ई०) और दूसरी १८८८ वि० (१८३१ ई०) में अयोध्यालाल द्वारा रीवा में लिखी गईं। दो अन्य प्रतिलिपियाँ (८०-१५।१ तथा ८०।१५-४) भी हैं, जिनमें अधिक विस्तृत व्याख्या है, किन्तु रचनाकाल, लिपिकाल और लिपिकार का उल्लेख नहीं है।

४. 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास एण्ड हिज वर्क्स' : इ० हि० भाग १६ : कलकत्ता : १९४०।

५. ना० प्र० स०, काशी के रीवा स्थित प्रतिनिधि को १९५१ ई० में प्राप्त।

६. सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा।

किया। परिणामस्वरूप, जहाँ प्रियादास के ग्रन्थ कृष्ण-पर्यवसायी हैं, वहाँ विश्वनाथसिंह के ग्रन्थ श्री राम को ही सर्वशक्तिसम्पन्न पूर्ण ब्रह्म स्वीकार करते हैं।[1]

विश्वनाथसिंह का यह उपासना-परक साहित्य चार कोटियों में विभक्त किया जा सकता है—(क) अध्यात्मपरक सिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थ।

(ख) अध्यात्मपरक टीकाएँ।

(ग) काव्य।

(घ) लक्षणग्रन्थ।

कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हैं।

(क) १. राधावल्लभीय-मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्रभाष्यम्[2]

विश्वनाथसिंह की कृतियों में तथा बघेलखण्ड के सम्पूर्ण साहित्य में इस ग्रन्थ को प्रथम स्थान दिया जा सकता है। हित-हरिवंश के राधावल्लभीय मत के प्रतिपादक ग्रन्थों में तथा भारतीय दर्शन-जगत् में इसे एक स्वावलम्बी मौलिक महत्व दिया जाना चाहिए। यह व्यास के वेदान्त-सूत्रों पर विस्तृत भाष्य है।

---

१. वही, विश्वनाथसिंह-कृत-राधावल्लभीय-ब्रह्मसूत्रभाष्य : मङ्गलाचरण : श्लोक २

'स श्रीरामोऽवताम्नः परमपरतमः प्रेयसीमावगम्यः ।'

२. संस्कृत वर्क्स' : ज० रा० ए० सो० : २९ अक्टूबर १९४० में उल्लिखित आर्के० भाग १।३८५ विक्षासागर पुस्तकालय रीवा में १ प्रति और सरस्वती-कोष भाण्डार, रीवा में ३ पाण्डुलिपियाँ हैं। विक्षासागर की प्रति सं० १९०४ (१८५४ ई०) को लिखे हुए पत्रों में है।

अन्तिम पुष्पिका—

'इति श्रीमद्-भगवदवतार-वेदार्थनिर्णायक-श्रीमद्वेद-वेदान्ताचार्य-श्रीमद्-वेदव्यासकृत - वेदान्तसूत्राणां सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज - श्रीमहाराजा-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-विश्वनाथसिंहजूदेव-कृते श्रीराधावल्लभीयमतप्रवर्तकभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ चतुर्थाध्यायश्च सिद्धः ४ शुभं भूयात् ॥ श्रीसीतारामचन्द्राय (भ्यां) नमः ॥ मितो ज्येष्ठ शुक्ल नवमी संवत् १९०४।'

रचनाकाल के लिये देखिये अन्तिम श्लोक—

'अब्दे सप्तनवाष्टेन्दावविरोधिन्यवर्जिते ।
वैशाख शुक्ल-पञ्चम्यां भाष्यस्यारम्भणं कृतम् ॥
माघस्य कृष्ण-पञ्चम्यां पूर्णतां समगादिदम् ।
विश्वनाथोदितं भाष्यं भूयाद् वैष्णव-तोषदम् ॥'

यह ग्रन्थ वैशाख शुक्ल पञ्चमी सं० १८९७ (१८४० ई०) को प्रारम्भ होकर उसी वर्ष माघ कृष्ण पञ्चमी (१८४१ ई०) को सम्पूर्ण हुआ। साढ़े आठ माह में लिखित यह बृहदाकार सिद्धान्त-ग्रन्थ विश्वनाथसिंह की प्रकाण्ड विद्वत्ता, अद्भुत रचनाशक्ति और मौलिक विचारधारा का सूचक है।

२. सर्वसिद्धान्तम्[1]

८६ पत्रों के इस ग्रन्थ में पाँच सिद्धान्तों के पृथक्-पृथक् प्रतिपादन हैं। यह ग्रन्थ भिक्षुकाचार्य ओझा[2] और राजकुमार विश्वनाथसिंह के मध्य संवाद के रूप में है।

भिक्षुकाचार्य को मिथिला से वेदान्त में शास्त्रार्थ करने के लिए आमन्त्रण मिला था। इन्होंने विश्वनाथसिंह से विषय का मन्थन किया और शास्त्रार्थ में विजयी होकर लौटे। यही पूर्व चर्चा संवाद-शैली में अङ्कित की गई। प्रतिपादित विषय को 'द्वैत मत' बतलाया गया है। प्रथम सिद्धान्त है राम का परत्व। द्वितीय में राम के नाम, रूप, लीला, धाम और गुण का नित्यत्व निरूपित है। तृतीय सिद्धान्त में प्रतिबिम्बवादिवाद और श्रुति-सूत्र-विचार है। चतुर्थ में आचार्यों की उत्पत्ति और मत-समन्वय प्रदर्शित है। पञ्चम-सिद्धान्त के अन्तर्गत वैष्णवों की आचार-पद्धति और भक्ति की विधाएँ वर्णित हैं। अन्त में चारों वैष्णव सम्प्रदायों की गुरु-शिष्य-परम्परा प्रस्तुत की गई है। रचनाकाल का कहीं निर्देश नहीं है, किन्तु 'राजकुमार' शब्द का प्रयोग होने से इसे १८३४ ई० से पूर्व रचित मानना होगा।[3]

---

१. सरस्वती-कोष-भण्डार, किला, रीवा। तीन सिद्धान्तों तक की एक प्रति भिक्षागार पुस्तकालय, रीवा में (क्रमांक १३२२) प्राप्त है। साथ ही देखिये, आर्के० भाग १।७०२-७०३ तथा भाग ७।२१२९ : कैटे अवध० भाग ३।२० ; ५।२४ ; १३।९८; ११८ मिश्र० भाग ७।२१२९।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र : युगलदास कृत : (सं० १९११) :
'आदि भिक्षुकाचार्ज पंडित मंडित जिन सभा।
रचत ग्रन्थ जो कार्ज राजहूँ को कछु करत हैं॥'

३. वही :
'भिक्षुकाचार्ज ओझा जान मिथिला को कहे,
तहाँ वाद होइगो वेदान्त ही में सुमहान।
द्वैत मत कीजे, सुनि तिन्हिं लगाइ दीजे,
सुनि सुनि अर्थ कीन्हों, सुनि तेऊ हरषान॥

३—रामरहस्यत्रयार्थः।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम रहस्य के रूप में अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ नमः सीतारामाभ्याम्' की व्याख्या, दूसरे रहस्य के रूप में मन्त्रद्वय 'श्रीमद्रामचन्द्र-चरणौ शरणं प्रपद्ये' और 'श्रीमते रामचन्द्राय नमः' को मिलाकर पञ्चविंशाक्षर मन्त्र की साधना तथा तीसरे रहस्य के रूप में शरणागति के महत्त्व का प्रतिपादन है। ग्रन्थ में मङ्गलाचरण का एक श्लोक छोड़ने पर कुल ८ श्लोक हैं, जिनकी व्याख्या 'रामरहस्यत्रय-प्रकाशिनी टीका' नाम से ग्रन्थकार की आज्ञा से रामानुजदास ने लिखी है। ग्रन्थ की पुष्पिका में 'महाराज' शब्द है तथा एक टीका का लिपिकाल सं० १८९४ है।[१]

अतः रचनाकाल १८३४ से १८३७ ई० के बीच हो सकता है।

सरब-सिद्धान्त पुनि ग्रन्थहि बनाइ दीन्हो
जामें सीताराम पर पार्थहि सिद्धान्तवान।
ताहि पढ़ि जीति आए तहां ते अवारज जू
परसंस्यो विश्वनाथ आपु सों न कोऊ आन॥'

अन्तिम पुष्पिका : 'इति श्री सर्वसिद्धान्ते श्रीमहाराजकुमार-श्रीबाबूसाहेब विश्वनाथसिंह-विरचिते भिक्षुकाचार्य-संवादे पञ्चमः सिद्धान्तः समाप्तः॥ संवत् १८८९ के साल मिति मार्ग सुदि १४ का लिखा।।' संवाद शैली—'भो राजकुमार श्री विश्वनाथसिंह! सर्वतः परः पदार्थः कः सर्वप्रतिपादितं सर्वाविरुद्धं मतं किं कर्तव्यं च किमिति?

भो भिक्षुकाचार्य शृणु। सर्वतः परः पदार्थः श्रीरामचन्द्रः•••।'

१. विद्यासागर पुस्तकालय, रीवा : क्र० १३०१ : पत्रा १५ (टीकासहित) : मूल की पुष्पिका–'इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहाराज-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्रकृपापात्राधिकारि–श्रीविश्वनाथसिंहकृत–श्रीरामरहस्य-त्रयार्थः समाप्तः।' तथा टीका की पुष्पिका 'इति श्रीमद्रामानुजदास-कृता श्रीरामरहस्यत्रयप्रकाशिनी-नाम टीका-समाप्ता। सावन सुदि ५ संवत् १८९४ सीताराम।'

टीकारम्भ—श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथामति।
श्रीविश्वनाथराजेन्द्राज्ञप्तो व्याकुरुते मुदा॥ २॥

इसी पुस्तकालय में प्राप्त एक अन्य प्रति में सम्वत् के अङ्क लुप्त हैं—'शुद्ध चैत्र द्वितीया संवत्•••रीवा राज्ये।'

युगलदास के अनुसार रामानुजदास अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त थे।[1] रघुराजसिंह ने इन्हें अपना विद्यागुरु बतलाया है। ये रामचन्द्रपाद के शिष्य थे।[2]

४. राम-मन्त्रार्थ-निर्णयः

इस ग्रन्थ की पुष्पिका में विश्वनाथसिंह के लिए 'महाराजा' शब्द है।[3] चिन्ताहरण चक्रवर्ती के अनुसार इस ग्रन्थ की एक प्रति बंगला लिपि में है, जो सं० १९०७ (१८५० ई०) में लिखी गई। अतः यह ग्रन्थ १८३४ से १८५० ई० के बीच कभी निर्मित हुआ।[4] यह मूलतः गद्यात्मक है। इसमें राममन्त्र का विवरण है। युगलदास ने इसका नाम 'राम-मन्त्र-अर्थ' बताया है।[5]

५. रामपरत्वम्

इसका विवरण अध्याय ४ (४) में प्रस्तुत किया जायगा।

६. तत्त्वमस्यर्थ-सिद्धान्तः

५४ पत्रों में लिखित इस समग्र ग्रंथ में तत्त्वमसि महावाक्य का विवेचन है। रचनाकाल का निर्देश नहीं है, किन्तु पुष्पिका में 'महाराज' शब्द होने से रचनाकाल १८३४ से १८५४ ई० के मध्य होगा।[6]

---

१. स० को० भा० : विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : 'रामानुजदास में महन्त थो अयोध्या के'।

२. रघुराजसिंह-कृत रामरसिकावली (भक्तमाला) : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा राम-स्वयंवर : प्रकाशित-वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई : सं० १९८० पृष्ठ ९७० : 'विद्यागुरु रामानुजदासा।' साथ ही देखिये, आनन्दाम्बुनिधिः प्रकाशित : बम्बई : अन्तिम विवरण।

३. स० को० भा० । १ प्रति में १९ पत्रा (बस्ता १३० स्टाक १२७।१) और दूसरी में १८ पत्रा (बस्ता १३०।१२९) हैं। दोनों सम्पूर्ण हैं। दूसरी में लिपिकाल सं० १९१० : चैत्र कृष्ण ३ भृगौ (१८५४ ई०) है। पुष्पिका—'इति श्री सिद्धिश्रीमन्महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा विश्वनाथसिंहदेवकृतमन्त्रार्थनिर्णयः सम्पूर्णः समाप्तः शुभम्।'

४. 'संस्कृत वर्क्स० : ज० रा० ए० सो० : अक्टूबर २९; १९४० : साथ ही देखिये आफ्रे० भाग १। ५१८ : कैटे० अवध : भाग ५।२८ : १५।१२८।

५. विश्वनाथसिंह-चरित्र : सं० १९११।

६. स० को० भा० १३।२४ : प्रारम्भ का उल्लेख—'वक्ष्येऽहं विश्वनाथः कुमत-गज-रिपुं तत्त्वमस्यर्थसारम्' ॥ १ ॥ तथा पुष्पिका—'इतिश्री

(ख) अध्यात्मपरक टीकाएँ

१—ज्योत्स्ना (सुमार्ग की टीका)

पीछे प्रियादास के ग्रन्थों में 'सुमार्ग' नाम आया है। विश्वनाथसिंह ने इसकी टीका 'ज्योत्स्ना' नाम से लिखी है। ३९ पत्रों के इस ग्रन्थ का निर्माण संवत् १८८४ (१८२७ ई०) में हुआ।[1] हरदत्त शर्मा ने इसे हिन्दी में रीवा की बोली में लिखित सरस्वती कोष भाण्डार में उपलब्ध बतलाया है।[2] सम्भव है, इस नाम से हिन्दी टीका भी लिखी गई हो, किन्तु उपलब्ध नहीं हुई।

२—वाल्मीकि-रामायण की तात्पर्य-तरणि टीका

बालकाण्ड के अतिरिक्त शेष समस्त काण्डों की संयुक्त पाण्डुलिपि प्राप्त है, जो संवत् १९०२ (१८४५ ई०) में चित्रकूट में लिखी गई। सुन्दरकाण्ड के लिपिकार कामताप्रसाद और शेष काण्डों के लाला माधोप्रसाद हैं। टीका का नाम तात्पर्य-तरणि-सन्दर्भ है। पुष्पिका में महाराज शब्द होने से रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) और १९०२ (१८४५ ई०) के बीच होगा।[3]

सिद्धिश्री-महाराजाधिराज - विश्वनाथसिंहकृत—छान्दोग्योपनिषद्-तात्पर्य-सिद्धान्तः समाप्तः ॥

१. स० को० भा० : बस्ता १११। १०६ : अन्तिम उल्लेख—

'अब्दे वेद-गजेभ-चन्द्र-गणिते (१८८४) पक्षेऽवलक्षे शुचे-
वारे सोमसुतेऽष्टमी-तिथियुते श्रीविश्वनाथाभिधः।
लोकानामुपकारिकां रघुपतेः प्रीत्यै सुटीकामिमां
ज्योत्स्नां नाम सुमार्गगां गुरुमतां पूर्णामकार्षीन्मुदा ॥
इति सुमार्गगा टीका समाप्ता।.......संवत्
१८८५ के मार्ग वदि ७ का लिखा दलई........॥'
साथ ही देखिये, रामरसिकावली: पृ० १८९।
'गुरु-ग्रंथ सुमारग-तिलक......।

२. 'बाघेल रूलर्स०।'

३. पं० नन्दकिशोर पोप्टाचार्य, रीवा के समीप प्राप्त। अयोध्याकाण्ड-पौष वदी ७ पत्रा ८ : अरण्यकाण्ड पौष सुदी १० पत्रा १७ : किष्किन्धाकाण्ड पौष वदी ११ पत्रा १० : सुन्दरकाण्ड-माघ वदी १३ पत्रा १३ : युद्धकाण्ड-माघवदी ६ पत्रा १३ : उत्तरकाण्ड-माघ वदी ११ पत्रा २८ सभी में संवत् १९०२—(१८४५-४६ ई०) है।
अयोध्याकाण्ड की पुष्पिका—
'इति सिद्धिश्री-महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजूदेवकृत-श्रीमद्वाल्मीकि-

३—अध्यात्म-रामायण की ध्वनि-प्रकाशिका टीका

रघुराजसिंह[१] और युगलदास[२] दोनों ने इस टीका का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ तुलसी-संग्रहालय रामवन (सतना) में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि का नाम 'ध्वनि-प्रकाशिका' टीका है किन्तु अन्तिम उल्लेख में 'व्यङ्ग्य-प्रकाशिका' नाम भी है। रचनाकाल, लिपिकाल या लिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में महाराज शब्द होने से १८३४ और १८५४ ई० के बीच ग्रन्थ-रचना हुई होगी।[३]

४—श्रीमद्भागवत-तिलक (चण्डभास्कर)

रघुराजसिंह ने इसकी गणना संस्कृत ग्रन्थों में की है।[४] काशी-नरेश ने विश्वनाथसिंह के समीप देवी-भागवत भेजा था। विश्वनाथसिंह ने 'चण्ड-भास्कर'

रामायणीय-अयोध्याकाण्डस्य तात्पर्य-तरणि-नाम्नि सन्दर्भे ......।'
कृष्णमाचारियर के अनुसार आफ्रे ने रामायण के टीकाकारों में विश्वनाथसिंह को भी माना है (हि० क्ला० सं० लिट्० पृ० २४)।

१. राम-रसिकावली (भक्तमाला) : बम्बई : पृष्ठ ९८९ :
'तिलक अध्यात्महुँ केरो···।'
तथा आनन्दाम्बुनिधि : बम्बई : पृष्ठ ६ :
'रामायण अध्यात्महिं तिलकै। तिलक बाल्मीकी किय भल कै ॥'

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : स० को० भा०।

३. रामवन-पाण्डुलिपि क्रमाङ्क ११९० : अन्तिम उल्लेख—
'अध्यात्म-रामायणस्य टीका व्यङ्ग्य-प्रकाशिका।
श्री विश्वनाथ-स्वान्तःस्थ-श्रीरामेण प्रकाशिता ॥
इति सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज-श्रीविश्वनाथसिंह-विरचितायां बृहद्-ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गताध्यात्मरामायण-टीकायां उत्तरकाण्डे नवमोऽध्यायः।'
ग्रन्थ के आरम्भ में स्वामी रामानुज और प्रियादास की वन्दना की गई है; सखी सम्प्रदाय के मतों का प्रतिपादन है। बालकाण्ड में ७ अध्याय—५५ पत्रा, अयोध्या में ९ अध्याय—३२ पत्रा, अरण्य में १० अध्याय—३७ पत्रा, किष्किन्धा में ९ अध्याय—३९ पत्रा, सुन्दरकाण्ड में ५ अध्याय—२१ पत्रा, युद्धकाण्ड में १६ अध्याय—९५ पत्रा और उत्तरकाण्ड में ९ अध्याय—७७ पत्रा है। ७७ से ८९ पत्रा तक भरद्वाज-वशिष्ठ-संवाद के रूप में परमधाम का वर्णन जुड़ा हुआ है।

४. आनन्दाम्बुनिधि : पृ० ६ : 'तिलक भागवत को अति भारो।'

नाम से श्रीमद्भागवत की टीका लिख कर भेजी और उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित की।[1] ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका।

५—वेदस्तुति-टीका

युगलदास ने विश्वनाथसिंह के संस्कृत-ग्रन्थों में इस कृति का उल्लेख किया है।[2] सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा में १२ पत्रा में लिखित एक 'निकुञ्जरत्नी-वेद-स्तुति' की टीका (खण्डित) प्राप्त है। इसका लेखक 'हरिवंश' का भक्त और 'जयसिंह-सुत' है।[3] ये विश्वनाथसिंह ही प्रतीत होते हैं। उक्त वेदस्तुति का श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में वेदों द्वारा की हुई कृष्ण की स्तुति से तात्पर्य है।

६—रामगीता की प्रबोधिका टीका

चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में राम के श्रेष्ठत्व की स्थापना की गई है।[4] रामवन में ५६ पत्रा की इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है। स्कन्दपुराण के निर्वाण खण्ड में ३२, ३३ और ३४ अध्यायों में श्रीराम की वन्दना की गई है। विश्वनाथसिंह ने इन्हीं तीनों अध्यायों की प्रबोधिका टीका लिखी है। मूल ग्रन्थ में शुक-जनक-संवाद के रूप में यही राम-तत्त्व

---

१. रामरसिकावली : पृष्ठ ९८० :
'एक समय महं काशि-नरेशा। करि देवी भागवतहिं वेशा॥
विश्वनाथ के निकट पठायो। यह भागवत सत्य अस गायो॥
दुर्जनमुख-चपेटिका नामा। ग्रन्थ पठायो अतिहिं ललामा॥
पितु किय चण्ड-भास्कर ग्रन्था। श्री भागवत सत्य सतपंथा॥'
युगलदास (विश्वनाथसिंह-चरित्र) [illegible] अनुसार दुर्जनमुख के द्वारा प्रेषित 'चपेटिका-ग्रन्थ' के उत्तर में चण्ड-भास्कर भेजा गया था, जिसमें राम और कृष्ण में अभेद स्थापित किया गया। ४ पत्रों का एक 'दुर्जनमुख-चपेटिका' नामक ग्रन्थ भाण्डार में (बस्ता ८०।१३।२) है, जो रामाश्रम-कृत है।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र।

३. बस्ता ८०।२२: 'श्री राधावल्लभो विजयते :—'हरिवंशं हृदि न्यस्य—जयसिंहसुतः श्रीमान्—।'

४. संस्कृत मस्सं० ए० रा० ए० सो० : कलकत्ता : अक्टूबर: १९४० : भाके० १।९१० : कैटे० अवध-१०।२२ स० को० मा० रीवा में विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ का नाम है, पर ग्रन्थ नहीं है।

का निरूपण है। कथा रावणवध के पश्चात् अयोध्या में राज्य करते समय श्रीराम की स्तुति के रूप में है। ये तीन स्तुतियाँ क्रमशः रुद्रगीता, विष्णुगीता और ब्रह्मगीता भी हैं। रामवन की प्रति का लिपिकाल संवत् १८९४ (१८३७ ई०) है किन्तु पुष्पिका में 'महाराजकुमार' शब्द होने से रचनाकाल १८६१ वि० से से पूर्व का होगा। टीकाकार ने अपना नाम 'देवदास' भी लिखा है।[१]

७. भक्तिरसामृत-सिन्धु-टीका

सनातन-गोस्वामी-कृत भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक ग्रंथ की विश्वनाथसिंह ने सं० १८८४ (१८२७ ई०) में टीका लिखी। संवत् १८९८ में लिखित इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है।[२]

(ग) काव्य-ग्रन्थ

१. सङ्गीतरघुनन्दनम्।
२. रामचन्द्राह्निकम्।[३]

---

१. ग्रन्थ क्रमाङ्क २३८२ : टीका का आरम्भ इस प्रकार होता है—
'सीतारामं हनूमन्तं गणेशं शङ्करं तथा।
प्रियादासं गुरुं नत्वा कुर्वे टीकां प्रबोधिकाम्॥
कृत्वा श्रीरघुनाथपादकमले बुद्धिप्रदं वन्दनं
गीताया रघुनन्दनस्य कुरुते श्रीदेवदासाभिधः।
टीकां नाम प्रबोधिका परतर-श्रीराममक्तिप्रदा-
महाज्ञान्ध-तमोनिवृत्ति-करणीं मोदप्रदां सर्वदाम्॥ २॥
······ स्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डेऽध्यायत्रितयेन—शुकसनकसंवादमाश्रित्य श्रीरामं निरूपयितुं सनकस्य प्रश्नमुत्थापयति···।'
प्रथम अध्याय के अन्त में मूल—
'इति श्रीस्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।'
टीका—'इति श्रीमन्महाराजकुमार......'
तृतीय अध्याय के अन्त की पुष्पिका—
'इति श्री-महाराजाधिराजकुमार श्रीविश्वनाथसिंहदेवविरचितायां श्रीरामगीताटीकायां प्रबोधिकायां तृतीयोऽध्यायः। श्रीराम। संवत् १८९४ के साल। समाप्तश्चायं ग्रन्थः।'

२. सन् १९५६ में श्री रघुनाथ शास्त्री द्वारा रीवा में प्राप्त यह ग्रन्थ नागरीप्रचारिणी सभा, काशी को भेजा गया।

३. सङ्गीत रघुनन्दन और रामचन्द्राह्निक के परिचय के लिए देखिये आगे अध्याय ५ (ख)।

३. गोपालचम्पू[१]।

४. आनन्दरघुनन्दननाटकम्[२]।

५. वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम्। १७ पत्रों में सम्पूर्ण इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि रीवा में सुरक्षित है। इसमें २३० श्लोक हैं। यह वासुदेव की नामावली है। पुष्पिका में 'महाराजाधिराज' शब्द है और ग्रन्थ का लिपिकाल सं० १८९९ (१८४२ ई०) है। अतः रचनाकाल सं० १८९१ और १८९९ वि० के बीच होगा।[३]

(घ) लक्षण-ग्रंथ

१. धनुर्विद्या

रीवा में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १८६ श्लोकों में २२ पत्रों की पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त है। इसमें धनुष के प्रयोग की विधियाँ हैं। इसी नाम से विश्वनाथसिंह का एक ग्रंथ हिन्दी पद्यों में भी प्राप्त है, जो सं० १८९९ (१८४२ ई०) की रचना है।

२. धर्मशास्त्र (त्रिंशत्श्लोकी)

आचार-पद्धति पर विश्वनाथसिंह का यह ग्रन्थ ३० श्लोकों और २४ पत्रों में रीवा में प्राप्त है।[५]

विश्वनाथसिंह के हिन्दी-ग्रंथ[६]

हिन्दी के क्षेत्र में विश्वनाथसिंह की कृतियाँ और भी अधिक हैं। इनकी सूची इस प्रकार है :—

---

१. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ५१८-१९ : परि० ५४२ तथा टिप्पणी, मिश्र० १८७० ।

२. देखिये आगे अध्याय ६।

३. स० को० भा० : बस्ता १३० । १२८ : इस स्तोत्र में वासुदेव के सभी नाम 'वकार' से प्रारम्भ होते हैं, अतः इसे वकारादि-वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम्' कहा गया है। अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—
'इति श्रीमहाराजाधिराज—विश्वनाथसिंहजूदेवविरचितं वकारादि-श्रीवासुदेव-सहस्रनाम-स्तोत्रं समाप्तम्। लिपि शुक्ल महादेवराम। सं० १८९९ के सल्ला (साल) मिति चैत्र शुक्ल ३ बुधवासरेकः ॥'

४. स० को० भा०।

५. वही, बस्ता १२ । ११५।

६. इस जानकारी के स्रोत निम्नलिखित हैं—
(१) स० को० भा०, रीवा की सूची; (२) आचार्य रामचन्द्र

१. आनन्द-रघुनन्दन नाटक[१]

यह नाटक पहले हिन्दी में १८२० से १८३० ई० के बीच लिखा गया। यह हिन्दी साहित्य का प्रथम नाटक कहा जाता है।

२—शान्तिशतक (लिपिकाल १८३८ ई०), ३—ध्रुवाष्टक (८ कवित्त, लिपि० १८४० ई०), ४—धनुर्विद्या, ५—गीतावली (पूर्वार्द्ध), ६—रामायण (आनन्द रामायण या भुशुण्डीरामायण १८२३ ई० से पूर्व रचित), ७—भजन (या फुटकर भजन या अयोध्या जी के भजन), ८—अष्टयामआह्निक (१८१७ ई०), ९—गौरपुनन्दन (चैतन्य सम्प्रदाय के गोसाईं अमृतादास द्वारा प्रणीत काव्य) की प्रमाणिका टीका (१८४४ ई०), १०—परमतत्त्वप्रकाश, ११-रागसागर, १२—परमधर्म-निर्णय, १३—कबीरदास-कृत बीजक की पाखण्ड-खण्डिनी टीका, १४—अनुभव-पर-प्रदर्शिनी टीका (कबीरदास के १२ ग्रन्थों की टीका), १५—विश्वभोजन प्रकाश, १६—वेदान्त-पंचक (सटीक), १७—उत्तम काव्य-प्रकाश, १८—गंगाष्टक, १९—प्रबोधनीति, २०-रामचन्द्र की सवारी, २१—विनयपत्रिका की टीका, २२—हनुमान जी के कवित्त, २३—शृङ्गार के कवित्त, २४—अयोध्या-यशोवर्णन (या माहात्म्य १८४४ ई०), २५—चित्रकूट माहात्म्य, २६—दानमयूख, २७—कृष्णाह्निक, २८—विनयमाला आदि।[२]

शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काशी : २०१८ : पृष्ठ ५७८; (३) महाराणा उदयपुर (मेवाड़) पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों की सूची (श्री एम० एल० मेनेरिया द्वारा स्व० श्री पी० के० गोडे, तात्कालीन क्यूरेटर, भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इं०, पूना को १९४१ ई० में प्रेषित) पृष्ठ १८८-२८६; (४) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की सूची (श्री के० एम० शर्मा, क्यूरेटर द्वारा श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती को १९३९ ई० में प्रेषित); (५) हिन्दी पाण्डुलिपियों के वार्षिक विवरण, प्रयाग, सन् १९०३, १९०४, १९०५, और १९०७ ई०); (६) बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा प्रस्तुत त्रैवार्षिक विवरण, प्रयाग, सन् १९१२ तथा १९१४ ई०; (७) रायबहादुर हीरालाल द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाण्डुलिपियों का खोज-विवरण, प्रयाग, १९२१ ई०; (८) चिन्ताहरण चक्रवर्ती : 'संस्कृत वर्क्स०'; (९) गोडे 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वर्क्स०'।

१. प्रकाशित : १९६० ई० : विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, रीवा। साथ ही देखिये—हि० सा० को० भाग २ : पृष्ठ ३०।

२. देखिए मेरा लेख—'विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ' : 'मध्यप्रदेश-सन्देश' : ग्वालियर : २४ मार्च, १९५२ : पृष्ठ १५-१८।

रघुराजसिंह के संस्कृत-ग्रंथ

महाराज रघुराजसिंह[१] के निम्नलिखित संस्कृत-ग्रन्थ उपलब्ध हैं[२]—

(१) सुधर्मा-विलासः ।
(२) जगदीशशतकम् ।
(३) शम्भुशतकम् ।
(४) नर्मदाष्टकम् ।
(५) लोकनाथाष्टकम् ।
(६) रघुराज-मङ्गल चन्द्रावली ।

सातवाँ ग्रन्थ राजरञ्जन, जिसमें रस-सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है, लुप्त है । महाराज ने स्वयं इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है ।[३]

---

१. जन्म—कार्तिक कृष्ण ४, गुरुवार, सं० १८८० (१८२३ ई०) । राज्यारम्भ सं० १९११ (१८५४ ई०) । मृत्यु—माघ कृष्ण ९, सं० १९३६ (४ फरवरी, १८८० ई०) ।

२. विवरण के लिए देखिये आगे अध्याय ४ (५-ख) ।

३. रघुराजसिंह-कृत रामस्वयंवर : प्रकाशित : बम्बई : सं० १९८० : पृष्ठ ४ :

'रच्यों संस्कृत-ग्रन्थ कछु, शतक एक जगदीश ।
सभा सुधर्म-विलास इक, शम्भुशतक मत ईश ॥
रच्यो राजरंजन बहुरि, सब रस मतन प्रकाश ।'
तथा पृष्ठ ९७०-७२ : 'रुचिर राजरंजन सुखदानी ।'

सूचना-विभाग, रीवा से १९५१ में प्रकाशित पुस्तक 'दतिया-पुस्तकालय' में दतिया के पुराने महल में उपलब्ध ग्रन्थों की सूची में संस्कृत ग्रन्थों में राजरंजन (क्र० ६६४) का उल्लेख है किन्तु यह रघुराजसिंह कृत नहीं है । यह किसी माधव कवि द्वारा रचित हस्ति-विज्ञानपरक ग्रन्थ है । श्री व्रजकिशोर त्रिवेदी, रीवा ने सूचित किया है कि रामवन में रघुराजसिंह-कृत संस्कृत-ग्रंथ यादवेन्द्राष्टक की ९ श्लोकों की १ पन्ना की पाण्डुलिपि सुलभ है । यह ठीक हो तो संस्कृत-ग्रन्थों की संख्या ८ होगी । साथ ही, देखिये मेरा लेख 'रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ' : 'विन्ध्यशिक्षा' : रीवा : १९५६ ।

रघुराजसिंह ने श्रीमद्भागवत की हिन्दी (ब्रजभाषा) टीका सं० १९०७ (१८५०) में लिखी। रीवा में एकादश[1] और द्वादश[2] स्कन्धों की टीकाएँ सुरक्षित हैं। प्रारम्भिक दश स्कन्धों की टीकाएँ नहीं मिलीं। इस टीका का नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' है और यह महाराज विश्वनाथसिंह द्वारा संशोधित है। द्वादश-स्कन्ध के आरम्भ में विश्वनाथसिंह द्वारा की हुई वन्दनाएँ संस्कृत में प्राप्त हैं।

कुछ हिन्दी ग्रन्थों में देवस्तुतियाँ हिन्दी-छन्दों में किन्तु संस्कृत भाषा में प्राप्त हैं[3] तथा पुष्पिकाएँ भी संस्कृत की शैली में हैं।[4]

रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थ

रघुराजसिंह का कवित्व मुख्यतः हिन्दी के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुआ है। इनके हिन्दी काव्य-ग्रन्थ निम्नलिखित हैं[5]:—

---

१. स० को० 'भा० (बस्ता ८०।१२) : ३३५ पत्र। अन्तिम पुष्पिका–'इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सिद्धिश्रीमहाराजाधिराज-जयसिंह-देवात्मज-सिद्धिश्री - महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजूदेवात्मज-युवराज - रघुराजसिंहजूदेव-कृत-व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिकायां समाख्यायां टीकायां तात-संशोधितायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ सं० १९११ के मिती चैत्र सुदी ४ शनौ ।। इदं पुस्तकं मकादशेन लिख्यतं दामोदरेण ॥ श्री सीताराम ॥ श्री राधाकृष्ण ॥'

२. वही, बस्ता ८०।२३।५७ पत्र। वन्दना में—
'भास्वत्सिंहासनस्थं स्मितियुतवदनं विश्वनाथोऽहमीडे।'

३. 'रामस्वयंवर', पृष्ठ ९७७ : 'तव पदपङ्कजमिष्टदं, ये ध्यायन्ति परेश।
तेषामिह भवसागरे, न भयं भवति रमेश ॥
नमोऽस्तु ताय राघवाय रावणान्तकारिणे।....'

४. आनन्दाम्बुनिधि : अध्यायों के अन्त में पुष्पिकाएँ—
'इति सिद्धिश्रीमन्महाराजाधिराज-बान्धवेश-विश्वनाथसिंहात्मज—रघुराजसिंह जू देव कृते........।'

५. देखिये—स० को० भा०, रीवा में प्राप्त रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थों की सूची। ९ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही देखिये हिन्दी-साहित्य-कोष : भाग २ : सं० २०२० पृष्ठ ४४२ : तथा तुलसी-संग्रहालय, रामवन (सतना) रघुराज-कक्ष के ग्रन्थ।

(क) प्रबन्ध-काव्य

१. रुक्मिणी परिणय—२१ सर्गों का महाकाव्य, रचनाकाल १८५० ई०। प्रकाशित रीवा १८७९, बम्बई १८९६, १९२४ ई०।

२. आनन्दाम्बुनिधि (भाषा-भागवत—पुराण-कथा, १८५०-५४ ई०) प्रका० रीवा १९०१ ई०।

३. रामरसिकावली (भक्तमाला)-चरित, १८६४ ई०। प्रका० काशी १८००, बम्बई १८९१ ई० तथा २ आवृत्तियाँ।

४. मृगयाशतक (रघुपति शिकार शतक)-अष्टयाम, १८६८ ई०। प्रका० बनारस १८८९ ई०।

५. रामस्वयंवर—३३ प्रबन्धों का महाकाव्य, १८७५-७७ ई०। प्रका० रीवा १९००, बम्बई १९०३, १९३३ ई०।

६. सुन्दरशतक (हनुमतशतक)-खण्डकाव्य, १८४० ई०। पाण्डु० राम-वन। ४२ कवित्त रामस्वयंवर में सम्मिलित।

(ख) मुक्तक

७. रघुराजविलास (पदावली)-प्रका० बम्बई १९०४ ई०।

८. जगन्नाथशतक—१८५६ ई०। प्रका० बम्बई १८५७ ई०।

९. विनयपत्रिका—१८५० ई०। पाण्डुलिपि स० को० मा० ५।६७।१ खण्डित, ८१।१३६ सम्पूर्ण।

१०. विनयप्रकाश—स. को. मा. खण्डित, ५ पत्रा पद १९—४९।

११. चित्रकूट-अष्टक।
१२. चित्रकूट-महिमा।
१३. गङ्गाशतक।
१४. यदुराजविलास (सन्दिग्ध)।
} अनुपलब्ध

(ग) अन्य

१५. नाटक—परमप्रबोध—स. को. मा. ५।१६८, खण्डित।

१६. विष्णुसहस्रनाम (पद्य) प्रका० बनारस १८६८ ई०।

१७. भक्तिविलास (लक्षण)—१८७१ ई०। प्रका० रीवा १८७१ ई०।)

१८. धर्मशतक-(अनुपलब्ध, सन्दिग्ध)।

१९. तात्पर्य-दीपिका-वाल्मीकि-रामायण की हिन्दी टीका : नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी। (सम्भवतः विश्वनाथसिंह-कृत तात्पर्य-तरणि का हिन्दी अनुवाद।)

रघुराजसिंह ने आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में अपनी काव्य-रचना के सहायक विद्वानों के नाम दिये हैं। इनमें तो रङ्गाचार्य[१] संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे। इन्होंने रघुराजसिंह के ग्रन्थ जगदीशशतक की टीका लिखी है[२]। संस्कृत के अन्य विद्वान् सभासदों में पौराणिक बिहारीराम, काशी के विश्वनाथ शास्त्री, गुरु बल्देवराम अग्निहोत्री, मैहरके स्वामी अवधचरण, पूर्वोक्त विद्यागुरु रामानुजदास *एवं लक्ष्मणबाग के महन्त स्वामी लक्ष्मीप्रपन्न थे।* महाराज के सेनापति दादू बलदेव सिंह ने भारत-भ्राता प्रेस का सञ्चालन करते हुए उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में तथा बीसवीं शती के आरम्भ में महाराज के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये। रघुराजसिंह के पुत्र वेंकटरमणसिंह के राज्यकाल में भी ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहा।

काव्यों के भेद-प्रभेद एवं वर्गीकरण

उपर्युक्त साहित्य में से बहुत से ग्रंथ संस्कृत टीकाएँ, दार्शनिक विवेचन, लक्षणग्रन्थ आदि होने से हमारी आलोचना की परिधि में नहीं आते। पीछे उल्लिखित हिन्दी रचनाओं से भी आलोचना का सम्बन्ध नहीं है। यहाँ हमारे समीक्षात्मक मूल्याङ्कन की सीमा में वे ही ग्रन्थ आते हैं, जिनकी रचना का लक्ष्य प्रधानतः बोधात्मक सामग्री प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु जो भावप्रधान, रस-प्रवण, अलङ्कृत, ललित एवं हृद्य है और इसीलिए हम जिन्हें काव्य कह सकते हैं। इनका वर्गीकरण यहाँ प्रस्तुत किया जायगा।

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का प्रथम विभाजन गद्य और पद्य के रूप में किया है[३]। दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाजन उन्होंने अनिबद्ध और निबद्ध नाम से

---

१. 'दक्षिण यादवाद्रि के वासी। अति सुशील सुन्दर मति रासी॥
जिनको नाम अनन्ताचारी। तिनके पुत्र नृसिंहाचारी॥
रंगाचार्य पुत्र हैं तिनके। शील स्वभाव अनूपम जिनके॥
न्याय वेदान्त व्याकरण आदिक। सकल शास्त्र ज्ञाता मरयादिक॥
जति घंटावतार परकाला। तिनके *शिष्य सुबुद्धि विशाला॥*

२. जगदीशशतक की टीका के आरम्भ में रङ्गाचार्यकृत वन्दना है। अन्त में समर्पण का श्लोक इस प्रकार है—

'श्रीबान्धवेश-रघुराज-विनिर्मितस्य
नीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्थपूर्तेः।
वाधूल-सत्कुलभवो विरचय्य
रङ्गाचार्यो जगत्पतिपदेऽर्पयति स्म टीकाम्॥'

३. भामह : काव्यालङ्कार : काशी संस्कृत सिरीज ६१ : १९८५ वि० प्रथम परिच्छेद : श्लोक १६ :

'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद् द्विधा।'

किया है।[१] यद्यपि स्पष्टतः कहा नहीं गया, तो भी अनिबद्ध काव्य के भेद-प्रभेद केवल पद्य में ही बतलाये गये हैं।

भामह ने अनिबद्ध काव्य के अन्तर्गत गाथा और श्लोक-मात्र आदि दो प्रभेदों की गणना की है।[२] दण्डी ने मुक्तक, कुलक, कोष और सङ्घात ऐसे चार प्रभेदों की चर्चा कर इन्हें सर्गबन्ध के अङ्ग मान लिया है और उनको स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानी।[३] वामन ने अनिबद्ध के प्रभेदों का उल्लेख नहीं किया। राजशेखर ने शरीर-भेद छोड़कर विषय के अनुसार मुक्तक और प्रबन्ध दोनों के १—शुद्ध, २—चित्र, ३—कथोत्थ, ४—संविधानकभूः, ५—आख्यानकवान् प्रभेद लिखे।[४] आनन्दवर्द्धन ने अनिबद्ध और निबद्ध (या मुक्तक और प्रबन्ध) दोनों के प्रभेद एक साथ गिना दिये हैं। अभिनवगुप्त ने लोचन टीका में अनिबद्ध के अन्तर्गत आनन्दवर्धन द्वारा बतलाए हुए इन प्रभेदों को दो खण्डों में बाँटा है। पहला खण्ड है मुक्तक, जो मुक्त हो और दूसरे से स्पृष्ट न हो।[५] अग्निपुराण के अनुसार एक ही श्लोक, जो चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हो, मुक्तक

---

१. विश्वेश्वर (आचार्य) : हिन्दी काव्यालङ्कारसूत्र (वामन) : आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली : १९५४ ई० : अधिकरण १ अध्याय ३।२१,२७ :
'काव्यं गद्यं पद्यञ्च—तदनिबद्धं निबद्धञ्च।'

२. भामह : काव्या० : १।३० : 'अनिबद्धं पुनर्गाथा-श्लोकमात्रादि·········।'

३. दण्डिन् : काव्यादर्श : भाण्डारकर ओ० रि० इं० : पूना : १९३८ : प्रथम परिच्छेद श्लोक ११-१२ 'मुक्तकं कुलकं कोषः सङ्घात इति तादृशः। सर्गबन्धांशरूपत्वात्'।

४. सारस्वत-केदारनाथ शर्मा : काव्यमीमांसा (राजशेखर) : बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना : १९५४ : अध्याय ९ : पृष्ठ ११४ :
'स पुनर्द्विधा। मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन। तावपि प्रत्येकं पञ्चधा। शुद्धः चित्रः कथोत्थः संविधानकभूः आख्यानकवांश्च।'

५. ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) : अभिनवगुप्तकृत लोचन व्याख्या सहित : दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग परब : काव्यमाला २५ : निर्णयसागर प्रेस बंबई : १८९१ उद्योत ३ श्लोक ७ की वृत्ति :
'यतः काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धम्। सन्दानितकविशेषक-कलापक-कुलकानि पर्यायबन्धः।—मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते।—पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।'

कहलाता है।[१] ध्वानन्दवर्धन के अनुसार कवि लोग मुक्तकों को भी रसबन्ध करते हैं। मुक्तक में पूर्वापर-निरपेक्ष रसनिष्पत्ति होती है। अर्थात् मुक्तक ऐसा एक ही श्लोक है जो अपने विषय की पूर्ति में स्वतन्त्र हो, अन्य श्लोक की अपेक्षा न करे। यह मुक्तक प्रबन्धों के मध्य भी रहता है। इसकी रचना संस्कृत; प्राकृत या अपभ्रंश किसी भी भाषा में हो सकती है।[२] भामह ने इसी मुक्तक को श्लोक लिखा है।[३] कभी-कभी वाक्य दीर्घ होने से एक ही श्लोक में क्रिया की समाप्ति नहीं होती। तब दो श्लोकों में सम्पूर्ण होने वाले मुक्तक को सन्दानितक, तीन में विशेषक और चार में कलापक कहा जाता है।[४] विश्वनाथ दो श्लोकों के मुक्तक का नाम युग्मक और तीन का सन्दानितक बतलाते हैं। पांच श्लोकों में समाप्त होने वाले मुक्तक को कुलक कहा जाता है।[५] हेमचन्द्र और नमिसाधु के मत से यह कुलक पाँच से चौदह श्लोकों तक का हो सकता है[६]।

भानुकर और रामचन्द्र भट्ट के मुक्तक

पीछे हमने 'बघेलखण्ड में साहित्य-निर्माण की गतिविधि' के अन्तर्गत

---

१. अग्निपुराण : अध्याय ३३७ :
'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सताम्।'

२. ध्वन्यालोक : ३।७ अभिनवगुप्तव्याख्या : '—मुक्तमन्येन नालिङ्गितम्। तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकाङ्क्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्ति मुक्तकमित्युच्यते। मुक्तकस्यैव विशेषणं संस्कृतेत्यादि।'

३. काव्यालङ्कार (भामह): १।३०।

४. काव्यानुशासन : (हेमचन्द्र) शिवदत्त और परब : काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एकद्वित्रिचतुश्छन्दोभिर्मुक्तक-सन्दानितक-विशेषक-कलापकानि।'

५. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) : शालग्राम शास्त्री (हिन्दी व्याख्या) : मोतीलाल बनारसीदास : वाराणसी : १९५६ : षष्ठ परिच्छेद : श्लोक ३१४-१५ :।

'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्॥

६. काव्यानुशासन : अ० ८ : 'पञ्चादिभिश्चतुर्दशान्तैः कुलकम्।'
तथा काव्यालङ्कार (रुद्रट) : काव्यमाला २ : निर्णयसागर प्रेस : बम्बई : १९२८
अध्याय १६।३१ : नमिसाधु की टीका : पृष्ठ १७२ :

चोरमानु से सम्बद्ध मानुकर के तीन स्फुट श्लोकों की चर्चा की है। अनेक सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित होते हुए भी ये परस्पर-निरपेक्ष और क्रम-रहित हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र भट्ट के एक श्लोक की भी चर्चा हुई है। इन चारों श्लोकों को अनिबद्ध काव्य की प्रथम कोटि में रखते हुए 'मुक्तक' मात्र कहा जा सकता है।

डा० बलदेव उपाध्याय ने मुक्तक काव्यों के लौकिक और धार्मिक दो रूप माने हैं।[१] सामान्यतः मनुष्य की स्तुति और विशेषतः राजाओं या राजवंशों की प्रशस्ति के रूप में लिखित स्फुट श्लोक लौकिक मुक्तक हैं तथा देवों की स्तुति के रूप में लिखित स्तोत्र या स्तुति-गीत धार्मिक मुक्तक हैं। इस आधार पर उपर्युक्त सम्बद्ध मुक्तक लौकिक पद्धति के हैं।

अनिबद्ध काव्य का दूसरा खण्ड है मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष सङ्कलन। इस सङ्कलित रूप की ओर ही भामह ने 'गाथा' शब्द से सङ्केत किया है, जैसा पीछे लिखा जा चुका है। आनन्दवर्धन ने इसी को पर्यायबन्ध कहा है, जिसे स्पष्ट कर अभिनवगुप्त ने बतलाया है कि बीच में क्रिया समाप्त होने पर भी वसन्त-वर्णन आदि एक वर्णनीय (विषय) के उद्देश्य से प्रवृत्त (लिखित या सङ्कलित) मुक्तकों के एकत्र रूप को पर्यायबन्ध कहा जायगा।[२] हेमचन्द्र का भी कथन है कि मुक्तकों का विषयानुसार सङ्कलन होता है, जिसे पर्या कहते हैं। यह सङ्कलन कोषों में होता है। स्वकृत तथा अन्य कवि-कृत सूक्तियों का सङ्कलन ही कोष है, जैसे सप्तशती आदि। जब एक कवि द्वारा एक ही विषय पर एक छन्द में रचे हुए मुक्तकों को एकत्र किया जाय, तब वह रचना वृन्दावन या मेघदूत काव्य की भाँति सङ्घात कहलाती है।[३]

---

१. संस्कृत-आलोचना : प्रकाशन ब्यूरो : सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश : १९५७ : पृष्ठ ६९ मुक्तक-भेद, साथ ही देखिये-हिन्दी साहित्य कोष : भाग १ : सं० २०१५ : पृष्ठ : ८९६।

२. ध्वन्यालोक की लोचन टीका : काव्यमाला : बम्बई : १८९१ : उ० ३।७ : 'अवान्तर-क्रिया-समाप्तावपि वसन्तवर्णनाद्येकवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्त : पर्यायबन्धः।'

३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४०-४१ : 'मुक्तकानामेव प्रघट्टकोपनिबन्धः। अवान्तरवाक्यसमाप्तावपि वसन्ताद्येकवर्णनीयोद्देशेन मुक्तकानामुपनिबन्धः पर्या। सा कोषेषु प्रचुरं दृश्यते। स्व-पर-कृत-सूक्ति-समुच्चयः कोषः यथा सप्तशतकादिः। ......एकप्रघट्टके एक-कविकृतः सूक्तिसमुदायो वृन्दावनमेघदूतादिः सङ्घातः।'

नमिसाधु के मत से भी मुक्तकों का ही विषयानुकूल सङ्कलन पर्यायबन्ध या कोष कहलाता है।[1] विश्वनाथ ने परस्पर-निरपेक्ष श्लोकों के समूह को कोष कहा है तथा उसके व्रज्या क्रम से सङ्कलन अर्थात् सजातीय मुक्तकों के एकत्र सन्निवेश को मनोरम बतलाया है।[2] इस प्रकार एक विषय पर आश्रित मुक्तकों के सङ्कलित रूप के लिए पर्यायबन्ध, पर्या, पर्यायबन्ध और कोष नाम मिलते हैं।

हेमचन्द्र ने एक अन्य प्रभेद 'संहिता' की चर्चा की है, जो यदुवंश, दिलीपवंश आदि की भाँति विप्रकीर्ण वृत्तों का एकत्र सन्निवेश हो।[3] यही सङ्कलन एक कवि के द्वारा एक छन्द में सीमित होने पर सङ्घात कहा जायगा।

हेमचन्द्र ने सङ्घात-प्रभेद को अनिबद्ध काव्यों के अन्तर्गत स्पष्टतः मानते हुए मेघदूत को उदाहरणार्थ रखा है, जब कि विश्वनाथ ने मेघदूत को खण्डकाव्य के रूप में उदाहृत किया है।[4] काव्यादर्श की टीका में हरिनाथ ने सङ्घात के उदाहरणार्थ मेघदूत को प्रस्तुत करते हुए 'कल्पितवस्तुक' शब्द का प्रयोग किया है[5], अर्थात् सङ्घात में कथा का आधार स्वीकार किया है। अतः हम यहाँ मान कर चलते हैं कि मेघदूत इसी अर्थ में सङ्घात है कि वह एक कवि द्वारा एक विषय पर एक ही छन्द में रचे हुए श्लोकों का सङ्ग्रह है, अन्यथा वह कथाश्रित एवं नायकाश्रित होने से प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य है। उपर्युक्त आधारों पर विचार करने पर अनिबद्ध काव्य की क्रम-सापेक्ष-सङ्कलन की द्वितीय कोटि के अन्तर्गत हमें बघेलखण्ड के ९ और काव्य प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार है—

---

१. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : काव्यमाला २ : बंबई : १९२८ : नमिसाधु की टीका : 'तथा मुक्तकानामेव प्रघट्टकोपनिबन्धः पर्यायबन्धः कोषः।'

२. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९६६ : षष्ठ परि० श्लोक ३२९-३० : 'कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योऽन्यानपेक्षकः।
व्रज्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः॥'
वृत्ति—सजातीयानामेकत्रसन्निवेशो व्रज्या यथा मुक्तावल्यादिः।'

३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७०: बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४१ 'विप्रकीर्ण-वृत्तानामेकत्रसन्धानं यदुवंश-दिलीपवंशादिवत् संहिता।'

४. साहित्यदर्पण : ६।३२९ : 'खण्डकाव्यं... यथा मेघदूतादिः।'

५. काव्यादर्श (दण्डिन्): पूना १९३८ : १।१३ : रङ्गाचार्य रड्डिशास्त्री द्वारा उद्धृत हरिनाथ की टीका—'कल्पितवस्तुक एकच्छन्दो-निर्व्यूढः सङ्घातः मेघदूतादिः।'

२. रामचन्द्र-यशःप्रबन्धः—

राजा रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति में लिखे हुए ३७ श्लोकों का यह सङ्कलन लौकिक पद्धति का कोषग्रन्थ है। इसमें 'प्रबन्धः' शब्द पद्य-बन्धन मात्र का द्योतक है, चरित-बन्धन का नहीं। विश्वनाथ ने गद्य-पद्यात्मक राजस्तुति को विरुद माना है।[1] यदि अनिबद्ध कोटि में केवल पद्यात्मक राजस्तुति को भी विरुद माना जाय तो इस ग्रन्थ को विरुद या प्रशस्ति-प्रभेद में सीमित करना अधिक उपयुक्त होगा।

३. रामपरत्वम्

विश्वनाथसिंह (१८३४–५४ ई०) द्वारा पद्य-गद्य के रूप में अनन्ताचार्य के समीप प्रेषित यह एक पत्र है, जिसमें प्रारम्भ के ८ श्लोक अनन्ताचार्य की स्तुति में और परवर्ती ८ श्लोक पत्र-वृत्तान्त के रूप में प्राप्त हैं। इसके अनन्तर गद्य-भाग में राम का ब्रह्मत्व प्रतिष्ठापित है, जो दार्शनिक विवेचन है। यहाँ विचारार्थ केवल प्रारम्भिक श्लोकों का काव्यत्व है। अतः इन श्लोकों को भी लौकिक पद्धति के कोष-प्रभेद में रखना उचित है। यदि लौकिक व्यक्ति की स्तुति को विरुद या प्रशस्ति माना जाय तो यह भी वही है।

४. बघेल-वंश-वर्णनम्

इस ग्रन्थ में रूपणि मिश्र (१६७८ ई०) ने १०० श्लोकों में बघेल राजाओं का प्रशस्ति-परक वंश-वर्णन किया है। ये श्लोक भी अपने आप में मुक्तक हैं, जो क्रम-सापेक्ष रूप में सङ्कलित हैं। अतः हेमचन्द्र के मत का परिपालन करते हुए हम इस कृति को 'संहिता' प्रभेद के अन्तर्गत एक वंशगत विरुद या प्रशस्ति मानते हैं।

५. जगदीश-शतकम् ६. शम्भू-शतकम् ७. लोकनाथाष्टकम्

८. नर्मदाष्टकम्

धार्मिक पद्धति के मुक्तकों के संकलित रूप हमें आलोच्य काव्यों में शतक और अष्टक रूप में प्राप्त हैं। रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) के द्वारा भिन्न-भिन्न वृत्तों में रचित, देवपरक स्तुति-गीतों के इन चार क्रम-सापेक्ष सङ्कलनों-जगदीशशतकम्, शम्भूशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् को हम धार्मिक पद्धति के कोष या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत रख सकते हैं।

९. सुधर्मविलास

रघुराजसिंह का ग्रन्थ सुधर्मविलास भक्तिदर्शन के एक साम्प्रदायिक मत के

---

१. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : परि० ६।३३७
'गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते।'
राजाओं के यशोवर्णन को रुद्रट ने प्रशस्ति नाम दिया है। देखिये—
काव्यालङ्कार (नमिसाधु-व्याख्या) : १६।३६ : व्याख्या—
'तत्र यस्यामीश्वरकुलवर्णनं यशोऽर्थं क्रियते सा प्रशस्तिः।'

अनुसार साधक के कल्पित उत्क्रमण का आधार लेकर कृष्ण की सभा सुधर्मा तथा अनेक देवाधिष्ठित लोकों और स्थितियों के विवरण के रूप में है। ग्रन्थकार ने इसे १७ उल्लासों में विभाजित किया है। इसमें कथागत या नायकादि-सम्बन्धी किसी आधार को ग्रहण नहीं किया गया है। बीच-बीच में गीतगोविन्द की लयों के अनुकरण के रूप में अनेक भावप्रवण स्तुतिगीत ग्रथित हैं। अतः उल्लास-बद्ध होने पर भी मुक्त विवरण या भावधारा पर आश्रित मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष और एक विषयान्वित सङ्कलन-मात्र होने से इसे अनिबद्ध कोटि में ही रखना उचित है। अतः यह भी धार्मिक पद्धति के कोष या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत आता है।

१०. रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली

रघुराजसिंह द्वारा प्रणीत स्तुति-गीतों का रघुराजमङ्गल चन्द्रावली नामक लघु-काव्य एक विषय पर एक ही छन्द में लिखे हुए श्लोकों का समूह है, जो क्रम-सापेक्ष सङ्कलन में प्रस्तुत होने पर भी परस्पर-निरपेक्ष है। राजशेखर ने घटित वृत्त पर आधारित मुक्तक को कथोत्थ संज्ञा प्रदान की है।[१] ये श्लोक भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में प्राप्त कृष्ण कथा पर आधारित एवं तदनुसार ८९ अध्यायों में सङ्कलित स्तुतिगीत हैं। कवि का लक्ष्य कथा-वर्णन नहीं, अपितु भावात्मक देववन्दना है। अत: इस ग्रंथ को कथोत्थ सङ्घात प्रभेद में रखा जा सकता है।

इस प्रकार अनिबद्ध कोटि के अन्तर्गत हमें १० ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें से ६ स्तुति-गीत, १ पत्र-गीत और तीन राजस्तुतियाँ हैं। ये सभी लघुकाव्य हैं।

स्वरूप की दृष्टि से भामह ने अनिबद्ध के अतिरिक्त काव्य के चार अन्य भेद १. सर्गबन्ध, २. अभिनेयार्थ, ३. आख्यायिका और ४. कथा बतलाए हैं। सर्गबन्ध को उन्होंने महाकाव्य माना है।[२] स्पष्ट ही ये भेद निबद्ध काव्य के हैं, जिसके लिए वामन ने निबद्ध, सन्दर्भ और प्रबन्ध[३] तथा राजशेखर[४], आनन्दवर्धन[५] और

१. काव्यमीमांसा (राजशेखर) : पटना : १९५४ ई० : अध्याय ९ पृष्ठ ११४ : 'वृत्तेतिवृत्तः कथोत्थः'।

२. काव्यालङ्कार : १।१८ :
सर्गबन्धोऽभिनेयार्थं तथैवाख्यायिका-कथे।
अनिबद्धञ्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते ॥'

३. काव्यालङ्कारसूत्र : १।३।३० : वृत्ति—'सन्दर्भेषु प्रबन्धेषु।'

४. काव्यमीमांसा : पटना : १९५४ : अध्याय ९, पृष्ठ ११४ : 'स पुनर्द्विधा। मुक्तक-प्रबन्ध-विषयत्वेन।'

५. ध्वन्यालोक : ३।७ वृत्ति '... प्रबन्धेष्विव....'। तथा अभिनवगुप्त की टीका।

रुद्रट[1] ने प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त चार भेदों में से विशुद्ध पद्यात्मक प्रबन्ध के रूप में केवल सर्गबन्ध स्वीकृत है। शेष तीन में से कथा के लिये हेमचन्द्र ने कहा है कि वह गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है।[2] रुद्रट ने सभी प्रबन्धों के लिए महत् और लघु दो रूप बतलाए हैं।[3] विश्वनाथ ने महाकाव्य की परिभाषा पूरी करने के पश्चात् निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

'भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्गसमुज्झितम्।
एकार्थ-प्रवणैः पद्यैः सन्धि-साामग्र्य-वर्जितम्॥
खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च॥'[4]

इन पंक्तियों का 'सर्ग-समुज्झितम्' शब्द पाठ-भेद से 'सर्ग-समुत्थितम्' भी मिलता है; साथ ही 'सन्धि-सामग्र्य-वर्जितम्' शब्द के अर्थ पर भी टीकाकारों में मतभेद है।[5] फिर भी इतना स्पष्ट है कि महाकाव्य से न्यून कोटि का, सम्पूर्ण

---

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : अध्याय १६।२ : 'सन्ति द्विधा प्रबन्धाः .... ।' तथा नमिसाधु की व्याख्या।

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ : पृष्ठ ३३८ : 'धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।' तथा इसी की वृत्ति : '—काचित् पद्यमयी यथा लीलावती।'

३. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १६।२
'सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये।
तत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥'

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश-टीका : निर्णयसागर प्रेस : बम्बई : १९२२ : पृष्ठ ३७५ श्लोक ३२८ : 'यावत् सन्धिरहितं यत्तत्काव्यमित्यर्थः।'

५. साहित्यदर्पण :

(१) जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३७ : श्लोक ५८३ : 'सर्ग-समुज्झितम् सर्गबन्धरहितम्। एकार्थप्रवणैः एकार्थप्रतिपादकैः एकवाक्यतापन्नैरिति यावत्। मुख-प्रति-मुखादि-सन्धिसमुदायहीनं यत् तत् काव्यम्।'

(२) हरिदत्तसिद्धान्तवागीश-टीका : कलकत्ता : शकाब्द १८६७ : पृष्ठ ४२५ : श्लोक० ३०६ 'सर्गसमुज्झितम्। अध्यायवर्जितम्। ···एकविषयप्रतिपादकैः पद्यैः निबद्धम्। सन्धीनां सामग्र्येण समुदायेन वर्जितम्।'

(३) शिवदत्त कविरत्न-टीका : वेंकटेश्वर प्रेस बंबई : पृष्ठ ५४२ श्लोक ६२५-२६ : 'सर्गसमुज्झितम् सर्गहीनम्। ······सन्धि-

कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य केवल 'काव्य' कहा जायगा तथा एकदेशीय कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य खण्डकाव्य कहलायेगा। रुद्रट के मत से इस खण्डकाव्य में चतुर्वर्ग में से एक ही वर्ग फल-रूप में सिद्ध किया जायगा तथा उसमें अनेक रसों का स्पर्श कर एक रस का सम्पूर्ण परिपोष होगा।[1] नमिसाधु ने लिखा है कि नायक के चरित का बन्धन ही प्रबन्ध है।[2]

इस प्रकार पद्यात्मक प्रबन्ध काव्यों के तीन भेद हो जाते हैं—महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि खण्डकाव्य के पर्याय के रूप में लघुकाव्य या लघु-प्रबन्ध शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त है। खण्डकाव्य अवश्य ही लघुकाव्य या लघुप्रबन्ध है, उसी प्रकार लघु-रूपक या लघु-कथा भी लघु-काव्य या लघु-प्रबन्ध है। साथ ही अनिबद्ध कोटि के सङ्कलित क्रम-सापेक्ष या विषय-सापेक्ष मुक्तक भी लघुकाव्य कहे जाते हैं, जैसे भर्तृहरि का शृङ्गार या वैराग्यशतक या अमरुशतक। इसी प्रकार महाकाव्य जिस प्रकार महाप्रबन्ध है, उसी प्रकार नाटक और प्रकरण आदि बड़े रूपक या कादम्बरी बृहत्कथा आदि बड़े कथाकाव्य भी प्रबन्ध हैं।

रुद्रट का यह स्पष्टीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि सभी प्रबन्धों के उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो स्वरूप हो सकते हैं। जिन प्रबन्धों का सम्पूर्ण शरीर कवि द्वारा उत्पादित हो और नायक की उत्पत्ति कल्पित हो, ऐसे प्रबन्ध उत्पाद्य कहे जायेंगे। इतिहासादि (रामायणादि कथा) में प्रसिद्ध पञ्जर (कथाशरीर) को सम्पूर्ण या आंशिक रूप में आधार बनाकर जिनमें कवि उस पर अपना वाणी

सामग्र्या अहितं मुक्तादिप्रायाति सर्गहीनं यत् तत् काव्यं नाम काव्यम्।'

(४) शालग्राम शास्त्री : हिन्दी टीका : मोतीलाल बनारसीदास : वाराणसी : १९५६ : पृष्ठ २२४ श्लोक १२८-२९ : 'सर्गसमुज्झितम्।' टीका—'एक कथा का निरूपक पद्यबद्ध सर्गमय ग्रन्थ, जिसमें सब सन्धियाँ न हों, काव्य कहलाता है।'

१. काव्यालङ्कार : १६।५ : 'ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः॥'

नमिसाधु—'ते मेघदूतादयो लघवः।'

२. वही : १६।२ : नमिसाधु की वृत्ति :
'प्रबन्धाः प्रबध्यन्ते नायकचरितमैर्निबध्यन्ते इति कृत्वा।'

का आवरण चढ़ाता है, वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध होते हैं।[1] इस प्रकार प्रथम श्रेणी के उदाहरण के रूप में कादम्बरी और दूसरी के रूप में किरातार्जुनीय को प्रस्तुत किया जा सकता है। नमिसाधु ने भूल से लिखा है कि उत्पाद्य में प्रसिद्ध नायक को स्वीकार कर उसका चरित्र-बन्धन माघ काव्य की भाँति कवि-कल्पित होगा।[2] नमिसाधु का यह तर्क मानने पर दोनों कोटियों में अन्तर करना दुष्कर हो जायगा, क्योंकि दोनों ही कोटियों में कवि कल्पना तो रहेगी ही।

महाकाव्यों में से अधिक संख्या उनकी है, जो अनुत्पाद्य हैं, अर्थात् जो रामायण, महाभारतादि की प्रसिद्ध कथाओं को आधार बनाते हैं। उत्पाद्य-वस्तु वाले महाकाव्य, जिनमें सर्वथा कल्पित आधार हो, अलभ्य हैं। कवियों ने अपने समकालीन नरेशों और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर उन पर कल्पना का आवरण चढ़ाते हुए ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य लिखे हैं। वास्तव में यह तीसरी कोटि है, किन्तु यहाँ हम इन्हीं को उत्पाद्य मान कर चलते हैं, क्योंकि ये रुद्रट के उत्पाद्यों के लक्षण का अनुसरण करते हैं। कथा आदि के क्षेत्रों में यह विभाजन स्पष्ट है।

११. वीरभानूदय काव्यम्।

उपर्युक्त पद्यात्मक प्रबन्धों के अन्तर्गत सर्गबन्ध रचना वीरभानूदयकाव्य हमें प्राप्त है। यह महाकाव्य के लक्षणों से युक्त ऐतिहासिक शैली का द्वादश सर्गात्मक उत्पाद्य प्रबन्ध है।[3]

१२. सङ्गीतरघुनन्दनम्

विश्वनाथसिंह की १६ सर्गों में रचित शृङ्गार-पोषक कृति सङ्गीतरघुनन्दनम् गीतगोविन्द की अनुकृति है। श्रीराम के रास-विलास को सामान्य आंशिक कथा लेकर इसका प्रथन हुआ है। अतः यह अनुत्पाद्य खण्डकाव्य है। कवि ने यहाँ रसात्मक वाक्यों का सङ्गीतात्मक सन्निवेश किया है और बीच-बीच में उक्ति-परिवर्तनों के लिए निर्देशात्मक प्रास्ताविक गद्य भी दिये हैं। लासेन ने गीतगोविन्द को एक गीतिनाटय (लिरिक ड्रामा) और पिशेल ने भावमय शृङ्गार-नाटय लिखा

---

१. काव्यालङ्कार : १६।३-४ :

'तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत् कविः सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्ति नायकमपि कुत्रचित् कुर्यात्॥
पञ्चरमितिहासादि-प्रसिद्धमखिलं तदेकदेशं वा।
परिपूरयेत् स्व-वाचा यत्र कविस्ते त्वनुत्पाद्याः॥'

२. वही १६।३ : व्याख्या—'नायकं प्रसिद्धं गृहीत्वा—यथा माघकाव्ये।'

३. विस्तृत चर्चा के लिए देखिये आगे—अध्याय ३ (ख)

है।[१] सङ्गीतरघुनन्दन के गद्य-निर्देशों ने इसे गीतगोविन्द की अपेक्षा और भी अधिक गीतिनाट्य बना दिया है।

गद्य-प्रबन्ध

गद्यात्मक प्रबन्धों में आख्यायिका और कथा को सभी ने मान्यता दी है। दण्डी ने आख्यान की सभी जातियों को इन्हीं दोनों में अन्तर्भूत कर दिया है।[२] विश्वनाथ का भी यही मत है।[३] आनन्दवर्धन ने इन दो प्रभेदों के अतिरिक्त परिकथा, सकलकथा और खण्डकथा—ये तीन प्रभेद और गिनाए हैं।[४] हेमचन्द्र ने आख्यायिका के अतिरिक्त इन सभी प्रभेदों का कथा में अन्तर्भाव कर दिया है तथा आख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, उपकथा और बृहत्कथा—ये ७ प्रभेद कथा के अन्तर्गत अधिक बतलाए हैं। उन्होंने आनन्दवर्धन के अनुसार ही सकलकथा को समस्त फलों के अन्त में पर्यवसित होने वाली एवं इतिवृत्तवर्णन पर आश्रित चरित बतलाया है। खण्डकथा के सम्बन्ध में हेमचन्द्र का कथन है कि अन्य ग्रन्थ में प्रसिद्ध इतिवृत्त का मध्य से या किसी छोर से वर्णन करने वाली खण्डकथा कहलाती है।[५]

---

१. कीथ - ए० बी० (डा०) : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ १९१ कीथ, लासेन और पिशेल से इस रूप में असहमत हैं कि गीतगोविन्द एक नाट्य है। वे सर्गबन्ध रचना होने से इसे प्रबन्धकाव्य ही मानते हैं, साथ ही उसका सङ्गीत निमित्तक उद्देश्य स्वीकार करते हैं। सङ्गीतरघुनन्दन का भी यही रूप है। यह भी उसी की भाँति राग-ताल-लय-बद्ध है।

२. काव्यादर्श : १।२३ : 'अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।' तथा १।२८ : 'तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा-द्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : परिच्छेद ६।३३२-३४ : वृत्ति-'आख्यानादयश्च.....।'

४. ध्वन्यालोक : ३।७-वृत्ति : 'यत : काव्यस्य प्रभेदा.....। परिकथा-सकलकथा-खण्डकथा-सर्गबन्धोऽभिनेयार्थमाख्यायिका कथेत्येवमादयः।' अभिनवगुप्त-व्याख्या-'आदिग्रहणाच्चम्पूः।'

५. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३३८-३४० : 'मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमितिवृत्तं यस्यां वर्ण्यते सेन्दुमत्यादिवत् खण्डकथा। समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना समरादित्यवत् सकलकथा (चरितम्)।'

१३—दशकुमारपूर्वकथासारः

वीरभद्रदेव ने दण्डी के दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका का सार गद्य में ही प्रस्तुत किया है। इसे हम उपर्युक्त गद्य-प्रभेदों में से खण्डकथा मानते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा के एक अंश पर अवलम्बित है। कल्पित कथा होने से यह उत्पाद्य लघु प्रबन्ध है।

मिश्र-काव्य

दण्डी ने काव्य के गद्य और पद्य – दो प्रमुख भेदों में मिश्र भी जोड़ दिया है। उन्होंने नाटक को इसी मिश्र काव्य के अन्तर्गत माना है। पहला सम्भवतः इसलिए कि उसमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग होता है, दूसरा इसलिए कि उसमें प्राकृत आदि भाषाओं का मिश्रण रहता है। इस प्रकार भामह तथा अन्य अनेक आचार्यों द्वारा स्वीकृत अभिनेयार्थ नामक प्रबन्ध यहाँ मिश्र काव्य का अङ्ग है। दण्डी ने मिश्र के अन्तर्गत चम्पू को भी माना है।[१]

हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन भिन्न रूप से प्रेक्ष्य (अभिनेय) और श्रव्य नाम से किया है। उन्होंने प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय दो भेद किये हैं। श्रव्य के प्रमुख भेद उन्होंने महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू और अनिबद्ध बतलाए हैं। यहीं से चम्पू को निबद्ध काव्य के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। हेमचन्द्र के मत से यह संस्कृत भाषा में गद्य-पद्य दोनों में मिश्रित रूप में उच्छ्वासों में निबद्ध होती है।[२] विश्वनाथ ने हेमचन्द्र की भाँति ही काव्य को विभाजित किया है और प्रेक्ष्य को दृश्य संज्ञा दी है। गद्य-पद्य से मिश्रित काव्य की कोटि में उन्होंने चम्पू और विरुद की गणना की है।[३]

---

१. काव्यादर्श : १।३१ : 'मिश्राणि नाटकादीनि··· ।
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥'
तथा १।३७ : 'नाटकादि तु मिश्रकम्।' टीका-'नाना भाषाभिर्मिश्रितम्।'

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : पृष्ठ ३०७-४० :
'काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च, प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च। प्रेक्ष्यमभिनेयम्। पाठ्यं नाटकादिः। श्रव्यं महाकाव्यमाख्यायिका कथा चम्पूरनिबद्धं च।—गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पूः संस्कृताभ्यां गद्यपद्याभ्यां रचिता। प्रायेण यान्यङ्कनानि स्वनाम्ना परनाम्ना वा कविः करोति तैर्युक्ता। उच्छ्वासनिबद्धा चम्पूः यथा वासवदत्ता दमयन्ती वा।'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : परि० ६।१ 'दृश्य-श्रव्यत्व-भेदेन पुनः काव्यं द्विधा स्मृतम्। दृश्यं तत्राभिनेयं तद् रूपारोपात्तु

वस्तुतः काव्य के मूलतः तीन भेद—गद्य, पद्य और मिश्र होते हैं। गद्य-पद्य तो श्रव्य ही होते हैं। मिश्र भी श्रव्य ही होता है किन्तु उसका एक अंश दृश्य (प्रेक्ष्य या अभिनेय) भी होता है। भरत ने नाट्यवेद को दृश्य-श्रव्य (दोनों) माना है।[१]

१४—आनन्दरघुनन्दन नाटक

हेमचन्द्र ने नाटक को प्रेक्ष्य काव्य के पाठ्य प्रभेद के अन्तर्गत माना है। विश्वनाथ ने दृश्य काव्य के अन्तर्गत १० रूपक और १८ उपरूपक गिनाए हैं। रूपकों में सर्वप्रथम नाटक माना गया है।[२] इस प्रभेद के अन्तर्गत विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित आनन्दरघुनन्दन नाम का नाटक हमें आलोच्य काव्यों में उपलब्ध है। इतिहास-प्रसिद्ध कथा के कारण इसे अनुत्पाद्य प्रबन्ध माना जायगा।

१५—वीरभद्रदेव-चम्पू

पद्मनाभ मिश्र द्वारा रचित यह चम्पू काव्य कवि के समकालीन एवं आश्रयदाता राजकुमार वीरभद्र को नायक रूप में प्रस्तुत करता है। यह ७ उच्छ्वासों में विभक्त प्रशस्त्यात्मक चम्पू है। वस्तु के आधार पर वीरभद्रदेव-चम्पू उत्पाद्यवस्तुक है।

१६—रामचन्द्रचम्पू या रामचन्द्राह्निकम्

अनुत्पाद्यवस्तुक कोटि का चम्पू काव्य विश्वनाथसिंह का रामचन्द्राह्निक या रामचन्द्रचम्पू है इसके नायक श्री राम हैं। श्री राम की आठों प्रहर की दिनचर्या इसमें आठ यामों में विभाजित है। इन यामों को उच्छ्वास-स्थानीय माना जा सकता है।

इस प्रकार निबद्ध कोटि के अन्तर्गत हमें ६ ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनमें से १ महाकाव्य (वीरभानूदयम्), १ खण्डकाव्य (सङ्गीतरघुनन्दनम्), १ खण्डकथा (दशकुमारपूर्वकथासारः), १ नाटक (आनन्दरघुनन्दनम्) और २ चम्पू-काव्य (वीरभद्रदेव-चम्पू तथा रामचन्द्राह्निकम्) उपलब्ध हैं। वस्तु की दृष्टि से वीरभानूदय महाकाव्य, दशकुमारपूर्वकथासार खण्डकथा और वीरभद्रदेवचम्पू तीन उत्पाद्य प्रबन्ध और सङ्गीतरघुनन्दनम् खण्डकाव्य, आनन्द-

---

रूपकम् ॥' तथा ६।३३६—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।' और ६।३३७।

१. नाट्यशास्त्र १।११ :
'क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यश्च यद् भवेत्।'

२. साहित्यदर्पण : ६।३—७

रघुनन्दनम् नाटक एवं रामचन्द्र-चम्पू तीनों का पञ्जर रामायण पर आधारित होने से वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध हैं।

इस वर्गीकरण को एक ही दृष्टि में निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :—

अनिबद्ध काव्यः (१) लौकिक पद्धति के मुक्तक—प्रशस्तियाँ

(क) क्रमहीन शुद्ध— (१) चार मुक्तक (भानुकर के तीन और रामचन्द्रभट्ट का एक श्लोक।

(ख) क्रम-सापेक्ष, संकलित, कोष या पर्यायबन्ध—

राजस्तुति— (२) रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः।

मुनि-स्तुति— (३) रामपरत्वम्।

वंशप्रशस्ति—संहिता— (४) बघेलवंशवर्णनम्।

(२) धार्मिक पद्धति के मुक्तक—स्तुतिगीत

क्रम—सापेक्ष, कोष या पर्यायबन्ध— (५) जगदीशशतकम्

(६) शम्भुशतकम्

(७) लोकनाथाष्टकम्

(८) नर्मदाष्टकम्

(९) यादवेन्द्राष्टकम्

(१०) सुधर्मविलासः

(ग) कथीरच—सङ्घातकाव्य— (११) रघुराजमङ्गलचन्द्रावली।

निबद्ध काव्यः (१) पद्य-प्रबन्ध

(क) उत्पाद्य सर्गबन्ध महाकाव्य (१२) वीरभानूदयकाव्यम्।

(ख) अनुत्पाद्य खण्डकाव्य (१३) सङ्गीत-रघुनन्दनम्।

(२) गद्य प्रबन्ध

उत्पाद्य खण्डकथा (१४) दशकुमार-पूर्वकथासारः।

(३) मिश्र-प्रबन्ध

(क) अनुत्पाद्य दृश्यकाव्य नाटक (१५) आनन्दरघुनन्दनम्।

(ख) १ उत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू (१६) वीरभद्रदेवचम्पू।

२ अनुत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू (१७) रामचन्द्रचम्पू या रामचन्द्राह्निकम्।

वीरभानूदयकाव्यम्

(क) परिचयात्मक विवरण

१. पाण्डुलिपि और उसका प्रकाशन

वीरभानूदय काव्य की प्रकाशित प्रति में उसकी पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं। दीवान बहादुर पं० जानकीप्रसाद चतुर्वेदी[१] ने प्राक्कथन (फोरवर्ड) में लिखा है कि पाण्डुलिपि का समीक्षात्मक परीक्षण लगभग १२ वर्ष पूर्व हो चुका था।[२] डा० हीरानन्द शास्त्री ने १९३८ में लिखित आमुख (प्रिफेस) में लिखा है कि श्री चतुर्वेदी ने बहुत वर्षों पूर्व उनके पास 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि' भेजी थी। १९२५ ई० में श्री शास्त्री ने इसके आधार पर 'दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा' (रीवा का बघेल राजवंश) निबन्ध लिखा। प्रो० एस० एच० होदीवाल की आलोचनाओं के कारण श्री शास्त्री ने सन् १९३० में 'फर्दर नोट्स आन दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा'[३] (रीवा के बघेल राजवंश पर अतिरिक्त टिप्पणियाँ) निबन्ध लिखा।

प्रस्तुत प्रकाशित प्रति का सम्पादन और अंग्रेजी सारानुवाद धार के तत्कालीन इतिहास-विभाग के प्रमुख (हिस्ट्री आफिसर) श्री काशीनाथ

---

१. वर्तमान रीवा नरेश के पिता महाराज गुलाबसिंह के दीवान, १९१८ ई० में रीवा कौंसिल के होम-मेम्बर, १९२२ ई० में दरबार सेक्रेटरी। देखिये बि० प्र० इ० पृष्ठ २७९ तथा रीवा राज्य का इतिहास (यादवेन्द्र सिंह) : रीवा; १९४० : पृष्ठ १५०-५१।

२. नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित। इस प्रति में प्रकाशन-तिथि नहीं है। साथ में प्रकाशित चतुर्वेदी जी के 'फोरवर्ड' में भी तिथि नहीं हैं, किन्तु डा० हीरानन्द शास्त्री ने आमुख (प्रिफेस) में ९ जुलाई १९३८ तिथि दी है।

३. 'ज० बि० ओ० सो०' में १९३० ई० में प्रकाशित।

कृष्ण लेले ने किया था। आपके सहायक श्री लक्ष्मण उपाध्याय के पुत्र पं० अनन्त शास्त्री थे।[1]

प्रकाशित प्रति के अंग्रेजी अंश के अन्त में यह सूचना प्रकाशित है कि ग्रन्थ की प्रतिलिपि (संशोधित) श्री लक्ष्मण के पुत्र अनन्त शास्त्री ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, सं० १६७७ वि० (मार्च, १९२१ ई०) को की।

इससे प्रतीत होता है कि श्री चतुर्वेदी ने १९२० ई० के निकट पाण्डुलिपि संशोधनार्थ श्री लेले के समीप धार भेजी थी और श्री अनन्त शास्त्री द्वारा संशोधित प्रतिलिपि तैयार होने पर दोनों प्रतियाँ बड़ोदा में डा० हीरानन्द शास्त्री के समीप भेजी गईं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सम्भवतः १९३५ ई० तक में शास्त्री जी ने ग्रन्थ का समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिसिस) तैयार किया, जो साथ ही प्रकाशित है। श्री शास्त्री लिखते हैं कि (उपर्युक्त दो लेख, १९२४ और १९३० ई० में प्रकाशित करने के पश्चात्) उन्होंने ग्रन्थ को प्रकाशित कराने की आवश्यकता पं० जानकी प्रसाद को सूचित की, जिसके साथ समीक्षात्मक विश्लेषण भी प्रकाशित हो।

डा० हीरानन्द शास्त्री ने, जो बड़ोदा के पुरातत्व विभाग के संचालक थे, श्री पी० के० गोडे (पूना) को १५ मई, १९३५ ई० को पत्र लिखा था कि वीरभानूदयकाव्य उनके समीक्षात्मक विश्लेषण के साथ-साथ रीवा-शासन द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। श्री गोडे ने इस पत्र का उल्लेख अपने १९३५ ई० के लेखों में किया है।[2] महाराजा सा० (गुलाबसिंह) ने राज्य के व्यय पर यह प्रकाशन सहर्ष स्वीकार किया। श्री शास्त्री ने सरस्वती की सेवा के रूप में प्रकाशन-सम्बन्धी श्रम किया।

प्रकाशित प्रति में काव्य के मूल संस्कृत अंश के अन्त में रोमन अङ्कों में २०-५-३५ तिथि छपी हुई है। अतः इस समय तक श्री लेले तथा श्री अनन्त शास्त्री द्वारा मुद्रणार्थ ग्रन्थ सम्पादित हो चुका था। अंग्रेजी सारानुवाद और

---

१ वीरभानूदयकाव्यम् : 'फोरवर्ड', तथा 'प्रिफेस'। अनन्तशास्त्री ने ही मुद्रणार्थ प्रति १९३१ ई० में तैयार की थी। (देखिये अंगरेजी सारांश, पृष्ठ ५०) श्री निजामी के कथनानुसार मुद्रण के पश्चात् पाण्डुलिपि सरस्वती कोष भाण्डार, किला, रीवा में रख दी गई थी, किन्तु वहाँ पता नहीं चलता।

२. देखिये—ओ० ज० में प्रकाशित श्री गोडे के लेख—'सम डेटा०' तथा 'आइडेंटीफिकेशन०'। साथ ही देखिये श्री गोडे द्वारा वीरभानूदय काव्य की समीक्षा—एनल्स १९४७ : भाग २७ पृष्ठ १६३-६५।

नामानुक्रमणिका (इंडेक्स) पीछे तैयार हुआ होगा । श्री शास्त्री का आमुख ९ जुलाई १९३८ ई० को (बड़ोदा) में लिखा गया । अतः १९३८ ई० के अन्त तक ग्रन्थ पूर्णतः प्रकाश में आ गया होगा ।[१] जानकी प्रसाद जी ने फोरवर्ड में महाराज रीवा की ओर से डा० हीरानन्द शास्त्री, श्री लेले और श्री उपाध्याय को उनके प्रीतिपूर्ण परिश्रम (लेबर आफ लव) के निमित्त धन्यवाद दिया है।

श्री शास्त्री ने पाण्डुलिपि का परिचय इस प्रकार दिया है—

काश्मीरी कागज पर लिखे हुए ५५ पत्रा, प्रत्येक १२"×४'२"। प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पंक्तियाँ। प्रत्येक पंक्ति पर प्रायः ४८ अक्षर। लिपि स्वच्छ एवं ललित।'

(२) कवि-परिचय और ग्रन्थ का रचनाकाल

वीरभानूदय काव्य के प्रणेता माधव ने ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर एक समान श्लोक[२] तथा अन्तिम सर्ग की समाप्ति पर कुछ और श्लोक अपने सम्बन्ध में दिये हैं। इन श्लोकों के आधार पर माधव के पिता अभयचन्द्र ऊरव्य थे।[३] माता का नाम दुर्गा था। इनका कुल उच्च एवं विष्णुपूजक था। बघेलनरेश वीरभानु के चरित्रवर्णन के रूप में यह भूपाश्रित काव्य लिखा गया है। अतः प्रतीत होता है कि माधव राज्याश्रित कवि था। वीरभानूदय काव्य की समाप्ति पर वीरभानु के लिए कवि ने 'आसीत्' शब्द का प्रयोग किया है।[४] अतः वह वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का समासद था। काव्य में

---

१. पब्लिश्ड अंडर दि अथारिटी आफ रीवा दरबार (रीवा दरबार के प्राधिकार से प्रकाशित)।

२. वीर : १२।४२-४५।

उभयकुलविशुद्धः श्रीपतिप्रत्तचित्तः कृतगुणिजनतोषी माधवो यः प्रभाति।
गुरुनृपतिदयार्थी पापकर्मप्रमाथी जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात्॥

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रियः—
स्तस्याभात् पतिदेवता कुलभवा दुर्गेति नाम्ना वधूः।
मातुस्तेन सदुक्तमार्गगतिना श्रीमाधवेनोर्जितं
काव्यं राजति राजवर्णनयुगं तत्कीर्तिगङ्गामृतम्॥'

तथा—'इत्काव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ श्रीवीरभानुप्रभोः।'

३. श्री लेले ने ऊरव्य का अर्थ वैश्य किया है। सम्भवतः उनका तर्क—'ऊरू यदस्य तद् वैश्यम्।' उक्ति पर आधारित है, (अंग्रेजी सारानुवाद पृ० ५०) किन्तु हीरानन्द शास्त्री ने 'कायस्थ' अर्थ लिया है (वीर० कि० ए० पृ० ५)।

४. वीर० १२।४१ : 'आसीदेवं... ....श्रीमया वीरभानुः।'

माधव ने गहोरा राजधानी का, वहाँ के जीवन, निवासियों, भवनों, समीपस्थ नदियों और पहाड़ों तक का बड़ा सजीव वर्णन किया है।[१] इससे प्रतीत होता है कि वह स्वयं गहोरा का ही निवासी था। वीरभानु और रामचन्द्र के शासन-काल में, सोलहवीं शती के प्रथम तीन-चतुर्थांशों में, विशेष रूप से मध्य भाग में कवि का स्थिति-काल माना जा सकता है। काव्य के अन्तःसाक्ष्य के बल पर कहा जा सकता है कि कवि माधव विद्वान्, सुशिक्षित और अनेक शास्त्रों से परिचित था। इससे अधिक कोई भी जानकारी कवि के सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं है।

वीरभानूदयकाव्य की यह 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि', संवत् १६४८ (१५९१ ई०) में लिखी गई, जैसा कि उसकी पुष्पिका से विदित होता है।[२] ग्रन्थ की रचना अवश्य ही इससे पहले की होगी।

हीरानन्द शास्त्री ने समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिसिस) में ग्रन्थ के रचनाकाल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपका कथन है कि सम्भवतः पाण्डुलिपि रीवा-राज्य की उत्तराधिकार सम्पत्ति थी और वीरभद्र[३] को इसमें विशेष रुचि रही होगी, क्योंकि काव्य में उनके जन्मोत्सव का वर्णन है। पाण्डु-लिपि के प्रथम और अन्तिम पृष्ठों पर दो मुहरें (पृथक्-पृथक्) हैं। पहली 'बीरभदर बन्दह शाह अकबर ९६५' और दूसरी है 'बीरभदर बन्दह सुलतान सलीम'। आगे श्री शास्त्री लिखते हैं कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सोमदेव-कृत कथासरित्सागर की एक पाण्डुलिपि है, जिसके आवरण पृष्ठ पर लगभग इसी तरह की मुहर पड़ी है। उसमें हिज्री सन् ९७७ (१५६९ ई०) अङ्कित है तथा इसमें भी 'बीरभदर' अपने को सुल्तान सलीम का 'बन्दह' (गुलाम) कहता है। सलीम का जन्म इसी वर्ष हुआ था और वीरभद्र अन्त तक सलीम की सेवा में रहा (सलीम को जन्म से ही सुल्तान कहा जाता था[४])। अतः इन मुहरों का बीरभदर वास्तव में 'वीरभद्र बघेल' ही है।

१. वीर० २।७-३०

२. वीर० : अन्तिम पुष्पिका : पृष्ठ १४२ :
'संवत् १६३८ समये अगहन शुक्लपक्ष द्विति (ती) यायां भौमवासरे लिखितं (त) मिदं कायस्थ-तुलसिदास-पुत्र श्री नाइ काशिवासी (?) विश्वेश्वर सन्निधे ॥'

३. राजा रामचन्द्र बघेल का पुत्र, मृत्यु १५९३ ई०; संस्कृत ग्रन्थों का प्रणेता। देखिये आगे अध्याय ४ (२)।

४. जहाँगीरनामा (अनु० बेवरिज) : १९०९ : पृष्ठ २।

अकबर का राज्यारोहण ९६३ हिजरी में हुआ। यह तिथि १८ फरवरी १५५६ ई० है।

श्री शास्त्री की इन सूचनाओं के अनुसार काव्य की पाण्डुलिपि पर प्राप्त पहली मुहर ९६५ हिजरी अर्थात् १५५८ ई० की होती है। मुहर की इस तिथि को हीरानन्द शास्त्री ने पर्याप्त महत्त्व दिया है, किन्तु मुहर के अङ्क अन्तःसाक्ष्य के विरुद्ध हैं। अतः इस सम्बन्ध में हमें यहाँ विस्तार के साथ विचार करना होगा।

वीरभानूदयकाव्य के अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव का विवरण है। इस उपलक्ष में 'दिल्लीश्वर-यवनाधिनाथ मुद्गलेश' हुमायूँ ने, जिसके साथ वीरभानु का 'भ्रातृभाव' था, वीरभानु के घर हुए पौत्र-जन्म को अपने घर का पौत्र-जन्म माना और उसने उपहार भेजे।[1]

श्री शास्त्री का यह तर्क है कि 'उक्त उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था। यह समय या तो १५३० ई० से १५४० ई० के बीच[2] हो सकता है या १५५५ ई०, जब हुमायूँ ने पुनः सूर-सुल्तानों से दिल्ली वापस ली।[3] १५५५ ई० में वह अपनी चिन्ताओं में ही अत्यधिक व्यस्त था, अतः पहली अवधि को मानना ही उपयुक्त है। इस प्रकार वीरभद्र के जन्म के लिए १५३५ ई० को एक सम्भव तिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उक्त मुहर की तिथि (१५५७-५८ ई०) तक वीरभद्र लगभग २२ वर्ष का रहा होगा और इस समय वह अकबर के दरबार में अपने पिता की ओर से प्रतिनिधित्व करता रहा होगा।'[4]

---

१. वीर० १२।२०-२१, २३

'आकर्ण्य दिल्लीश्वर-भूपमौलिः श्रीमान् हुमाऊ यवनाधिनाथः।
श्री वीरभानोस्तनयस्य जातं सुतं प्रमोदं बहुधा प्रपेदे॥
स प्रेषयामास निजैरमात्यवरै शुभान्याभरणानि हृष्टः।
अश्वांश्च वासांसि सुगन्धवस्तु भ्रात्रीकृतस्तेन हि वीरभानुः॥
पौत्रं तमेवं नृप-वीरभानोर्जातं किलाहं निजमेव मन्ये।
को भ्रातृपौत्रेष्व निजे विशेष इत्याह लेखेन च मुद्गलेशः॥'

२. हुमायूँ शेरशाह से चौसा की लड़ाई में २ जून, १५३९ ई० में हारा।

३. हुमायूँ की दिल्ली में वापसी २३ जुलाई १५५५ ई० में हुई और २७ जनवरी १५५६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

४. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-७

श्री शास्त्री आगे कहते हैं कि 'काव्य का निर्माण स्पष्टतः वीरभद्र के जन्म-समारोह के उपलक्ष में किया गया होगा। सर अलेक्जेंडर कनिंघम के मतानुसार यह तिथि १५४० ई० के निकट होगी; किन्तु काव्य से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उसकी रचना वीरभद्र के जन्म के पश्चात् और वीरभानु के जीवन-काल में हुई।'[१]

इस सम्बन्ध में शास्त्री जी ने काव्य के एक उल्लेख'[२] की चर्चा की है और लिखा है कि '१५५५ ई० में इब्राहीम सूर से परास्त हो कर अदली (आदिलशाह सूर) भाठ (बघेलखण्ड) आया। यह उल्लेख इसी घटना की ओर संकेत करता है। इम्पीरियल गजेटियर के आधार पर वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का शासनारम्भ १५५५ ई० से हुआ, यही वीरभानु की निधन-तिथि होगी। अतः काव्य की रचना (अदली के आगमन के पश्चात् और वीरभानु की मृत्यु से पूर्व) १५५५ ई० में ही हुई होगी।'[३]

शास्त्री जी के उक्त तर्कों पर विचार करते हुए हम सर्वप्रथम ग्रन्थ के रचनाकाल का निश्चय करना चाहते हैं। अवश्य ही ग्रन्थ की परिसमाप्ति वीरभद्र के जन्म और आदिलशाह सूर की भाठ-यात्रा के पश्चात् हुई, क्योंकि काव्य में इन तथ्यों के उल्लेख हैं, किन्तु हम शास्त्री जी द्वारा निर्णीत रचना-तिथि को और पीछे लाना चाहते हैं।

अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव-वर्णन के पश्चात् कवि वीरभानु के पुत्र-पौत्र से युक्त सुखमय जीवन बिताने का वर्णन करता है। आगे कवि लिखता है कि वीरभानु ने सुयोग्य पुत्र को राज्य-भार सौंप कर त्रिवेणी-वास किया। इस समय कुछ काल तक त्रिवेणी-तट पर ज्ञानियों के साथ वीरभानु की अध्यात्म-चर्चाओं के भी उल्लेख हैं। अन्त में यद्यपि कवि वीरभानु की मृत्यु की दुःखप्रद सूचना देकर रसिकों का मन नहीं दुखाता, तो भी वह कहता है कि वीरभानु इस प्रकार के गुणवान् राजा थे। यहाँ स्पष्टतः 'आसीत्' शब्द का प्रयोग है।[४] स्पष्ट है कि काव्य राजा वीरभानु के जीवनकाल में नहीं, किन्तु उनके परलोकवास के पश्चात् सम्पूर्ण हुआ।

---

१. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १–७।

२. वीर० : १०।१३ : 'स ईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राण-मुहम्मदादिः।'

३. वीर० क्रि० ए० : पृ० १–७।

४. वीर० सर्ग १२: श्लोक २४–'रेजे सदानीं तु सपुत्रपौत्रः श्रीवीरभानुः-।'
श्लोक २८-'धुरं धराया विनिधाय पुत्रे निजात्मजे रामगुणाभिरामे।
श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तत्याज राज्योद्वहनश्रयासम्॥'

काव्य में रामचन्द्र के वर्णन में तानसेन का भी उल्लेख है। (तानसेन के साथ रामचन्द्र का समय सानन्द बीता करता था[१]।) तानसेन का अकबरी दरबार में १५६२ ई० में जाना ज्ञात है।[२] अतः निश्चित रूप से प्रस्तुत काव्य की रचना १५५५ और १५६२ ई० के बीच हुई। १५६१ ई० के निकट विट्ठलेश्वर बान्धवगढ़ आए थे। रामचन्द्र ने उनका स्वागत किया था। तानसेन से उनकी भेंट हुई थी[३]। अदली के जाने के पश्चात् रामचन्द्र ने नये आक्रान्ता इब्राहीम सूर को प्रायः उसी वर्ष बन्दी बनाया था और बाद में स्वागत भी किया था[४]। काव्य में इनमें से किसी घटना की चर्चा नहीं है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि अपने आश्रयदाता वीरभानु की महायात्रा की तैयारियों के वर्णन में और निधन के पश्चात् उनके लोकोत्तर गुणों के स्मरण में कवि का शोकोच्छ्वास नवीन है। अतः काव्य की रचना वीरभानु के जीवनकाल में प्रारम्भ हुई होगी और उसकी सम्पूर्ति १५५५ ई० के अन्त तक अथवा १५५६ ई० के प्रारम्भ में हुई, यह माना जा सकता है।

पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में भी यहाँ चर्चा करना असङ्गत न होगा। पाण्डुलिपि पर अङ्कित वीरभद्र की दो मुहरों में से एक, जिसमें अकबर का नाम है, ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) की बतलाई गई है। यह पाण्डुलिपि १५९१ ई० (सं० १६४८) में लिखी गई, जैसा कि प्रकाशित ग्रन्थ में मुद्रित है। जो

श्लोक २९-'निवर्त्य चेतो विषयाभिलाषादुवास गङ्गायमुनोपकण्ठम्।
निषेवितोऽलर्कपुरे सुतार्थः ....।।'
श्लोक ३०-'अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्त.।'
श्लोक ४१-'आसीदेवं...वीरभानुः।'

१. वीर० : १०।२६-३१ : श्लोक २७—
'अष्टौ स यामान् नयति स्म तेन रागादिना सरसमुदीरितेन।'

२. आईन : 'दि ग्रैण्डीज आफ दि इम्पायर (साम्राज्य के गणनीय व्यक्ति) : क्र० ८९ राजा रामचन्द्र बघेला—राजा आफ भाठ (भाठ-बघेलखण्ड का राजा) · पृ० ४०६...(शासन के) सातवें वर्ष (१५६२-६३ ई०) शाहंशाह (अकबर) ने तानसेन को आगरा आने पर राजी करने के लिए जलालुद्दीन कुर्ची को भाठ भेजा।....'

३. स्मिथ—जे० एम० अकबर : भाग २ : भार० वि० भ० बम्बई० : पृष्ठ २१८ तथा पारेख—भाई मणिलाल : श्री वल्लभाचार्य : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ २६८।

४. लो—डब्ल्यू० एच० : अल—बदाओनी : भाग १ : पृष्ठ ५५३–५४।

पुस्तक १५९१ ई० में लिखी गई, उस पर (उससे पहले की) १५५८ ई० (९६५ हिजरी) की मुहर कैसे अङ्कित की जा सकती है, यह एक प्रश्न है। १५९१ ई० लगभग ९९९ हिजरी होता है।

शास्त्री जी ने ९६५ हिजरी में वीरभद्र को लगभग २२ वर्ष का माना है और उसकी जन्मतिथि १५३५ ई० के समीप स्थिर की है। इससे भी सहमत नहीं हुआ जा सकता।

वीरसिंहदेव की बाबर से मित्रता थी अर्थात् वे उसके समकालीन (१५२६-३० में) थे[1], किन्तु उनकी मृत्युतिथि ज्ञात नहीं है। वीरभानूदय काव्य के सातवें सर्ग में वीरभानु की गर्भवती रानी राजमती स्वप्न में वीरसिंह को बैकुण्ठ से आकर गर्भस्थ शिशु को उपदेश देते हुए देखती है।[2] इससे इतना निश्चित होता है कि वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म से पूर्व ही वीरसिंह की मृत्यु हो गई। वीरसिंह १५२७ ई० में कनवाहा में राणा सांगा के पक्ष से बाबर के विरुद्ध लड़े थे[3]। यदि १५२८ ई० में उनकी मृत्यु मानी जाय तो भी १५५८ ई० (९६५ हिजरी) तक तीस वर्षों की अवधि में कभी रामचन्द्र का जन्मकाल मानने पर रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र को २२ वर्ष की आयु देना सम्भव नहीं है।

रीवा की स्थानीय जमाबन्दियों (लेखापत्रों) में वीरभानु का जन्म १४८६ ई०, रामचन्द्र का १५३५ ई० और वीरभद्र का १५५४ ई० में बतलाया गया है।[4] वीरभानूदय काव्य में प्राप्त सङ्केत कि वीरसिंह की मृत्यु के बाद ही रामचन्द्र का जन्म हुआ, १५३५ ई० में रामचन्द्र के जन्म को सङ्गत कर देता है। काव्य में यह सूचना भी है कि रामचन्द्र का विवाह होने पर शीघ्र ही पिता वीरभानु ने उन्हें युवराज पद दे दिया।[5] जमाबन्दियों में १५९१-९२ ई० में

---

१. वीरभानूदय० २।६७—'तस्माद् प्रियं प्राप स बब्बरोऽपि' तथा—१२।१२—'श्रीवीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण।'

२. वही, ७।४०—'वीरं यो वीरसिंहं च (वै) कुण्ठभवनागतम्।'

३. निज़ामी—ए० एच० : दि बघेल डायनैस्टी आफ रीवा : वि० यू० जर्नल : जिल्द २ क्र० २ : मई १९५८ : पृष्ठ २।

४. एकता बांधोगढ़: '—राजा वीरभानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल। राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५९२ के साल। सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक। ....राजा वीरभद्र का जन्म १६११ के साल का।'

५. वीरभानूदय ९।४१ : 'गौरापुरात् स्वनगरं समुपेत्य वीरं (रः)

रामचन्द्र का राज्याभिषेक सूचित है। यह तिथि वास्तव में युवराज पद की प्राप्ति की ही हो सकती है, क्योंकि वीरभानु १५५५ ई० तक जीवित थे। इस प्रकार यह निष्कर्ष समीचीन प्रतीत होता है कि १५५१ ई० में १६ वर्ष की आयु में रामचन्द्र का विवाह हुआ होगा और तीन वर्ष पीछे वीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में हुआ। यह तिथि इसलिए भी सङ्गत प्रतीत होती है कि वीरभानु इस समय जीवित थे और १५५४–५५ ई० में हुमायूँ पुनः दिल्लीश्वर हुआ। वीरभद्र के जन्म के पश्चात् १ वर्ष के भीतर ही हुमायूँ ने खिलअत और उपहार आदि भेजकर शेरशाह के साथ हुए युद्धों में परीक्षित अपने मित्र वीरभानु के साथ इन बुरे दिनों में सौहार्द सुदृढ़तर बनाया होगा।

इस प्रकार वीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में स्थिर होने पर केवल ३-४ वर्षों की आयु में ९६६ हिजरी (१५५८ ई०) में उसका अकबरी दरबार में प्रतिनिधित्व करना असङ्गत ही नहीं, असंभव है।

रीवा के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता और लेखक श्री अख्तर हुसेन निजामी, जो वीरभानूदय काव्य के प्रकाशन और होरानन्द शास्त्री के पत्र-व्यवहारों से सम्पृक्त थे, पाण्डुलिपि पर ९६५ अङ्क की पुष्टि करते हैं। ऐसी स्थिति में हमें मुगलकालीन परम्पराओं का स्मरण करना होगा, जब नये शाहंशाह के गद्दी पर बैठने पर उसकी अधीनता के चिह्न छोटे-बड़े राज्यों में प्रकट होते थे। प्रतीत होता है कि मुगल अधीनता की स्वीकृति के रूप में महाराज रामचन्द्र बघेल ने यह मुहर ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) में तैयार कराई और अपने स्वाभिमान को बचाते हुए शिशु वीरभद्र का नाम उसमें अङ्कित कराया (वीरभदर बन्दह शाह अकबर ९६५)। आगे चलकर जब वीरभद्र ने १५९१ ई० (१६४८ वि०) में वीरभानूदय काव्य की प्रतिलिपि तैयार कराई तब उनके कोषाध्यक्ष ने पाण्डुलिपि पर यही मुहर अङ्कित कर दी।

३. वस्तु-तत्त्व

वीरभानूदय द्वादश-सर्गात्मक काव्य-ग्रन्थ है।[१] यह कुल ८८१ श्लोकों में

श्रीवीरभानुरथ मन्त्रिगणैः समेत । श्रीविन्ध्यशैलशिखरे कनकासनस्थः श्रीरामचन्द्रयुवराजपदं विभो (विधे) जे ॥'

१. प्रकाशित प्रति में प्रारम्भ में ३५ पृष्ठों में 'फोरवर्ड', 'प्रिफेस' और 'क्रिटिकल एनालिसिस' है। इसके पश्चात् १४२ पृष्ठों मे मूल संस्कृत अंश, ५० पृष्ठों में अंग्रेजी सारानुवाद और ८ पृष्ठों में 'इंडेक्स' है। यह प्रकाशित प्रति भी अब दुर्लभ है। सन् १९५५ में मैंने बिछिया, रीवा, के पं० चिन्तामणि मालवीय (भूत० प्राचार्य डिग्री कालेज, सीधी) से

हैं[1], जिनमें से १२ श्लोक सर्ग-समाप्ति के सूचक और परस्पर समान हैं।[2] अतः यह वास्तव में ८७० श्लोकों की रचना है।

प्रथम सर्ग में कवि ने बघेलों का वंश-वर्णन किया है। यह वर्णन राजा भीम से प्रारम्भ होता है।

'बघेल वंश में शत्रुओं का नाशक, नीतिमान्, विद्वान् एवं पराक्रमी राजा भीम हुआ। उसके पुत्र रामचन्द्रदेव ने पृथ्वी जीती और राजभवनों से सज्जित गहोरा नगरी में रह कर शासन चलाया। वह कृष्णभक्त था। उसके पुत्र वाल्लनदेव ने दीर्घकाल तक शासन किया। वाल्लन का पुत्र बल्लारदेव गहोरा में अभिषिक्त हुआ। उसने अपना साम्राज्य बढ़ाया और उसे निष्कंटक किया। कारी के चन्देल दशराजदेव की कन्या राजलमल्ल देवी बल्लारदेव की रानी थी, जिसने अपने भवन से पूर्व की ओर बावली और वायव्य कोण की ओर तालाब खुदवाया, जो उसी के नाम से प्रसिद्ध हैं और वीरभानु ने जिसको गहरा कराया। इस तालाब के तट पर (हमारे) कुल की इष्टदेवी योतला का मन्दिर है।

बल्लारदेव का पुत्र सिंहदेव और उसका पुत्र वीरमदेव हुआ। सिंहदेव ने पूर्वजन्म की किसी स्मृति से प्रेरित होकर त्रिवेणी में प्रवेश कर शरीर त्याग कर दिया। तब शोकातुर बल्लारदेव ने पौत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया। वीरमदेव से म्लेच्छ भय खाते थे। उसने सेहुण्डा (सेवढ़ा) नगरी जीत ली और वहाँ आवास बनाया। उसने दिल्लीश्वर युवराज से भी विग्रह किया। उसकी रानी अपूर्व देवी से ज्येष्ठ पुत्र नरहरि हुआ तथा अन्य रानियों से बहुत से पुत्र हुए। नरहरि ने गहोरा में चिरकाल तक शासन किया। उसकी राजला

ग्रन्थ प्राप्त कर देखा था। वहीं के श्री रघुनन्दन मिश्र के समीप भी अन्य प्रति थी, जो अब मेरे पास है। उक्त दोनों महोदयों के प्रति मैं आभारी हूँ।

१. प्रथम सर्ग में १०१ श्लोक, द्वितीय में ७४, तृतीय में ९२, चतुर्थ में ६६, पञ्चम में १६६, षष्ठ में ४८, सप्तम में १०५, अष्टम में ४७, नवम में ४८, दशम में ४१, एकादश में ४९ और द्वादश में ४५ श्लोक हैं।

२. देखिये प्रथम सर्ग अन्तिम श्लोक —

'ऊर्ज्योत्स्नमयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्सञ्जात-कलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते।
काव्ये स्वात्मगत-प्रमेय-रचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वजस्य चरित्र-वर्णन-शुभे सर्गोऽभ्यमादोऽभवत्॥ १०१॥'

नामक रानी का पिता गङ्गा-तट पर अवस्थित गढ़ा का राजा अर्जुन था, जिसने विन्ध्याचल पर स्थित इस क्षेत्र में शिवालय बनवा कर यहाँ कर्णतीर्थ (कल्पित) स्थापित किया था। राजला से भैदचन्द्र उत्पन्न हुआ। उसने काशी, प्रयाग और गया को जीत कर शत्रुओं का संहार कर डाला। भैदचन्द्र ने गङ्गा गंता) कहलाने वाली नदी के पूर्वी तट पर गहोरा में सुन्दर भवन बनवाये, जिन्हें बाद में वीरभानु ने और सुन्दर आकार दिया।

भैदचन्द्र की रानी उद्धरणदेवी बगोसर के वीर शासक सालन की पुत्री थी। उसके गर्भ से ज्येष्ठ राजकुमार बाहरराय उत्पन्न हुआ। उसकी मृत्यु पर उसकी तीन रानियाँ सती हो गईं। तब भैदचन्द्र ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया। हम्मीर चाहुवाण (चौहान) के वंशज पूरणमल्ल की कन्या कल्याणदेवी शालिवाहन की रानी थी, जिसका पुत्र वीरसिंह हुआ। शालिवाहन की अन्य रानी (अर्यदेवी)[1] से उदयकर्ण नामक पुत्र हुआ। इसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य त्याग कर जगदीशपुरी की यात्रा की और वहाँ गज जाति के राजा पुरुषोत्तम की कन्या से विवाह कर वह उत्कल देश में ही रहने लगा। वीरसिंह की रानी सुकुमार देवी थी, जिससे वीरभानु और यामिनीभानु दो पुत्र हुए। यामिनीभानु जेठे भाई का आज्ञाकारी था। वीरभानु ने गोसाइनी नामक हैहय वंश की राजकुमारी से विवाह किया। इन सुखों के बीच शालिवाहन वृद्ध हुए और उन्होंने यमुना तट पर प्राण त्यागा।

द्वितीय सर्ग में वीरसिंह के राज्य-सञ्चालन और उनकी दिग्विजयों का वर्णन है। वीरसिंह विष्णुभक्त था। वह दानी, तेजस्वी और प्रजापालक था। वीरसिंह ने राजधानी गहोरा को विशेष रूप से बसाया और सजाया; भवनों, सड़कों और मन्दिरों का निर्माण कराया। कवि ने विस्तारपूर्वक गहोरा के चारों ओर स्थित नदी, पहाड़ और नगरी के बीच स्थित बावली, तालाब, निवासी आदि के वर्णन किये हैं।[2]

---

१. वीर० १।८४ : 'तस्यार्य (य) देवी कुलपालिकाऽऽसीत्' इस अंश के आधार पर हीरानन्द शास्त्री ने रानी का नाम अर्यदेवी (क्रिटिकल एनलिसिस, पृ० ९) और श्री लेले ने कुलपालिका (अंग्रेजी अनुवाद पृष्ठ ६) लिखा है। प्रतीत होता है कि दो में से कोई भी रानी का नाम नहीं है। 'तस्याऽप्यदेवी' यही पाठ ठीक जान पड़ता है, जिसका अर्थ होगा 'उसकी महारानी कुल (कुटुम्ब) का पालन करने के गुण से युक्त थी।'

२. वीर० २।७-३०।

अपनी रणयात्रा में वीरसिंह ने सर्वप्रथम दक्षिण में नरो-दुर्ग के विक्रमादित्य को घोर युद्ध में परास्त किया। वीरसिंह ने नरो नगरी को सुसज्जित किया। तदनन्तर उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा भाग गया। वीरसिंह ने नर्मदा में स्नान किया और नरो लौट आया। उसने भेदनीति द्वारा नारायण कुरुवंशी से बान्धव दुर्ग ले लिया; वहाँ रानियों और पुत्रों के साथ रहा। उसके सेनापति (या मन्त्री) साल्ह ने विरोधी कुरुवंशियों को यमलोक पहुँचा दिया। वीरसिंह ने गङ्गातट तक शत्रुओं को निर्मूल किया और अलर्क नगर (अरैल) में निवास किया। पूर्वजों के अनुसार उसने दिल्ली के म्लेच्छ शासकों[1] के साथ सन्धि कर ली। वीरसिंह ने रत्नपुर[2] को जीत लिया और कर उगाहा। उसने डहार[3] और सहजोर[4] जीत लिया तथा भर[5] राजा को अधीनस्थ बनाया। वीरसिंह से बब्बर (बाबर) भी भय खाता था।

वीरसिंह ने दोनों पुत्रों को नीति सिखायी और उनके विवाह सम्पन्न किये। अन्त में उसने वीरभानु को राज्य सौंप कर त्रिवेणी-वास किया।

तृतीय सर्ग के कथानायक वीरभानु की कथा प्रारम्भ होती है। वीरभानु ने गङ्गा (इलाहाबाद) में पिता की अन्त्येष्टि पूरी कर अलर्क नगर से सेना-सहित प्रस्थान किया। वह शालिवाहनपुर पहुँचा और उसने नगर देखा। अपने फुफेरे भाई रामचन्द्र को उसने नगरी दिखलाई और उसका वर्णन किया। इस वर्णन में प्रकृति-चित्रण भी है। यहीं वाटिका में कुछ दिनों सेना ने विश्राम किया। फिर वीरभानु ने राजधानी गहोरा की ओर प्रस्थान किया।

चतुर्थ सर्ग में वीरभानु की गहोरा की ओर यात्रा पूरी होती है। वह यमुना-तट पर स्थित कोटर ग्राम पहुँचता है और यमुना में स्नान कर देवस्तुति करता है। यहाँ वह विन्ध्य की तराई में स्थित तीर्थों में जाता है। कोटर से गहोरा राजधानी पहुँचने पर प्रजाजन वीरभानु का स्वागत करते हैं।

पञ्चम सर्ग में प्रारम्भ में गहोरा में वीरभानु का अभिषेक वर्णित है। इस अवसर पर अनेक अधीनस्थ राजाओं और सामन्तों ने भेंट दी। राजा वीरभानु की शोभा-यात्रा निकली। उसने उपत्यका पर स्थापित अपने कुलदेव कौरेरदेव की अर्चना की। राजा में समस्त राजोचित शुभ गुण थे।

---

१. लोदी और मुगल।

२. रतनपुर (जिला बिलासपुर)।

३. डाहल का अपभ्रंश-कैमोर-केहँजुआ का पठार, नर्मदा का उत्तरी क्षेत्र।

४. शहडोल।

५ सतना जिले के भर-वंशीय क्षत्रिय।

वह सुशासक था। उसके पास अनेक दुर्ग थे, जिनमें से एक दुर्ग के आश्रित नगर में वह रहता था। इस वर्णन के साथ सर्गान्त तक विस्तृत रूप से राज्य-तन्त्र का पाण्डित्यपूर्ण विवरण है। वीरभानु ने शत्रुओं का दमन किया और उज्जट देश को जीत लिया।

षष्ठ सर्ग में वीरभानु द्वारा *शास्त्रानुकूल नीतिपालन और राज्य-सुख-भोग* का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग में वीरभानु की प्रिय रानी राय (राज) मती गर्भवती अवस्था में स्वप्न देखती है। स्वप्न में दशों अवतार तथा अनेक देवी-देवों के दर्शन होते हैं। कल्कि को देखकर रायमती चाहती है कि 'म्लेच्छनाशक कल्कि भगवान मेरी कोख से जन्म लें।' अन्त में वैकुण्ठ से आकर वीरसिंह दर्शन देते हैं एवं गर्भस्थ शिशु को आशीर्वाद देकर राजनीति सिखाते हैं। वे बतलाते हैं कि गर्भस्थ शिशु कल्कि का अवतार है और उसमें चक्रवर्ती के चिह्न हैं। जागने पर रानी वीरभानु से स्वप्न बतलाती है और दोहद-कामना के रूप में कहती है कि उसके उद्दण्ड पिता, रत्नपुर-नरेश दादूराय को परास्त किया जाय। वीरभानु यह कामना पूरी करने का संकल्प करते हैं। तत्पश्चात् राजकुमार रामचन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन किया गया है।

अष्टम सर्ग में रामचन्द्र के विद्याभ्यास का वर्णन है। गणेश राउत नामक मन्त्री को यह कार्य सौंपा गया। कुमार ने शस्त्र-सञ्चालन, राजनीति और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। उसने गीत-नृत्य आदि कलाएँ भी सीखीं। राजा ने कुमार के सुशिक्षित होने पर गणेश राउत को पुरस्कारस्वरूप दुर्ग का आधिपत्य सौंपा और कुमार के विवाह की चिन्ता की।

नवम सर्ग में कवि ने रामचन्द्र के विवाह और यौवराज्याभिषेक का वर्णन किया है। गौरनगर (या गोरापुर) के अरिष्टनेमि गोत्र के राजा कीर्तिसिंह की पौत्री, पदार्थ देवी और माधवसिंह की पुत्री तथा रत्नसेन की बहन यशोदा के साथ विवाह स्थिर हुआ। भारद्वाज-वंशीय व्याघ्रपाद गोत्र वाले बघेलों की बारात गौरनगर में पहुँची। बारात विन्ध्यशैल (बान्धवगढ़) से गई थी। विवाह सम्पन्न हुआ। माधवसिंह ने राज्य के अतिरिक्त सारी सम्पत्ति दहेज में दे दी। रत्नसेन बहन को पहुँचाने आए।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरभानु ने मन्त्रियों से परामर्श कर रामचन्द्र को युवराज-पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार सँभाला और वीरभानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरभानु ने मन्त्रियों से परामर्श कर रामचन्द्र

को युवराज पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार संभाला और वीरभानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

दशम सर्ग में रामचन्द्र का शासनारम्भ है। पिता-पुत्र का संयुक्त शासन चल रहा था। वीरभानु विरक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर हुए और रामचन्द्र ने शत्रुओं का उन्मूलन किया। रामचन्द्र असाधारण राजा हुआ। अन्तर्वेद, कलिङ्ग और अमरकण्टक तक उसके राज्य की सीमाएँ थीं तथा उसका प्रभाव दक्षिणी सागर तक था। सुल्तान मुहम्मद अदली स्वयं उसकी शरण में आया। गान्धर्व विद्या के साकार रूप तानसेन को रामचन्द्र ने करोड़ों टंका धन पुरस्कार में दिया। राज्य-सञ्चालन की अपूर्व क्षमता के कारण रामचन्द्र का यश चतुर्दिक् छा गया।

एकादश सर्ग में रामचन्द्र की आखेट यात्रा है। रामचन्द्र धर्म में युधिष्ठिर, बल में भीम, शर-सन्धान में अर्जुन और कर्ण, अश्वारोहण में नकुल और पाण्डित्य में सहदेव को लज्जित करता था। वसन्त ऋतु में उसने आखेट यात्रा की और अनेक जन्तु मारे।

द्वादश सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र का जन्मोत्सव और काव्य का उपसंहार है। यशोदा के गर्भ से वीरभद्र का जन्म होने पर रायमती और वीरभानु को अपार आनन्द हुआ। उत्सव में धूम रही। यशोदा के माता-पिता पदार्थ दे और माधवसिंह तथा भाभी रमावती और भाई रत्नसेन ने भी उत्सव मनाया। इस अवसर पर यवनराज हुमायूँ ने अमात्य और दूतों के हाथ उपहार भेजे।

राजा वीरभानु ने पुत्र-पौत्र के साथ कुछ समय सुख के साथ बिताया। उन्होंने धर्म से राज्य का भोग किया, बल से शत्रुओं को जीता, धन से विद्वानों को तृप्त किया और सन्तति देखकर मन में सुख माना। उन्होंने सर्वथा सक्षम रामचन्द्र पर राज्य का पूर्ण भार सौंप दिया और संसार को असार मान कर त्रिवेणी-तट पर अलर्कपुर में वास किया। वहाँ उन्होंने अपनी वृद्धावस्था सार्थक की।

वीरभानु इस प्रकार गुणवान् नरेश थे। उनके तेज से सूर्य, सम्पत्ति से इन्द्र और प्रतिभा से बृहस्पति स्पर्द्धा करते थे।

अन्त में कवि ने संक्षेप में अपने सम्बन्ध में भी कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं—"विष्णु के भक्त, गुणीजनों को सन्तुष्ट रखनेवाले, गुरु और राजा की दया चाहनेवाले माधव का यह काव्य राज्याश्रित होने से यश प्राप्त करेगा।

अभयचन्द्र ऊरव्य की साध्वी पत्नी दुर्गा ने अपने पुत्र को सन्मार्ग पर लगाया। यह वीरभानूदय काव्य उसके यश रूपी गङ्गा के समान सुशोभित है। यह सदा प्रसिद्ध रहेगा।"

(ख) काव्यात्मक विश्लेषण

महाकाव्य के लक्षण और वीरभानूदय काव्य का परीक्षण

वीरभानूदयकाव्य में १६ वीं शती में उत्पन्न बघेल नरेश वीरभानु का १२ सर्गों में सम्पूर्ण चरितवर्णन किया गया है। अतः रुद्रट की व्याख्या के अनुसार यह प्रबन्ध काव्य है। साथ ही यह पद्यात्मक सर्गबन्ध संस्कृत-रचना है।

आचार्यों ने प्रबन्धकाव्य के चार प्रमुख भेद किये हैं—सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका और कथा।[१] सर्गबन्ध काव्य महाकाव्य और अन्य भी हो सकता है, जैसे अभिनन्द कृत अष्ट-सर्गात्मक कादम्बरीकथासार अथवा गीतगोविन्द आदि।[२] इसलिए महाकाव्य बनने के लिए सर्गबन्धता-मात्र लक्षण नहीं हो सकता। अभिनेयार्थ शब्द नाटक आदि मिश्र एवं दृश्य काव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है। आख्यायिका के सम्बन्ध में दण्डी[३] और हेमचन्द्र[४] ने स्पष्ट लिखा है कि वह गद्यकाव्य ही हो सकता है। हेमचन्द्र के मत से कथा गद्य और पद्य दोनों में लिखी जा सकती है।[५] साथ ही कादम्बरीकथा-सार एक सर्गबन्ध कथाकाव्य के उदाहरण के रूप में प्राप्त है।

सर्गबन्ध पद्यात्मक रचना होने से वीरभानूदय न तो अभिनेयार्थ है और न आख्यायिका। वह या तो कथा-प्रबन्ध है या चरित-प्रधान प्रबन्ध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य आते हैं।

अतः प्रबन्धों के अन्तर्गत पहले हमें वीरभानूदय का कथा के क्षेत्र में परीक्षण करना होगा।

---

१. भामह : काव्यालङ्कार : बनारस : १९८५ वि० : परि० १।१८।
२. ध्वन्यालोक : काव्यमाला २५ : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : उ० ३।७ : अभिनवगुप्त व्याख्या।
३. काव्यादर्श १।२३ : 'अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा। इति तस्य प्रभेदौ द्वौ–'
४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ अध्याय ८, पृष्ठ ३३८ : 'नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्थशंसि वक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका।'
५. वही, अ० ८ पृ० ३३८ : 'धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।'

हेमचन्द्र ने कथा के दस प्रभेद किये हैं, जिनमें आनन्दवर्धन द्वारा निश्चित प्रभेद भी सम्मिलित हैं।[१] इनमें से आख्यान किसी को नीति, आचरण, धर्म आदि समझाने की दृष्टि से कथन के रूप में प्रबन्धों के मध्य में लाया जाता है। इसके अन्तर्गत उपाख्यान भी होते हैं। निदर्शन में पञ्चतन्त्र आदि की भाँति पशु-पक्षियों की चेष्टाएं निर्णयों का आधार बनती हैं।[२] प्रवह्लिका और मतल्लिका में संस्कृतेतर भाषाओं का प्रयोग होता है। मणिकुल्या में आज-कल के जासूसी उपन्यासों की भाँति वस्तु का प्राकट्य अन्त में होता है। खण्डकथा और उपकथा आंशिक कथा या घटना पर आश्रित होती है।[३] इन आठ प्रभेदों के अन्तर्गत वीरभानूदयकाव्य पर विचार नहीं हो सकता। शेष दो अर्थात् परिकथा और सकलकथा के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन के परिकथा प्रभेद पर अभिनवगुप्त का मत है कि धर्म आदि किसी एक पुरुषार्थ को लक्षित कर प्रकार-वैचित्र्य के द्वारा अनन्त वृत्तान्तों का वर्णन प्रस्तुत करने वाली परिकथा होती है।[४] हेमचन्द्र ने यह व्याख्या स्वीकार की है और कहा है कि शूद्रक की भाँति कोई विजय का इच्छुक जब कुशल

१. काव्यानुशासन: काव्यमाला ७०: निर्णयसागर प्रेस बम्बई : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एते च कथाप्रभेदा एव।'

२. वही, अध्याय ८ पृ० ३३९ : 'प्रबन्धमध्ये पर-प्रबोधनार्थं नलाद्युपाख्यानमिवोपाख्यानमभिनयन् पठन् गायन् यदेको ग्रन्थिकः कथयति तद् गोविन्दवदाख्यानम् ।—' तथा 'तिरश्चामतिरश्चां वा चेष्टाभिर्यत्र कार्यमकार्यं वा निश्चीयते तत् पञ्चतन्त्रादिवत् धूर्तविटकुट्टिनीमत-मयूरमार्जारिकादिवच्च निदर्शनम् ।'

३. वही, अ० ८ : पृष्ठ ३४०-४१ : व्याख्या-
'लम्भाङ्किताद्भुतार्था पिशाचभाषामयी महाविषया ।
नरवाहनदत्तादेश्चरितमिव बृहत्कथा भवति ॥'
पृष्ठ-३३९-'....सार्धप्राकृतरचिता चेटकादिवत् प्रवह्लिका । प्रेत-महाराष्ट्रभाषया क्षुद्रकथा—मतल्लिका ।—यस्यां पूर्वं वस्तु न लक्ष्यते पश्चात् प्रकाश्यते सा मत्स्यहसितादिवन्मणिकुल्या ।'
पृष्ठ ३४०- : 'मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमितिवृत्तं यस्यां वर्ण्यते सेन्दुमत्यादिवत् खण्डकथा । — एकचरचरिताश्रयेण प्रसिद्धकथान्तरोपनिबन्ध उपकथा ।'

४. ध्वन्यालोक : ३।७ : अभिनवगुप्त : 'एकं च धर्मादि-पुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकार-वैचित्र्येणानन्त-वृत्तान्त-वर्णन-प्रकारा परिकथा ।'

जनों से बहुत से प्रतियोगियों को कथाएँ क्रमशः सुनता है तब इन कथाओं के संयुक्त रूप को परिकथा कहते हैं।[१] इन व्याख्याओं से हम देखते हैं कि परिकथा वृत्तान्तों का एक सङ्कलित रूप है, जो इतिवृत्तप्रधान वर्णन होता है और जिसका लक्ष्य विस्मय उत्पन्न करते हुए अलौकिक तत्व प्रस्तुत कर अन्त में कुतूहल की शान्ति करना होता है।

आनन्दवर्धन ने सकलकथा को प्राकृत में बतलाया है।[२] अभिनवगुप्त ने उसे समस्त फलों की सम्पूर्ति करनेवाली एवं इतिवृत्त-वर्णनात्मक लिखा है। हेमचन्द्र इस व्याख्या को मानते हुए सकलकथा को चरित बतलाते हैं।[३]

सकलकथा भी इतिवृत्तात्मक है और उसका भी लक्ष्य लगभग वही है, जो परिकथा का है। इसके अतिरिक्त सकलकथा के लक्षणों की अतिव्याप्ति महाकाव्यों में भी होती है, क्योंकि वे भी इतिवृत्तात्मक, चरित और समस्तफलान्त हो सकते हैं।

इन पद्यबद्ध कथाओं को वर्तमान आलोचकों ने कथा-काव्य नाम दिया है।[४] उनके आधार पर वीरभानूदयकाव्य में और कथा-काव्य में निम्नलिखित प्रमुख भेदक तत्त्व मिलते हैं—

१—कथाकाव्यों का आधार प्रणयकथाएँ होती हैं। उनमें मूलतः शृङ्गार-रस और गौण रूप से वीर-रस का परिपोषण होता है। इन कथाओं की वस्तु उत्पाद्य (पूर्णतः कल्पित) होती है। वीरभानूदय काव्य का आधार एक ऐतिहासिक राजा का जीवनचरित है, जिसकी कथा में कल्पना का बहुत कम योग है तथा इसमें प्रधान रस शान्त है, जो कथाकाव्य का प्रधान रस नहीं हुआ करता।

२—कथाकाव्य का नायक धीरशान्त कोटि का होता है। उसका जीवन समाज या जाति का प्रतिनिधि न होकर व्यक्तिमूलक होता है। वीरभानूदय काव्य का नायक राजा वीरभानु धीरोदात्त है तथा वह एक वीर, प्रजारञ्जक एवं नीतिधर्मपरायण शासक है, जिसका जीवन समाज का प्रतिनिधि है।

---

१. काव्यानुशासन : अ० ८ : पृ० ३३९-४० : व्याख्या—
'पर्यायेणबहूनां यत्र प्रतियोगिना कथाः कुशलैः।
श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभिः परिकथा सा तु॥'

२. ध्वन्यालोकः ३।७ः वृत्ति—'खण्डकथा-सकलकथयोः प्राकृतप्रसिद्धयोः।'

३. काव्यानुशासनः अ० ८ः पृ० ३४० : वृत्ति तथा व्याख्या—
'सकलकथेति। चरितमित्यर्थः।' वृत्ति—'समरादित्यवत्।'

४. हिं० सा० को० : भाग १ : कथाकाव्यः पृष्ठ १८२-८३।

३—कथाकाव्य का मूल लक्ष्य लोकरञ्जन होता है। उसमें कुतूहलजनक दृश्य विप्रलम्भ, सङ्ग्राम, कन्याहरण आदि विस्मयोत्पादक दिव्य अलौकिक शक्तियों के प्रयोग, रोमांसिक एवं साहसपूर्ण कथानक तथा अवान्तर कथाओं का बाहुल्य होता है। वीरभानूदय काव्य में इन वस्तुओं का समावेश नहीं है तथा उसका उद्देश्य चरित्र के उत्थान की प्रवृत्ति से समन्वित है।

इन कारणों से वीरभानूदय को कथाकाव्यों की कोटि में नहीं रखा जा सकता। पद्यात्मक काव्य के क्षेत्र में विश्वनाथ ने महाकाव्य के पश्चात् काव्य और खण्डकाव्य नामक दो प्रभेदों का उल्लेख किया है। शम्भूनाथसिंह ने इस प्रसङ्ग में इस प्रकार लिखा है—

"विश्वनाथ कविराज ने 'साहित्यदर्पण' में महाकाव्य का लक्षण बताने के बाद खण्डकाव्य का उल्लेख इस प्रकार दिया है—

'भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्ग-समुत्थितम् ।
एकार्थ-प्रवणैः पद्यैः सन्धि-सामग्र्यवर्जितम् ॥
खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥ ६।३२८-२९'

इस परिभाषा के अनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गबद्ध एवं एक कथा का निरूपक पद्यग्रन्थ, जिसमें सभी सन्धियाँ न हों, 'काव्य' कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्डकाव्य होता है। विश्वनाथ की इस परिभाषा का अनुसरण करके विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रबन्धकाव्य के तीन भेद किये हैं, महाकाव्य, एकार्थकाव्य और खण्डकाव्य। उनके अनुसार महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की कड़ी एकार्थकाव्य है, जिसे विश्वनाथ ने केवल काव्य कहा है। ....खण्डकाव्य में एकार्थकाव्य की भाँति पूर्ण जीवन का कोई उद्दिष्ट पक्ष नहीं होता'।[१] जिन प्रबन्ध काव्यों में किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण तो होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं, उन्हें एकार्थकाव्य कहना उचित ही है।"[२]

उपर्युक्त तर्कों से सहमत होने से पूर्व हमारे समक्ष कुछ कठिनाइयाँ हैं। प्रमुख कठिनाई है विश्वनाथ के उपर्युक्त श्लोक में पाठभेद की समस्या अर्थात् साहित्य-दर्पण के अनेक संस्करणों में 'सर्ग-समुत्थितम्' नहीं अपितु 'सर्ग-समुज्झितम्' पाठ और उसकी टीकाएँ—सर्गबन्धरहितम्, अध्यायवर्जितम्, सर्गहीनम् आदि उपलब्ध हैं। साथ ही 'सन्धिसामग्र्यवर्जितम्' की परस्पर-विरोधिनी टीकाएँ (सन्धिसामग्र्य-वर्जितम् तथा सन्धिसामग्री+अवर्जितम् के आधार

१. वाङ्मयविमर्श, द्वितीय संस्करण : पृष्ठ ३९।
२. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १ : पृष्ठ २४६-४७ : खण्डकाव्य।

पर) 'सन्धीनां सामग्रयेण समुदायेन वर्जितम्' और 'सन्धि-सामग्र्या सहितम्' प्राप्त है। एकार्थप्रवणैः के अर्थ 'एकार्थ-प्रतिपादकैः, एकवाक्यतापन्नैः, एक-विषय-प्रतिपादकैः, प्रस्तुतार्थप्रतिपादनमात्रपरैः' मिलते हैं[१]।

विश्वनाथ ने काव्य-प्रभेद के उदाहरण में भिक्षाटन और आर्याविलास नामक ग्रन्थों के नाम गिनाए हैं[२], जो अप्रसिद्ध हैं। नाम मात्र से ये ग्रन्थ सर्ग-बन्ध रचना की अपेक्षा 'एकार्थप्रवणपद्यों में निर्मित' अनिबद्ध कोटि के संघात या पर्यायबन्ध जैसे सङ्कलनात्मक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। यह भी सम्भव है कि इतिवृत्तात्मक पद्यकथा के लिए विश्वनाथ ने काव्य-प्रभेद की व्यवस्था की हो, क्योंकि वे मानते हैं कि कथा में सरस रचना गद्य में ही सम्भव है।[३] कृष्णमा-चारियर ने भिक्षाटन की गणना लघुकाव्यों के अन्तर्गत की है।[४] ऊपर हम यह देख चुके हैं कि कुछ को छोड़कर प्रायः सभी टीकाकारों ने काव्य-प्रभेद को सन्धिसमुदाय से रहित सर्गहीन प्रभेद माना है। अतः वीरभानूदयकाव्य का परीक्षण करते समय हम उसे इस प्रभेद में नहीं रख सकते, क्योंकि यह काव्य सन्धि-समन्वितं एवं सर्गबन्ध रचना है, चाहे उसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों की पूर्ति नहीं भी होती हो। साथ ही एकदेशीय कथा पर आधारित खण्ड-काव्य या चतुर्वर्गों में से एक को लेकर प्रवृत्त होने वाले लघुकाव्य[५] के अन्तर्गत भी वीरभानूदय को नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा पर आधारित एवं समस्त फलान्त रचना है, जैसा हम आगे देखेंगे। अब हम वीरभानूदय काव्य पर महाकाव्य की दृष्टि से विचार करते हैं।

---

१. साहित्यदर्पण १-रामचरणतर्कवागीश : चतुर्थ संस्करण : निर्णयसागर, बंबई : ६।३२८ : १९२२ : पृष्ठ ३७५ : २-जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३० : ३-शिवदत्त कविरत्न : वेंकटेश्वर प्रेस बंबई : पृ० ५४२ : ४—पी० वी० काणे : द्वितीय संस्करण : बंबई : १९२३ : ६।३२८।

२. साहित्यदर्पण : निर्णयसागर : बम्बई : १९२२ : ६।३२८ : पृ० ३७५।

३. वही, ६।३३२ : 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।'

४. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८०।

५. रुद्रट : काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : निर्णयसागर : बम्बई : अध्याय १६।६।

'ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैक-रसयुक्ताः॥'

संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य प्रभेद की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने किसी महाकाव्य के प्रणयन अथवा परीक्षण के लिए जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनमें कहीं मौलिक अन्तर नहीं पड़ा है। स्थूल लक्षणों में अवश्य कुछ घट-बढ़ होती रही है, जिसके कारण ये वे पूर्ववर्ती महाकाव्य, जो सम्बद्ध आचार्य के समक्ष नव-प्रसिद्ध रूप में आ जाते थे। भामह ने रामायण और महाभारत तथा अन्य पूर्ववर्ती महाकाव्यों का अवलोकन किया होगा किन्तु दण्डी ने रघुवंश एवं कुमारसम्भव पर भी विचार किया होगा। इसी प्रकार हेमचन्द्र और विश्वनाथ की परिभाषाएँ किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषध से प्रभावित होंगी। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी के महाकवि शास्त्रकारों के अनुगामी होते हुए प्रतीत होते हैं।

आचार्यों ने महाकाव्यों के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उन्हें हम स्थूल और सूक्ष्म दो तत्त्वों में बाँट सकते हैं। पहले हम स्थूल तत्त्वों पर विचार करेंगे।

१—महाकाव्य सर्गबन्ध रचना होती है।[१] ये सर्ग अत्यन्त संक्षिप्त या विस्तीर्ण नहीं होने चाहिए। उनकी संख्या ८ से अधिक होनी चाहिए। कुछ मतों के अनुसार महाकाव्य की भाषा संस्कृत ही हो सकती है।[२] वीरभानूदय द्वादश सर्गों में तथा संस्कृत पद्यों में आबद्ध रचना है। इसके सर्ग अति संक्षिप्त या अति विस्तीर्ण नहीं हैं। प्रथम सर्ग में १०१, तृतीय में ९२ पञ्चम में १६५ और सप्तम में १०५ श्लोक हैं। इतनी विस्तीर्णता अन्य महाकाव्यों में भी मिलती है। विश्वनाथ के मत से नाटक के अङ्कों की भाँति सर्गों के अन्त में भावी कथा की सूचना होनी चाहिए।[३] वीरभानूदय में तृतीय, अष्टम और नवम सर्गों में इस नियम का पालन हुआ है। महाकाव्य का नामकरण कवि, वस्तु या नायक के आधार पर होना चाहिए।[४] प्रस्तुत काव्य का नामकरण

---

१. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : काव्यादर्श (दण्डिन्) १।१४। साहित्यदर्पण : ६।३१५ 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्।'

२. साहित्य० ६।३२० : 'नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह'। तथा काव्यानुशासन : अ० ८ पृ० ३३० : 'असंक्षिप्तग्रन्थत्वं अविषमबन्धत्वं अनतिविस्तीर्णत्वं परस्पर-निबन्ध-सर्गादित्वम्……।' अग्नि० : अध्याय ३३७।२६-२७ : '…नातिविस्तरम्—नातिसंक्षिप्तसर्गकम्।' तथा ३३७।२४: 'आरब्धं संस्कृतेन यत्'।

३. साहित्य० ६।३२१ : 'सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।'

४. वही, ६।३२४-२५ : 'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा। नामास्य……।' तथा अग्नि० ३३७।३४ : 'विश्वविख्यातं नायकाख्यया।'

नायक वीरभानु के नाम पर आधारित है। साहित्यदर्पण[१] के अनुसार वीरभानूदय के सर्गों में एक वृत्तमय पद्य हैं, सर्गान्त में वृत्त-परिवर्तन होता है तथा ३ सर्ग नानावृत्तमय हैं।[२] कवि ने प्रमाणिका, उपजाति, स्वागता, भुजङ्गप्रयात, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा के प्रयोग किए हैं।[३]

२—शास्त्रकारों ने उद्दीपन और आलम्बन विभावों की लम्बी सूची प्रस्तुत की है, जिनका वर्णन वे महाकाव्य में उचित मानते हैं। इस सूची में कुछ वस्तुओं के साङ्गोपाङ्ग वर्णन भी सम्मिलित हैं।[४] वास्तव में यह सूची अनेक महाकवियों की रुचियों का सङ्कलन है।

वीरभानूदयकाव्य में प्रारम्भ में नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश[५] प्राप्त हैं।

---

१. वीर० १२।४४। एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।

२. साहित्य० ६।३२०-२१। नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥'

३. वीर० सर्ग ६, ७ और ९ : इनमें से अनेक वृत्तों का प्रयोग अग्नि-पुराण (अध्याय ३३७।२६-२८) के निर्देशों के अनुकूल है।

४ भामह : काव्यालङ्कार १।२० : अग्निपुराण ३३७।२६, २९-३१। तथा दण्डिन् : काव्यादर्श १। ६-१७ :

'नगरार्णव - शैलर्तु - चन्द्रार्कोदय - वर्णनैः।
उद्यान-सलिलक्रीडा - मधुपान - रतोत्सवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदय - वर्णनैः।
मन्त्र-दूत - प्रयाणाजि - नायकाभ्युदयैरपि॥'

एवं विश्वनाथ : साहित्यदर्पण : जीवानन्द-विद्यासागर-टीका : कलकत्ता: १९३४ : परि० ६ पृ० ५३२-३३ :।

'आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥...
सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी - प्रदोष - ध्वान्त - वासराः।
प्रातर्मध्याह्न - मृगया - शैलर्तु - वन - सागराः॥
सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनि-स्वर्ग-पुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयम-मन्त्र-पुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गा अमी इह॥'

साथ ही देखिये—रुद्रट : काव्यालङ्कार : १६।७-८ तथा हेमचन्द्र : काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ० ३३४-३७।

५. वीरभानूदयकाव्यम् : सर्ग १।१-५।

प्रकृत्यङ्गों में से यथावकाश पर्वत[1] वन[2] नदी[3] उद्यान[4] ऋतु[5], उषःकाल[6], तथा सन्ध्या[7] के वर्णन प्राप्त होते हैं। राजा और राज्य से सम्बद्ध वस्तुओं, जैसे मृगया[8] नगर[9], अभिषेक[10], नायक का अभ्युदय, नीति और शासन[11], सेनाओं के प्रयाण[12] और शिविर[13], मन्त्रणा[14], युद्ध[15], विवाह[16], और कुमारोदय[17] आदि वर्णन विस्तार के साथ लिखे गये हैं। दुष्टों के प्रति निन्दात्मक और सज्जनों के प्रति प्रशंसात्मक वचन भी कहे गये हैं।[18] सम्भोग, रतोत्सव[19] तथा विप्रलम्भ[20] और दार्शनिक चर्चाएँ[21], विरक्तिजनक, निर्वेदोत्कट[22] आदि वर्णन भी उपलब्ध हैं। महाकाव्य में प्रतिनायक के पराक्रम आदि गुणों का वर्णन करते हुए नायक द्वारा प्रतिनायक की पराजय का वर्णन होना चाहिए।[23] इस तत्त्व की पूर्ति के लिए वीरभानूदय काव्य में वीरसिंह के प्रतिनायक विक्रमादित्य परिहार तथा वीरभानु के प्रतिनायक दादूराम के प्रसङ्गों को देखा जा सकता है।[24] सूर्योदय, प्रदोष, रात्रि, अन्धकार, चन्द्रोदय, मधुपान, जलक्रीडा और रतोत्सव के जो साङ्गोपाङ्ग वर्णन निर्दिष्ट हैं, उन्हें इस काव्य में स्थान नहीं दिया गया है। प्रतिनायक के उदय से क्षुब्ध होकर जिस क्रम से नायक द्वारा मन्त्रणा, प्रयाण और युद्ध आदि के साङ्गोपाङ्ग वर्णनों की अपेक्षा लक्षणों में निर्दिष्ट है, वह भी उस क्रम से यहाँ नहीं है। इसका मूल

---

१. सर्ग २।९, २. सर्ग ११।१३,२५, ३. सर्ग २।२१-२२, ४. सर्ग ३।१७–५०, ५. सर्ग ११।९–१०, ३०–३१,३४–३५,३७,३९, ६. सर्ग ११।१८,२६, ७. सर्ग ११।३१, ८. सर्ग ११।११-४५, ६. गहोरा, सर्ग २।७–३० : मरो २।४९–५५ : शालिवाहनपुर ३।८–१६ तथा रत्नपुर ७।७१–७५, १०. सर्ग ५।१–२३, ११. सर्ग ५,६,१०, १२. सर्ग २।३१–४० : ३।२–७,११ : ९।१६–१८ तथा ११।१४–२१, १३. सर्ग ३।७१–८५, १४. सर्ग ५।५३,५८, ७०–७२,१०६,११९, १५. सर्ग २।४१-४८, १६. सर्ग ९।१-४०, १७. सर्ग १२।६–२३ वीरभद्र की उत्पत्ति, १८. सर्ग ५।४४-४५, १९. सर्ग ३।२१–२२, २६–३०; ६६–७० : सर्ग ६।४३ : सर्ग ७।.–२ : सर्ग ८।२८,३१ : सर्ग ११।६,१०,२०,३२,३५,३९। २०. सर्ग ११।४०–४१, २१. सर्ग १२।३६, २२. सर्ग १२। ३७-३८।

२३. काव्यादर्श : १।२२ : 'वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः॥'

२४. वीर० : सर्ग २।३१–४८ तथा सर्ग ७।६८–७५।

कारण यह है कि उपर्युक्त लक्षणों की पृष्ठभूमि में शृङ्गार और वीर-रस-प्रधान महाकाव्यों की ही कल्पना है। यद्यपि विश्वनाथ ने शृङ्गार, वीर और शान्त तीनों में से प्रत्येक को अङ्गीरस होने का अधिकार दिया है,[१] तथापि लक्षणों का निर्देश करते समय वे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति शृङ्गार-वीर-रसात्मक महाकाव्यों, विशेषतः किरात और शिशुपालवध का ही ध्यान रखते हैं। अतः ये सभी लक्षण शान्तरसप्रधान महाकाव्य के लिए नहीं माने जा सकते। वीरभानूदय के कवि ने शान्त रस की प्रतिष्ठापना की है और अनिवार्य प्रथाओं का पालन करते हुए भी क्रम और वस्तुवर्णन में स्वतन्त्रता ग्रहण की है।

सूक्ष्म और व्यापक तत्त्वों में हम कथानक और नायक, सन्धियाँ, लक्षित फल एवं शैली (रस और शब्दशक्ति) आदि ग्रहण कर सकते हैं।

भामह ने विषय-वस्तु की दृष्टि से महाकाव्यों के चार विभाग किये हैं—

१—घटित देवादिचरित का सूचक २—उत्पाद्यवस्तुक ३—कलाश्रित और ४—शास्त्राश्रित।[२] अग्निपुराण,[३] काव्यादर्श[४] और साहित्यदर्पण[५] में दो ही रूप ग्रहण किये गये हैं—१—इतिहास-कथा पर आधारित तथा २—सज्जनाश्रित अन्य।

रुद्रट ने महाकाव्यो के स्वरूपों, विशेषतः वस्तु-वर्णन पर विस्तृत निर्देश दिये हैं[६]। उनका मत है कि सभी प्रबन्धों के उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो भेद होते हैं। जिन काव्यों का सम्पूर्ण शरीर कवि की प्रतिभा से जनित होता है, उन्हें उत्पाद्य और जिन काव्यों का पञ्जर इतिहास-प्रसिद्ध अर्थात् रामायणादि कथाओं में पूर्व वर्णित होता है और कवि उसके सम्पूर्ण या आंशिक रूप पर अपनी काव्य-कला का प्रयोग करता है, वे अनुत्पाद्य कहलाते हैं।

जैसा पीछे लिखा आ चुका है, रघुवंश, नैषध आदि महाकाव्यों को इसी आधार पर अनुत्पाद्य माना जायगा कि उनका पञ्जर रामायण, महाभारत आदि में प्रसिद्ध है। दूसरी ओर सर्वथा कविकल्पित काव्य को ही यदि उत्पाद्य

---

१. साहित्यदर्पण : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३२ :
   शृङ्गार-वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।'
२. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१७ :
   वृत्तदेवादिचरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च।
   कलाशास्त्राश्रयञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः॥'
३. अध्याय ३३७।२५ : 'इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।'
४. परि० १।१५।
५. परि० ६ : पृष्ठ ५३२ : 'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।'
६. काव्यालङ्कार : १६।१-१८।

माना जाय तो ऐसे महाकाव्यों का सर्वथा अभाव है। अनुत्पाद्य कोटि से हट कर केवल ऐसे ही महाकाव्य सुलभ होते हैं, जिनका पञ्जर प्राचीन इतिहासों पर आधारित न होकर कवि के समकालीन इतिहासों पर आधारित हैं। रुद्रट ने उत्पाद्य महाकाव्यों के कथाबन्ध एवं ग्रथन के सम्बन्ध में जो विस्तृत निर्देश दिये हैं, उनका सर्वथा पालन नवीन इतिहास पर आधारित महाकाव्यों में हुआ है, जिन्हें हम ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य मानते हैं। रुद्रट के ये निर्देश कथा, नाटक आदि से सम्बन्ध न रखते हुए अत्यन्त स्पष्ट रूप से महाकाव्यों के लिए हैं। इसलिए हम रुद्रट से सहमत होकर ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों को ही उत्पाद्य कोटि में रखना चाहते हैं।

इस प्रकार गउडवहो, विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहसाङ्कचरित, पृथ्वीराज-विजय आदि काव्य इसी उत्पाद्य कोटि में गिने जायेंगे। वीरभानूदयकाव्य भी उत्पाद्य-वस्तु-परक है, क्योंकि उसके कथानक का आधार प्राचीन नहीं है।

रुद्रट के उत्पाद्यवस्तुपरक महाकाव्यों के अनुसार वीरभानूदय में प्रारम्भ में नगरी-वर्णन[1] तथा नायक के वंश[2] का अवतरण बतलाकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में परायण[3], शक्तित्रय (प्रभु, मन्त्र, उत्साह) से युक्त[4], प्रजारञ्जक[5] एवं विजिगीषु[6] नायक को प्रस्तुत किया गया है, जो सम्पूर्ण राज्य का विधिवत् पालन करता है।[7]

रुद्रट का कथन है कि इसके पश्चात् प्रसङ्गतः शरदादि-वर्णन करना चाहिए।[8] वीरभानूदय में ११ वें सर्ग में ऋतुओं की संक्षिप्त चर्चा है।[9] नायक

---

१. वीरभानूदयकाव्यम् : सर्ग २।७-३०।
२. वही ,, सर्ग १।
३. वही ,, सर्ग ५।३५ 'त्रिवर्गलब्धेर्भुवि दुर्लभायाः पदं नृपोऽभूत्।'
४. वही ,, ५।१५१ : 'शक्तित्रयात् शत्रुमनांसि भिन्दन्।'
५. वही ,, ५।१२६ : 'तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः।'
६. वही ,, ५।४० : 'द्विषज्जिगीषापितमानसोऽयम्।'
७ वही ,, ५।४६ : 'तथा स सप्ताङ्गविचारनिष्ठः।'
तथा ६।१ :
'स वैभवाय स्पृहयालुचित्तस्तस्यानुकूलं विदधज्जिगीषुः।
बभूव्युर्वं द्वादशराजचक्रे यथाऽभवद् दाशरथिः सुमन्त्रः।।'
८. काव्यालङ्कार : १६।१-१८।
९. श्लोक ८-११, ३०-३१, ३५, ३७-३९।

की धर्मादि वर्गों को अपने निमित्त साधना ५ वें से १२ वें सर्ग तक बतलाई गई है।[1]

रुद्रट के मत से नायक का अपना दूत या कुलीन गुणी प्रतिपक्षी का दूत नायक को सभा में पहुँच कर प्रतिनायक के उदय का वर्णन करे। इसके अतिरिक्त शत्रु के कार्यों को अन्य स्रोत से भी जाना जा सकता है। वीरभानूदय काव्य में वीरभानु को रानी रायमती दोहद-पूर्ति के रूप में अपने पिता दादूराय की अनीतिपरता का विवरण देती है और राजा दादूराय को जीतने का निश्चय करता है।[2] इसके अतिरिक्त दूतों का प्रयोग संक्षेप में पहले ही बतला दिया गया है।[3]

इसके पश्चात् रुद्रट के अनुसार शत्रु के विरुद्ध मन्त्रणा और सैन्य-प्रयाण होना चाहिए। मार्ग में जनपद, पर्वत, नदी, वनस्थली, तालाब, पवन, मरुस्थल, समुद्र, द्वीप, लोक आदि के वर्णन हों। इसी के साथ मार्ग में शिविर स्थापित होने पर युवक सैनिकों की क्रीड़ा, सूर्यास्त, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि, समाज, सङ्गीत, मधुपान और शृङ्गार (सम्भोग, विप्रलम्भ, रतोत्सव) आदि का वर्णन किया जाय। कवि पुनः कथा-सूत्र ग्रहण करे। क्रोधयुक्त प्रतिनायक समक्ष आवे और आवश्यकतानुसार नगरी-रोध का वर्णन हो। प्रातःकाल युद्ध हो और रात्रि में मधुपान, क्रीड़ा आदि। शत्रु के वर्ग में भेदनीति का प्रयोग किया जाय, व्यूहबद्ध सङ्ग्राम हो तथा कठिनाई के साथ शत्रु जीता जाय।[4]

इस अन्तिम तत्त्व के पालन के सम्बन्ध में हमारे कवि ने स्वतन्त्रता ग्रहण की है। उसने वीरभानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन पहले ही द्वितीय सर्ग में किया है और प्रतिनायक का पराक्रम-वर्णन युद्ध के साथ ही कर दिया है। युद्ध कष्ट के साथ ही वीरसिंह की विजय में परिणत होता है। तीसरे सर्ग में वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् युवराज वीरभानु (कथानायक) गङ्गातट से गह्वोरा राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं। यहीं पर सेना के प्रयाण, शिविर,

---

१. उदाहरणार्थ—धर्म : ५।९६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी···'
पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा।'
अर्थ : ५।११५ 'ततः कुबेराधिकजातलक्ष्मीः।'
काम : ६।४३ : 'पत्नीभिः कामलीला विदधति नृपतौ।'

२. सर्ग ७।६८–७९।

३. सर्ग ५।१०२ : 'चाराक्षिभिर्मण्डलमीक्षतेऽसौ।'

४. काव्यालङ्कार : १६।९-१८।

उद्यान और कामक्रीड़ा आदि का वर्णन है। वीरभानु के प्रतिनायक दादूराय (रत्नपुर) की चर्चा उपस्थित होती है, उसे जीतने का निश्चय होता है[१], किन्तु यह युद्ध दिखलाया नहीं गया।

काव्यकार ने कथानक में रघुवंश की छाया ग्रहण की है। उसने द्वितीय सर्ग में वीरसिंह का नायक की भाँति ही वर्णन किया है तथा दशम और एकादश सर्ग में वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र को भी नायक की भाँति ही प्रस्तुत किया है, तथापि पूर्व वर्णन को उपक्रम और परवर्ती वर्णन को उपसंहार रूप में लेकर शास्त्रोक्त धीरोदात्त[२] नायक रूप में वीरभानु को ही प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वीरभानु के चरित्र का उत्थान सङ्घर्षों की उपस्थिति में नहीं किया गया, तथापि उसका आधार धर्म और न्याय-प्रियता होने से वीरभानु के व्यक्तित्व को आदर्शोन्मुख बनाया गया है। विवाह, मृगया और पुत्र-जन्मोत्सव के सविस्तार वर्णन तथा तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ कथा में लोकरञ्जक तत्त्व लाते है।[३]

आचार्यों के मत से महाकाव्य में नाटकों की सभी सन्धियाँ होनी चाहिए[४]। वीरभानूदय का लक्ष्य है वीरभानु का कीर्ति-युक्त चरित्र-वर्णन,[५] अर्थात् एक महान् वंश के महान् राजा की जन्म से अन्त तक की सफल जीवन-झाँकी प्रस्तुत करना। इस दृष्टिकोण के साथ बघेल नामक सद्वंश के प्रतापी नरेश वीरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी के रूप में नृप-लक्षणों से युक्त वीरभानु के जन्म को[६] हम काव्य की मुखसन्धि[७] मान सकते हैं। यही कथानक का बीज और आरम्भ भी है।

---

१. वीर० : सर्ग ७।६८-७५
२. साहित्यदर्पण : ६।३१६ : 'धीरोदात्त-गुणान्वितः।'
३. काव्यादर्श : १।१९ : 'सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।'
४. भामह : काव्यालङ्कार : १।२० : 'पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तम्।' तथा विश्वनाथ : साहित्यदर्पण ६।३१७ 'सर्वे नाटकसंधयः।'
५. वीर० १२।४३ :

'काव्यं राजति राजवर्णन-घनं तत्कीर्त्तिगङ्गामृतम्।'

तथा १२।४५ :

'सत्काव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ श्रीवीरभानुप्रभोः।'

६. वही, १।८८ : अथास्य देवी सुकुमारदेवी........

सूते स्म पुत्रं नृपलक्षणं सा।'

७. दशरूपक (धनञ्जय-प्रणीत) : प्रथम प्रकाश : श्लोक २४-२५ :

वीरभानु का राज्याभिषेक[१] प्रतिमुख सन्धि[२] है। यही विन्दु की अवस्था है, जिसके पश्चात् राजा सत्ता की पुष्टि और वृद्धि में यत्नशील दिखलाई पड़ता है।[३] प्रताप की पूर्ण अभिवृद्धि के लिए वीरभानु आगे चलकर रत्नपुर के राजा और अपने पूर्वोदय के मार्ग में एक मात्र कण्टक दादूराय के दमनो का निश्चय करता है,[४] यही गर्भसन्धि है,[५] क्योंकि निष्कण्टक धर्मराज्य के उदय की प्राप्त्याशा यहीं होती है। यहीं से वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म, विवाह, यौवराज्य और धर्म-नीतिमय शासन की स्थापना में पिता क सहायता का प्रकरण आरम्भ होकर अन्त तक चलता है, जिसे हम पताका मान सकते हैं। दादूराय के उपर्युक्त प्रसङ्ग को प्रकरी के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि यह वहीं समाप्त हो जाता है। रामचन्द्र को यौवराज्य में अभिषिक्त कर वीरभानु राज्यचिन्ता से प्रायः मुक्त होकर वृत्तियों को ब्रह्मनिष्ठा की ओर मोड़ता है।[६] इस स्थिति को हम नियताप्ति नामक अर्थ-प्रकृति एवं विमर्श सन्धि मान सकते हैं।[७] काव्य के अन्तिम भाग में हम राजा वीरभानु को जीवन में पूर्ण तृप्त और मुमुक्षु रूप में देखते हैं,[८] यही कार्यावस्था, फलागम एवं निर्वहण (या उपसंहार) नामक सन्धि है।[९] इस प्रकार काव्य सु-सन्धित्व से युक्त है।

'मुखं बीज-समुत्पत्तिर्नानार्थ-रस - सम्भवा।
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भ-समन्वयात् ॥'

१. वीर० सर्ग ५।११।

२. दशरूपकः १।३०।

३. वीर० सर्ग ५-६।

४. वही सर्ग ७।६८-७५।

५. दशरूपक : १।३६।

६. वीरः सर्ग ९।४७ :

'तनय-निहित-भारो वेदरक्षावतारो
नियतकृत-विचारो, धर्मकण्ठैकहारः।
क्षितिपतिरथ गङ्गातोयसंशुद्धिचित्तो
विरलभवनिष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत् ॥'

'विहाय लोक-व्यवहारचिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः।'

७. दशरूपक : १।४३

८. वीर० १२।३० :
तथा १२।३१ : 'रराज तस्यां सुकृती दशायां विदेहभूपाल इवोपशान्तः।'

९. दशरूपक १।४८-४९ :

कुछ शास्त्रकारों का मत है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों की प्रस्तुति महाकाव्य में होनी चाहिए और उनमें से एक की फल-सिद्धि होनी चाहिए।[१] अधिक मत इस पक्ष में हैं कि चारों वर्गों की सिद्धि होनी चाहिए।[२] हम पीछे देख चुके हैं कि चरितनायक वीरभानु को त्रिवर्ग की सिद्धि प्राप्त हुई। काव्य के अन्त में वीरभानु का उपशान्त रूप उसके द्वारा चौथे पुरुषार्थ की सिद्धि प्रदर्शित करता है। इस प्रकार हम प्रस्तुत काव्य को चतुर्वर्गफलोपेत पाते हैं।[३]

शैली की दृष्टि से भी हमें वीरभानूदय में समस्त वृत्तियाँ, रीतियाँ, गुण और रस प्राप्त होते हैं। आचार्यों ने मुख्यतः रस को ही जीवित माना है।[४] इस काव्य में शान्त रस का सर्वाङ्ग-पोषण हुआ है। इसके साथ ही अलङ्कारों के भी रमणीय प्रयोग हुए हैं।

दण्डी का कथन है कि यदि महाकाव्य विद्वानों को संतोष प्रदान कर सके तो किन्हीं अङ्गों से हीन होने पर भी वह दूषित नहीं माना जायगा।[५] विशिष्ट चमत्कारों से युक्त होकर रस-परिपोष करनेवाला महाकाव्य कुछ स्थूल लक्षणों से रहित हो कर भी हीन नहीं माना जायगा। भामह[६] के दृष्टिकोण के अनुसार

---

१. साहित्यदर्पण : ६।३१८ : 'चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।'
काव्यालङ्कार (भामह) : १।२१४ 'भूयसार्थोपदेशकृत्।'

२. अग्निपुराण : ३३७।३४ : 'चतुर्वर्गफलम्।' तथा
काव्यादर्श : १।१५ : 'चतुर्वर्गफलोपेतम्।'
काव्यलङ्कार (रुद्रट) : १६।१ : चतुर्वर्ग इति—सम्यक् ज्ञानमिदध्यात्।'

३. उदाहरणार्थ वीर० सर्ग १२।२६ :
'धर्मेण भुक्त्वा पृथिवीं बलेन जित्वारिभूपान् द्रविणप्रदानैः।
सन्तर्प्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तान-विलोकनेन॥'
तथा सर्ग १२।४० :
'बाल्ये विद्या परमधिगता यौवने राज्यलक्ष्मीः।
.........तस्य को दुर्लभोऽर्थः॥'

४. अग्नि० ३३७।३१-३३ :
'सर्व - वृत्ति - प्रवृत्तञ्च सर्वभाव - प्रभावितम्।
सर्व - रीति - रसैः स्पृष्टं पुष्टं गुण-विभूषणैः॥
वाग्-वैदग्ध्य-प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्॥'

५. काव्यादर्श १।२० : 'न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु संपत्तिराराधयति तद्विदः॥'

६. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : 'महतां च महच्च यत्।'

वीरभानूदय आदर्शोन्मुख एवं उदार चरितबन्धन के महदुद्देश्य से प्रेरित है। अतः उपर्युक्त भूमिका के साथ हम वीरभानूदय काव्य को महाकाव्य स्वीकार करते हैं। राज-प्रशस्ति पर आधारित होने के कारण यह प्रशस्तिमूलक चरितप्रधान महाकाव्य है।

वीरभानूदय काव्य की शैली प्रशस्तिमूलक है तथापि वह महदुद्देश्य से प्रेरित है। काव्य का लक्ष्य एक राजा का, आश्रयदाता का यशोवर्णन है किन्तु राजा के चारित्रिक उत्थान का आधार धर्मपरायणता और नीतिकुशलता है। ग्रन्थ की वर्णनशैली जीवनचरित की शैली है। वह शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की भाँति अतिशय अलंकृत शब्द-चमत्कारपूर्ण या कोष व्याकरण आदि के पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं है। महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता का आधार बनने वाली घटनाओं का समावेश काव्य में नहीं है किन्तु लोक-परिचित वस्तुओं नगरी, देवार्चन, नीति, पुत्रोत्सव, विवाह, मृगया आदि के वर्णन प्राप्त हैं। इन्हीं आधारों पर कवि की रचना सरल, स्वाभाविक, लोकोन्मुख, धर्मप्रवण और कल्याणाभिनिवेशी बन सकी है।

वीरभानूदय में जीवन का यथार्थ किन्तु आदर्शोन्मुख चित्रण है, अतः वह सत्य और शिव से समन्वित है। कथानायक के पूर्वजों से आरम्भ कर उसके अपने जीवन के ऐतिहासिक घटना-परक पक्ष प्रकाश में लाए गए हैं। नायक का चरित्र आदर्श एवं शास्त्रानुकूल, धर्मशास्त्र के अनुयायी, समर्थ एवं सफल राजा के रूप में उतारा गया है। उसकी नीति-धर्म-परायणता ही सत्य में शिव का योग करती है। कवि ने कथा को सुसूत्र एवं पञ्चसन्धि से युक्त बनाया है और जीवन-कथा का कलात्मक, सुरुचिपूर्ण, अलंकृत एवं रसमय स्वरूप उपस्थित किया है। कथा का पर्यवसान सम्पूर्ण फल प्राप्ति, चतुर्वर्ग की सिद्धि एवं शम के पूर्ण पोषण में हुआ है। शान्त रस को प्रधान बनाकर कवि ने मुख्यतः वीर और शृङ्गार रस अङ्ग के रूप में रखे हैं। भक्ति को विशेष स्थान दिया गया है। अन्य रसों का भी स्पर्श हुआ है। इस प्रकार कथा में सुन्दर तत्त्व का समावेश सफलतापूर्वक किया गया है। शान्त रस की प्रधानता एवं स्मृत्यनुकूल जीवन-चर्या के साथ धर्मनिष्ठा और लोक-कल्याण की प्रवृत्ति का व्यापक आधार होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ में शिव तत्त्व उभर कर प्रधान बन गया है। यह समस्त काव्य प्रधान रूप में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, सात्वती वृत्ति एवं शान्त रस से परिप्लावित है। काव्य के अन्तिम भाग के निम्नलिखित श्लोकों में ये चारो वैशिष्ट्य एकत्र हो गये हैं—

'तं शान्तिवर्त्म-प्रतिपन्नचित्तं विलोक्य लोका जगदुः किलेति।
सत्यं कलौ भूपतिरेष नूनं प्रवर्त्तयत्यत्र सुविस्मयोऽसौ ॥

ददौ धनं याचक-मण्डलाय, जिगाय सर्वेन्द्रिय-वैरिवर्गम् ।
प्राणान् क्रमेणैव वशं निनाय, हित्वापि राज्यं न जहौ स राज्यम् ॥
वेदान्तसिद्धान्तविदो द्विजेन्द्रा वैशेषिका न्यायविदो महान्तः ।
मीमांसकाः साङ्ख्यनिविष्टचित्ताः पातञ्जलास्तं निषिषेविरे च ॥
आसीदेवंविध-गुणगणग्राम-विश्रामधाम—
क्षोणीशानो जगति विदित-श्रीयशा वीरभानुः ।
भानुर्यस्य प्रचुरमहसे सम्पदे देवराजो
देवाचार्यः पृथुलमतये सस्पृहत्वं जगाम ॥

भाषा और पदावली : गुण-वृत्ति-रीति

प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण काव्य में प्रायः अल्प-समासयुक्त, प्रसाद गुण से पूर्ण, सरल एवं बोधगम्य पदावली का प्रयोग किया गया है। पाठक अर्थबोध के लिए उलझा नहीं रहता। यह शैली त्वरित रस-निष्पत्ति के लिए सहायक होती है। क्लिष्ट अलङ्कारों और गूढ़ार्थों एवं अनेकार्थों से बोझिल भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। भाषा प्रयोज्य, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत है। कला-प्रदर्शन के लिए रामचन्द्र के शिक्षण और मृगया तथा वीरसिंह की रणयात्रा आदि स्थल चुने गए हैं, जो रमणीय पदों, प्रभावोत्पादक भावों और आह्लाद-जनक रसों-अलङ्कारों से पूर्ण हैं। समग्र दृष्टि से शैली शान्त रस के सर्वथा अनुकूल है। ललित एवं कोमल-कान्त-पदावली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मधुर-सरसगीतैर्लुब्धकैर्लोभ्यमाना
नरपतिमुखचन्द्रालोकनानन्दभावः ।
मदमुदितमृगीणामङ्ग-सङ्ग-स्मरान्धा
न निधनमुपजग्मुः सायकातस्य यूनः ॥[1]

प्रसादपूर्ण, सरल एवं स्निग्ध पदावली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

रामत्रयीव ज्वलनत्रयीव त्रयी श्रुतीनामिव पुष्कराणाम् ।
त्रयीव देवाधिपतित्रयीव त्रयी त्रिवेणीव रराज तेषाम् ॥[2]
प्रजानुरागाद् दृढतामुपैति प्रजाविरागात् परहस्तगामि ।
राज्यं भवेन्नीतिरियं प्रसिद्धा तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ॥[3]
जीयाज्जलजपत्राक्षो जलदाभकलेवरः ।
जलधौ सेतुकर्त्तासौ जलशायी जनार्दनः ॥[4]
विवृत्य कुसुमान्येष राजते धरणीश्वरः ।
अशोकपादपः कान्ता-सनूपुर-पदाहतः ॥[5]

१. सर्ग ११।३२ २. सर्ग १२।२५ ३. सर्ग ५।१२६
४. सर्ग ४।३८ ५. सर्ग ३।२२

रस परिवर्तनों के साथ साथ अन्य गुणों, सभी वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग काव्य में सुलभ है। माधुर्य गुण के साथ शृङ्गार रसात्मक कैशिकी की कोमल वृत्ति तथा पाञ्चाली रीति के प्रयोग निम्नलिखित श्लोकों में द्रष्टव्य है—

ये जना जित-कन्दर्पास्तत्कटाक्ष-शराहताः।
प्रमोहं प्राप्नुयुस्तेऽपि प्रेक्ष्य रूपवतीः स्त्रियः॥[१]

भजताऽऽप्युपतीन्नार्यस्त्यक्त्वा मानं न लभ्यते।
यौवनं गतमित्येव किं करोति पिकः स्वनम्॥[२]

पत्नीभिः कामलीलां विदधति नृपतौ पुष्पदामाभिरामे।
भूमिःकन्दर्पचापप्रकृतिभिरजितं तं वशं कुर्वतीभिः॥
श्रोणक्रोडैः कटाक्षैः सरसनुपममं कम्पयन्तीभिरन्त्यैः।
कामोद्दीपावतंसैः सुरुचिरवदनं याति कालो विशालः॥[३]

नगर-विविध-रथ्या-मर्दिसम्मर्द-मध्ये
नृप-सुत-वदनेन्दोः कान्ति-पीयूषधारम्।
तदनु किरण-नालासङ्गिभिर्लोचनैः स्वैः
पपुरधिगतपुण्यैर्जालमार्गं तरुण्यः॥[४]

इसी प्रकार रौद्र और वीर रसात्मक गौडी रीति, आरभटी वृत्ति और ओज गुण से पूर्ण कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अथ तुरग कदम्ब-ह्रेषया मत्त-दन्ति-
प्रलय-जलद-गर्जा-घोर-घण्टा-निनादैः।
रथ-वलयित-शिञ्जत्-किङ्किणीनां रवेण
क्षणमिति पुर-सिन्धौ कोऽपि कोलाहलोऽभूत्॥[५]

इति निगदितमात्रे तद् दर्शनाज्ञया तैः
गहनमखिलमार्गैर्व्यावृतं तत्तथैव।
भुज-परिघ-निरुद्धे जन्तु-जाले स कोपात्
सुरभि-रिपुरिति द्रागर्जितवान् व्याघ्रमुच्चैः॥[६]

अथाश्ववारा ययुरश्ववारान् पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम्।
आधोरणा हस्तिपकान्निजघ्नुर्युद्धं बभूवेत्थमतीव घोरम्॥[७]

ओज के साथ सात्त्वती वृत्ति का भी एक उदाहरण देखिये—

तं विक्रमादित्यनृपः प्रपेदे, युद्धाय चोन्मत्तकरीन्द्रयूथः।
योधाग्रणीभिः परिहारजातैर्वृतो महत्वानिव देवजातैः॥[८]

---

१. सर्ग ३।६७   २. सर्ग ३।२६   ३. सर्ग ६।४३
४. सर्ग ११।२०   ५. सर्ग ११।१९   ६. सर्ग ११।२६
७. सर्ग २।४२   ८. वीरभानूदय : सर्ग २।४१

भारती नामक व्यापक वृत्ति का करुण रस के साथ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

तस्माद्विना राजमुनिर्विलापं कृत्वा निजप्राक्तन-कर्मनिन्दः ।
प्राणान् कथञ्चित् प्रतिगृह्य राज्यं स पालयामास निरस्तशत्रुः ॥[१]

अद्भुत और भयानक रस के मिश्रण के साथ भारती वृत्ति का दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है—

विदितमथ विभिद्य प्रौढ शार्दूल-कायं
फणिपुरमुपयात वीक्ष्य लीलावराहः ।
निशित-विकट-दंष्ट्राकोटि-निर्भिन्नभूमिः
प्रहरण-भयभीतो विस्मितोऽप्यास भूयः ॥[२]

माधुर्यगुण, कैशिकी वृत्ति और शृङ्गार रस के साथ वैदर्भी रीति का एक उदाहरण देखिये । इस श्लोक में श्लेष अलङ्कार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । यह काव्य के उत्तम श्लोकों में से एक है—

नख-घात-कल-स्वनाङ्कगा परिरम्भैकनुजेन वल्लकी ।
हृदि रागवती निवेशिता रमणी रामशरीरमद् गुणैः ॥[३]

प्रसाद गुण के साथ वैदर्भी रीति का दूसरा उदाहरण देखिये—

मृषा न चोक्तं न हठो व्यधायि न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।
वाणी न रूक्षाऽभिहिताऽपि धात्री युधिष्ठिरेणेव नृपेण तेन ॥[४]

रस

दृश्य काव्य के आचार्यों ने आठ ही रस माने हैं तथा शान्त रस का निषेध किया है, किन्तु उन्होंने श्रव्य काव्य में शान्त रस को अस्वीकार नहीं किया । काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-सम्प्रदाय के प्रतिपादकों ने, जिनमें अभिनवगुप्त प्रमुख हैं, दृश्य और श्रव्य दोनों क्षेत्रों में शान्त रस का अस्तित्व मान कर उसे श्रेष्ठ रस कहा है । उन्होंने इसका स्थायी भाव शम बतलाया है ।[५] अतः महाकाव्य में शान्त की स्थिति निर्विवाद है ही ।

दशरूपक की टीका करते समय धनिक ने लिखा है कि शान्त रस अभिनेय नहीं होता, उसका नाट्य में समावेश नहीं किया जा सकता, तो भी उसका

---

१. सर्ग १।६६ २. सर्ग ११।२७
३. सर्ग ८।३१ ४. सर्ग ५।४१
५. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत आलोचना : सूचना विभाग : उत्तरप्रदेश : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ २१०,२२९-२३० ।

काव्य का विषय होना नहीं रोका जा सकता।[1] मम्मट ने निर्वेद को स्थायी भाव मान कर शान्त को नवम रस माना है।[2] रुद्रट सम्यक् ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव मानते हैं और नमिसाधु के मत से भी शान्त रस को अस्वीकार करना ठीक नहीं है।[3] विश्वनाथ ने शम को स्थायी भाव माना है तथा अनित्यता, निःसारता, परमात्मा का स्वरूप आलम्बन और पवित्र आश्रम, क्षेत्र, तीर्थ, तपोवन, साधुसङ्ग आदि को उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है; साथ ही रोमाञ्च आदि को अनुभाव एवं निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि को व्यभिचारी माना है। उन्होंने महत्त्वपूर्ण बात यह लिखी है कि शान्त रस में निरहङ्काररूपत्व आने से दयावीर में उसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता। युक्त (विषयव्यावृत्त) एवं वियुक्त (सिद्धिप्राप्त) दशा में अवस्थित शम रसत्व को प्राप्त होता है। यह वैषयिक सुख-दुःख के अभाव और तृष्णाक्षय के सुख के रूप में होता है। जब धर्मवीर, दानवीर, दयावीर और देवताविषयक रति (भक्ति) सर्वथा अहङ्कार-शून्यता में परिणत हो जाते हैं तब इनका भी शान्त रस में अन्तर्भाव हो जाता है।[4] विश्वनाथ का यह मत वीरभानूदय काव्य में शान्त रस के परिपोष का सम्पूर्ण समर्थन करता है।

हम प्रारम्भ में ही कथानायक वीरभानु में देवता-विषयक रति पाते हैं। वह पद्मपुराणोक्त विधि से यमुना में स्नान कर सूर्य, कृष्ण आदि देवताओं की स्तुति करता है[5] तथा राज्याभिषेक के पश्चात् कुल-पूजित कौबेर देव की अर्चना करता है।[6] वह राज्यारम्भ से ही युधिष्ठिर की भाँति धर्मनिष्ठ है।[7] हम

---

१. दशरूपक ४।४४ : वृत्ति—'शान्तरसस्य···काव्यविषयत्वं न निवार्यते'।

२. काव्यप्रकाश ४।३५ : 'निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तश्च नवमो रसः।'

३. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १५।१५-१६ : नमिसाधु की व्याख्या—'केचिच्छान्तस्य रसत्वं नेष्टम्। तदयुक्तम्। भावादिकारणानामत्रापि विद्यमानत्वात्।'

४. साहित्यदर्पण : जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ २५९-२६१ : 'सर्वाकारमहङ्काररहितत्वं व्रजन्ति चेत्।
अत्रान्तर्भावमर्हन्ति दयावीरादयस्तदा॥'
वृत्ति—'आदिशब्दात् धर्मवीर-दानवीर-देवताविषयरतिप्रभृतयः।'

५. वीर० : सर्ग ४।१०-५२ ६. सर्ग ५।२२-३१

७ सर्ग ५।३३—'द्वितीय-धर्मात्मज एष जातः।' तथा ५।४१ : 'युधिष्ठिरेणेव···'।

उसे कामादि-षड्वर्ग को जीतते हुए पाते हैं।[१] वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है।[२] वह ऐसे ही कार्य करता है, जो ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण के अनुकूल हों।[३] ब्रह्मपद में लीन राजा पुराणों, वेदों और स्मृतियों के प्रति आदर का भाव रखता है।[४] वह संयम-नियम की उपासना करते हुए जितेन्द्रिय रूप प्राप्त कर विष्णु को प्रसन्न रखता है।[५] वह पर-स्त्री-विमुख है।[६] वह पुण्यलाभ के लिए देवालयों और जलाशयों का निर्माण कराता है।[७] वह दूसरों के स्वत्व पर अधिकार नहीं करता।[८] वह हिंसा से बचने के लिए शास्त्रों द्वारा निषिद्ध मृगया का परित्याग कर देता है।[९] वह वर्णाश्रम धर्म को मानता है।[१०]

इसी प्रकार हम वीरभानु को दयावीर के रूप में भी पाते हैं। अभिषेक के समय पर वह बन्दियों को छोड़ देता है, बैलों का जोता जाना और गायों का दुहा जाना बन्द कराता है; क्रीड़ा के निमित्त पकड़े हुए शुक-सारिका आदि पक्षियों को भी मुक्त कर देता है।[११] वह आगे अपने कर्मचारियों के दुःख दूर करता है।[१२] वह अपने देश में अश्रुपात नहीं सहन करता।[१३]

वीरभानु के पास जो याचक पहुँच जाते हैं, वे फिर याचक नहीं रह जाते। वे इतना धन दान में पाते हैं कि उनके पुत्र-पौत्रों के लिए भी वह पर्याप्त हो जाता है।[१४] उसके सेवक उससे इतना धन पाते हैं कि वे कुबेर का उपहास करते हैं।[१५] वह जनपदों में भी धन का वितरण करता है।[१६] यह वीरभानु का दान-वीररूप है। वीरभानु उन्माद-जनक आयु (यौवन), लक्ष्मी और रूप के उत्सेक (अभिमान) से सदा दूर रहा[१७]। क्रमशः देवता-विषयक रति तथा धर्मवीरता,

---

१. सर्ग ५।५० : 'कामादि-षड्वर्ग-जय-प्रतिष्ठम्।'
२. वही ५।६७ : 'द्विजगोहितोऽभूत्।'
३. वीर० सर्ग ५।८०   ४. सर्ग ५।९६   ५. सर्ग ५।९८
६. सर्ग ५।१००   ७. सर्ग ५।११८
८. सर्ग ५।१४७ : अनेन राज्ञा परवित्तलिप्सा स्वप्नेपि नालिङ्गि··· ।'
९. सर्ग ६।३३   १०. सर्ग ६।११
११. सर्ग ५।७-८ :

स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यानपि त्याजयति स्म सद्यः ।
·································व्यसर्जयद् धर्ममतिः शुकादीन् ॥'

१२. सर्ग ५।६९   १३. सर्ग ५।११३।
१४. वीर सर्ग ५।१०५   १५. सर्ग १६०   १६. सर्ग ६।३५
१७. सर्ग ६।४५ : 'नोत्सेकवान् वयोलक्ष्मीरूपैरुन्मत्ततापदैः।'

दयावीरता और दानवीरता के उत्साह भावों को हम निरहङ्कारता में परिणत देखते हैं। इस प्रकार भक्ति और वीररस के इन अङ्गों का शम भाव में अन्तर्भाव होता चला जाता है।

इस दिशा में विचार करने पर उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित श्लोक ले सकते हैं, जिसमें उत्साह (दानवीर, धर्मवीर का स्थायीभाव) उत्पन्न होकर शम (शान्तरस) के रूप में परिणत हो जाता है—

'ददौ धनं याचकमण्डलाय जिगाय सर्वेन्द्रिय वैरिवर्गम्।
प्राणान् क्रमेणैव वशं निनाय हित्वापि राज्यं न जहौ स राज्यम्॥'[१]

वह (वीरभानु) याचकों को (जीवन के अन्तिम भाग में) दान दिया करता था, उसने समस्त इन्द्रिय रूपी वैरियों के समूह को जीत लिया था, उसने क्रमशः प्राणों को (योग द्वारा) वश में कर लिया। उसने राज्य तो त्याग दिया था पर राजापन (वीर-कर्म) नहीं त्यागा।

यहाँ राज्य त्यागने की बात एक सत्य है, जो प्रबल है और राजापन का त्याग न कर इन्द्रियों और प्राणों को वश में करने पर शौर्य प्रकट करना उसी सत्य के लक्ष्य विरक्ति, मुमुक्षुत्व आदि की पुष्टि के लिए सुन्दर तत्त्व हैं। क्रिया के लक्ष्य शम की प्राप्ति, तृष्णा का क्षय ही उत्साह को शम में परिणत कर देता है। अतः वीर रस की उद्भावना अन्त में शान्त रस में बदल जाती है।

शान्त रस का सुन्दर परिपोष निम्नलिखित श्लोकों में हुआ है।

'आलिङ्ग्यमानं जरसा वपुः स्वं विभाव्य विहाय च लोकचेष्टाम्।
धुरं धराया विनिधाय धुर्ये निजात्मजे रामगुणाभिरामे॥
श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तस्याज राज्योद्वहन-प्रयासम्।
निवर्त्य चेतो विषयाभिलाषाद्वास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम्॥'[२]

यहाँ अनित्यता आलम्बन है, जरावस्था उद्दीपन है, विचार उत्पन्न होना, राज्य पुत्र को सौंपना अनुभाव है, मति नामक सञ्चारी भाव है तथा विषयों का त्याग कर त्रिवेणी-वास करने से शम की सतत जागृति ही शम नामक स्थायी भाव है। यह भी कह सकते हैं कि निर्वेद यहाँ सञ्चारी और स्थायी दोनों रूपों में विद्यमान है। कुछ अन्य उदाहरण लीजिये—

'विहाय लोक-व्यवहार-चिन्तामचिन्तयत् ब्रह्म परं प्रशान्तः।
रराज तस्यां सुकृती दशायां विदेहभूपाल इवोपशान्तः॥'[३]
'गङ्गातरङ्गेषु कलिन्दजायाः कल्लोलमालामिलितेषु दृष्टिः।
विवेश वेश्माग्र-गतस्य तस्य सरस्वतीं द्रष्टुमिवातिगुप्ताम्॥

१. सर्ग १२।३४ २. वीर १२।२७-२९ ३. वही, १२।३०-३१

इत्थं परीवार-निषेव्यमाणः सुखेन तिष्ठन्नुपलब्धतत्वः ।
स वार्धकं वर्धितकीर्तिवल्लिर्निनाय सार्थक्यमुदार-बुद्धिः ॥'[१]

अन्य रसों के उदाहरण पीछे प्रस्तुत किये गये हैं। बीभत्स[२] और हास्य[३] के प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं। अङ्गभूत रसों के रूप में वीर और शृङ्गार ही प्रयुक्त हुए हैं। वीर रस का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

'श्री वीरसिंहस्य बलेन शौर्यात् श्रीविक्रमादित्यचमूर्विजिग्ये।
जितां स्वसेनां महतीं विलोक्य स्वयं जगामाथ रणाय धन्वी ॥'[४]

विप्रयोग शृङ्गार को निम्नलिखित श्लोक में देखा जा सकता है:—

'अपि वरतरुणीभिस्त्वजितस्तर्जनाभिः
स्मितविकसितकान्तिः सम्भ्रमात् किञ्चिदस्यात् ।
इह हि नगरवीथिं प्रेक्षितुं यामि धीते
क्षणमिह तुरगाणां धावतां कौतुकानि ॥'[५]

सम्भोग शृङ्गार के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं :—

'युवति-तनु-मृदूनां तूलिकानां निकाये
मृगमद-घुसृणाद्यैर्वासिते वासरान्ते ।
अशिथिल-परिरम्भारम्भि-कुम्भस्तनाभिः
शिशिर-समय-सौख्यं भाग्यवन्तो भजन्ति ॥'[६]

'स्त्रियं सुललितां वीक्ष्य स्मराज्ञा-वर्तिनोऽभवन् ।
विजानन्तोऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ॥'[७]

'एके सुखं लभन्ते स्म वारयोषिद्भिरावृताः ।
विपरीत-रतारम्भे शृङ्गारस्य महोदधौ ॥'[८]

'क्रीडन्ति यत्र स्फुट-वारिजाक्ष्यः प्रियैः कलाज्ञाः स्मरतन्त्रविज्ञैः ।
पीनोन्नतः-श्रोणि-कुचाः पिबद्भिस्त्वदाननं पार्वण-चन्द्रमुख्यः ॥'[९]

'तदनु मदन-लीलाचाप निर्घोषभाञ्जि प्रतिविपिनमलीनां गुञ्जितान्याविरासन्
रसिक-नृपति-चेतःप्रीतये प्रेषितानां कुसुम-समयमित्रेणेव तद् गायनानाम् ॥'[१०]

अलङ्कार एवं भावव्यञ्जना :

अलङ्कारों के क्षेत्र में वीरभानूदय काव्य में अच्छे चमत्कारपूर्ण पदों की कमी

---

१. वही १२।३७, ३९ २. वही, ११।४६ ३. वही ९।२२
४. वही २।४५ ५. वीर० सर्ग ११।४० ६. सर्ग ११।३९
७. सर्ग ३।७० ८. सर्ग ३।६८ ९. सर्ग २।१९
१०. सर्ग ११।९

दृष्टिगत होती है। व्यञ्जना के स्थल कम हैं और अभिधात्मक शैली का अधिक प्रयोग है, तो भी अलङ्कारों का प्रयोग कहीं-कहीं रमणीय है। उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग बहुत हैं। यमक, श्लेष, अनुप्रास के प्रयोग भी रुचिपूर्वक किये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अलङ्कार भी प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

अनुप्रास—'रमामजानिः कमनीयवाणिः घोणाङ्घ्रिपाणिः कृतराजहानिः ।
अनन्तसेनः प्रभया जितेनः पृथ्वोपतीनः पृथुवत्कुलीनः ॥'[१]

यमक—'यशोदया यशो-दया-सुरूप-सच्चरित्रया ।
अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥'[२]
'नय-शास्त्रविचारसोऽभवद्विनयस्योऽभ्युदयोऽस्य निरयदः ।
नलता च तथाऽवधिसयाऽनलता वाऽप्यतुलप्रतापतः ॥'[३]

श्लेष—'नखघात-कलस्वनाङ्गना परिरम्यैकभुजेन वल्लकी ।
हृदि रागवती निवेशिता रमणी राममरीरमद् गुणैः ॥'[४]
'अयमिष्टदलक्ष्मणान्वितः परदानुघ्नपराक्रमान्वितः ।
श्रूयते भरताभिवन्दितो स्वगुणाग्रामपदं न नामतः' ॥'[५]

उपमा—'बदरी फलभाराजनुधानत्राणकारणात् ।
रोपिता शौरिवाभाति सनक्षत्रावलद्युतिः ॥'[६]
'दिवसानि यथा यथा वबृधुस्तस्य गुणास्तथा तथा ।
गिरिजा इव सिन्धु-सम्मुखाः सरितः प्रावृषि नीरपूरिताः ॥'[७]
सीतेव शुद्धचरिते गिरिजेव रूपे धर्मस्थितौ द्रुपदराजसुतेव साध्वी ।
सत्ये सतीव सुरसिन्धुरिव प्रभावे वंशद्वये वितनुते हि यशो यशोदा ॥'[८]
अनल-विषम-दैन्य श्येनसम्पातभीतान्निभुवि परिरक्षन् विश्वपारावतौघान् ।
शिबिरिव शिवसेवां शीलयन् शीलराशिः शिशिरहृदनुकम्पा-सागरत्वेऽभिषेचि ॥'[९]

अनन्वय—'पयोधिराभाति यथा पयोधिरिदं विहायोऽस्ति यथा विहायः ।
दाने महत्वे महनीय माने रामो यथा राजति रामचन्द्रः ॥'[१०]

उत्प्रेक्षा—'गायन्ति यस्यां सुदृशः समन्तान्मञ्जु द्युलोकादिव देवनार्यः ।
समागताः श्रीवदना महोरासुखानि भोक्तुं दिवि दुर्लभानि ॥'[११]
'दहन्त्या स्नानमात्रेण जन्मिना कलुषव्रजम् ।
तत्पापदाह-सम्बन्धादिव श्यामलतोयया ॥'[१२]

---

१. वीर० सर्ग २।२	२. सर्ग १०।७	३. सर्ग ८।२४
४. सर्ग ८।३१	५. सर्ग ८।३८	६. सर्ग ३।४०
७. वीर० सर्ग ८।३३	८. सर्ग ९।१०	९. सर्ग ११।६
१०. सर्ग १०।२५	११. सर्ग २।२०	१२. सर्ग ४।२

अतिशयोक्ति—'धनुरानमनेन विद्विषो नमितं तेन समुन्नतं शिरः ।
धृतजीवतया पुनः कृतं कतमेषामपि जीवकर्षणम् ॥'[१]

व्यतिरेक—'बलिर्बलीयानपि दान-वारिप्रदानतोऽमून्निगडेन बद्धः ।
अयं तु नाना-नरपुङ्गवानां बिच्छेद बन्धान् मणिहेमदानैः ॥'[२]

अर्थान्तरन्यास—'स्त्रियं सुललितां वीक्ष्य स्मराज्ञावर्तिनोऽभवन् ।
विजानन्तोऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ॥[३]

स्वभावोक्ति—प्रियतम-हरिणीनां शृङ्गकण्डूविनोदैः
स्वपिति हरिणयूथं सर्वतः शाद्वलेषु ।'[४]

अत्युक्ति—'तत्पुत्रस्य तव प्रयाण-समये, जेतुं दिशां मण्डलं
धूलीभिः परिपूरिते त्रिभुवने, दीनोऽक्षिभिर्वासवः ।
ब्रह्मा विह्वलयाकुलो, रिपुवधू रिक्ता विभूषाम्बरैः
लक्ष्म्यां च बिभीषणोऽम्बुधिवृतौ निद्रा-दरिद्रायते ॥'[५]
'स्थितो नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे, वसुन्धरा नव्य-वरार्थिनीयम् ।
भीतोऽभवत् काञ्चन-शैलराजः, कपालि-सख्यं कुरुते धनेशः ॥[६]

इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण अलङ्कारों के क्षेत्र में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

कालिदास के काव्यों की छाया :

वीरभानूदय काव्य पर संस्कृत के अन्य काव्यों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । विशेष रूप से हमारा कवि कालिदास का ऋणी है । कथा-योजना, भाव और शब्दावली को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के लिए रघुवंश उपजीव्य ग्रन्थ रहा है । नीचे कतिपय श्लोक तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किये जाते हैं :—

वीरभानूदयकाव्यम्	रघुवंश०
असह्यतेजा नृपतिर्बभूव	विभावसुः सारथिनेव वायुना
तरस्विना तेन समीरणेन ।	.... ।
सद्या शिखीव प्रबलेन सम्यक्	बभूव तेनातितरां सुदुःसहः
कपोलभेदेन यथा गजेन्द्रः ॥	कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ॥
(सर्ग १।८२)	(सर्ग ३।३७)

---

१. सर्ग ८।१० २. वीर सर्ग १०।१६ ३. सर्ग ३।७०
४. सर्ग ११।१३ ५. सर्ग ९।३० ६ सर्ग १०।१८

स राज्यमस्मिन्ननघे तनूजे
निधाय तस्थौ भवने सुखेन ।
अन्ते दिनस्य द्युमणिर्यथा स्वं
दीप्तिव्रजं वायुसखे समर्प्य ॥
(सर्ग १।८३)

स राज्यं गुरुणा दत्तं
प्रतिपद्याधिकं बभौ ।
दिनान्ते निहितं तेजः
सवित्रेव हुताशनः ॥
(सर्ग ४।२६)

अथ प्रतस्थे द्विषतां जयाय
... . रक्षितमूलदेशः ॥
(सर्ग २।३१)

स गुप्त-मूल-प्रत्यन्तः......
प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।
(सर्ग ४।२६)

अथाश्ववारा मयुरश्ववारान्
पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम् ।
आधोरणा हस्तिपकान्निजघ्नु-
र्युद्धं बभूवैरपमतीव घोरम् ॥
(सर्ग २।४२)

. पत्तिः पदाति रथिनं रथेश-
स्तुरङ्गसादी तुरगाधिरूढम् ।
यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं
तुल्य-प्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम् ॥
(सर्ग ७।३७)

भजताशु पतीन्नार्य-
स्त्यक्त्वा मानं न लभ्यते ।
यौवनं गतमित्येव
किं करोति पिकः स्वनम् ॥
(सर्ग ३।२६)

त्यजत मानमलं बत विग्रहै-
र्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।
परभृताभिरितीव निवेदिते
स्मरमते रमते स्म वधूजनः ॥
(सर्ग ९।४७)

[illegible] संयतान् मोचयति स्म सर्वान्
वध्यानपि त्याजयति स्म सद्यः ।
अवाहकत्वं च धुरन्धराणां
गवामदोहत्वमथीकरच्च ॥
नर्मप्रदान् पत्रिगणान् प्रविष्टो
व्यसर्जयत् धर्ममतिः शुकादीन् ।
विमोक्षसञ्जातसुखा विरावै-
स्तदाशिषः किं जनयन्ति ते स्म ॥
(सर्ग ५।७-८)

अबन्धच्छेदं [illegible] बद्धानां
वधार्हाणामवध्यताम् ।
धुर्याणां च धुरो मोक्ष-
मदोहं चादिशद् गवाम् ॥
क्रीडा-पतत्रिणोऽप्यस्य
पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशा-
द्यथेष्टगतयोऽभवन् ॥
(सर्ग १७।१९-२०)

मृषा न चोक्तं न हठो व्यधायि
न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।
वाणी न रूक्षाऽहिताऽपि यत्नो ... ॥
(सर्ग ५।४१)

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे
न वितथा परिहास-कथास्वपि ।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वा-
गपरुषा परुषाक्षरमीरिता ॥
(सर्ग ९।८)

सम्वर्धमानः पितरं कृतार्थं
करोति तत्सङ्गमजाततोषम् ।
यथा जयन्तः पुरुहूतमङ्के
क्रीडन्...... ॥
दिने दिने तेन तयाङ्कभाजा
नृपः सुखीभूय गुरुत्वमेति ।
यथा गणेशेन मृगाङ्कमौलि-
र्यथा कुमारेण स एव देवः ॥
(सर्ग ७।९४, ९६)

उमा-वृषाङ्कौ शरजन्मना यथा
यथा जयन्तेन शची-पुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी
ननन्दतुस्तत्सदृशेन तत्समौ ॥
(सर्ग ३।२३)

इसी प्रकार यत्र-तत्र मेघदूत के साथ भी भावों या शब्दों के साम्य देखे जा सकते हैं, जैसे—

अभ्रंलिहैर्वृते शालैः
प्रांशुभिः पर्वतैरिव ।
(सर्ग ७।७२)

...... सचित्रा......
....तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः ।......
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलम्
.... ।"
(उत्तर मेघ, १)

उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां
गृहाः सचित्राश्चलकेतुमालाः ॥
(सर्ग २।२३)

साक्षादिव स्वः समुपेतमस्यां
श्रीवीरसिंहस्य विशालधर्मैः ।
(सर्ग २।५५)

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः
कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥
(पूर्वमेघ, ३०)

इसी प्रकार वीरभानूदय में कुछ अन्य काव्यों की छाया भी यत्र-तत्र प्राप्त होती है।

प्रमुख चरित्र

वीरभानूदय काव्य का कथानायक राजा वीरभानु है। कवि ने प्रमुख रूप से इसी का चरित्राङ्कन किया है। वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन करने में भी कवि ने पर्याप्त उत्साह प्रदर्शित किया है। साथ ही वीरभानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन भी सुरुचिपूर्ण है। यही तीन काव्य के प्रमुख पात्र हैं। इनके अतिरिक्त वीरसिंह के पूर्वज-वंशधरों और रानियों के तथा वीरभानु और रामचन्द्र के कुछ सहकारियों के भी उल्लेख हैं, जिनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है। रानियों के सम्बन्ध में चर्चा करते समय उनमें पातिव्रत, देवभक्ति, लोककल्याण आदि गुण प्रदर्शित किये गए हैं। वल्लारदेव की रानी राजलमल्ल देवी ने गहोरा में तालाब खुदवाया और उसके तट पर

शीतला देवी की प्रतिष्ठापना की तथा बावली बनवाई।[१] भैदचन्द्र के ज्येष्ठ राजकुमार वाहरराय की मृत्यु होने पर उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन रानियाँ सती हो गईं।[२] वीरभानु की रानी राजमती ने गर्भवती अवस्था में स्वप्न में दशावतारों के दर्शन किये।[३] उसने दोहद पूर्ति के रूप में अपने पिता को धर्मनीति-परायण बतला कर वीरभानु से उसको जीतने के लिए कहा।[४] रामचन्द्र की रानी यशोदा गङ्गा-जल से ही सदा स्नान करती थी और धर्माचरण में ही समय व्यतीत करती थी।[५]

१—वीरभानु :

कवि ने कथानायक वीरभानु को अत्यन्त उदात्त रूप में चित्रित किया है। वह 'नेता' के शास्त्रोक्त गुणों[६] से युक्त है तथा महाकाव्य के लिए आवश्यक धीरोदात्त कोटि का नायक है।[७]

वीरभानु का जन्म सद्गुणों और समस्त पुण्यों से पूरित बघेल वंश में हुआ।[८] वह दिग्विजयी सम्राट् वीरसिंह (और सुकुमार देवी) का ज्येष्ठ पुत्र, अतः जन्म से साम्राज्य का उत्तराधिकारी था।[९] वह बघेल वंश के प्रतापी नरेश भीम और वीरम के वंश का केतु था[१०], जिनका गोत्र भारद्वाज व्याघ्रपाद था।[११]

वीरभानु में धर्म-प्रवणता का गुण प्रमुख रूप से प्रारम्भ से ही विद्यमान था। पिता वीरसिंह का त्रिवेणी में और्ध्वदैहिक कृत्य पूर्ण कर युवराज अवस्था में ही राजधानी गहोरा की ओर लौटते समय कोटर तीर्थ में हम उसे यमुना में स्नान और देवस्तुति करते हुए पाते हैं। इन स्तुतियों से वीरभानु कृष्णोपासक सिद्ध होता है।[१२] मार्ग में वह गुप्त-वाराणसी तीर्थ की यात्रा भी करता है।[१३] गहोरा

१. वीर० १।२४-३० २. वही, सर्ग १।६४-६५
३. वही सर्ग७।१-६० ४. वही, सर्ग ७।६६-७४
५. वही, सर्ग १२।३-५
६. दशरूपक (धनञ्जय) : २।१-२ :
'नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियम्वदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान-समन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्र-चक्षुश्च धार्मिकः॥'
७. वही, २।४-५ : 'महासत्त्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥'
८. वीर० सर्ग १।५ : 'साद्गुण्य-समस्तपुण्य-सम्पूरितं तत्कुलम्।'
९ सर्ग १।८६-९० १०. सर्ग ५।१४६-४७
११. सर्ग ९।१५, २१, २८। १२. सर्ग ४।१-५२ १३ स. मं ४।५३-५७

में राज्याभिषेक होने पर राजा वीरभानु सर्वप्रथम बघेलों के कुलदेव कोवेरदेव की अर्चना करता है।[१] कवि ने राजा वीरभानु को 'द्वितीय धर्मात्मज'[२] कहकर उसकी युधिष्ठिर के साथ तुलना की है।[३] वीरभानु काम आदि षड्वर्ग के जीतने में प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहता है।[४] वह नित्य ही आतिथ्य सत्कार में लीन रहता है।[५] वह जानता है कि अन्यायमार्ग पर चलने वाले राजा समूल नष्ट हो जाते हैं, अतः वह न्याय पर दृढ़ता के साथ प्रवृत्त होता है।[६] वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है[७] तथा दयावश राज्याभिषेक के समय बन्दियों की मुक्ति एवं बैलों के 'अवाहकरत्व' का आदेश देता है और क्रीड़ा में सहायक शुक आदि पक्षियों को भी मुक्त करा देता है।[८] वीरभानु ने भृत्यों का भी कष्ट दूर किया।[९] वह ऐसे ही कार्य करता था जो ऐहिक और आमुष्मिक (पारलौकिक) दोनों प्रकार के कल्याण कर सकें।[१०] वह व्यसनों से मुक्त था। उसकी शास्त्रों और धर्मग्रन्थों में रुचि और निष्ठा थी। वह धर्म से सम्बद्ध विवादों पर स्वयं निर्णय देता था तथा ब्रह्मयज्ञ आदि किया करता था। वह जितेन्द्रिय था तथा यम-नियम आदि का पालन एवं विष्णु की भक्ति करता था, साथ ही वह शङ्कर के चरणों का उपासक भी था।[११] वह अत्यन्त दानशील[१२] और दयालु था[१३]। अपने देश में वह अश्रुपात नहीं देख सकता

---

१. सर्ग ५।२२-३१। २. सर्ग ५।३३ ३. सर्ग ५।४१

४. सर्ग ५।५० : 'कामादिषड्वर्ग-जयप्रतिष्ठम्।'
मृषा न चोक्तं न हठो व्यधायि, न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि।
वाणी न रूक्षाऽभिहिताऽपि शत्रौ, युधिष्ठिरेणेव नृपेण तेन॥'

५. सर्ग ५।६२ 'तस्यातिथौ सत्कृतिरस्ति नित्यम्।'

६. सर्ग ५।६६ : 'अन्यायमार्ग-प्रवणाः समूलं
जग्मुर्गमिष्यन्ति च यान्ति नाशम्।
महीभृतस्तन्नय-मार्ग एव, प्रवर्तते ...।' तथा सर्ग ५।१२१

७. सर्ग ५।६७ ८. सर्ग ५।७-८ ९. सर्ग ५।६७

१०. सर्ग ५।८० : 'यदैहिकामुष्मिकधर्मयोग्यं, तत्कर्म कर्तव्यमनोदृशं नो।'

११. सर्ग ५।९४, १०० : पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा।' तथा
'प्रभान् विवेकी नियमानुपास्ते हरि-प्रसत्त्यै विजितेन्द्रियोऽयम्।
हरि-प्रसादेन नरर्दुरापा धर्मादयो नेति जनः कृतार्थः॥'

१२. सर्ग ५।१०५

१३. सर्ग ५।११० :
'सांसारिकैः कष्टशतैरजस्रं तप्ताः प्रजाः सन्ति दयाजलौघैः।
सेव्या भवन्तीति विचार्य राजा दमापरस्तास्वसृजत् सुखानि॥'

था।[1] वह लोकनिन्दा से भय खाता था। उसने पुण्यार्जन के लिये देवालयों और जलाशयों के निर्माण कराये थे।[2] राजलमल्ल देवी द्वारा खनाए हुए तालाब को उसने ही गहरा कराया था[3]। वह चरित्रहीन सुन्दरियों की चर्चा से भी विरक्त था तथा पर-स्त्री-विमुख था।[4] वह शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मों को कभी नहीं करता था।[5] उसने पराये धन का लोभ कभी नहीं किया।[6] वह वर्णाश्रम का परिपालक था।[7] उसने प्रमादवश भी पाप नहीं किया।[8] उसने हिंसा से दूर रहने के लिए मृगया का भी त्याग कर दिया था।[9] उसने नवीन वय, लक्ष्मी और रूप का कभी अभिमान नहीं किया।[10]

वीरभानु का व्यक्तित्व राजोचित गुणों से पूर्ण था। उसने विचार किया कि शत्रुओं की भूमि जीत लेनी चाहिए। उसने एक दुर्ग (बान्धवगढ़ ?) का आश्रय लेकर शत्रुओं को जीतने का निश्चय किया।[11] इसके लिए उसने सप्ताङ्ग-नीति का अवलम्बन किया।[12] उसने युद्ध के लिए समर्थ सेना का निर्माण किया।[13] अर्जुन की भाँति नीतिज्ञ राजा वीरभानु ने कोष और दण्ड की व्यवस्था कर प्रताप बढ़ाया।[14] उसने घोड़े और हाथी बढ़ाए[15] तथा गुप्तचरों की नियुक्ति की।[16] वह अपनी मन्त्रणायें गुप्त रखता था।[17] उसने प्रभु, मन्त्र और उत्साह तीनों शक्तियों के प्रयोग किये तथा सन्धि, विग्रह, यान, स्थान, द्वैध और संश्रय इन छहों गुणों के उपयोग में कुशलता प्राप्त की।[18] वह प्रमादयुक्त सचिवों को हटा देता था।[19] इस प्रकार शक्तिसम्पन्न हो कर उसने शत्रुओं को निर्मूल कर

१. सर्ग ५।११३ २. सर्ग ५।११७-११८ ३. सर्ग ३।२५-२७
४. सर्ग ५।१२२, १०० :
५. सर्ग ५।१२४-निषिद्ध-कर्माणि विधातुमेव न सस्पृहोऽभूत्सुकृत-प्रसक्तः
६. सर्ग ५।१२८, १४७ ७. सर्ग ६।११ ८. सर्ग ६।२०
९. सर्ग ६।३३ १०. सर्ग ६।४५
११. सर्ग० ५।३९-४० :

अनेक दुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पत्तनमावसन् सः।
.... द्विषज्जिगीषार्पित-मानसोऽयम्॥'

१२. सर्ग ५।४६ १३. सर्ग ५।६४-६५
१४. सर्ग ५।७४ 'तस्मान्नरेन्द्रोऽर्जुनवन्नयज्ञः कोशेऽपि दण्डेऽप्यभवत् सयत्नः
१५. सर्ग ५।६५-८८ : सर्ग ६।३६-३९
१६. सर्ग ५।१०२-१०३, १३१, १५१
१७. सर्ग ५।१०६ १८. सर्ग ५।१३१, १५१-५३ १९. सर्ग ५।१३६

दिया ।[१] सहस्रों शत्रु भी उसे सहन नहीं कर सकते थे। वीरभानु के पिता वीरसिंह ने प्रायः सभी शत्रु निश्शेष कर डाले थे, अतः युद्धोन्मुख होते हुए भी वीरभानु के लिए रणयात्रा दुर्लभ थी, तथापि उसने शत्रुओं की वृद्धि नहीं होने दी और आक्रमण कर उज्जट देश को जीत लिया।[२] क्रमशः वह द्वादश राजचक्र का अधिकारी हो गया।[३] इस प्रकार हम वीरभानु को स्थिरता, दृढ़ता, प्रज्ञा, उत्साह, मान, शूरता और तेजस्विता आदि गुणों से सम्पन्न पाते हैं।

वीरभानु व्यवहार में चतुर था।[४] उसकी वाणी में अमृत था।[५] वह सज्जनों को दूर नहीं करता था और दुर्जनों एवं नीच जनों को समीप नहीं आने देता था।[६] वह प्रजा का सर्वथा अनुरञ्जन करता था, अतः लोकप्रिय था।[७] उसकी बुद्धि तीक्ष्ण और शुद्ध थी।[८] उसमें मिथ्या भाषण, हठ, कातरता, रूक्षता आदि दोष नहीं थे।[९] उसके द्वार हितैषियों के लिए कभी बन्द नहीं होते थे।[१०] वह बहुत बार बहुत लोगों से बहुत कुछ सीखा करता था।[११] वह वाग्मी[१२] और सुचिताससम्पन्न था।[१३]

कवि ने उपर्युक्त रीति से वीरभानु को नायकोचित गुणों से विभूषित तो बतलाया ही है, साथ ही उसे शास्त्रोक्त नीतियों के आधार पर एक सफल, सतर्क एवं समर्थ शासक के रूप में भी उपस्थित किया है। वह राज्य का सुयोजित सञ्चालन करता था। वह त्वरित कार्य करने में समर्थ होने से अपने कार्य सिद्ध कर लेता था।[१४] उसने दुर्ग की रक्षा के लिए ऐसे हितैषी और कुलीन कर्मचारी नियुक्त किये, जिन्हें शत्रु कभी फोड़ न सकें।[१५] यद्यपि वह एकान्त में ही राज्य के उदय के लिए मन्त्र की साधना करता था, तथापि वह प्रजा के अनुराग की प्राप्ति के लिए सभा में भी बैठता था।[१६] उसके परीक्षित कर्मचारी

---

१. सर्ग ५।५१ २. सर्ग ५।१५४-१५८ ३. सर्ग ६।१ :
'अभूद् ध्रुवं द्वादशराजचक्रे।'
४. सर्ग ५।५२ ५. सर्ग ५।१२६ ६. सर्ग ५।४४, ४०, ११४
७. सर्ग ५।१०९, १११, १२६, १२८ : ८. सर्ग ५।७१, १०७
९. सर्ग ५।४१ १०. सर्ग ५।४३
११. सर्ग ५।३४ :
'श्रुत्वा बहुभ्यो बहुधा बहूनि शिष्टेभ्य एव प्रतिपत्तिमागात्।'
१२ सर्ग ५।१०४ १३. सर्ग ६।१६
'लोकाँल्लोकमनोहरोऽयमशिषद् भद्रोक्तिभिः प्रत्यहं,
पन्थानं न शुचि विमुञ्चत जना यूयं स्वकामादितः।'
१४. वीर० सर्ग ५।४२ १५. सर्ग ५।४८-४९ १६. सर्ग ५।५३

कार्यों में प्रमाद नहीं करते थे।[१] आय-व्यय की चर्चा करते समय उचित सम्मति देने वालों का वह सम्मान करता था।[२] वह निष्ठावान् सेवकों और सामन्तों को भूमि आदि देकर सन्तुष्ट रखता था तथा सैन्य और कोष की वृद्धि करने में उनकी सहायता लेता था।[३] उसने कृषि का विकास किया[४] तथा वाणिज्य के मार्गों का निर्माण कराया।[५] वह आय के अनुसार ही व्यय करता था। वह अच्छे जाँचे हुए लोगों को ही आय-व्यय के कार्य में नियुक्त करता था तथा प्रत्येक पक्ष या मास में यथावकाश स्वयं आय-व्यय का निरीक्षण करता था। वह वर्ष के आय-व्यय की आनुमानिक राशियाँ भी स्थिर करता था[६] और सिद्धि प्राप्ति के पूर्व कर्मपथ को छोड़ता नहीं था। वह कर्मचारियों पर ही आश्रित न रह कर स्वयं देख भाल करता था। वह कार्यों को करते समय तन्द्रा और व्यसन से दूर रहता था तथा शीघ्रता के साथ कार्य करता था, जिससे विघ्न बीच में न आ जायें।[७] उसने कुबेर से भी अधिक लक्ष्मी अर्जित कर ली।[८] वह प्रजा से घूस लेने वाले कर्मचारियों का धन छीन कर उन्हें दण्डित भी करता था[९] साथ ही अन्यायी सामन्तों को दण्डित करता था और उनकी भूमि और धन छीन लेता था।[१०] उसके राज्य के अन्तर्गत सुचारु व्यवस्था से से वनों में सार्थवाह सुरक्षित रहते थे तथा पर्वत और नदियाँ भी सुविधापूर्ण थीं।[११] न वह अत्यन्त तीक्ष्ण रहता था और न अत्यन्त मृदु। वह स्मृतियों में विहित मध्यम क्रम से ही प्रवृत्त होता था।[१२] सभी मनुष्यों के लिए ऋण लेना निन्द्य है, अतः राजा वीरभानु अपनी आय के आधार पर काम चलाता था।

---

१. सर्ग ५।५७ २. सर्ग ५।५९-६० ३. सर्ग ५।६१

४. सर्ग ५।६८ ५. सर्ग ५।७८

६. सर्ग ५।८१, ८९-९१, १६१-६२ तथा सर्ग ६।४०

७. सर्ग ५।९२ :
'यत्कार्यमद्धाऽऽरभते विना तत् फलं न मुञ्चत्यवनीश्वरोऽयम् ।'
आरभ्य ये कार्यमुदासते ते न सिद्धिभाजः कथिता नयज्ञैः ।'
तथा सर्ग ५।९४

८. सर्ग ५।११५ : 'ततः कुबेराधिक-जातलक्ष्मीः ।'

९. सर्ग ५।१४०-१४१

१०. वीर० सर्ग ५।१४४ ११. सर्ग ५।१५० :
'तस्याटवी सार्थसुखप्रदाऽभूत्तस्याद्रयो राजपथा इवेष्टाः ।
तस्य स्रवन्ती पथिकव्रजानां स्वगेहवापीव तनोति शर्म ॥'

१२. सर्ग ६।४

उसने सभी व्यौहरों के ऋण चुका दिये।[१] नीतिज्ञों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर भी वीरभानु उनकी चाटुकारिता के कुचक्र में नहीं उलझता था और अनुचित कार्य कभी नहीं करता था।[२]

इस प्रकार बहुत वर्षों तक वीरभानु शासन करता है और अपने तरुण एवं सुयोग्य पुत्र रामचन्द्र का विवाह कर उसे युवराज-पद प्रदान कर देता है। यहाँ कवि ने नायक वीरभानु की निस्पृहता का पक्ष उभारा है—

तनय-निहित-भारो वेद-रक्षावतारो
नियत-कृत विचारो धर्मकण्ठैकहार ।
क्षितिपतिरथ गङ्गा-तोय-संशुद्धचित्तो
विरल भवन-निष्ठो ब्रह्मनिष्ठा-परोऽभूत् ॥[३]

वीरभानु दीर्घजीवी था। उसने पौत्र का मुख देखा और प्रभावी होने के कारण अपने मित्र मुगल सम्राट् हुमायूँ से उपहार प्राप्त किये[४]। वीरभानु ने धर्म के अनुकूल पृथ्वी का उपभोग किया, बलपूर्वक शत्रु राजाओं को जीत लिया, विद्वानों को धन से तृप्त किया और सन्तति देख कर सुख पाया।[५] उसने देखा कि उसका पुत्र राज्य करने में समर्थ है तथा प्रजा उस पर अनुराग रखती है, साथ ही उसका अपना शरीर वार्धक्य से आक्रान्त होता जा रहा है, तब संसार की गति का विचार कर उसने रामचन्द्र पर राज्य का भार रखा और स्वयं राज्यसंचालन का प्रयास त्याग दिया।[६] उसने विषयों से मन को खींच कर गङ्गा-यमुना के समीप अलर्कपुर (अरैल) में निवास किया और सांसारिक चिन्ताओं को त्याग कर ब्रह्म-चिन्तन में लीन हो गया।[७] उस उपशान्त स्थिति में वह विदेहराज जनक-सा प्रतीत होता था। उसकी यह स्थिति देख कर लोग कहते थे कि यह राजा कलियुग में सत्ययुग का प्रवर्तन कर रहा है। इस प्रकार वीरभानु ने याचकों को धन दिया तथा क्रमशः इन्द्रियों को जीत कर प्राणों को भी वश में कर लिया। दार्शनिक और विद्वान् उसके

---

१. सर्ग ५।८६ : ६।१३, १४, १७ २. सर्ग ६।३०
३. सर्ग ।४३ ४. सर्ग १२।२०-२३
५. सर्ग १२।२६ :
धर्मेण भुक्त्वा पृथिवीं बलेन जित्वारिभूपान् द्रविणप्रदानैः ।
सन्तर्प्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तान विलोकनेन ॥'
६. सर्ग १२।२७-२८
७. सर्ग १२।२९-३० :
'निवर्त्य चेतो विषयाभिलाषादुवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम् ।
...विहाय लोक-व्यवहार-चिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ॥'

समीप आ कर ज्ञान-चर्चा किया करते थे। भवन के ऊंचे भाग से वह त्रिवेणी के दर्शन किया करता था।[1]

वीरभानु ने बाल्यावस्था में विद्योपार्जन किया, यौवन में राजलक्ष्मी का उपभोग किया तथा शत्रु राजाओं को त्रस्त रखा और वृद्धावस्था में त्रिवेणी में निवास कर उसे भी सार्थक बनाया। इस प्रकार वह संसार में प्रसिद्ध यशस्वी राजा वीरभानु था, जो गुणों और शान्ति का धाम था और जिसकी तेजस्विता से सूर्य, *सम्पत्ति से देवराज इन्द्र तथा बुद्धिमत्ता से बृहस्पति स्पृहा करता था।*[2]

वीरभानु का उपर्युक्त चरित्राङ्कन यद्यपि अतिरञ्जित एवं प्रशस्तिमूलक है, तथापि इसी आधार पर कवि का लक्ष्य मानव-जीवन के चरमोत्कर्ष को प्रकट करना भी स्पष्ट होता है। भारतीय जीवन अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि को ही लक्ष्य मानता है और इसी लक्ष्य की स्थापना कवि की प्रेरणा है।

रामचन्द्र

वीरभानूदय काव्य में द्वितीय श्रेणी का चरित्राङ्कन वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का किया गया है। रामचन्द्र के विवरण में अधिक अतिरञ्जन है तथा *अलौकिक तत्त्वों का भी समावेश किया गया है।*

सातवें सर्ग में, जब रामचन्द्र गर्भ में है, उसकी माता राजमता स्वप्न में अवतारों के दर्शन करती है जिसमें कल्कि रूप, जो म्लेच्छ-नाशक है, प्रमुख है। वीरभानु के दिवङ्गत पिता वीरसिंह भी स्वप्न में ही प्रकट हो कर गर्भस्थ बालक को आशीर्वाद तथा निर्देश देते हैं और उसे *म्लेच्छनाशक कल्कि का अवतार ही* बतलाते है।[3] स्पष्ट है कि काव्य पर यह प्रभाव तत्कालीन मुस्लिम शासकों के साथ बघेलों के पीढ़ियों से चलते हुए ऐतिहासिक सङ्घर्षों के कारण है।

चक्रवर्तित्व के लक्षणों से सम्पन्न बालक रामचन्द्र का जन्मोत्सव उत्साह के साथ मनाया जाता है।[4] *तरुण अवस्था की ओर अग्रसर होने वाले कुमार को*

---

१. सर्ग १२।३१,३३-३८ :

२. सर्ग १२।३ -४ :

'आसं देवविध-गुणगणग्राम-विश्रामधाम, .
    साणीशानो जयति विदित-श्रीयशा वीरभानुः।
भानुर्यस्य प्रचुरमहसे म-पदे देवराजो.
    देवाचार्यः पृथुलमतये सस्पृहत्वं जगाम ॥'

३ वीर० सर्ग ७।८-६२   ४. सर्ग ७।८०-९२

विद्वान् मन्त्री गणेश रावत अस्त्र-शस्त्रों के सञ्चालन, मल्लविद्या, दर्शन नीति, घोड़े और हाथी के नियन्त्रण गीत-नृत्य आदि विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देते हैं जिन्हें बालक अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा के कारण अत्यंत शीघ्रता के साथ ग्रहण कर लेता है।[1] नवम सर्ग में गौर नगर के राजा कीर्तिसिंह की पौत्री यशोदा के साथ रामचन्द्र का विवाह हो जाता है और शीघ्र ही विन्ध्यशैल (बान्धवगढ़ दुर्ग) पर उसका यौवराज्याभिषेक हो जाता है। यहीं से पिता के निर्देशन में रहते हुए भी रामचन्द्र सम्पूर्ण रूप से शासन अपने हाथ में ले लेता है।

रामचन्द्र का प्रताप शीघ्र ही शत्रुओं के लिए दाहक हो गया।[2] उसने अल्पावधि में कलिङ्ग, अमरकण्टक और दक्षिण समुद्र तक बघेल राज्य की सीमा का विस्तार कर लिया।[3] रामचन्द्र गुणों का सागर था। वह गम्भीर, स्थिर, धीर, उदार और दानी था। स्वयं सुल्तान मुहम्मद अदली (सूर) उसकी शरण में आया था।[4] उसका यश अतुल्य था।[5] वह अपनी सभा के गायक तानसेन को प्रत्येक राग प्रत्येक तान और प्रत्येक प्रबन्ध पर करोड़ों टंका पुरस्कार दे चुका था तथा आठों प्रहर गीत सुनता था।[6] वह अत्यन्त शूर, गम्भीर और यशस्वी हुआ।[7] ग्यारहवें सर्ग में रामचन्द्र की मृगया का वर्णन है, जिसमें उसका उत्साह और पराक्रम सूचित होता है।

बारहवें सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के जन्म का वर्णन है। रामचन्द्र की शीलवता की ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है। वह अपने पिता वीरभानु की उपस्थिति में अपने प्रथम पुत्र के जन्म का समाचार सुनता है और यद्यपि उसके अन्तःकरण में उल्लास फूटता है, वह पिता के समक्ष लज्जित हो जाता है—

> तदाभिगुप्ताविनुखेन पूर्णः, सोल्लासितश्चः सुभवेव चन्द्रः ।
> शनैः सरस्यामिव रामचन्द्रः, पितुस्त्रपा-नम्र इवावतस्थे ॥[8]

---

१. सर्ग ८।८-१४

२. सर्ग १०।३ :
'प्रतापवह्निज्वलनैः परेषां तापाय रामो यदभूद् धुरीणः ।'

३. सर्ग १०।३ ४. सर्ग ६।१०-२१

५. सर्ग १०।२२ ६. सर्ग १०।२६-३१

७. सर्ग १०।३०-३५ ।
'अनन्यसामान्यगुणैकसिन्धुः संसारवन्द्योऽत्र रामचन्द्रः ।
औदार्य-शौर्यैक-निवासवासः परन्तपोऽयं गुरुभक्तियुक्तः ।
महागभीरः प्रगतो दयावान् स रामचन्द्रो धरणीन्द्रचन्द्रः ॥'

८. वीर० सर्ग १२।१७

काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि वीरभानु ने रामचन्द्र की क्षमता पर सन्तुष्ट होकर ही निश्चिन्त भाव से विरक्ति ग्रहण की। इस समय रामचन्द्र राज्य-संचालन में समर्थ था। वह गुणग्राही था तथा प्रजा उसे चाहती थी।[१]

३ वीरसिंह

प्रस्तुत काव्य में तीसरा महत्त्व वीरभानु के पिता वीरसिंह के चरित्राङ्कन को दिया गया है। तीसरे महत्व का अर्थ यह नहीं कि वीरसिंह तीसरी श्रेणी का पात्र है, केवल इतना ही है कि उसका वर्णन द्वितीय सर्ग में संक्षेप में किया गया है।

वीरसिंह सुरूप, मधुरभाषी, कलाओं का मर्मज्ञ, विद्या-प्रेमी, उदार, दयालु, बुद्धिमान् वाग्मी एवं संयमी था। वह शत्रुनाशक, राजाओं के लिए भयङ्कर, प्रभावी और अकम्पित था तथा उसने विशाल सेना खड़ी की थी।[२]

वीरसिंह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि उसने राजधानी गहोरा को नया रूप दिया; उसे सड़कों और भवनों से सुसज्जित किया।[३]

वीरसिंह ने बघेल राज्य का अत्यधिक विस्तार किया और शत्रुओं को नि:शेष कर दिया। उसने कितने ही दुर्गों पर अधिकार किया और नगर बसाये। बाबर मुगल भी उसके पराक्रम से भय खाता था। उसने प्रयाग (अरैल) से लेकर गढ़ा (जबलपुर) तक का भूभाग स्वाधीन कर लिया था।[४] वीरसिंह की विजयों का समस्त उल्लेख ऐतिहासिक है।

महाकाव्यों की परम्परा और वीरभानूदय काव्य

भामह ने निम्नलिखित ४ काव्य-प्रभेदों की चर्चा की है–(१) वे काव्य, जिनमें देवादिकों के पूर्वघटित चरित्रों का वर्णन हो। रुद्रट के अनुसार प्रबन्ध, जिनमें इतिहासादि (रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों) में प्रसिद्ध पञ्जर आधार

१. वही, सर्ग १२।२१
'विलोक्य भूपालनयोग्य वीर्यं प्रजानुरागास्पदमात्मजं च।'
तथा १२।२८—
'धुरं धराया विनिधाय धुर्ये निजात्मजे रामगुणाभिरामे॥'

२. वही, सर्ग २।१-६

३. सर्ग २।७ :
'स राजयामास युवा गहोरां चतुर्दिशा राजित-राजमार्गाम्।'

४. सर्ग २।४०–६८।

बनाया गया हो, इसी कोटि में आते हैं। प्रायः समस्त उत्कृष्ट महाकाव्य इसी प्रभेद के अन्तर्गत आ जाते हैं—जैसे रघुवंश आदि पञ्च महाकाव्य तथा पीछे के नलाभ्युदय, रामचन्द्रोदय, शितिकण्ठविजय, ताराशशाङ्क, राघवीय काव्य आदि।

भामह द्वारा सूचित अन्य प्रभेद हैं २. उत्पाद्य-वस्तुक, ३. कलाश्रयी और ४. शास्त्राश्रयी काव्य।

कलाश्रयी काव्य चमत्कार-प्रधान होते हैं, जिनमें यमक-श्लेष आदि के बल पर अनेकार्थ प्रयोग किये जाते हैं, जैसे राजचूडामणि दीक्षित का राघव-यादव-पाण्डवीयम्, हरदत्त का राघव-नैषधीयम् अथवा सूर्य कवि का राम-कृष्ण-विलोम-काव्य।

शास्त्राश्रयी काव्य या तो चन्द्रालोक, साहित्यदर्पण की भाँति विशुद्ध पद्यात्मक लक्षण ग्रन्थ हैं अथवा किसी आश्रयदाता को आधार बनाकर उनमें रस-अलङ्कार, नायिका-भेद आदि बतलाए गए हैं, जैसे मञ्जराजयशोभूषण, अप्पाराय-यशश्चन्द्रोदय आदि।

महाकाव्यों के क्षेत्र में दूसरा स्थान उन उत्पाद्यवस्तुक महाकाव्यों को प्राप्त है, जिन्हें आजकल ऐतिहासिक शैली के प्रबन्ध काव्य कहा जाता है। इनमें प्राचीन कथा का आधार छोड़ कर आधुनिक दृष्टि से ऐतिहासिक आधार स्वीकार किया गया है। इनमें मानव का चरित्र-वर्णन पाया जाता है। ऐसे महाकाव्य भी धार्मिक और लौकिक दो आधारों पर लिखे गये हैं। धार्मिक आधारों पर प्रणीत उत्पाद्यवस्तुक महाकाव्यों में गणनीय हैं अश्वघोष के बुद्धचरित, सौन्दरनन्द तथा पीछे के देवनन्दाभ्युदय, दिग्विजयमहाकाव्य, शङ्कराभ्युदय, पतञ्जलिचरित सत्यनाथाभ्युदय, महावीरचरित आदि। इन महाकाव्यों में नायक को मर्त्य रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे तपोबल या पूर्व जन्म के प्रभाव से दिव्य-शक्तियों से सम्पन्न बतलाया गया है। कवि ने प्रायः अपने धर्म के प्रवर्तक को दिव्यादिव्य नायक रूप में रखा है और उसका काव्य-प्रणयन का प्रमुख लक्ष्य अपने धर्म-विशेष के उत्कर्ष की साधना रहा है। इस प्रकार महाकाव्य के अनेक लक्षणों से युक्त होने पर भी ये रचनाएँ कलाश्रयी और शास्त्राश्रयी काव्यों की भाँति ही बहुत कुछ एकाङ्गी हो गई हैं। उदाहरणार्थ सौन्दरनन्द में नन्द का नायकत्व उपहासास्पद हो जाता है। उसका व्यक्तित्व बुद्ध के अलौकिक प्रभाव से आक्रान्त, अतः पराश्रित है। उसमें हृदय का पक्ष निर्बल है और ज्ञान-साधना का पक्ष प्रबल। कवि लालित्य और रञ्जनात्मकता को साधन बना कर बौद्ध मत को साध्य बनाता है और नायक नन्द एवं नायिका सुन्दरी को भिक्षु-भिक्षुणी में परिणत कर देता है। काव्य-कला का प्रदर्शन लोक-रुचि को आकृष्ट करने का साधन-मात्र है।

लौकिक आधारों पर रचित प्रायः समस्त महाकाव्य राजाओं की प्रशस्ति की भावना पर आधारित हैं। ये राजा आधुनिक दृष्टि से इतिहास के केन्द्र-बिन्दु हैं। अतः इन्हीं को वास्तव में ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य कहा जा सकता है। ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में ऐसे महाकाव्यों की रचना अच्छी संख्या में उपलब्ध होती है। नवसाहसाङ्क-चरित, पृथ्वीराज-विजय और विक्रमाङ्कदेव-चरित इस कोटि के गणनीय महाकाव्य हैं। गुजरात में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दियों में इस कोटि के अन्तर्गत कुमारपाल-चरित, वसन्तविलास, हम्मीर-महाकाव्य और कीर्तिकौमुदी जैसे सुन्दर ग्रन्थों की रचनाएं हुई हैं। इसी कड़ी में १६ वीं शती में हमारा वीरभानूदय काव्य जुड़ जाता है। १७ वीं शती में तंजौर केन्द्र में अच्युतरायाभ्युदय, अच्युतेन्द्राभ्युदय, रघुनाथाभ्युदय, रघुनाथ-भूप-विजय जैसे महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों की सर्जना हुई। अन्यत्र शिवाजी-चरित, ताराचन्द्रोदय, विद्याधराज-महाकाव्य और रावजीराव-कीर्ति-विलास जैसे महाकाव्यों के प्रणयन हुए। इन ग्रन्थों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि लौकिक-उत्पाद्य-वस्तुक, ऐतिहासिक शैली के प्रशस्तिमूलक चरित-प्रधान महाकाव्यों की सर्जना करने की प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में अत्यन्त बलवती रही है। वीरभानूदय की रचना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। इन्हीं महाकाव्यों की परम्परा में वीरभानूदय को स्थान दिया जा सकता है।

ऐतिहासिक शैली के काव्य इतिवृत्तात्मक भी होते हैं, जैसे राजतरङ्गिणी। इनका कलेवर ऐतिहासिक घटनाओं के विवरणों से भर जाने से उसकी रसवत्ता और हृद्यता क्षीण हो जाती है। इनका मूल लक्ष्य ऐतिहासिक कुतूहल का निवारण हो जाता है, उनमें सन्धियों की अन्विति नहीं होती। इसी कारण इन्हें महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

ऐतिहासिक शैली के चरित-प्रधान महाकाव्यों की शैली प्रायः जीवनचरित की शैली होती है। इनमें प्रारम्भ में ऐतिहासिक नायक के पूर्वज, माता-पिता या वंशानुक्रम का वर्णन रहता है। किसी-किसी में नायक के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन रहता है। ये प्रायः उद्देश्य-प्रधान होते हैं। इनका मूल लक्ष्य राजा की प्रशस्ति रहता है। यत्र-तत्र ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश करते हुए भी रसात्मकता को प्रधान रखा जाता है। कथावस्तु में अलौकिकता और कल्पना का समावेश भी पाया जाता है। उपर्युक्त तत्त्व नवसाहसाङ्कचरित, पृथ्वीराज-विजय, विक्रमाङ्कदेवचरित, वसन्तविलास और वीरभानूदयकाव्य में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ समान रूप से पाये जाते हैं। विशेष अन्तर यह है कि उक्त चारों महाकाव्यों में जहाँ नायक के आंशिक जीवन का चित्र है, वहाँ

वीरभानूदय में नायक के समग्र जीवन की झाँकी है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक इतिहास-तत्त्व है। वीरभानूदय में महाकाव्य की परम्पराओं (युद्ध, चन्द्रोदय, शृङ्गार क्रीडाओं के परम्परात्मक वर्णनों) का इतना परिपालन नहीं है जितना अन्यत्र प्राप्त होता है। इसमें वस्तु-कल्पना का समावेश भी बहुत कम है। इसका ऐतिहासिक आधार अधिक ठोस है। तत्कालीन स्थितियों, समाज, संस्कृति, प्रदेशों, नगरों आदि के सम्बन्ध में वीरभानूदय काव्य में अपेक्षाकृत अधिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। समग्र रूप में यह कहना उचित होगा कि काव्य-कला की दृष्टि से वीरभानूदय उक्त काव्यों से नीचे है, यद्यपि बहुत नीचे नहीं। साथ ही ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में वह उक्त काव्यों से ऊपर है। वीरभानूदयकाव्य का महत्त्व इस बात में है कि १६ वी शती में वह ऐतिहासिक शैली की काव्य-परम्परा की महत्वपूर्ण कडी बनता है, जब कि इस अवधि में अन्यत्र इस श्रेणी के महाकाव्यों की सर्जना बन्द-सी दिखाई देती है। हम पीछे देख चुके हैं कि वीरभानूदय की काव्य-शैली भी उत्कृष्ट है।

संक्षेप में यह कहना उपयुक्त होगा कि रघुवंश, कुमारसम्भव, नैषधीयचरित आदि प्रथम श्रेणी के महाकाव्यों की महनीयता के दर्शन हमें वीरभानूदयकाव्य में नहीं होते किन्तु महाकाव्य के लक्षणों की परिपाटी पर जो अन्य द्वितीय श्रेणी के महाकाव्य पर्याप्त संख्या में लिखे गये हैं, उनकी श्रेणी में स्थान पाने से वीर-भानूदय काव्य का रोका नहीं जा सकता।

(ग) काव्य में उपलब्ध ऐतिहासिक तत्त्व

वीरभानूदय काव्य में कथानायक वीरभानु के चरित्राङ्कन के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ भी प्राप्त हैं। ये सूचनाएँ निम्नलिखित तीन विभागों में बाँटी जा सकती हैं—

(१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा।

(२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति।

(३) तत्कालीन बघेलखण्ड का समाज एवं संस्कृति।

(१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा

कवि ने काव्य के प्रथम सर्ग में वीरभानु की पूर्वज-परम्परा का वर्णन किया है। संस्कृत के अन्य काव्य बघेलवंशवर्णनम् तथा इतर साहित्य को देखने से हमें पूर्वजों के कुछ नामों पर प्रस्तुत काव्य की सूचनाओं से मतभेद प्राप्त होता है। *बघेल-वंशवर्णनम् में प्रारम्भ में अधिक नाम प्राप्त हैं तथा स्थितियों में भेद है।* इस भिन्नता की चर्चा हम अगले अध्याय में बघेलवंशवर्णनम् पर विचार करते समय करेंगे और इस स्थान पर हम केवल वीरभानूदय काव्य में प्राप्त सूचनाओं पर ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रस्तुत काव्य के अनुसार पुण्यवान् बघेलवंश में भीम नामक राजा हुआ।[१] *(यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि कवि यह नहीं कहता है कि भीम इस* राजवंश का प्रवर्तक या मूल पुरुष था। साथ ही वह भीम की राजधानी भी भी नहीं बतलाता।) भीम के पुत्र राणिङ्गदेव ने कृपाण के बल से पृथ्वी को जीता और गहोरा का अधिकारी बनकर राज्यारम्भ किया।[२] यहाँ से चलकर वीरभानु तक सभी राजाओं की राजधानी गहोरा नगरी ही है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत काव्य गहोरा-शाखा की सम्पूर्ण सूचना से युक्त है।

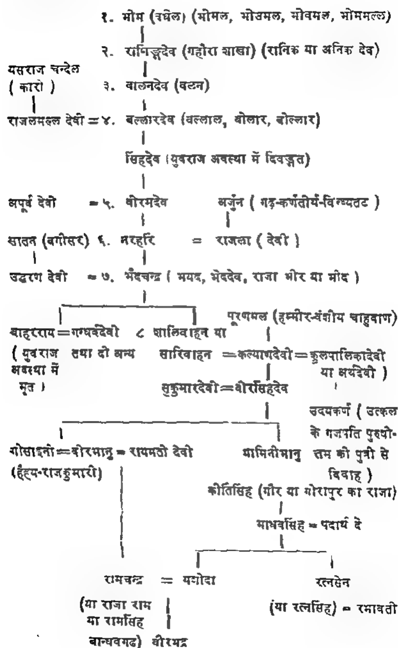
---

१. वीर० सर्ग १।६-८ : '····भीमनरेन्द्र आसीत्। ···बघेलवंश्यः···लेभे स पुत्रं····राणिङ्गदेवं····।'

२. सर्ग १।१० :

राणिङ्गदेवः पृथुराजवुद्धिजिता कृपाणस्य बलेन पृथ्वीम्।
शशास नानानृपगेहभूषां लब्ध्वा गहोरां तपन-प्रतापः ॥'

वीरभानूदय काव्य में प्राप्त वघेलवंश की सूची हम एक दृष्टि में निम्न-लिखित रूप में पाते हैं—



बल्लारदेव

जैसा उपर्युक्त वंशवृक्ष से विदित होगा, रणिङ्गदेव का पुत्र वालनदेव[1] और उसका पुत्र बल्लारदेव[2] था। अन्यत्र प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वालनदेव तक के पूर्वज ठाकुर कहे जाते थे। बल्लारदेव ही प्रथम राजा हुआ तथा उसने विजय प्राप्त कर शिलालेख खुदवाया[3]। इस समय कारी नामक स्थान पर चन्देल-वंशीय यसराजदेव शासक थे। उनकी पुत्री राजलमल्लदेवी बल्लारदेव को ब्याही गई थी। इस रानी ने राजभवन से पूर्व दिशा में गहोरा में बावली खुदवायी और वायु-कोण में विशाल तालाब का निर्माण कराया, जो कवि के समय तक उस रानी के नाम से प्रसिद्ध था, जिसे पीछे वीरभानु ने और गहरा कराया था। इस तालाब के तट पर स्थापित शीतला देवी की प्रतिमा को कवि ने कुलदेवी कहा है।[4] बल्लारदेव के जीवनकाल में ही उनके युवक पुत्र सिंहदेव ने, जिसे पूर्वजन्मों का स्मरण था, त्रिवेणी में प्रवेश कर स्वयं प्राण त्याग दिये[5]। बल्लारदेव ने सिंहदेव के पुत्र वीरम-

१. वीर० १।१९ : 'तदात्मजो वालनदेव आसीत्।'

२ वीर० १।१९ :
'पुत्रश्च संसारसमुद्रपोतो बल्लारदेवो बलिदान-शौण्ड:।'

३. वीर० क्रि० ए० पृ० १७ : गहोरा-शिलालेख-१३६० ई०। विजयों के लिए देखिये—परिशिष्ट १ (क) तथा १ (ख)—जमाबन्दियाँ तथा परिशिष्ट ४ : (शिलालेख)।

४. वीर० सर्ग १।२४-३० :
'श्रीमच्चन्देलान्वयमण्डनं यः कारीपतिः श्रीयसराजदेव।
तस्मात्जनिं प्राप्य रराज तन्वी या पर्वतेन्द्रादिव दक्षकन्या॥
स्वगेहतः पूर्वदिशाविभागे यद्वापिका राजति पूर्णतोया।
साऽस्य प्रिया राजलमल्लदेवी पत्नी तयाऽखानि तडागसिन्धुः।
स्वकीय-गेहाद्दिशि मारुतस्य तदाख्यया यः प्रथितः पृथिव्याम्॥
यः श्रीमता तत्कुलभूषणेन श्रीवीरभानुक्षितिपेन नूनम्।
अतीव निम्नो विहितो गभीर ····।
तटे ··· ·· यस्यास्ति, देवी कलिकामधेनुः। सा शीतलाख्या ·····या नः
कुलस्येष्टकरो ·· ॥'

५. वीर० सर्ग १।३१-३४ : 'बल्लारदेवेन तनूभवोऽस्यां सिंहो······।
जातिस्मरोऽभो ······। प्रागन् सुतं वीरमदेवमार्यम्।······
स्मृत्वा स किञ्चित् खलु जातु धीरः श्रीसिंहदेवः परमात्मदर्शी।
गङ्गे तनुं जह्नुसुता जलौघे यमस्वसुर्वारिभिरात्तसङ्गे॥'
इस घटना की पुष्टि जमाबन्दियों से होती है। इनके अनुसार सिंहदेव

देव का पोषण किया और उसे राज्याधिकारी बनाया[1]। वीरमदेव का सामना म्लेच्छ राजा और उनके घुड़सवार नहीं कर पाते थे। उसने सेहुँडा (सेंवढ़ा, जिला दतिया) नगरी को जीत कर वहाँ निवास किया तथा दिल्लीश्वर यवन से भी विग्रह कर लिया।[2] उसको रानी अपूर्व देवी से नरहरि उत्पन्न हुआ।[3] गङ्गा के समीप गढ नामक स्थान के राजा अर्जुन ने विन्ध्य तट पर शिवालय बनवाये थे। इस स्थान का नाम कर्णतीर्थ (वर्तमान कन्तित, उत्तर प्रदेश) था। इस

ने अपने वंश की प्रसन्नता की कामना में कोल्हू में बैठकर प्राण छोड़े: देखिये एकथा – राजा सिहदेव बेनी मह गरमारायायर के कोल्हू महं डहराइ दीन्हेनि देह इत। कै कै को हमारि सन्तानि यहाँ राज्य करे। स० १ ६१ माघवदी ३० सोमे कहं।' १९वीं शती की अन्य जमा-बन्दियों में यह संवत् १३०५ शके माघवदि ३० लिखा हुआ है। शक संवत् होने से यह १४८० ई० के समान होगा किन्तु इसके पूर्व ही इसके पुत्र वीरमदेव (१३९०-१४११ ई० की स्थिति आती है (निजामी: मलिकजादा डायनेस्टी आफ काल्पी: मध्यप्रदेश इतिहास परिषद्: भोपाल: ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख पृष्ठ २-३) अतः यह सम्वत् सन्दिग्ध है। (देखिये परिशिष्ट १ (क) तथा (ख)।)

१. वीर० सर्ग १।३५-३७:

२. वीर० १।३९:

'न सेहते तेन धनुर्भृता स्म म्लेच्छाधिनाथा: सुभटसन्दृप्ता: ।'

तथा १।४८:

'हृत्वा सहुण्डा-नगरी महीयोऽन्तामध्युवासासु किमत्र चित्रम्।

विगृह्य रेजे यवनाधिपेन दिल्लीपुरी-मण्डलिना यदेष ॥'

चौदहवीं शती के अन्तिम भाग में दिल्ली के तुगलक सुल्तानों के विरुद्ध दोआब में विद्रोह खड़ा हुआ था, जो चलता गया। इस समय काल्पी में नव-प्रतिष्ठित नासिरुद्दीन महमूदशाह (१३९०-१४११) ने १३९५ ई० में महोबा के 'मुकद्दम' वीरम बघेल पर आक्रमण किया और अगले वर्ष महोबा को नेस्तनाबूद कर दिया (तारीखे मुहम्मदी: मो० बिहामिद खानी – पृष्ठ ४७२,। बघेलों ने जौनपुर के शर्की इब्राहीम-शाह (१४००-४०) का साथ किया तथा उसके सहायक के रूप में दिल्ली के तुगलकों और काल्पी के मलिकजादा (१४१३ ई०) पर कई हमले किये (निजामी: मलिकजादा डायनेस्टी आफ काल्पी: म० प्र० इति० परि० १९५७ पृ० ३)।

३. वीर० १।४६-४७:

अर्जुन ने अपनी पुत्री राजला नरहरि बघेल को दी थी, जिससे भैदचन्द्र का जन्म हुआ।[1] भैदचन्द्र ने काशी, प्रयाग और गया आदि अनेक देशों को जीत कर शत्रुओं को समाप्त कर दिया तथा गहोरा को और भी सजाया और गङ्गा (गन्ता) नदी के पूर्वीय तट पर कलात्मक भवन बनवाये। पीछे वीरभानु ने इन भवनों को अधिक कला वैभव से समृद्ध किया[2]। बगोसर (बक्सर-बिहार)

---

१. वीर० १।५१-५३ :
'........ ... ...यो भैदचन्द्रं सुपुवेऽस्य पुत्रम्।
सा राजलाख्या महिषी सुशीला हरेर्नरादेः परनामहन्तुः ॥
पिता यदीयोऽर्जुन नामधेयो गङ्गासमीपस्य गढ़ाधिराजः।
नरादयेऽदाद्वरये यदेनां वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरीत्या ॥
येनार्जुनेनाप्तवतीयमुर्वी श्रीकर्णतीर्थस्य नितान्तशोभाम्'।
पार्थार्जुनेनैव विशाल-विन्ध्यप्रभाव-युक्तस्य शिवालयस्य ॥'

२. वीर० १।६६ : 'काशीं प्रयागं च गयां च जित्वा ....।'
तथा १।५७ ६० : भैदचन्द्र के नाम भयद, भेददेव भी मिलते हैं। इसका विवाह बक्सर में हुआ था और वहाँ तक तथा जौनपुर, कन्तित, मिर्जापुर, अरैल और प्रयाग से गहोरा तक उत्तरी क्षेत्र इसके अधिकार में थे। इसके राज्य-विस्तार तथा लोदी सुल्तानों से संघर्षों के लिए देखिये—

(१) नियामतउल्लाह : तारीखी खानजहान लोदी : ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ५ : पृष्ठ ८९, ९३-९५

(२) तारीखे फरिश्ता : ब्रिग्स : जिल्द १ : पृष्ठ ५६९ ७१ :

(३) अलबदायोनी : लो : जिल्द १ पृष्ठ ४०८ : इन समस्त उल्लेखों में भेददेव को जौनपुर के शर्की सुलतान के पक्ष में बतलाया गया है। मुस्लिम लेखकों ने राजा का नाम 'भीद' या 'भेद' लिखा है, जिसका अनूदित रूप अंग्रेजों ने 'भीर' रखा है। यह फारसी लिपि के 'रे' और 'दे' अक्षरों की लिपि के भ्रम के कारण है। साथ ही देखिये—एकत्रा परिशिष्ट १ (क)—'राजा भेददेव थानेहि आए ....सं० १४७२ के साल'। यह सं० भेददेव के जन्म का १४१५ ई० हो सकता है, क्योंकि इनके पुत्र शालिवाहन का जन्म इसी एकत्रा में सं० १४९२ (१४३५ ई०) है तथा अन्य जमाबन्दियों (परि० १—ग) में इनका राज्य सं० शक १३९४ (१४७२ ई०) है। उपर्युक्त मुस्लिम लेखक इनकी मृत्यु १४९५ ई० बतलाते हैं।

देश के राजा सातन की पुत्री उद्धरण देवी भैदचन्द्र की पत्नी थी। उसके गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र बाहरराय हुआ। यह पराक्रमी राजकुमार युवावस्था में दिवङ्गत हो गया और उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन रानियाँ उसके साथ सती हो गईं।[1]

ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से शोकग्रस्त राजा ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया। वीर हम्मीर चाहुवाण (चौहान) के वंशधर पूरणमल्ल ने अपनी पुत्री कल्याणदेवी शालिवाहन को ब्याही, जिससे वीरसिंह का जन्म हुआ।[2] शालिवाहन की अन्य रानी (अर्थदेवी) का पुत्र उदयकर्ण था। उसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य का त्याग कर उत्कल देश की यात्रा की तथा वहाँ के गज-

१. वीर० ११६१ : 'ज्येष्ठस्ततो बाहरराय आसीत्'। एकत्रा बान्धोगढ़ में शालिवाहन को ज्येष्ठ तथा बाहरराय को चौथा पुत्र बतलाया गया है। अन्य जमावन्दी (परि० १ ग०) में भेददेव द्वारा विजयगिरि की विजय और बादशाह (पातसाहि) की चढ़ाई का भी उल्लेख है। इसमें भी बाहरराय छोटा भाई है। साथ ही देखिये वीर० ११६२ : हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह बक्सर उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला केन्द्र से ३४ मील दक्षिण पूर्व है। नियामतउल्ला (ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ५, पृष्ठ ८९) ने लिखा है कि बक्सर में राय तिलोकचन्द बहलोल लोदी का प्रशासक था और भाठ के राजा (भैदचन्द्र) के साथ (१४८४-८८ ई० में) उसके संघर्ष हुए थे।' (वीर० क्रि० ए० पृष्ठ २१-२२)।

२. वीर ११६७ :

'ततः कनीयांसमदभ्रवीर्यं समाख्यया वाहनमामनन्ति।
श्री शालि-पूर्वं तमसौ विधाय राजानमापद् वसुदेव-सूनुम् ॥'

तथा ११७१ :

'तस्मात्तनूजं लभते स्म राज्ञी कल्याणदेवी स्व-कुल-प्रवृद्ध्यै।'

और ११७२ :

'यस्याः पिता पूरणमल्लनामा .... ।
श्रीचाहुवाणान्वय-चक्रवर्ती हम्मीर-वीरावतरायमाणः ॥'

वीरसिंह का जन्म जमाबन्दियों में संवत् १५२४ (१४६७ ई०) बतलाया गया है (परि० १ क)। साथ ही देखिये—वीर० क्रिटि० एन० पृष्ठ १८ : डा० हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि यह पूरणमल्ल रायसेन (मध्यप्रदेश का संभागीय केन्द्र) का वही पूरणमल्ल प्रतीत होता है, जो गहलोत राजपूत पुरबिया सल्हदी का पुत्र था। इसे 'भैया' भी लिखा गया है। (ई० डा० : ग्रन्थ ४— तारीखी खान-

वंशो राजा *पुरुषोत्तम* को पुत्री से *ब्याह कर वहीं बस गया*।[१] *वीरसिंह को* रानी सुकुमारदेवी से ज्येष्ठ पुत्र वीरभानु और उनसे छोटे यामिनीभानु हुए। यामिनीभानु (अन्यत्र जमुनीभान) बड़े भाई (राजा वीरभानु) के आज्ञापालक थे।[२] हैहय वंश की राजकन्या गोसाइनी के साथ वीरभानु का विवाह हुआ।[३]

जहान लोदी पृष्ठ १९१ और ३९७ टि०)। यह शेरशाह द्वारा १५४३ ई० में मारा गया। इस समय वह अत्यन्त वृद्ध था। शालिवाहन का राज्यारम्भ १५९५ ई० है। साथ ही देखिये इ० ग० : ग्रन्थ २१ पृ० ६३। शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता कर वीरभानु ने शेरशाह का कालिंजर और रीवा पर आक्रमण मोल लिया था, इसका यह सम्बन्ध भी एक कारण प्रतीत होता है (एन० बी० राय० सबमेमर्स आफ शेरशाह : १९३४ पृ० ६)।

१. वीर० १।८४-८८ :

'तस्यार्थदेवी कुलपालिकासीत् आसत्, वीरं ततः सोदयकर्णपुत्रम्।
यस्तातदत्तं धनदेशमिष्टमुदारचेतास्तृणवद् विहाय।
आराध्यमीशानमगाज्जगत्या गजेन्द्रनाथं पुरुषोत्तमं च॥
तेनार्चयित्वार्पित-राज्यलक्ष्मीः समं तु तस्थौ जनित-प्रतापः।
पर्यूर्णजाता च विवाह्य पुत्री तमुत्कलं देशमलञ्चकार॥'

श्री काशीनाथ कृष्ण लेले ने काव्य के अन्त में अंग्रेजी सारांश देते समय 'तस्याऽच देवी कुलपालिकासीत्' पाठ स्वीकार कर इसे *वीरसिंह की रानी बतलाकर उदयकर्ण को वीरसिंह का पुत्र लिखा है* (दे० वीर० अंग० पृ० ६)। किन्तु एकत्रा (परि० १ क) से हमें विदित होता है कि उदयकर्ण शालिवाहन के चौथे पुत्र थे—'जेठे राजा विरसिंहदेव', बाबू नागमल्ल केउटी के, बाबू भोलमदेव लूकभरका के, उदेकर्न।' इसकी पुष्टि अन्य जमाबन्दियों से भी होती है।

२. वीर० १।८८ : 'अथास्य देवी सुकुमारदेवी।' तथा १।९० : 'श्री वीरभानुं.....।' १।९३ : 'श्री वीरसिंहात् सुकुमारदेवी श्रीयामिनीभानुमपापदर्प्यम्।' तथा १।९९ 'श्री यामिनीभानुरुदग्रकीर्तिर्भ्रातुर्निदेशे किल वर्तमानः।' एकत्रा (लगभग १७३५ ई०) ने यामिनीभानु (जमुनीभानदेव) को मैहर (जिला सतना) का बतलाया है। (परि० १ क)।

३. वीर० १।९८ :

'गोसाइनीत्याहितनामधेयाम्.................।
श्री वीरभानुः परिणीतवास्तां वशम्वदां हैहयवंशजाताम्॥'

यह बात यहाँ ध्यान रखने की है कि इस रानी की आगे कोई चर्चा नहीं होती। सम्भवतः इससे कोई सन्तान नहीं हुई, क्योंकि हम वीरभानु के एक ही पुत्र रामचन्द्र से परिचित हैं, जिसकी माता राजमती (या राममती) है।[1] जमाबन्दियों में वीरभानु का जन्म सं० १५४३ (१४८६ ई०) है, जब कि रामचन्द्र का जन्म वीरभानु की ५० वर्ष की आयु में सं० १५९२ (१५३५ ई०) बतलाया गया है, जो ठीक प्रतीत होता है।[2] काव्य में वीरभानु के जन्म के पश्चात् पितामह शालिवाहन की मृत्यु का विवरण है[3]। १४९९ ई० में हम शालिवाहन को सिकन्दर लोदी से युद्ध करते पाते हैं। अतः वीरभानु का जन्म उक्त १४८६ ई० मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार हम वीरसिंह को १५९५ ई० में सिकन्दर लोदी के विरुद्ध बघेल सेनापति के रूप में पाते हैं,[4] अतः इससे २९ वर्ष पूर्व १४६७ ई० में जमाबन्दियों द्वारा सूचित वीरसिंह की जन्मतिथि भी स्वीकार की जानी चाहिए।

वीरभानु के पिता वीरसिंह की युद्ध एवं संधि से सम्बद्ध नीतियों पर भी काव्य में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। वीरसिंह ने गहोरा से दक्षिण की ओर प्रस्थान कर विक्रमादित्य परिहार की राजधानी नरो पर आक्रमण किया और

---

१. वीर० सर्ग ७।

२. एकत्रा (परि० १ क) 'राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५१२ के साल। सं० १९०८ के साल राज्याभिषेक। बेटा २ जेठे राजा वीरभद्र । राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का।' तथा अन्य जमाबन्दियाँ (परि० १ ग)।

इस सन्दर्भ में प्राप्त रामचन्द्र के राज्याभिषेक का संवत् १९०८ (१५५२ ई०) और वीरभद्र के जन्म का संवत् १६१ (१५५४ ई०) है। किन्तु काव्य के अनुसार वीरभद्र का जन्म वीरभानु के जीवनकाल में हुआ। अतः यहाँ प्राप्त सं० १९०८ राज्याभिषेक का न होकर यौवराज्याभिषेक का होगा, जब वीरभानु ने रामचन्द्र को सारे अधिकार सौंप दिये थे।

३. वीर० २।९९।

४. नियामतउल्लाह : तारीखे खानजहान लोदी : ई० डा० ग्रन्थ ५ : पृष्ठ १४-१५ : तारीखे फरिश्ता : ब्रिग्स : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ५६६-७१ : पृ० ४६२ तथा अलबदायोनी (मुन्तखब उत्तवारीख) : लो : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ४१७।

अधिकृत नगरी को बसाया।[1] नरो से उसके आक्रमण की वार्ता सुन कर गढ़ा का शासक वहाँ से भाग गया। गढ़ा पर अधिकार कर नर्मदा में स्नान कर वीरसिंह नरो-पुरी को लौट आया।[2] वीरसिंह के पूर्वजों ने दिल्ली के जागरूक म्लेच्छ सम्राटों से सन्धि कर रखी थी, अतः वीरसिंह ने भी दिल्लीश्वर से सन्धि कर ली।[3] वीरसिंह ने बान्धव नामक दुर्ग को नारायण नामक क्रुद्ध राजा से

---

१. वीर २।४०-४८ :

'तस्यायत शौर्यविधिं विधूय जिगाय तं विक्रम-भूमिपालम्।'

२।४९-५६ :

'ततो गढ़ोरामिव देशयुक्ता जितां पुरं चैन्य नरोभिधानाम्॥
स भासयामास वणिग्वरायेन मनोरमां सर्वपदार्थभाजम्॥
या कोट्टचक्रेण चकास्ति दीर्घा श्रीवीरसिंहेन निधापितेन।'

नरो एक पहाड़ी है, जो सतना से रीवा की ओर पक्की सड़क पर १० मील जाने पर दक्षिण की ओर सड़क से लगभग ३ मील दूर दिखती है। यहाँ प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष बतलाए जाते है। सड़क पर सज्जनपुर नामक एक पुराना कस्बा है, जो नरोपुरी कहलाता रहा होगा। नरो के परिहार इस समय पश्चिम की ओर गए होंगे। सम्भवतः नागोद-उंचेहरा (जिला सतना) के परिहार क्षत्रिय इसी विक्रमादित्य के वंशज हैं।

२. वीर २।५६-५८ :

'गढ़ापतिं जेतुमगाच्च वीर. ·· ··· ··············· ··· ।'
नरो नगर्यामुषितं नृपेण यावन्नयज्ञेन जगर्ज तावत्।
गढ़ापतिस्तस्य पुनः प्रयाणं श्रुत्वा दिशः सेवितवान् स भीतः॥
परयौ गढ़ायाश्च पलायमाने ······· · ········ ·· ··· ·
नर्मदाया, स्नात्वा जगाम स्व - नरोपुरीं सः॥'

३. वीर० २।६३ :

'दिल्लीपुरो-स्वामिभिरस्य पूर्वं सन्धिं प्रचक्रुः सततप्रमत्तः।
म्लेच्छाधिराजैरिति सोऽप्यमृद्ध्यै दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम्॥'

गढ़ा (जिला जबलपुर) १६ वीं शती के पूर्वार्ध में गोंड़ सत्ता का प्रमुख केन्द्र और चौरागढ़ दुर्ग था। यहाँ का युवराज अमानदास पिता से विद्रोह कर वीरसिंह बघेल की शरण में आया। वीरसिंह ने उसे पुत्रवत् रखा और जब सुलतान सिकन्दर लोदी की हाजिरी में गया, तब अमानदास को युवराज वीरभानु के संरक्षण में

भेद-नीति द्वारा छीन लिया। उसने वहाँ स्थित शत्रुओं को मार कर अपने लोग बसा दिये और स्वयं पत्नियों और पुत्रों सहित वहाँ निवास किया। उस समय जिन कुरुवंशियों ने उसका विरोध किया, उन्हें उसने अपने प्रधान (या सेनापति या दोनों) साल्ह के द्वारा यमलोक पहुँचवा दिया[१]। वीरसिंह ने

छोड़ गया। इस समय वीरभानु अल्पवयस्क था। (वीरभानु का जन्म १४८६ ई० है। अतः यह घटना १५०५ ई० के निकट की होगी।) बाद में अमानदास ने पिता की हत्या कर दी। गढ़ा के सरदारों ने यह समाचार वीरसिंह को भेजा, जो उस समय सिकन्दर लोदी के पास था। वीरसिंह सुल्तान से छुट्टी लेकर गढ़ा पर चढ़ आया। अमानदास पहाड़ों में छिप गया। लौटते समय वह वीरसिंह से मिला और पिता कह कर रो कर क्षमा माँगी। वीरसिंह ने गढ़ा का राज्य उसे लौटा दिया (अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : ग्रन्थ २ : कलकत्ता : १९५९ : पृष्ठ ३०-३३) इन विवरणों से दिल्लीश्वर (सिकन्दर) से सन्धि और गढ़ा पर आक्रमण की काव्य की सूचनाओं की पुष्टि होती है। १४९६ ई० में हुसेन शर्की को हराने में शालिवाहन ने सिकन्दर की सहायता की थी, जिससे पूर्व-सन्धि की भी पुष्टि होती है। (देखिये—नियामतउल्लाह : ई० डा० : ग्रन्थ ५ पृष्ठ ९३-९५ तथा अन्य मुस्लिम लेख)।

१. वीर० सर्ग २।५९-६१ :
'श्री बान्धवाख्यं च ततश्च दुर्गं जग्राह भेदेन विनीत-विश्वः।
नारायणाख्यान्नृपतेः कुरूणां वितीर्ण-देशः पर-कौरवाय ॥
दुर्गे च तस्मिन् मुमुदे नृपालो वसन् सदारः ससुतः ससैन्यः।
तत्र स्थिते ये कुरवः कदाचित्तं कोपयाञ्चक्रुरलस्ययत्नम्।
तान् सोऽतिथीन् कारितवान् यमस्य प्रधानसाल्हेन तथाऽन्ययोधैः ॥'
सर्ग २।१६ : 'श्री बान्धवाख्यं जगृहे च दुर्गम्।'

१ कटनी से बिलासपुर जाने वाली पूर्वी रेलवे के उमरिया स्टेशन से उत्तर की ओर रीवा मार्ग पर २० मील जाने पर पूर्व दिशा में बान्धवगढ़ की पहाड़ी दिखती है। यह समुद्र तल से २६६४ फीट ऊँची है और २३°४१' उत्तरी अक्षांश तथा ८१°३' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। मध्य प्रदेश के शहडोल जिले में इसी नाम से एक तहसील है। रीवा के बघेल राजाओं की 'बान्धवेश' उपाधि आज भी प्रयुक्त होती है। पुरातत्त्व की दृष्टि से यहाँ के भग्नावशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं और

रत्नपुर के राजा को जीत कर उससे कर लिया।[१] उसने डहार और सहजोर

यह पर्याप्त समय तक बघेल राजधानी रहा है। परम्परा के अनुसार बघेलों के मूलपुरुष व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के विवाह में सोमदत्त हैहय ने अपनी कन्या पद्मकुंवरि के साथ दहेज में बान्धवगढ़ दिया था। वीरभानूदय काव्य में हम पहली बार वीरसिंह को कुरुवंशियों से बान्धवगढ़ जीतते हुए पाते हैं। वीरसिंह का राज्यकाल अनुमानतः १५०५ से १५३० ई० तक है। किन्तु मुस्लिम लेखों (अब्दुल्ला-तारीखे दाऊदी-ई० डा० : ग्रन्थ ४—पृष्ठ ६६२ : तथा अल बदाओनी-सी-ग्रन्थ १ पृ० ४१७) के अनुसार १४९८-१५०० ई० में सिकन्दर लोदी ने वीरसिंह के पिता शालिवाहन को बान्धवगढ़ में घेरा था। इन लेखों में यह दुर्ग इस क्षेत्र का सुदृढ़तम दुर्ग लिखा गया है। डा० हीरानन्द शास्त्री ने मुस्लिम लेखों को अस्वीकृत कर काव्य के आधार पर वीरसिंह को दुर्ग का प्रथम बघेल शासक माना है। पं० जानकी प्रसाद का कथन है कि वीरसिंह ने दुबारा दुर्ग पर अधिकार किया होगा, मुस्लिम लेख प्रामाणिक है। जानकी प्रसाद का मत ठीक प्रतीत होता है। साथ ही एक सम्भावना और प्रतीत होती है। शालिवाहन और भेदचन्द्र के राज्यकाल में भी वीरसिंह बघेल सेना का नेतृत्व करता था, जैसा पीछे लिखा जा चुका है। अतः सम्भव है, १४९८ ई० के पूर्व युवराज अवस्था में ही कभी वीरसिंह ने बान्धवगढ़ को कुरुवंशियों से छीना हो (वीर० क्रि० ए० पृ० २२ २३-२७)।

१. वीर० २।६५ :

'यदा नृपो रत्नपुरस्य दर्पान्न शासनं मूर्धनि वैरसिंहम्।
आदत्तवास्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा भयार्त्तात्॥'

यह रत्नपुर मध्यप्रदेश के बिलासपुर से १६ मील उत्तर एक गाँव रतनपुर है। १० वीं शती में इसे रत्नदेव कलचुरि ने बसाया था। यहाँ सैकड़ों मन्दिरों-तालाबों के अवशेष हैं। यहाँ १२ वी शती के अन्तिम भाग तक तुम्माण शाखा के कलचुरियों का शासन ज्ञात है (डा. हि. ना. इ. पृष्ठ ८१९) संभवतः इन्हीं के वंशजों से बघेलों के संघर्ष हुए। काव्य में वीरभानु की पत्नी राजमती का पिता रत्नपुर का दादूराय बतलाया गया है, जिसके साथ वीरभानु की शत्रुता थी। (वीर० ७।६८-७१)। इस समय रत्नपुर को समृद्ध नगरी बतलाया गया है। यह संभव है कि

देश भी जीत लिया।[1] उसने भर-वंशीय राजा को परास्त कर दिया।[2] बब्बर

वीरसिंह द्वारा अधीनस्थ बनाया जाने वाला यही दादूराय हो तथा पीछे पुनः शत्रु हो गया हो। बघेलखण्ड के साहित्य में १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में पुनः वीरभद्र बघेल की रत्नपुर पर चढ़ाई की सूचना मिलती है। (देखिये आगे-अध्याय ५ क।)

१. वीर० २।६६ : 'जितो डहारः सहजोरदेशः।'
सीधी और शहडोल जिले में विन्ध्य पर्वत की कैमोर, केहेंजुआ और मेकल नामक शृंखलाओं से घिरा हुआ क्षेत्र डहार कहलाता है। यह प्राचीन डाहल-मण्डल का उत्तरी भाग और डाहल शब्द का परिवर्तित रूप है। इस क्षेत्र में जबलपुर का उत्तरी क्षेत्र भी सम्मिलित है।
सहजोर को शास्त्री जी ने वर्तमान शहडोल (कटनी-बिलासपुर रेलवे का स्टेशन) माना है (वीर० क्रि० ए० पृ० २४)।

२. वीर० २।६७ : 'जितो भराणां नृपतिर्नृशंसः।'
सतना के दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्रों में प्राचीन भारशिव-सत्ता के अनेक अवशेष उपलब्ध हैं, जिनमें प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप भरहुत भी है। इसका प्राचीन नाम भर (या भार-) भुक्ति होने का अनुमान है। इससे इस क्षेत्र में भर जाति के प्राचीन निवासी होने की सूचना मिलती है। बघेलों की सत्ता का आरंभ कालिंजर के भर-वंशीय शासकों के सेवकों के रूप में हुआ था (एकत्रा-परि० १ क तथा, बघेल० : श्लोक १२ : 'भरान्वये वीसलदेव एषितः···कलिंजरे।'

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार जब चन्देलों और कलचुरियों की सत्ता टूटी, तब तेरहवीं शती में यमुना के दक्षिणी भाग में अनेक राजपूत जातियों ने स्वतन्त्र सत्ताएँ स्थापित कीं, जिनमें भर-वंशीय क्षत्रिय भी थे (भाग ६ : पृष्ठ १४९ तथा १४६)। महोबा और हमीरपुर (जिला बांदा-उत्तर प्रदेश) की परम्पराओं से विदित होता है कि बुंदेलखण्ड के पश्चिमोत्तर भाग में भर राजपूतों ने कम से कम १२५२ से १२८० ई० तक शासन किया (हबीबुल्ला : दि फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : १९४५ : पृष्ठ १४२)। मिर्जापुर जिले के मुंडहार लोग अपने को भर राजाओं के वंशधर और सूर्यवंशीय राजपूत कहते हैं। देखिये—वसु : हिन्दी विश्वकोष : कलकत्ता : भाग १६ : पृ० ७२७-२८)।

(बाबर मुगल) भी उससे भय खाता था। आगे चल कर काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि बाबर के साथ वीरसिंह का भ्रातृभाव था।[1]

(२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त वीरभानूदय काव्य में ऐतिहासिक गवेषणा को आगे बढ़ाने वाले निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :–

१—व्याघ्रपाद मुनि और भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र : लगभग सभी वंशावलियों में प्राप्त होने वाले मूलपुरुष व्याघ्रदेव की चर्चा न करते हुए प्रस्तुत काव्य में बघेलों का भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र बतलाया गया है, साथ ही बघेलों को व्याघ्रपाद मुनि के वंशज लिखा गया है।[2]

२—हुमायूँ : वीरसिंह का जिस प्रकार बाबर के साथ भ्रातृभाव था, उसी प्रकार वीरभानु का हुमायूँ के साथ था। वीरभानु के पौत्र (वीरभद्र) का जन्म होने पर दिल्लीश्वर यवनाधिनाथ मुद्गलेश हुमायूँ ने उपहार भेजे थे।[3]

---

१. वीर० १२।२२ :
'श्री वीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण।'
तथा—२।६७ : 'तस्माद् भियं प्राप स बब्बरोऽपि।'
बाबरनामा के उल्लेखों के अनुसार १५२७ ई० में सीकरी से ५ कोस दूर कनवाहा के युद्ध में वीरसिंह ४००० घुड़सवारों के साथ बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के पक्ष में लड़े थे। पीछे सन्धि हो गई और बाबर ने वीरसिंह को मालकार दिया। — ग्लो० बा०, रीवा-१९४८ पृष्ठ ३ तथा आईन० पृ० ४०६।

२. वीर० ९।१३, १५, १९, २१, २८ :

३. वीर० १२।२०-२३। शेरशाहसे पराजित हुमायूँ की सहायता वीरभानु बघेल ने की थी। विवरण के लिए देखिये (१) गुलबदन बेगम : हुमायूँ नामा (बेवरिज) पृष्ठ १३५-३६ : २७ जून १५३९ ई० की घटना—वीरभानु ने अरैल में हुमायूँ को नदी पार कराई और भूखे सैनिकों के लिए बाजार लगवा दिया। (२) अर्स्किन : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ १७४ : राजा परमान (वीरभानु) ने फरीद गौर और शाह मो० अफगान के बीच फँसे हुए हुमायूँ को आगे निकालने के लिए फरीद गौर से युद्ध किया। (३) जौहर : मेमायर्स आफ हुमायूँ : पृष्ठ १८—अरैलके राजा परवहान (वीरभानु) की सहायता स्वीकार की गई। (४) आ० रि० इ० : जिल्द २१ : पृष्ठ १०९ : असनी (उ० प्र०) और रीवा की प्रचलित वार्ता : उक्त भगदड़ में छूटी हुई हुमायूँ की एक बेगम को वीरभानु ने बहन कह कर उसे शरण दी थी।

३—**सुलतान मुहम्मद अदली :** सूर वंश का सुल्तान मुहम्मदशाह आदिल (अदली) इब्राहीम सूर से परास्त होकर रामचन्द्र बघेल की शरण में आया। इस समय काव्य में रामचन्द्र युवराज हैं।[१]

४—**तानसेन :** जिन दिनों रामचन्द्र युवराज ही था, उसकी सभा में गायक तानसेन था। वह गान्धर्व-विद्या की प्रतिमूर्ति था। इस कलाकार की प्रत्येक ध्रुवद, प्रत्येक राग और तान पर रामचन्द्र ने उसे करोड़ों चन्द्रांकित टंका (स्वर्ण-मुद्राएँ) दान किये। तानसेन सभी भाषाओं में (सम्भवतः संस्कृत, हिंदी, फारसी) में चतुर था और समस्त विद्याओं का ज्ञाता था। ऐसा निर्दोष कला-मर्मज्ञ न कभी हुआ है, न उस समय था, न होगा। उसकी ध्रुवद के गीत रामचन्द्र के यश से भरे हुए थे।[२]

---

१. वीर० १०।१३ : स ईदिलिर्स्त शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राण मुहम्मदादिः।' वीरभानु की मृत्यु १५५५ ई० में हुई और अदली १५५४ ई० में आया था। इस प्रकार काव्य के उल्लेख की पुष्टि होती है। इस घटना की चर्चा अनेक मुस्लिम लेखकों ने की है। (देखिये, अर्सकिन : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ ४६४। 'पहले पन्ना फिर चुनार गया।' तथा पृष्ठ ५०४ : 'मियां तानसेन ने अपने को (गीत-नृत्य में) अदली का शिष्य स्वीकार किया है। (१५५४ ई० में तानसेन रामचन्द के पास था)।

२. वीर० १०।२६-३१ :

गान्धर्व-विद्यामय-देहमाजे यस्तानसेनाय कलाविदेऽदात्।
रागं प्रतीह प्रतितानमेतत् प्रतिध्रुवत् कोटि शशाङ्क-टङ्काः ॥
भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो न तानसेनेन समो धरण्याम्।

सामान्यतः माधव कवि का यह वर्णन भावातिरेक से पूर्ण प्रतीत होता है। किन्तु हम मुसलमान इतिहासकारों के लेखों में भी यही शब्द पाते हैं—(१) आईन० पृष्ठ ६१२ : 'उसके समान गायक भारत में पिछले हजार वर्षों में नहीं हुआ।' तथा पृष्ठ ४७५-७६ : 'पाँचवें वर्ष (१५६१ ई०) जलाल खां कुर्ची तानसेन को दरबार में लाने की अनुमति प्राप्त करने रामचन्द्र बघेल के पास गया।' (२) अक० भाग २ पृष्ठ २७९-८० : 'इस वर्ष (१५६२ ई०) की घटनाओं में से एक थी तानसेन का दरबार में आना। वह पन्ना के राजा रामचन्द्र की सभा में दिन बिता रहा था। राजा ने तानसेन को चलते समय वाद्य और बहुत सा धन देकर उसे गुलाम बना लिया।' (३) बदायूनी : ईलियट भाग ५ :

५—पुरुषोत्तम गजपति : शालिवाहन बघेल की एक रानी (अर्धदेवी) से उत्पन्न उदयकर्ण का विवाह उत्कल देश (उड़ीसा) के गजवंशीय नरेश पुरुषोत्तम की पुत्री के साथ हुआ था । हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह उड़ीसा के राजा कपिलेन्द्र (१४३५-६९) का पुत्र था । कपिलेन्द्र के कांची-विजय की घटनाएँ जगन्नाथ-मन्दिर (पुरी) की दीवालों पर चित्रित हैं ।[१] पुरुषोत्तम ने असमिया भाषा में नाममालिका और दीपिकाचन्द्र नामक ग्रन्थों की रचना की थी इनका अनुवाद माधव देव ने किया ।[२]

६—राजा कीर्तिसिंह : यह गोरापुर या गोरनगर का राजा था । यह अरिष्टनेमि गोत्र का था । इसके पुत्र का नाम माधवसिंह और पुत्रवधू का पदार्थ दे था । राजा कीर्तिसिंह की पौत्री यशोदा थी, जो रामचन्द्र को ब्याही गई । यशोदा के भाई का नाम रत्नसेन और रत्नसेन की पत्नी का रमावती था ।[३] रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक १५५२ ई० में हुआ ।[४] विवाह के पश्चात्

पृष्ठ ५३८: 'यह रामचन्द्र शाही दरियादिली में बेमिसाल था । बहुत सी चीजों के साथ उसने मियां तानसेन गवैये को एक दिन में एक करोड़ जर (सोना) दिया । मियां राजा को छोड़ना नहीं चाहता था ।' (४) जहांगीरनामा (बेवरिज) १९०९ : पृष्ठ ४१३ : 'दर असल उसके सरीखा गाने वाला किसी वक्त किसी जमाने में नहीं हुआ ।'

१. वीर क्रि० ए० पृष्ठ १७ । साथ ही देखिये बी० सी० मजूमदार : ओरीसा इन द मेकिंग : पृष्ठ २१३–१४ ।

२. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ १३४ : 'दिपिकाचन्द्र की पुष्पिका' ।

'पुरुषोत्तम मोर गजपति नाम ।
रचिलो पयार डाकि बोला राम राम ॥'

तथा' नाममलिका, छन्द ७ का अनुवाद—

'पुरुषोत्तम नामे नरेश्वर गजपति ।' साथ ही देखिये—प्रो० बी० के० बरुआ : 'पुरुषोत्तम गजपति आफ ओरीसा इन अर्ली आसामीज लिटरेचर' : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अखिल भारतीय सम्मेलन के १२वें अधिवेशन १९४३-४४ में पठित निबन्ध, सम्पादक : अल्तेकर ।

३. वीर० सर्ग ९।९-१३, १८, २२, २६, ३१, ३४-३९, ४१-४२ : तथा सर्ग १२।१६-१८-देखिये तबकात-नासिरी (मिनहाजुद्दीन- ११६० ई०) अनु० रेवर्टी: पृष्ठ ५८४-८८ : 'गंगा का सम्पूर्ण पश्चिमी प्रदेश, जिसमें जाजनगर, लखनावटी, बंग, कामरूद और तिरहुत के इलाके थे, गौर कहलाता था ।'

४. एकत्रा (परि० १-क) : सं० १६०८ ।

योग्य हो उसे युवराज पद दिया गया था।[१] अतः विवाह १५५० ई० में मान सकते हैं। विवाह के समय यशोदा को विदा करनेवालों में रमावती का नाम नहीं है, किन्तु वीरभद्र का जन्मोत्सव मनानेवालों में उसका नाम आता है। अतः रत्नसेन यशोदा से छोटा प्रतीत होता है। उसका और रमावती का विवाह १५५० ई० के पश्चात् हुआ होगा। इसके अतिरिक्त कवि वीरभद्र के जन्मोत्सव के समय रत्नसेन के साथ नृप शब्द का भी प्रयोग करता है।[२] इससे प्रतीत होता है कि १५५४ ई० के पूर्व रत्नसेन को युवराज पद प्रदान किया जा चुका था, क्योंकि कवि ने युवराज रामचन्द्र को भी नरेन्द्र आदि विशेषण दिये हैं।[३]

७—गणेश-राउत : यह वीरभानु का एक विद्वान् मन्त्री था।[४] इसने कुमार रामचन्द्र को सम्पूर्ण शिक्षा दी और पुरस्कार-स्वरूप वह जागीरदार और दुर्गपति बनाया गया।[५]

८—रामचन्द्र (राजा) : यह कोई राजा था जो वीरभानु की फूफी का लड़का था।[६] वीरसिंह का अन्तिम संस्कार कर प्रयाग से गहोरा लौटते समय यह वीरभानु के साथ रहता है।[७] अभिषेक के समय यही छत्र-ग्राही बनता है।[८]

९—भगीरथ : यह यमुना के दक्षिणी तट पर कोटर गाँव में बसने वाला एक ब्राह्मण (सम्भवतः पंडा) था।[९]

---

१. वीर० ९।४१

२. वीर० १०।१८ :
'ततन्द चाकर्ण्य सुतं स्वदेवी स्वसुनितान्तं नृप-रत्नसेनः।
रमावती-वल्लभया समेतः… ।'

३. वीर० १०।१८ : 'दिरसौ नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे… ।'

४. वीर० ८।२,५

५. वीर० ८।४४ : 'विषमानगजान् गजान् पुनः पुनरस्मै जवराजि-वाजिनः।
पृथुवत् पृथिवीपतिस्तदा समदाद् दुर्गपतित्वमादृतः॥
हीरानन्द शास्त्री के अनुसार बुन्देलखण्ड में 'जुझौतिया ब्राह्मण 'राउत' बोले जाते हैं (वीर० क्रि० ए० पृ० १९)।

६. वीर० ३।६, ३२ ('—पैतृष्वसेय।—'), ६०

७. सर्ग ३

८. सर्ग ५।१४: 'शुभ्रातपत्रेण च चामराभ्यां तद्रामचन्द्रद्वितयेन विष्णुः।'

९. सर्ग ४।३,५।

१०—आटविक : रामचन्द्र की मृगया में सहायता देने वाले ५ शबर आटविक बतलाए गए हैं, जो आदिवासी प्रतीत होते हैं। इनके नाम हैं—बघनक, सहदेव, मोर, अमानी और हरिकर्ण।[१]

११—मल्लिनाथ उन्नाय : काव्य के अनुसार १५५०-६० ई० में उन्नाय कायस्थ गहोरा में समृद्ध जीवन बिता रहे थे। इनका वहाँ बहुत बड़ा मान था। ये किन्हीं मल्लिनाथ के वंशज थे।[२] कवि माधव स्वयं कायस्थ (ऊरव्य) था[३], सम्भव है, वह भी इन्हीं कायस्थों में से कोई हो। इस काव्य की पाण्डुलिपि भी कृष्णदास जी नाइ (उन्नाय) कायस्थ के पुत्र तुलसीदास ने तैयार की थी।[४]

१२—गहोरा नगरी : उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में करवी से १४ मील पूर्व रैपुरा गाँव है। इसके दक्षिण जुड़ा हुआ गाँव गहोरा खास है, जो दो नदियों के बीच में है। इसके पूर्व नदी के दूसरे पार खेरवा गाँव है, जहाँ अभी तक प्राचीन महलों, मन्दिरों और घरों के अवशेष मिलते हैं। वास्तव में रैपुरा और खेरवा मिला कर प्राचीन गहोरा नामक बघेल राजधानी के स्मारक हैं। गहोरा के निकट गंगा, केवयी और धीरवती नदियाँ थीं, जो वर्तमान खेरवा के पास की गन्ता, केवई और धिरवा हैं। खेरवा के दो मील पश्चिम वाल्मीकि जी का आश्रम है, जिसके पास केदारनाथ की प्रतिमा है। तीसरा पहाड़ और भी है, जिसे रामपुर का पहाड़ कहते हैं। सम्भवतः यही काव्य का शिलोच्चय है।[५]

---

१. सर्ग ११।२३।

२. सर्ग २।२३ : 'श्रीमल्लिनाथान्वय-सम्भवानामुन्नाय-शब्दं दधताम्...।' तथा २।२८।

३. सर्ग १०१।

४. सर्ग १२ के अन्त में पुष्पिका।

५. वीर० सर्ग २।८-९ :

'यस्याः समीपे प्रतिमागृहेषु कौवेरचण्डी-गिरिशा जयन्ति।'
कौवेर-केदार-शिलोच्चयाद्याः प्रभान्ति यस्याः परितो महोधाः।'
तथा २.२१-२२ : गङ्गा नदी यत्र चकास्ति ......।
या केवयी सूर्यसुताप्तसङ्गा प्रवर्धमानामृततोय-रम्या।
वेणे पदं धर्तुमिह क्षमाऽऽस्ते सरस्वती-धीरवती-समेता॥

देखिये वीर० क्रि० ए० पृ० २०-२१ तथा इ० ग० भाग ६ पृष्ठ १८६ : गहोरा में एक 'रानी का तालाब' कहलाता है, जिसकी काव्य में चर्चा हुई है—सर्ग ११२६-३०।

भीम के पुत्र राणिङ्गदेव को गहोरा का प्रथम अधिकारी बतलाया गया है।[१] जमाबन्दियों के अनुसार वीसल और भीम [अन्यत्र विसाल देव, भीमल देव, भीममल्ल आदि] दो भाई कालिंजर के भर-वंशीय शासकों के सैनिक बने। इस समय गहोरा में लोधियों का शासन था। भीम ने लोधियों के मन्त्री तिवारी ब्राह्मण को आधा राज्य देने की लालच देकर फोड़ लिया और लोधी शासक को मार कर गहोरा को जीता तथा उसे कालिंजर में सम्मिलित कर लिया।[२] सम्भवतः राणिङ्गदेव प्रथम व्यक्ति था, जो गहोरा में स्वतंत्र रूप से बस गया। रीवा की परम्परा के अनुसार बघेल राजकुमार यज्ञोपवीत संस्कार के समय गहोरा राज माँगा करता है।[३] सम्भवतः बघेलों के हाथ से गहोरा को अन्तिम रूप से छत्रसाल बुन्देले ने छीना। मुस्लिम लेखों में बघेल राज्य का नाम भाठ गहोरा मिलता है।[४] १५६९ ई० में जब कालिंजर रामचन्द्र बघेल के हाथ से अकबर के अधिकार में चला गया[५], तब से रामचन्द्र ने बान्धवगढ़ को राजधानी बना लिया होगा। इसके पूर्व लगभग ४०० वर्षों तक गहोरा बघेलों की राजधानी रहा।

१३—अलर्कपुर : वीरभानूदय काव्य के अनुसार यह गंगा-तट पर बसा हुआ नगर था। यहाँ वीरसिंह ने कुछ दिनों तक वास किया था[६]। वीरभानु ने यहीं पर वीरसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया की थी[७] तथा अन्तिम दिनों में वे स्वयं यहीं रहते थे।[८] शालिवाहन के द्वारा यमुना-तट[९] पर और वीरम[१०] एवं

१. वीर० १।१० : 'लब्ध्वा गहोराम्।'
२. एकत्रा तथा अन्य (परि० १ क, ग)।
३. वीर० क्रि० ए० पृष्ठ २३-२४।
४. मिनहाजुद्दीन (१२६० ई० के निकट) :
   तबकात-नासिरी (रेवर्टी), पृ० ७४३ :
   'भाठ-गहोर, जिसका केन्द्र कालिंजर था कमरुद्दीन द्वारा १२४३ ई० में लूटा गया।'
५ अक० : भाग २ : पृष्ठ ४९८-९९।
६. वीर० २।६२ : '.... रराज तिष्ठन् गङ्गा-तटस्थे नगरेऽप्यलर्के।'
७. वीर० ३।१-२। 'अन्त्येष्टि विदधाति स्म................।
   अयाऽलर्कात् स नगरात् गङ्गा-तीर प्रतिष्ठितात्।'
८. वीर०।१२।२९ : '..............उवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम्।
   निषेवितोऽलर्कपुरे सुतायैः.... ।।'
९. वीर० ११९९ : 'रवेः सुतायां, ततो जहाति स्म तनुं... ।'
१०. वीर० ११४८ : 'जह्नुसुतामथाप्यस्तत्याज देहं..................।'

सिंहदेव[1] द्वारा त्रिवेणी में प्राण-त्याग करने का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि अलर्कपुर का उपयोग प्रायः वार्धक्य विताने के लिए ही होता था।

१४—शालिवाहनपुर : अलर्क से गहोरा के बीच में वीरभानु की यात्रा में शालिवाहनपुर नाम की बस्ती बतलाई गई है। यह शालिवाहन के नाम पर सम्भवतः वीरसिंह द्वारा वसायी गयी थी। इसमें ऊँचे भवन तथा समृद्ध बाजार थे[2] यहाँ वीरसिंह द्वारा लगाया गया विशाल उद्यान था[3]।

१५—कोटर-गुप्त-वाराणसी और कुमारह्रद तीर्थ : वीरभानु शालिवाहनपुर से (पश्चिम) चलकर यमुना तट पर अवस्थित कोटर तीर्थ पर पहुँचा था, वहाँ विष्णु शिव और सूर्य आदि की मूर्तियाँ थीं। यह गाँव यमुना तट पर बाँदा जिले में है। इसमें एक प्राचीन मण्डप और कई गुफाएँ हैं, एक में शिव की मूर्तियाँ भी हैं।[4]

---

१. वीर० १।३४ : '.........................श्री सिंहदेवः परमात्मदर्शी।
जहौ तनुं जह्नुसुता-जलौघे यमस्वसुर्वारिभिराप्तसङ्गे ॥'
यह अलर्क नगर ही त्रिवेणी तट का स्थान अरैल है (वीर० क्रि० ए पृ० ११-२४)। सिकन्दरलोदी ने भैदचन्द्र के अधीनस्थ अरैल क्षेत्र को १४९४ ई० में लूटा था (नियामत उल्लाह : ई० डा० जिल्द ५: पृष्ठ ९४) तथा वीरभानु को तत्कालीन मुस्लिम लेखकों ने 'अरिल या अरेल का राजा' लिखा है। देखिये (१) गुलबदन बेगम : हुमायूँनामाः बेवरिज: पृष्ठ १०५ तथा जौहर : मेमायर्स आफ हुमायूँ: पृष्ठ १८। ईलियट ने लिखा है कि राजा राम बघेल (१५५५-९२) ने अरैल के ब्राह्मणों को १६० गाँव दान किये थे (नोट आन चौरासीजः सप्लीमेंटरी ग्लासरीज-संपादन वीम्स : भाग २ : पृष्ठ ५६)। १५६९ ई० में कालिंजर के बदले में अकबर ने रामचन्द्र को अरैल का परगना और प्रयाग की जागीर दी थी, जिसके अधीन तिरोहन (तरहार या त्योंथर तहसील, जिला रीवा) भी था (अल-बदायोनी : लो: भाग २ : पृष्ठ १२३)।

२. वीर० ३।८-९ : 'श्रीशालिवाहनपुरं महाजनवृतं पुरा।
अदर्शि युवराजेन प्रासादव्रज-शोभितम् ॥'
तथा ३।१०-१६ '...पितामहस्य नाम्नेदं वासितं नगरं पुरा।'

३. वही, ३।१७-५० तथा ५४ : 'वाटी सा वीरसिंहस्य।'

४. वही ४।१ : 'अथ प्रयातो वीरोऽयं कोटरं क्रमतोऽगमत्।
कालिन्द्यां ... विष्णुशर्वादि-प्रतिमाभिरलङ्कृतम् ॥'

कोटर से दक्षिण का क्षेत्र गुप्त-वाराणसी कहा जाता था। यहाँ अक्षयवट, मणिकर्णिका घाट और ढुण्ढिदेव की मूर्ति आदि पवित्र स्थल थे[१]। आगे चल कर कुमारह्रद[२] नाम का सरोवर मिला था। उपर्युक्त रेंपुरा गाँव से ७ मील पूर्व रामनगर नामक गाँव में एक मण्डप के साथ तालाब है, जो कुंवरहृद कहलाता है।[३]

यह कोटर गाँव मार्वसिंह बघेल (१६७५-९४ ई०) के राज्य की सीमा पर था।[४]

१६—सहुण्डा नगरी: काव्य में एक सहुण्डा नामक नगरी का भी उल्लेख है, जिसे जीतकर वीरभदेव ने वहाँ निवास किया था।[५] यह दतिया (म० प्र०) जिले के अन्तर्गत सेंवढ़ा गाँव है।

१७—कर्ण तीर्थ: इस तीर्थ को शिव-मन्दिर से सुसज्जित करने वाले राजा अर्जुन ने, जो गढ़ का राजा था, नरहरि बघेल को अपनी पुत्री राजला प्रदान की थी[६]। यह स्थान गङ्गा के किनारे का वर्तमान कन्तित है। अकबर के समय में इस कस्बे के पास हाथी पकड़े जाते थे। यहाँ एक किला भी था। यह इलाहाबाद की सरकार के अन्तर्गत था।[७]

१८—प्रदेश और जातियाँ: रामचन्द्र बघेल के युवराज होने पर बघेल राज्य की सीमा अन्तरावेद से कलिङ्ग, दक्षिणसागर और दूसरी ओर अमरकण्टक तक बतलाई गई है।[८] यह अन्तरावेद स्पष्ट ही अन्तर्वेद (गङ्गा-यमुना के बीच का भू-भाग द्वाब -उ० प्र०) है और अमरकण्टक शहडोल जिला (म० प्र०) की दक्षिणी सीमा पर पहाड़ी है, जो नर्मदा और सोन नामक नदियों का उद्गम

तथा ४।१४-५२ (वीर० क्रि० ए० पृष्ठ २४-२५)

१. सर्ग ४।५३-५५ : 'कोटराद् दक्षिणामुर्वीं विन्ध्यपाद-विराजिताम्।
गुप्तवाराणसीं प्राहुः·························॥
यत्राक्षयवटोऽप्यस्ति यत्रास्ति मणिकर्णिका।
दण्डपाणिः प्रभुर्यत्र यत्र ढुण्ढिर्विराजते॥'

२. सर्ग ४।५८-५९ : 'महोरा-गमनोत्कोऽसौ कुमारह्रदमागतः।'

३. वीर० : क्रि० ए० : पृ० २५।

४. देखिये आगे अध्याय ४ (३)।

५. वीर० ११४४

६. वीर० ११५१-५३ :

७. ग्लैडविन : अबुलफज्लकृत आईने-अकबरी : पृ० ३२०, ४८१।

८. वीर० १०१७ :

'कृत्वान्तरावेदमथो कलिङ्गं सीमेतरामामरकण्टकं च।
आ-दक्षिणाम्भोनिधि यः प्रतापं रामः स राजाभवदद्वितीयः॥'

स्थल है। वीरमानु के द्वारा उज्जट देश की विजय का उल्लेख है,[1] जिसकी जानकारी नहीं है।

इनके अतिरिक्त कवि ने परम्परात्मक अङ्ग, गौड़, मिथिला, गुर्जर और लङ्का तथा भारत देश के नामों के उल्लेख किये है।

साथ ही म्लेच्छ, यवन, तुरुक, मुद्गल आदि शब्द तत्कालीन मुस्लिम जातियों के लिए तथा पुलिन्द, भिल्ल, मल्ल, और शबर आदि शब्द अन्य जातियों के लिए प्रयुक्त किये है।[2]

(३) तत्कालीन बघेलखंड का समाज एवं संस्कृति

वीरमानूदय काव्य में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनसे उस काल की बघेलखंड की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यह काव्य १६ वी शती के मध्य भाग में लिखा गया है, जब मुगल शासन देश में क्रमशः जड़ें जमा रहा था और मुसलमान शक्तियों में परस्पर तथा हिन्दू सत्ताधारियों के साथ संघर्ष चल रहे थे। तथापि यह कहा जा सकता है कि इस काल तक हिन्दू राज्यों की संस्कृति और सभ्यता पर मुस्लिम प्रभाव नगण्य था, साथ ही प्राचीन धर्मशास्त्रों पर आधारित मानदंडों को परिवर्तित करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था।

संस्कार

बघेलखण्ड जनपद में संस्कारों के रूपों में कोई अन्तर नहीं पड़ा था।

---

१. वीर० ५।९५८ : 'तेनोज्जटः समुचिनाशहेतोर्देशः·········।'

२ वही, ९।२९ :
'यन्नाम्ना गुर्जरेशो गिरिविवरमगाद् दाक्षिणात्याः पयोधिं।
पाश्चात्या भीतियुक्तास्तुहिनगिरि-शिखां गौवरो गौडराजः।'
९।३० : 'लङ्कायां च विभीषणोऽम्बुधिवृतो निद्रा-दरिद्रायते।'
९।३९ : 'मल्ला भिल्लाः पुलिन्दा गिरिगहनचरा
अङ्ग-वङ्गाः कलिङ्गाः।'
९।९ : 'सम्बन्धी मिथिलापतेः ····।'
१२।४८. 'आस्ते भूर्भारतम्·······।'
१।३९ : 'न शेरते तेन धनुर्भृता : स्म म्लेच्छाधिनाथाः···।' तथा
२।६३ : ५।१४५ : ७।१९,२३
१।४४ : 'विगृह्य रेजे यवनाधिपेन···।' तथा ३।५३ : १२।२०।
४।४९ : 'तुरुक-जलधिः···।'
१२।२३ : 'इत्याह लेखेन स मुद्गलेशः।'
११।३१ : 'शबरपतिरवादीत्।'

राजघरानों और सम्पन्न घरों में संस्कारों के पालन अधिक व्यवस्थित रूप में होते थे। किसी रानी के (कम से कम प्रथम बार) गर्भवती होने पर पुंसवन आदि विधियाँ होती थीं।[१] गर्भ की पूर्णता के समय दोहद-पूर्ति की जाती थी।[२] राजकुमार का जन्म होने पर राजा पुत्र का दर्शन करते थे।[३] पुत्र की उत्पत्ति पितृ-ऋण से मुक्ति मानी जाती थी।[४] इस समय विशेष उत्सव होते थे।[५] जातकर्म संस्कार के साथ नान्दीमुख श्राद्ध भी होता था।[६] राजा मुक्त रूप से दान[७] और संकल्प[८] करते थे। दान पाने वालों में ब्राह्मण, याचक, स्वजन, कुलवधुएँ, सेवक और अतिथि होते थे।[९] शिशु की माता के नैहर में भी आनन्दोत्सव होते थे[१०] और अनेक स्थानों से उपहार आते थे।[११] पुत्र-जन्म के पश्चात् नामकरण को विशेष महत्व दिया जाता था।[१२]

---

१. वीर०, ७।७९ : '⋯ पुंसवनादीनि कृत्वा कर्माणि निर्वृतः।'

२. वही, ७।६५-६६ : 'सा पृष्टेत्यवदत् साध्वी दोहदं स्वस्य पूजितम्।
कृशाङ्गी गर्भ-सम्पूर्त्या गौरीव स्वल्पभूषणा॥'

३. वही, ७।८५। 'तस्मादुत्थाय तूर्णं नृपतिरपगमात् पुत्र-सन्दर्शनार्थं
पश्यन् पुत्रं प्रहृष्टोऽभवदथ कुरुते जातकर्मानवद्यम्।'

४. वही, ७।८९। 'राजा पूर्वर्णमुक्तः ⋯ तेन पुत्रोद्भवेन।'

५. वही, ७।८६ : 'शब्दायन्ते स्म वाद्यानि ⋯।' तथा ७।८१-८८।

६. वही, १२।८ : 'विधाय नान्दीमुखमागमोक्तम्।'
तथा १।७४ : 'अथास्य चक्रे ⋯ जातकर्म।'
और १।९० : 'कृतजातकर्मा ⋯।'

७. वही, ७।९१ : 'किमन्यत् स तथा दानं ददाति स्म सुतोद्भवे।
याचकेभ्यो यथा द्रव्यं देवो कोशे न शेषितम्॥'
'हयान् गजान् काञ्चन-भूषणानि वासांसि रत्नानि च याचकेभ्यः।
ददौ यथा येन न यावदायुः प्रापुः पुनस्तेऽर्थिजन-प्रयासम्॥'

८. वीर० ७।८५ : 'पुत्रं सङ्कल्पतोऽमं विसृजति सहुलं वित्तमुद्दिश्य यातु।'

९. वीर० ७।८९ :
'⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯ ⋯द्विजेभ्यः।
सर्वेभ्यो याचकेभ्यः स्वजनकुलवधू-किङ्करेभ्योऽतिथिभ्यः।'

१०. सर्ग १२।१६ :
'यथैव गेहे नृपतेरभानोर्महोत्सवोऽभून्मुदितस्य भूयान्
तथाऽभवन्माधवसिंहनाम्नो मातामहस्यापि सवल्लभस्य॥'

११. सर्ग १२।१७-२१।

१२. सर्ग १।४७, ७६, ९० : ७।९२ : १२।१२।

अन्य संस्कारों में से चूडाकर्म की सूचना प्राप्त है।[१] उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं है, किन्तु यज्ञोपवीत पहने जाने की सूचना है।[२] विद्याध्ययन की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है।[३] राजकुमारों को शास्त्र के पूर्व शस्त्र-विद्या प्रदान की जाती थी।[४] खड्ग और ढाल के सञ्चालन के इक्कीस भेदों की चर्चा की गई है।[५] इसके अतिरिक्त धनुष-बाण के प्रयोग,[६] मल्लविद्या,[७] अश्वारोहण,[८] और हाथियों को वश में करने की शिक्षाएँ प्रमुख थीं।[९] इनके साथ चार विद्यायें (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति)[१०] और षड्दर्शन एवं राजनीति[११] के अतिरिक्त सङ्गीत (गीत, वाद्य और नृत्य)[१२] की भी शिक्षा दी जाती थी।

विवाह-यज्ञ वेद-विधि के साथ सम्पन्न होते थे।[१३] यह राजकुमार का विवाह होने पर सार्वजनिक उत्सव बन जाता था।[१४] विवाह स्थिर करते समय उच्च वंश के साथ गुणवती एवं रूपवती कन्या का विशेष विचार किया

---

१. सर्ग १।७८ :
'कर्माणि चक्रे निखिलानि चूडाकर्मादिकादीनि यथाक्रमेण।'
२. सर्ग १।१४ : 'यज्ञोपवीतेन ··· ···।'
३ सर्ग १।८०, ९७ तथा सर्ग ८
४. सर्ग ८।६ :
'गुरुभिः प्रतिपादिताः क्रमात् परमर्थ्यैष्ट स रामचन्द्रमाः।
सहितः क्षितिपालबालकैः प्रथमं शस्त्रपयोषिताः क्रियाः॥'
५. सर्ग ८।७ : 'असिभेदानथमेकविंशतिः।'
६. सर्ग ८-१० : 'धनुरागमनेन ··· ···।'
७. सर्ग ८।१३-१७
८. सर्ग ८।२६ : 'जवनेन नवेन वाजिना ··· ···।'
९. सर्ग ८।२७ : 'स वशीकरणे मदच्युतां करिणां··· ···।'
१०. सर्ग १।९७ : 'आदाय विद्याः प्रयतश्चतस्रः।'
११. सर्ग ८।१८ :
'गुरु-गौतम-शङ्कराक्षपाद् गुरु-पातञ्जल-साङ्ख्य-सम्मती:।'
तथा ८।१९ : 'स नयं विनयादशीशिक्षत्।'
१२. सर्ग ८।२९ : 'स्वर-सप्तक-तालमूर्च्छनाः सह नृत्येन ···।'
१३. सर्ग १।५२ : 'वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरीत्या।'
तथा १।८० :
'विवाह-यज्ञं जनकोऽस्य सूनोरकारयद् वेद-विधानतोऽसौ।'
१४. सर्ग ९

जाता था।[१] बारात रणवाहिनी की भाँति सजती थी।[२] कन्या पक्ष के पुरुष बारात का सम्मान करते थे और स्त्रियाँ उपहास करती थीं।[३] चौक पर सौ सधवाएँ रत्नदीप से वर की आरती उतारती थीं।[४] कन्या का पिता भरपूर दहेज देता था।[५] मण्डप में गोत्रोच्चार होता था, जिसमें चारण लोग वंश और कीर्ति का वर्णन करते थे। पुरोहित भी इसमें भाग लेते थे।[६] विदा के पश्चात् वधू का भाई उसे पहुँचाने जाता था।[७] पति की नगरी में वधू की शोभा-यात्रा निकलती थी, फिर वधू-प्रवेश होता था।[८]

विवाह के पश्चात् प्रायः शीघ्र ही तरुण राजकुमार को पृथक् निवास और युवराज-पद प्रदान कर दिया जाता था।[९] युवराज को क्रमशः सारे अधिकार दे दिये जाते थे और राजा विरक्त-जीवन का अभ्यास करने लगता था।[१०] अन्तिम समय में बघेल राजा त्रिवेणी-वास किया करते थे।[११] उनकी निधन आदि अन्त्येष्टि-क्रियायें प्रायः गङ्गा-तट पर ही होती थीं।[१२]

---

१. सर्ग ९।६-७ :

'एतत्सुस्या यशोदा सकलगुणवती कीर्तिसिंहस्य पौत्री।
गौराख्ये पत्तनाग्रे तुहिनगिरिसुतेवाऽस्ति नाम्ना धरायाम् ॥'
यशोदया यशो-दया-सुरूप-सच्चरित्रया।
अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥'

२. सर्ग ९।१५-१६

३. सर्ग ९।२२ : 'माधवेन बहुधा कृतमानो
निन्दितश्च हसितैरवरोधैः।'

४. सर्ग ९।२४ : 'साध्वी-शतैः प्रमुदितैः कृत-रत्नदीपः।'

५. सर्ग ९।२६ : स्वापतेयमखिलं तनयायै यौतकेष्वदित माधवसिंहः

६. वीर० ९।२७ : '— मण्डपे सन्निविष्टो।'
गोत्राचार-प्रचारं रचयति मुदितो वंशशंसि-प्रवीणैः॥'

तथा ९।१४ : विन्ध्य-दुर्ग-नरपाल-पुरोधा.—।'

७. सर्ग ९।३८ :
'स च स्वसुः स्नेहभरेण राज्ञा सहैव मार्गे कतिचिद् दिनानि।'

८. सर्ग ९।४०।

९. सर्ग ९।४१-४६ : 'पुत्रे दधामि युवराजपदं ततोऽहम्।'

१०. सर्ग ९।४७ : 'तनय-निहितभारो···क्षितिपतिरय···
विरलभवन-निष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत्।'

११. सर्ग १२।२९ : 'उवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम्।'

१२. सर्ग १२।४० : 'स च तनयनिवासे सुरसृहस्तोर्ध्वमृत्युः।' तथा

राज्याभिषेक के उत्सव भी विशिष्ट विधियों के साथ होते थे। ब्राह्मण जन राजकुमार को सिंहासन पर बैठाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर्णकलशों में भरे हुए तीर्थोदक से स्नान कराते थे।[१] इस समय तूर्यनाद के साथ चारण लोग कीर्ति-गान करते थे।[२] राजा दान करता था और बन्दियों की मुक्ति के आदेश देता था।[३] भद्रासन पर माला, धूप, चन्दन, अङ्गराग, रेशमी वस्त्र और रत्नजटित साफा से राजा का शृंगार किया जाता था।[४] वह कुण्डल मोतियों के हार, अंगूठी, केयूर और मणिमय कंकण भी धारण करता था।[५]

राजसभा में अधीनस्थ राजा और सामन्त तथा अन्य सभासद पहले से उपस्थित रहते थे।[६] राजा के सिंहासन पर बैठने पर प्रथम श्रेणी के सामन्त शुभ्रवर्ण का छत्र ग्रहण करते और चंवर डुलाते थे।[७] राजाके चरणों के समीप नजर निछावर होती थी और हाथी, घोड़े और रत्न भेंट किये जाते थे।[८] इसके पश्चात् राजा हाथी पर सवार होता था और राजधानी में उसकी शोभायात्रा[९]

२।७३: 'श्री वीरसिंहः'''सन्त्यज्य देहं सुकृतिमयमसौ यत्नुकल्याणमस्तु।'
और ३।१ : 'अथ तस्य स तातस्य विष्णुसायुज्यमीयुषः।
अन्त्येष्टिं विदधाति स्म वीरभानुर्यथाविधि॥'

१. सर्ग ५।१ : 'राज्याभिषेकार्हगृहे निषण्णं सिंहासने तं क्रतुकर्मदक्षाः।
द्विजातयो राज्यधरं समन्त्रैस्तीर्थोदकौघैः स्नपयन्त्यय स्म॥'

२. सर्ग ५।२-५ : 'तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीम्।'

३. सर्ग ५।६-७ :
'स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यानपि त्याजयति स्म सद्यः।'

४. वीर० सर्ग ५।९-१० :
'स्रग्वी स भद्रासनमभ्युपेत्य ततो विविक्तालय-मध्यवर्ति।
धूपेन सौरभ्ययुजश्च केशान् कृत्वा वपुश्चन्दनलेप-शोभि॥
उष्णीषमादत्त वरं द्विधाम्यं पट्टाम्बरेणाऽपि तथा च भङ्ग्या॥'

५. सर्ग ५।१०-१३

६. सर्ग ५।१४ : 'अगात् सभा भूपतिमण्डितां तां सम्यैर्जनैः'''।'

७. सर्ग ५।१५ : 'शुभ्रातपत्रेण च चामराभ्याम्''''

८. सर्ग ५।१७ :
'तस्याङ्घ्रिनम्रा उपढौकितानि हस्त्यश्वरत्नानि निवेदयन्तः।'

९. सर्ग ५।२०
'आरुह्य राजा द्विरदं सहर्षैरपक्षपातैः प्रचरन् पुरस्थैः।'

निकलती थी। अन्त में राजा कुलदेवता का विशेष पूजन करता था। बघेलखण्ड में कौबेरदेव का पूजन होता था।[१]

वर्ण

समाज में वर्ण-व्यवस्था पूर्ववत् प्रचलित थी। ब्राह्मणों का सम्मान था।[२] जन्म, विवाह, अभिषेक आदि संस्कारों और कृत्यों में ब्राह्मण पुरोहित का काम करते थे। वे श्रौत और स्मार्त विधियों के वेत्ता तथा नीतिज्ञ होते थे। उन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान रहता था। मन्त्री के पद पर भी इनकी नियुक्ति होती थी।[३] क्षत्रिय युद्ध-प्रिय और संघर्षशील थे। वे सबल और वीर होते थे तथा शस्त्र के साथ शास्त्र की भी शिक्षा ग्रहण करते थे। उनमें मृगया की रुचि विशेष थी।[४] नगरों में समृद्ध लोग बसते थे। राजा बाजार सजवाता था।[५] यह वैश्यों की स्थिति का द्योतक है।

द्विजेतर जातियों के लोग भी द्विजों के अनुसार आचरण करते थे। कुछ लोग यज्ञोपवीत भी धारण करते थे।[६] शबर आदि आदिवासी आखेट-प्रेमी होते थे

१. वीर० सर्ग ५।२२ : 'राजा गहोरा-त्रिदशालयाऽर्चत् ।'
तथा ५।२३-२४ : 'कौबेरदेवं प्रथमं स राजा सम्पूज्य''' ।
अयं बघेलान्वय-वृद्धिहेतुः''''''''' ॥'

२. सर्ग ५।६७ :
'गो-ब्राह्मणानां वधतो महान्च न दुर्गतेरुद्धरणं नराणाम् ।
तत्पूजया सर्वशुमानि नूनमिति प्रबुध्य द्विजगोहितोऽभूत् ॥'

३. सर्ग १।७४ : 'यथास्य चक्रे सह जातकर्म, पुरोहितेन''' ।'
सर्ग ५।१,२ : 'आमन्त्रमुक्तैर्द्विजवर्यमुख्यैः ।'
सर्ग ७।८५ : 'श्रौत-स्मार्त-द्विजेन्द्रैर्द्विजकृतिनिपुणैर्लौकिकज्ञानविज्ञैः ।'
सर्ग ९।२ :
'ज्योतिर्विदं धरणिदेवगण-प्रधानं''।
आहूय मन्त्रकुशलो''''''''' मन्त्रं सुतस्य सुविवाहकरं चकार ॥'
सर्ग ९।३ : 'विप्रोत्तमः प्रकृतिमण्डल-मध्यवर्ती ।'

४. सर्ग २।४२-४८ : ८।१३-१४,१८-१९ : ११।८,११,१४ ।

५ सर्ग ३।१० : ''''''''''''''''''यथा मक्षपत्तनं धनसम्भृतम् ।
हट्टश्चातीव रम्योऽस्मिन्'''''''''''''''''' ॥'
सर्ग ३।२४ :
'तत्रोषिताः श्रीबहुला यथा स्युर्न तत्समृद्धिः कविनाऽपि वर्ण्या ।'

६. सर्ग ३।१५ : 'अद्विजातीनपि श्लाघ्यानार्यसङ्गतिशोभनान् ।
धृतोपवीतान् शुद्धधर्मं लौकिकाचारहेतुना ॥

और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा मृगया करने में राजा की सहायता करते थे। इनके वस्त्र और शरीर काले रहते थे।[१] वे हरिण पालते थे, सिर पर महुए की मञ्जरी धारण करते थे और राजा को भेंट में मांस लाकर देते थे।[२] कुछ नाविक आदि के कार्य करते थे और शत्रुओं को पकड़ने में सहायता देते थे।[३]

आश्रम

यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के अनुसार इस युग में आश्रम-व्यवस्था के चित्र नहीं मिलते। विद्याध्ययन की स्थिति मात्र को ब्रह्मचर्य अथवा मरणकाल में त्रिवेणीवास को वानप्रस्थ या संन्यास का रूप नहीं दिया जा सकता। इतना अवश्य माना जायगा कि अन्तिम समय में गृहत्यागी एवं विरक्त जीवन बिताने की ओर रुचि शेष थी, क्योंकि हम वीरभानु को इसी रूप में मोक्ष-साधना करते हुए पाते हैं।[४]

गृहस्थ-जीवन का महत्त्व अत्यधिक बढ़ चुका था, किन्तु इसे आदर्श रखने और शास्त्रानुकूल आचरण रखने की ओर अवश्य ध्यान था। राजा वर्णाश्रम की स्थापना करना अपना कर्तव्य समझते थे[५] तथा जितेन्द्रियता भी प्राप्त करते थे।[६]

---

१. वीर० सर्ग ११।११ : 'मृगयुकुलमुदञ्चच्चापबाणास्त्रजालं
क्षितिवसन-शरीरं दर्शयामासुरुच्चैः।'

२. सर्ग ११।१२ : 'अयमिह शशमांसोपायनं बिभ्रदेव
प्रगुणहरिणकोड-व्यग्रहस्तः स पश्चात्।
वनतरुणमधूकान् मञ्जरीं मूर्ध्नि धृत्वा
कथयति मृगयायाः कौतुकं काननस्य॥'

३. सर्ग २।१८ : 'विभान्ति यत्राटविकाः सकाण्डै-
र्धनुर्भिरत्राञ्चितनाविकाश्च।
वन्या विदग्धास्तरि-पण्डिता ये
कुर्वन्ति शत्रूनपि तत्र लभ्यान्॥'

४. सर्ग १२।२८-४०।

५. सर्ग १।१३ : 'वर्णाश्रमाणां गुरुरेष राजा
वर्णाश्रमान् स्थापयति स्व-धर्मे।
स्वे स्वे चतुर्वर्गफलाप्तिहेतौ
स्व-धर्मरक्षाहित-चित्तवृत्तिः॥'

तथा सर्ग ६।११।

६. सर्ग ५।६० : 'कामादि-षड्वर्ग-जय-प्रतिष्ठम्।'

वे धर्म और न्याय को प्रश्रय देते थे।[1] लोक-कल्याण की दृष्टि से बाग लगवाते थे; सड़कें, तालाब और बावलियाँ निर्मित कराते थे;[2] लौकिक और पारलौकिक दोनों कल्याणों की साधना करते थे।[3] ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण से मुक्त होना आवश्यक समझा जाता था।[4] तीर्थ-स्थान, देव-पूजन, साधु-सम्मान, दान-आतिथ्य, पुराण-श्रवण, ब्रह्मयज्ञ, यम-नियम आदि का गृहस्थ-जीवन में महत्त्व था।[5]

दर्शन-उपासना

वीरभानूदय काव्य में षड्दर्शन का महत्त्व सूचित होता है। रामचन्द्र को छात्रावस्था में षड्दर्शन पढ़ाए जाते हैं।[6] वीरभानु की त्रिवेणी-वास की अवस्था में षड्दर्शन के वेत्ता पण्डित उनके समीप आकर ज्ञानचर्चा करते हैं।[7] वीरभानु अन्तिम दिनों में ब्रह्म-चिन्तन करते हैं।[8]

इस काल में सामान्यतः सभी देवताओं के पूजन होते थे। वीरभानु कोटर तीर्थ पर यमुना में स्नान कर सूर्य, गणेश, अग्नि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और विष्णु की स्तुति करता है।[9] वीरभानु की पत्नी रायमती गर्भवती अवस्था में स्वप्न में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम,

---

१ सर्ग २।१२३ : 'विचिन्त्य चैतत् स करोति धर्मम्।'
तथा ५।११४ :
'स नीतिमाजामकरोच्च सङ्गं समासदां निर्मलमानसानाम्।'
और ५।१२१ : 'तस्मादयं न्यायपथानुवर्ती।'

२. सर्ग ५।११८ : १।२५-२८ : २।२६-२७ :

३. सर्ग ५।८० : 'यदैहिकामुष्मिकधर्ममोर्ध्वं तत्कर्म कर्तव्यम्।'
तथा ६।१४—'ऋणानि यानि प्रतिभान्ति लोके दैवार्षपित्र्याणि च····।'

४. सर्ग ७।८६ : 'राजा पूर्वगुणैर्युतः···।'

५. सर्ग ४ तथा सर्ग ५।४९ : 'निसर्गतोऽस्याघुजना न सम्यग्
वदन्ति तस्मात् स सतः समेति।'
५।६२ : 'तस्यातिथौ सत्कृतिरस्ति नित्यम्।'
५।६६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी,
पुराण-वेद-स्मृति-मादरात्मा।'
५।९८ : यमान् विवेकी नियमानुपास्ते
हरिप्रसत्यै विजितेन्द्रियोऽयम्।'

६. सर्ग ८।१८। ७. सर्ग १२।३६।

८. सर्ग १२।३० 'अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः।'

९. सर्ग ४।१-६६।

बुद्ध और कल्कि के दर्शन करती है।[१] यह दशावतार की प्रतिष्ठा का द्योतक है। यम, नैर्ऋत्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण वायु, कुबेर और शिव—ये आठों दिग्पाल गर्भ की रक्षा करते हैं।[२] इसी स्वप्नावस्था में वीरभानु के पिता वीरसिंह भी पुत्रवधू को दर्शन देते हैं और वे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—इन नवग्रहों की वन्दना करते हैं।[३] स्वप्नवर्णन में रामचन्द्र को कल्कि का अवतार बतलाया गया है।[४] गर्भ की रक्षा के लिए गङ्गा-यमुना, विष्णु के आयुध—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, मरीचि आदि मुनि, नारद, गरुड़, प्रह्लाद, बलि और भीष्म आदि प्रसिद्ध वैष्णव स्वप्न में रानी को दिखाई पड़ते हैं।[५] इनके अतिरिक्त गहोरा में तथा तीर्थों में प्रतिष्ठित शिव, पार्वती, चण्डी, शीतला, कुबेर, यम, ढुण्ढि आदि देवमूर्तियों की सूचनाएँ भी काव्य में प्राप्त हैं।[६] इस प्रकार हम इस काल में बघेलखण्ड में बहुदेवतावाद का सम्पूर्ण विस्तार पाते हैं।

काव्य का दृष्टिकोण भक्ति के अन्तर्गत समन्वय की स्थापना से प्रेरित है। कवि के अन्तःकरण में भगवान् कृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित है। वह वासुदेव की वन्दना से ही काव्यारम्भ करता है,[७] तथापि राम के प्रति उसके भाव अत्यन्त उच्च हैं।[८] कथानायक वीरभानु विष्णु के ध्यान में मग्न रहा करता है,[९] अन्यत्र वही शिव का सेवक बतलाया गया है।[१०] शिव के अंशभूत और नन्दि-गणों के समकक्ष कोबेरदेव कथानायक के कुलदेवता हैं। उनकी विशाल प्रतिमा गहोरा की सीमा पर उपत्यका के ऊपर बने प्राकारयुक्त मठ में प्रतिष्ठित है।

---

१. सर्ग ७।५-२०   २. सर्ग ७।३८   ३. सर्ग ७।५१-५८

४. सर्ग ७।२३ : 'कल्किरूपो हरिः साक्षाद् दुष्टम्लेच्छापनुत्तये।
  मम निर्वर्तते कुक्षौ मत्पुत्रत्वेन सृष्टिकृत्॥'
  तथा सर्ग ७।५९, ६२, ६४।

५. सर्ग ७।२६-३७

६. सर्ग १।२९ : २।८ : ४।५५, ६०

७. वीर० १।१ : 'अजोऽपि देवो वसुदेवजन्मा द्वितीयहोनोऽपि रमाविहारी।
  जनार्दनः पालयिता जनानां कोऽपि श्रियं सन्तनुतां स ईशः॥'

८. वही, १।७० :
  'निमज्जतां प्राणभृतां समन्तात् पोतो भवाब्धौ किल राम-शब्दः।'

९. वही, ४।५२ : 'व्यरमत् प्रणमन्नेष वर्णयित्वेत्यमच्युतम्।
  एकाग्रचित्तस्तं पश्यन् हरिभक्तावरज्यत॥'

१०. सर्ग ५।९९ : 'भवन्नुमावल्लभ-पादपद्म-सेवी······।'

ये देव बघेल राजधानी के गौरव और वंश की सनातनी वृद्धि के हेतु हैं।[१] एक ओर कवि गढ़ोरा में राजलमल्ल देवी द्वारा तालाब पर प्रतिष्ठापित शीतला देवी को कुल की इष्टदेवी कहता है,[२] तो दूसरी ओर वह रामचन्द्र को म्लेच्छनाशक कल्कि के अवतार बतलाता है।[३]

समन्वय की इस वृत्ति के साथ-साथ कवि वासुदेव रूप में कृष्णावतार का विशेष रूप से और सामान्यतः वैष्णव धर्म का उपासक है। काव्य का सन्देश है कि सब कुछ छोड़ कर विष्णु की भक्ति करनी चाहिए।[४] विष्णुलोक की प्राप्ति ही अन्तिम गति है। विष्णु में प्रविष्ट होने से (संसरण का) भय नहीं रहता।[५]

वीरभानूदय काव्य पर स्पष्टतः श्रीमद्भागवत का परिपूर्ण प्रभाव है। जगद्गुरु कृष्ण के बालचरित भी अद्भुत थे।[६] जिन परमात्मा के उदर में (प्रलयकाल में) सारे जगत् समाविष्ट हो जाते हैं, उनकी गोवर्धन-धारण आदि वार्ताओं में आश्चर्य कैसा?[७] शिशुपाल आदि तक जगदीश का विरोध करके भी मुक्ति को प्राप्त हुए।[८] प्राणी उन्हीं की माया में निमग्न रहते हैं।[९]

१. सर्ग ५।३० : 'शिवांशभूर्नन्दिगणेन तुल्यः।'
तथा ५।२७ : 'उपत्यकाधिष्ठितमूर्तिरेष प्राकाररम्योच्च-मठ-प्रतिष्ठः।'
५।२५ : 'यो मण्डनं नः कुल-राजधान्याः।'
और ५।२४ : 'अयं बघेलान्वयवृद्धिहेतुः सनातनो नो विदधातु वृद्धिम्।'
२. सर्ग १।२९-३० 'या नः कुलस्येष्टकरी कृपालुः।'
३. सर्ग ७।२३ ५९ : 'गुणसिन्धोर्हरेर्भागः कल्किरूपेण सिद्ध्यति।'
४. सर्ग ७।४७ : 'विष्णुभक्तिविधातव्या विहाय सकलं विधिम्।'
७।३१ : 'नास्ति लोके भयं किञ्चित् केवलं हरिकीर्तनम्।'
७।३२ : 'अन्यत् कलौ न पश्यामि नारायण-कथां विना।
मोक्षदं सुखदं नित्यं गङ्गामिव.............. ॥'
४।३९ : 'केशवोऽस्तु मुदेऽस्माकं स्मरणेन हि तुष्यति।'
२।५ : 'श्रीवासुदेव-स्मरण-प्रसक्तः।'
५. सर्ग १।६४ : 'विष्णु-प्रवेशो न पुनर्भयानि।'
६. सर्ग ४।३४ : 'यस्याद्भुतानि वृत्तानि बालस्यापि जगद्गुरोः।'
७. सर्ग ४।३६ : 'यस्योदरे विराजन्ति जगन्ति परमात्मनः।
तस्यान्या काऽद्भुता वार्ता पर्वतोद्धरणादिका ॥'
८. सर्ग ४।३३ : 'यं विरोध्यापि लोकेशं शिशुपालादि-भूमिपाः।
लेभिरे परमां मुक्ति............................ ।'
९. सर्ग ४।३७ :
'......नरो यस्यैव मायया। न जहाति कुटुम्बाब्धि मज्जयन्तं...... ।'

इसी कृष्ण रूपी अक्षय तत्त्व में कल्पक्षय के समय अन्य देव प्रवेश कर जाते हैं ।[१] वे वेदों, स्मृतियों और पुराणों के सार हैं; उनके व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूप हैं । उनके स्मरण से समस्त पापों का नाश होता है ।[२]

उपर्युक्त सिद्धान्तों के साथ साथ वैष्णव मत में निश्चित मोक्ष के चार भेदों (सार्ष्टि, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य) में से सायुज्य को लक्ष्य माना गया है ।[३] इसके अतिरिक्त वैष्णव आचार-पद्धति के अनुरूप दीक्षा-ग्रहण पर विशेष बल दिया गया है तथा पञ्च संस्कार (ताप, पुण्ड्र, नाम, माला, मन्त्र)[४] और नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन) के कुछ अङ्गों पर विशेष आग्रह है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ।

यह स्मरणीय है कि १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध एवं मध्य में लगभग आधी शताब्दी से भागवत धर्म के महान उन्नायक स्वामी वल्लभाचार्य और उनके पुत्रों एवं शिष्यों ने प्रयाग के निकटस्थ अरैल क्षेत्र को अपना प्रचार-केन्द्र बना रखा था । यही अरैल प्रस्तुत काव्य का अरर्क है, जो बघेलों का एक महत्त्वपूर्ण नगर बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त बघेल-नरेशों के साथ अरैल के इन महात्माओं का सम्पर्क भी था ।

जन-जीवन

वीरभानूदय काव्य में जन-जीवन की कुछ ही झाँकियाँ उपलब्ध हैं । सामान्यतः प्रजा राजा का अनुसरण करती थी । राजा से सम्बद्ध युद्धों और उत्सवों को सामूहिक रूप प्राप्त हो जाता था । राजा देवालयों, तालाबों और बावलियों के निर्माण कराते थे तथा उद्यान लगवाते थे । ये वस्तुएँ तथा राजा द्वारा बनवाई हुई सड़कें और खोले हुए बाजार सार्वजनिक उपयोग की वस्तुएँ

१. सर्ग ४।४७ : 'एनमेव विशन्त्यन्ते सुराः कल्पक्षये सति । अक्षयोऽयं''' ।'
२. सर्ग ४।५१ : 'कर्मसु क्रियमाणेषु''' स्मृतो दत्ते च मङ्गलम् ।'
तथा ४।५२ : 'व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय साराय च नमो नमः ।'
३. सर्ग ३।१ :
'विष्णुसायुज्यमीयुषः । 'तथा २।७३ : 'श्रीशं सदैवमीशं मिलितः''' ।'
४. सर्ग ३।१३ : 'अदीक्षितानां लोकानां कर्मस्वनधिकारिताम् ।
दृष्ट्वा गोपाल-मन्त्राणां गृह्यालून् समामृतः ।।'
३।१४ : 'गोपालमन्त्रदीक्षाभिरूर्ध्वपुण्ड्र-विराजितान् ।''' '
३।१६ : 'गोपाल-भोग-भोज्येन कृतभोगान् कृपापरान् ।
स्मरतः कृष्णनामानि कल्याणानि च वैष्णवान् ।।'

बन जाती थीं।[१] वाणिज्य की सुरक्षा की व्यवस्था होती थी[२] और सैनिक-शिविरों के लिए भी बाजार खोले जाते थे।[३] इनमें विभिन्न देशों से प्राप्त बहुमूल्य वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं।[४] भूमि को खेती के योग्य बनाने के प्रयत्न होते थे।[५]

कला के क्षेत्र में इस समय भवन-निर्माण की ओर विशेष रुचि दिखाई देती है। मेदचन्द्र, वीरसिंह, और वीरभानु ने उच्च कलात्मक भवनों के निर्माण कराये थे।[६] मल्लिनाथ उन्नाय के वंशजों के ऊँचे सचित्र भवन गहोरा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। भवनों पर पताकाएँ फहराई जाती थीं।[७] पार्वत्य उपत्यकाओं पर मंदिर, मठ और दुर्ग भी बनते थे।[८]

राज्य में सङ्गीत-कला का सम्मान था और ध्रुपद गायकी का विशेष विकास हो रहा था। तानसेन के ध्रुपद गीतों की धूम थी। सङ्गीत की सभाएँ प्रायः नित्य होती थीं।[९] उत्सवों में गणिकाओं के नृत्य भी होते थे।[१०] राजधानियों में गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ बसती थीं, वे सैनिकों का मनोरञ्जन भी

---

१. वीर० सर्ग २।२६-२९ : ३।२५-२८ : ५।११८
तथा सर्ग ३।६४ : 'वाटी सा वीरसिंहस्य..........।'
और सर्ग २।७ :
'स राजधानाम मुदा गहोरां चतुर्दिशा राजित राजमार्गान्।
प्रासादजालैर्जनितप्रसादैः ....॥'

२. सर्ग ५।७८ : 'वणिक्पथान्—विधापयत्वेच.............।'
५।१५० : 'तस्माटवी सार्थसुखप्रदात्री तस्यात्रयो राजपथा इवेष्टाः।
तस्य स्रवन्ती पथिकव्रजानां स्वगेहवापीव तनोति शर्म॥'

३. सर्ग ३।६५ : 'नानादेशेषु जातानि पश्य वस्तूनि बुद्धिमन्।
अस्यापणेषु राजन्ति बहुमूल्यानि सम्प्रति॥'

४. सर्ग ५।६८।

५. सर्ग ११५९-६० तथा २।७-१४।

६. वीर० सर्ग १।५९-६० तथा २।७-१४।

७. सर्ग २।३३ :
'उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां गृहाः सचित्रास्चलकेतुमालाः।'

८. सर्ग ५।२७, ३१ : 'अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गम्.........।'

९. वीर० सर्ग १०।२६-३० : 'यस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम्।'

१०. सर्ग १।७५ : 'निर्घोषयामासुरनल्पवृद्धेर्गृहे च राज्ञः पटहानि भेर्दः।
मृदङ्गमर्दैर्ननृतुः सुमुख्यः सुनृत्तविज्ञाः किल वारनार्यः॥'

करती थीं।[१] अन्य मनोरञ्जनों में मृगया[२], मल्लयुद्ध[३] एवं शुक-सारिका[४] आदि पक्षियों का पालना था। युद्ध के वाद्यों में शंख, भेरी और ढक्का थे।[५] सङ्गीत-समाजों में मृदङ्ग, वेणु और वीणा का विशेष स्थान था। तूर्य, पटह और भेरी के भी उल्लेख हैं।[६]

काव्य-कला का राजा सम्मान करते थे। प्रस्तुत भूपाश्रित महाकाव्य स्वयं इसका उदाहरण है।[७] जन्म आदि उत्सवों पर कविता-पाठ होते थे।[८] चारणों द्वारा कीर्ति गान[९] संभवतः हिन्दी काव्य के रूप में ही होते थे।

नारियाँ भी सांस्कृतिक विकास में योग देती थीं। रानियाँ लोक-कल्याणार्थ तालाब, बावली और देवालय निर्मित कराती थीं।[१०] पति और पिता के बीच युद्ध की स्थिति होने पर वे पति का पक्ष लेती थीं।[११] वे पतिव्रता, शीलवती और धर्मप्रवण होती थीं।[१२] स्नान करने और पीने के लिए वे गङ्गाजल का

---

१. सर्ग २।२०, ३० : 'वाराङ्गना यत्र······ क्रीडन्ति।'
३।६६ : 'रूपाजीवाः स्म रमन्ति पटवेश्मनि··· ॥'
तथा ३।६८।

२. सर्ग ११।

३. सर्ग ८।१३-१७।

४. सर्ग ५।८।

५. सर्ग २।३४।
'दध्वान भेरी रुचिरं पुरस्तात् कम्बुर्गभीरं च ननाद ढक्का।'
तथा २।४३ : 'ढक्का अगर्जीभयतो गभीरं भृशं युयुत्सून् प्रति दत्तहर्षा।'

६. सर्ग १।७१ : ७।८६ : ततानि सुषिराण्यस्य घनानद्धानि मन्दिरे।'
तथा ८।३१ : 'नखघातकलस्वनोत्कया परिरभ्यैकभुजेन वल्लकी।
हृदि रागवती निवेशिता रमणी रामसरोरमद् गुणैः ॥'

७. सर्ग १२।४२ : 'जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात्।'

८. सर्ग ७।८२ : 'नृत्यन्नर्तकभासुरा सुकविता सम्मोदिपर्यन्नुता।'

९. सर्ग ९।२७ तथा ५।१५ :
'तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीं नानाविधैर्वृत्तशतैर्विनीताः।'

१०. सर्ग १।२५-२९।

११. सर्ग ७।७० : 'मदीयः स पिता त्यक्तराजनीतिर्विजीयताम्।

१२. सर्ग १२।३ : 'पतिव्रतानां धुरि संस्थितायाः।'
तथा सर्ग १।६९ :
'पत्न्योऽनुजग्मुर्ज्वलनं प्रविश्य तिस्रोऽनुकूलाः धृतधास्त्रसाराः।'

उपयोग करती थीं।[१]

सोमायात्राओं के समय नगर की कन्यायें लाजा-पुष्प बरसाती थीं।[२] हाटों और बाजारों में स्त्रियाँ शृङ्गार करके निकलती थीं। शृङ्गार में विशेषक (मुखचित्रण) भी होता था।[३] वर को आरती सधवाएँ उतारती थीं।[४] बारातियों को गीतों में गाली देने का भार भी उन पर ही था।[५]

राज्य-तंत्र

देश के अन्य भागों की भाँति बघेलखण्ड में भी इस काल में राजा की सत्ता सर्वोपरि थी। राजा द्वारा नियुक्त प्रमुख अधिकारी के लिए काव्य में अमात्य, सचिव और मंत्री तीन शब्द प्राप्त होते हैं। गणेश राउत को सचिव और मंत्री दोनों ही कहा गया है।[६] अतः उपर्युक्त तीनों शब्द पर्यायमात्र प्रतीत होते हैं। मन्त्री अनेक रखे जाते थे।[७] ये राजा के हितैषी, यथार्थ मत देने वाले, सजग, गुणवान् और स्मृतियों के ज्ञाता होते थे।[८] राजा प्रायः

१. सर्ग १२।५ : 'न जाह्नवीवारि विहाय यस्याः
स्नानाय पानीयमभूत् कदापि।
अलाम्तरं प्राणभयेऽपि नाऽभात्
क्षणोऽपि धर्माचरणं विना च॥'

२. सर्ग २।१६ : 'पौरात्मजाभिः कुसलाजवृष्टिः।'

३. सर्ग २।२३ : 'यदीयहट्टो मृगलोचनानां मञ्जीर-शङ्कार-रवेण रम्यः।
जेङ्गीयते मन्दगतिप्रसूनां लोकस्य हृद्‌द्रव्य-विशेषकाणाम्॥

४. सर्ग ९।२४।

५. सर्ग ९।२२।

६. वीर० ८।३ :
'···गणेश-राउतः। ···मन्त्रिणा, गणनामेति गणेषु योऽग्रतः।'
८।४।' ·····'विलोक्य तं सचिवं ··'।' तथा ८।४३ 'सचिवं···'।'

७. सर्ग ६।४१ : 'श्री वीरभानुरथ मन्त्रिगणैः समेतः।'

८. सर्ग ५।५५ :
'अमात्यवर्गो नृपतेर्विकाशो श्रियं परां पुष्यति तद्धितैषी।'
सर्ग ५।५६ :
'येऽमात्यवर्याः स्मृतिवेददृष्ट्या न लङ्घयन्ते पदवीम् ··· ।
············ यथार्थवाद ············ प्रतिपन्नपुण्याः॥'
सर्ग ५।७२ : '···तेऽत्रहिता इति स्युः।'
तथा ५।११९ : '··· स्मृतिवाक्यनिष्ठाः।

प्रतिदिन इनसे राज्य-सम्बन्धी चर्चा करता था।[१] मन्त्रणाएँ गुप्त रखी जाती थीं[२] और प्रमादी मन्त्रियों को हटा दिया जाता था।[३]

छोटे पदों के नाम काव्य में प्राप्त नहीं हैं। केवल सामूहिक शब्द 'भृत्य' और 'नियोगी' मिलते हैं। दुर्ग की रक्षा में कुलीन, सु-परीक्षित, सजग एवं शत्रु द्वारा अभेद्य भृत्य नियुक्त किये जाते थे।[४] भृत्य के सामान्य गुण थे राज्य की वृद्धि में सक्षम, राज्य-भक्त, अप्रमत्त, कुल-परम्परा के पालक, राजा के हितैषी एवं दृढ़ आचरण वाले होना।[५] सफल भृत्यों और अनुकूल सामन्तों को सम्मानित एवं व्यवस्था का उल्लङ्घन करने वाले तथा प्रमादी एवं भ्रष्ट सामन्तों और भृत्यों को दण्डित किया जाता था।[६]

---

१. सर्ग ५।७० : 'निरन्तरं यस्य समासु चर्चा राज्यस्थिरत्वस्य भवत्यशेषा।
द्वेषं च रागं च भयं च मुक्त्वा प्रस्तूयमाना सचिवैरदुष्टैः ॥'

२. सर्ग ५।१०६ : 'मन्त्रं करोति प्रतिवासरं सः·······
ज्ञातोऽभवत् कैरपि नैव मन्त्रः··· ॥'

३. सर्ग ५।११६ : '···नृपतिः प्रमत्तानमात्यवर्गानवमन्यते स्म।'

४. सर्ग ५।४९ :
'रक्षात्मनस्तेन बिभीतिनाऽपि मौलैः कृता ते न भवन्ति जातु।
भेद्या रिपूणां द्रविणैर्महद्भिः शीलं प्रमाणं कुलमत्र चास्ति ॥'
५।४८ : दुर्गे··· हितैषिभिः पालयते स भृत्यैः।'

५. सर्ग ५।५४ :
'नियोगिनस्ते विविधेषु प्रयुक्तास्तेन स्व-चिह्नं दधति स्म येऽमी।
वृद्धिक्षमा राज्यपदस्य भक्ता जिष्णोरिवात्यक्त-कुलक्रमाश्च ॥'

६. वीर० सर्ग ५।१४८ :
'प्रभुः स सर्वाधिकृतान् परीक्ष्य प्रसाददण्डौ विदधाति विद्वान्।'
तथा ५।१४२ :
'कार्य-व्यवस्थाहृति-सम्प्रवृत्तैर्नियोगिभिः शिष्टपदं वहद्भिः।
राज्यं विपर्यस्तमयं विलोक्य यथोचितं दण्डमथादधीयाम् ॥'
सर्ग ५।१४० :
'उत्कोचभाजां चतुरत्वभाजां नृपेण हृतस्वस्व-हिरण्यजातम्।
उद्धारलक्ष्येण गृहीतमासीद्························ ॥'
सर्ग ५।१४४ :
'सामन्तलोकानपि दण्डयित्वा································।
तेषामनीतिं भजतां च भूम्या स्वभूमि-देशस्य समर्थकोऽभूत् ॥'

दुर्ग, हाथी, घोड़े, ऊँट और पैदल योद्धा ये सैन्य-शक्ति के अङ्ग होते थे।[१] घोड़े प्रायः वनायु देश के अच्छे समझे जाते थे[२] और हाथी विन्ध्य पर्वत के।[३] घोड़ों के लिए गुड़ पौष्टिक माना जाता था।[४] राजधानी में अश्वशालाएँ और गजशालाएँ निर्मित की जाती थी।[५] शिविरों में सैनिकों को मनोरञ्जन की छूट रहती थी।[६] सामन्तों की अपनी सेनाएँ होती थी, जो युद्ध के समय राजा के उपयोग में आती थी।[७] गुप्तचरों की सूचनाओं के आधार पर आक्रमण किये जाते थे।[८] युद्धों मे तलवार के साथ-साथ धनुष-बाण का भी प्रयोग किया जाता था।[९] रथों के प्रयोग की भी सूचना प्राप्त होती हैं।[१०]

---

१. सर्ग ५।३९ :
 'अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पत्तनमावसन् सः।
 न शत्रुभीतिं मनसाऽप्य वऽऽपत् .... ॥'
 सर्ग ५।४८-४९,११६ : 'अगम्य-दुर्गस्थित-शत्रुवृन्दम्।'
 सर्ग ५।८१ : 'गजैश्च भूमिः स्थिरतामुपैति।'
 सर्ग ५।६६ : 'अश्वैर्हि भूपैर्विजिता धरोर्वी।'
 सर्ग ३।७२-७९ : 'उष्ट्रा ब्यराजन् प्रसृताः।'
 सर्ग २।१७ : 'पदातयो यत्र विराजमानाः।'

२. सर्ग २।१५ : 'वनायु-देश्याः ... ।'

३. सर्ग ६।३९ : 'विन्ध्याद्रिप्रभवास्तदीय-करिणः।'

४. सर्ग ३।७१ : 'तुरङ्गा बलसङ्घस्य भुञ्जते स्म गुडादिकम्।
 यद् भक्षणाद् भवेत् क्षिप्रममीषां श्रमसंक्षयः॥'

५. सर्ग २।१४ : 'अश्वाश्वशालाः सुतरां विशालाः।'

६. सर्ग ३।६६-७०

७. सर्ग ५।६१ :
 'संसेवने दत्तहृदः समस्तान् सामन्तलोकानपि मानयन् सः।
 तद्-भूपरिस्याग-विवृद्धराज्यैस्तैः सैन्यकोशैरपि वर्द्धितोऽभूत्॥'

८. सर्ग ५।१०२ : 'चाराक्षिभिर्मण्डलमीक्षतेऽसौ।'
 सर्ग ५।१०३ : 'स्वेषां परेषां निखिलं चरित्रं ...।
 अबोधि चारैः अहितैः नृपालः॥'
 सर्ग ५।१५१ : '... शक्तित्रयं तेषु निशम्य चारैः।
 उच्छिन्नवांस्तान् ....॥'

९. सर्ग ८।७-१२ : 'शरवृष्टिर्वृथाऽभवत्ततः।'

१०. सर्गः ३।७२ : ' सुष्ठु रिङ्गन् रथाङ्गयः।'

कोश की वृद्धि के लिए राजा सदान, खेती और वाणिज्य की सुविधाओं की ओर ध्यान देता था।[१] अन्यायी सामन्तों और भ्रष्ट भृत्यों को भूमि और धन छीन कर तथा कर-सङ्ग्रह द्वारा राज्य और कोश की वृद्धि की जाती थी।[२] व्यय का अनुमान पहले कर लिया जाता था और उसे आय के अनुरूप रखा जाता था।[३] इस प्रकार आय और व्यय का संतुलन रखा जाता था।[४] राजा अन्य कार्यों के साथ-साथ आय-व्यय का स्वयं निरीक्षण भी करता था।[५] वह साम, दान, दण्ड और भेद का यथावश्यक प्रयोग करता था।[६] ब्राह्मणों को दण्ड नहीं

१. योग० सर्ग ५।७४ : 'कोशोऽपि दण्डेऽप्यभवत्सयत्नः।'
सर्ग ५।७५ : 'कोशेन राज्यं दृढतामुपैति।'
सर्ग ५।६८ :
'कृष्टा परीता च निवासिता च क्षितिर्नृपाणां वशगा फलाय।'
सर्ग ५।७८ : 'वणिक्पथान् कोशविवृद्धि-हेतोः।'
सर्ग ५।८१ : 'खनिश्च राज्ञाऽस्तद-कामधेनुः।'

२. सर्ग ५।१४४ तथा ५।८५ :
'आयोचितं साधु करोति पूर्णं व्ययं नृपाणां कर-सङ्ग्रहोत्कः।'

३. सर्ग ५।५९ : 'दैनन्दिनाय व्यय-वर्षकोशं······।'
सर्ग ६।४० ।
'वर्षे मेऽस्ति कियान् वरो व्यय इयानित्यादि सञ्चिन्तयन्।'
सर्ग ६।१९ :
'राजा यथा रक्षति भूमिमेता तथैव भूमिस्तनुतेऽस्य वृद्धिम्।
कर्मान्तजैराकर-रत्नदानैः कृष्या सिरीत्या फलवृद्धिमत्या॥'

४. सर्ग १।४३ : 'आयानुरूपं व्ययमेव कुर्वन्।'

५. सर्ग ५।८९,९३ :
'प्रभुः स्वयं यावदिदं न पश्येत्तावन्न सम्यक् फलयोगिकार्यम्।'

६. सर्ग ५।१४५,१४९ :
'सामाद्युपायेषु नृपः प्रयुङ्क्ते येनैव साध्या रिपवस्तमेव।'
सर्ग ६।२९ : 'सामादेशं सुनीतेः।'
सर्ग ६।१८ : 'द्राग् दण्डयन् दण्डपातैः :'
सर्ग ६।५ :
'अकारि कृत्यं स्वमवाप्य रन्ध्रं रिपुर्व्यभेदि स्वमगोपि चैतत्।'

दिया जाता था, वे नाम की भाँति अवश्य होते थे।[1] प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रखा जाता था।[2]

काव्य में नीति-शास्त्रों के आधार पर शक्ति-त्रय[3] (प्रभु, मन्त्र और उत्साह), षड्गुण[4] (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय) तथा सप्ताङ्ग नीति[5] (स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल) के उपयोगों का उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त आशु क्रिया,[6] और तन्द्राहीनता[7] भी राज्य वृद्धि के लिए आवश्यक गुण बतलाये गए हैं। इन सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में प्राचीन धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों का राज्यतन्त्र में पूर्ण अवलम्बन लिया जाता था।

---

१. सर्ग ५।६७

२. सर्ग ५।१०९–११०; ११३, १२६ : 'तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः।'

३. सर्ग ५।१३१ : 'शक्तित्रय-सद्विवेकः।' तथा सर्ग ५।१५१

४. सर्ग ५।१३१ : 'स षड्गुणानामुपयोगविज्ञः।'

५. सर्ग ५।४६ : 'तथा स सप्ताङ्गविचारनिष्ठः।'
सर्ग ५।७१, ८८ : 'राज्यस्य सप्तस्वपि सावधानः, सोऽङ्गेषु···।'

६. सर्ग ५।४२ : 'क्रियाशुकारी···संसाधयति प्रहृष्टः।'

७. सर्ग ५।९४ : 'अयं वितन्द्रः···।'
सर्ग ५।१४६ : 'राज्यस्य वैरी स यतः प्रमादः।'

लघु काव्य

(१) प्रशस्तिकाव्य : रामचन्द्रयशःप्रबन्धः

(क) परिचय

१९४६ ई० में प्राच्यवाणी से 'रामचन्द्र-यशः—प्रबन्धः' नाम से एक संस्कृत ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।[१] इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल में सुरक्षित है।[२] हरप्रसाद शास्त्री ने सोसायटी के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस पाण्डुलिपि की चर्चा की है।[३] बीकानेर महाराज के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की दूसरी पाण्डुलिपि की सूचना भी प्राप्त है।[४] प्राच्यवाणी से ग्रन्थ के प्रकाशन के समय सम्पादक डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी को बीकानेर की पाण्डुलिपि निरीक्षणार्थ नहीं मिल सकी थी।[५] अतः यहाँ पर हमारे विचार का आधार प्राच्यवाणी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ही है। यह आठ पृष्ठों का है। प्रारम्भ में डा० चौधुरी की अंग्रेजी भूमिका है।

ग्रन्थ के अन्त की पुष्पिका सूचित करती है कि कवि का नाम गोविन्द भट्ट था और उसे 'अकब्बरी कालिदास' की उपाधि प्राप्त थी।[६] यह उपाधि

---

१. दि रामचन्द्र-यशः—प्रबन्ध आफ गोविन्द भट्ट एलियस अकबरीय कालिदास : (चौधुरी) : प्राच्यवाणी : ३, फेडरेशन स्ट्रीट : कलकत्ता : १९४६।

२. क्रमाङ्क ३१०९।

३. कैटलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स : जिल्द ४ : कलकत्ता १९२३ : पृष्ठ ८९ : क्रमाङ्क ८२६९—देशी कागज-देवनागरीलिपि-आकार १० "-३" पृष्ठ-सङ्ख्या १८-प्रत्येक पंक्ति पर यत्र-तत्र त्रुटिपूर्ण लेखन।

४. कैटे० बीकानेर: पृष्ठ २४७ क्रमाङ्क ५२२।

५. राम० प्र० अंग्रेजी भूमिका।

६. वही, पृष्ठ ८ : 'इत्यकब्बरी-कालिदास-कवि-श्रीगोविन्दभट्ट-विरचित-श्री महाराजाधिराज-रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः समाप्तः।' नन्दन नामक व्यक्ति ने यह पाण्डुलिपि लिखी थी ('इदं पुस्तकं लिखितं नन्दनेन।')

कवि को मुगल बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) का समकालीन सिद्ध करती है। सुभाषित-सङ्ग्रहों में अकबर को लक्षित कर लिखे गए इस कवि के अनेक श्लोक उपलब्ध हैं[१], जो उक्त समकालीनता का पोषण करते हैं। अकबर का जन्म १५४२ ई० में हुआ था। उसने प्रौढ जीवन में सुस्थिर राज्य-काल में ही कवियों और विद्वानों को इस प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की होंगी। अकब्बरी कालिदास की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् कभी गोविन्द भट्ट ने यह ग्रन्थ लिखा होगा। अतः अनुमानतः इस ग्रन्थ की रचना १५८० ई० के पश्चात् कभी हुई होगी, जैसा कि डा० चौधुरी ने भी भूमिका में अनुमान प्रस्तुत किया है।

पुष्पिका के अनुसार ग्रन्थ महाराजाधिराज रामचन्द्र की प्रशस्ति है। यह रामचन्द्र अन्तःसाक्ष्य के अनुसार बघेल है और वीरसिंह तथा वीरभानु का वंशवर्धन है। ग्रन्थ में वीरभद्र नाम भी आता है[२], जो बघेलखण्ड के शासक रामचन्द्र बघेल का पुत्र है। अतः यही बघेल (१५५५-९२ ई०) इस प्रशस्ति का लक्ष्य है। इस प्रकार ग्रन्थ की रचना की तिथि १५८० और १५९२ ई० के बीच है। कृष्णमाचारियर ने भूल से इस ग्रन्थ को बीकानेर के राजा की प्रशस्ति माना है।[३]

"अकब्बरी (अकबरी) कालिदास" का एक श्लोक "दलपति-गृहिणी" को लक्षित कर लिखा हुआ प्राप्त है।[४] १५६४ ई० में अकबर के सेनापति आसफ खाँ से लड़ते-लड़ते मरनेवाली रानी दुर्गावती दलपतिशाह गौड़ राजा की विधवा रानी थी। यह चौरागढ़ (गढ़ा-कटंगा-जिला जबलपुर) की शासिका

रचनाकाल या लिपिकाल नहीं दिया गया है। साथ ही देखिये डा० हरदत्तशर्मा : 'दि सूक्तिसुन्दर आफ सुन्दरदेव : ओ जं० : जनवरी, १९३६ : अकबरी कालिदास।'

१. पद्यवेणी० : ५३ 'हुमाऊ-कुल-तिलकमणे' तथा १३८, १६८ : पद्यामृत० ८९,९७ 'पद्य० २९।२७ : सूक्ति० १५८ :....'वीर त्वं कार्मुकज्वे-दरबर....।' तथा १७४–'जल्लाल-क्षोणिपाल' (अकबर का नाम जलालुद्दीन भी था) : रसिक० १४।२९।

२. राम० प्र० पृष्ठ ४ : 'वीरसिंहकुलैक-धुरन्धर वीरभानु-महीपति-वंश-करीर-कोरक राम जय।' तथा 'वीरभद्र-सुरद्रुम' और पृ० ८ : 'प्रभु-रामबघेलमहं कलये।'

३. हि० क्ला० सं० लिट० : पृष्ठ २७४ : परि० १९९।

४. पद्यवेणी० ७९—'दलपति-गृहिणि त्वयका........।'

थी। बघेलखण्ड और इस गौड़ राज्य में निकट सम्पर्क था।[१] अतः गोविन्द भट्ट ने दुर्गावती पर ही उक्त श्लोक लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि गोविन्द की काव्य-कला १५६० ई० तक प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। इससे गोविन्द भट्ट की जन्म तिथि १५३० ई० के निकट मानी जा सकती है तथा सोलहवीं शती का सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध उसका काव्य-काल माना जा सकता है।

गोविन्द भट्ट ने एक स्थान पर किसी गुर्जरेन्द्र की प्रशस्ति भी लिखी है।[२] इन प्रशस्तियों से इतना ही ज्ञात होता है कि गोविन्द भट्ट अनेक राजसभाओं में पहुँचा था। उसने अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ लिखी हैं, जो सुभाषित सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं। अतः भक्ति-ग्रन्थ में यह किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं प्रतीत होता, तथापि वह किसी ज्वालामुखी या कामरूप देवी का विशेष उपासक था।[३]

सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त मुक्तकों के अतिरिक्त उसके ग्रन्थों में से एक स्तुति-ग्रन्थ का पता चलता है, जो ज्वालामुखी देवी के सम्बन्ध में है।[४] एक पद्य-मुक्तावली नामक ग्रन्थ भी गोविन्द भट्ट कृत बतलाया जाता है।[५] इससे अधिक कवि के जीवन और कृतियों पर जानकारी प्रकाश में नहीं आई।

---

१. अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : जिल्द २ : कलकत्ता : १९९९ पृष्ठ १०–११।

२. पद्यवेणी० : श्लोक ७७ : 'विस्फार्य व्योमगङ्गा…गुर्जरेन्द्र…।' तथा सूक्ति० : श्लोक ८० : यहाँ 'कविलेन्द्र' शब्द है।

३. पद्यवेणी० : श्लोक ३७ : '…अम्ब ज्वालामुखि…।'
श्लोक ४६ : '…कनककच्छसमम्बायाः…।'
श्लोक ४७ : '… देवि दुर्गे…।'
श्लोक ३८ : 'श्रीमज्ज्वालव्य पुण्यस्थ रण…।'

४. ए० कैस० कै० : सूची क्रमाङ्क ५६४८ : ज्वालामुखी (काङ्गड़ा) देवी की स्तुति–७५ श्लोक : लिपिक गंगाधर : अन्त में अकबर के प्रति ६ श्लोक-इति अकबरी-कबरी-विलास-कुसुमीभवत्-पदान् गङ्गाधरोऽलिखदिमान्…।' साथ ही देखिये–कृष्णमाचारियर : हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३९० बी : परिच्छेद ३७२ एo टिप्पणी) हरदत्त शर्मा ने भूल से अनुमान लगाया है कि गङ्गाधर अकबरी कालिदास का नाम होगा।

५. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३८८ : परि० ३७३।

ऐतिहासिक तथ्य

रामचन्द्र यशः प्रबन्ध में रामचन्द्र बघेल से सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। कवि के वर्णन के अनुसार रामचन्द्र ने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग कर्णाटक, चोल, लङ्का और लाट आदि देशों को कम्पित कर सागर तट तक राज्य का विस्तार किया था। यह वर्णन केवल परम्परात्मक प्रशस्ति प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के सङ्केत भी हैं रामचन्द्र ने किसी मराठा नरेश से कर लिया था तथा करहाटक के राजा को झुकाया था।[1]

रामचन्द्र बघेल ने १५५५ ई० में इब्राहीमशाह सूर को परास्त किया था। इस घटना को मुस्लिम लेखकों ने पर्याप्त महत्व दिया है।[2] गोविन्दभट्ट ने प्रस्तुत लघु ग्रन्थ में चार बार इस घटना की ओर संकेत किया है। यहाँ इब्राहीम का नाम तीन बार 'बाराहिमनृप' और चौथी बार 'इबराहिम' दिया गया है। इस उल्लेख में यह भी स्पष्ट है कि इब्राहीम सूर के साथ साथ उसकी बेगमें भी बन्दी बनाई गई थी।[3] अन्यत्र प्राप्त एक श्लोक में आक्रामक 'काविलेन्द्र' को 'बघेल' द्वारा परास्त किये जाने की सूचना है।[4] कृष्णमाचारियर ने अकबर को ही काविलेन्द्र लिखा है।[5] यह मत तर्कसम्मत नहीं प्रतीत

---

१. राम० प्र० : पृष्ठ ७ : 'मरहट्ट–महीपति–दत्त–करम् ।
करहाटक-भूपति-नित्य-नतम् ॥'

२. अल-बदायोनी : (अनु०—लो) : भाग १ : पृष्ठ ५४२-४४, ५५३-५४, तथा अर्स्किन : बाबर एण्ड हुमायूं : भाग २ : पृष्ठ ५०१ तथा ४९४।

३. राम० प्र० पृ० २ : '(बारा) हिमनृपदारापहरणसार'' '।
'कारागृहधृत-बाराहिमनृप राम' 'जय जय शाहि-बाराहिम-प्रौढ... ।'
तथा पृ० ६ :
'विलुण्ठितैबराहिम-प्रचण्डसाहिवल्लभा-कचप्रपञ्चमल्लिका-सदर्चिता-ङ्घ्रि-पल्लव ।'

४. 'वेलामुल्लङ्घ्य हेला-दलित-धरणिभृद्-वाहिनी-कोटि-पूरे-
रुद्वेल्लत्-काविलेन्द्र-प्रबल-जलनिधिः प्लावनायोज्जजृम्भे ।
स्थाम्भम्ना मेदिनीयं प्रबल-भुजबल-प्रौढ-चञ्चत्-प्रताप-
ज्वालाभिः सन्ततं-चेद्दहति न बडवा-वीतिहोत्रो बघेलः ॥'
(पद्यामृत० ७२ : सु० हा०-६७ : सूक्ति० १२१ : पद्यवेणी० ६६)

५. हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ट सं० ३९० बी-परि० ३७३-ए।

होता। अकबर से परास्त हो कर रामचन्द्र को सन्धि करनी पड़ी थी।[1] दूसरी ओर गोविन्दभट्ट एक ही समय में अकबर और रामचन्द्र दोनों का कृपापात्र था। अकबर पर रामचन्द्र की विजय की हास्यास्पद कल्पना यह नहीं प्रस्तुत कर सकता था। सूरवंश के बादशाह अफगान थे। उन्हें काबुली (काबिलेन्द्र) कहा जा सकता है। अतः यह काबिलेन्द्र भी इब्राहीमसूर ही है। उसके पूर्व आदिलशाह सूर 'अदली' भी रामचन्द्र की शरण में आया था।[2] प्रस्तुत काव्य में रामचन्द्र को सम्भवतः इसी अर्थ में 'पारसीक' राजा द्वारा वन्दित कहा गया है।[3] काव्य में 'साहालम' और 'सिलेमेन्द्र' नाम भी आते हैं।[4] सम्भवतः वे सुलतान सलीम के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त रामचन्द्र ने किसी परिहार राजा और नारायण परमार को भी परास्त किया था।[5] किसी दुर्ग देश के राजा से उसने कर लिया था।[6] इनके अतिरिक्त रामचन्द्र के वैयक्तिक गुणों की ओर भी काव्य में अनेक सङ्केत हैं—जैसे वह यामलमन्त्र और गीत, नृत्य, भरत-नाट्य आदि जानता था; क्रीड़ा और कला का प्रेमी था।[7]

(ख) भाव व्यञ्जना और कला-सौन्दर्य

रामचन्द्र-यशः प्रबन्ध में विविध छन्दोयोजना की गई है। इसमें १० स्रग्धरा छन्दों के अतिरिक्त बीच-बीच में ८ प्रबन्ध हैं। प्रथम प्रबन्ध में ८, ८ मात्राओं की यति के साथ दीर्घ-पद-योजना है। कहीं नगण और भगण तथा कहीं सगण और दो गुरु हैं। यति के साथ तुकान्तता और लयबद्धता का ध्यान रखा गया है।[8] दूसरे प्रबन्ध में स्रग्विणी की लय पर सम्पूर्ण प्रबन्ध केवल

---

१. अक० भाग २ पृष्ठ २८१-८३।   २. वही।
३. राम० प्र० पृष्ठ ४ : 'पारसीक-महीपति-वन्दित।'
४. राम० प्र०, पृष्ठ ३ : 'श्री सुरित्राण-साहालम···।' तथा 'सिलेमेन्द्र-भूमीन्द्र—'।
५. वही, पृष्ठ २ : 'नतपरिहारावनिपति-नारायणपरमार···।'
६. वही, पृष्ठ ७ : 'करदान-दरिद्रित-दुर्गनृपं···।'
७. वही, पृष्ठ ४ : 'यामलोदितमन्त्रविदग्रज···।'
एवं 'चिल्लीविलास-हतदिल्लीपतिप्रभृति-हल्लीस-हास-जलधे।'
तथा पृ० ५ : 'भरत-गदित-बहु-नृत्यक्रम-बुध··············।।'
८. 'जय जय राम, क्षितिधर राम-प्रतिकृति-राम प्रतिनिधि-राम प्रतिभट-साम-ध्वनि-रसकाम स्फुरदभिराम प्रतिनव-धाम···।' 'मङ्गालय १२ शृङ्गारनिलय वङ्गाधिप-बृहदङ्गावनिप कलिङ्गा···।'

रगण में है।[१] तीसरा प्रबन्ध ११ अक्षरों में (र, म, स, ल, ग) यति देकर चलता है, किन्तु इसमें अनेक स्थलों पर यति-भङ्ग है और कहीं कहीं गद्यवत् प्रयोग है।[२] चौथे प्रबन्ध में ४ सगणों के साथ २ गुरु चलते हैं।[३] पाँचवें प्रबन्ध में तगण और भगण के साथ एक लघु देकर ७-७ अक्षरों के चरणों का प्रयोग चलता है।[४] छठे प्रबन्ध में प्रमाणिका छन्द (ज, र, ल, ग,) का प्रयोग किया गया है।[५] सातवें प्रबन्ध में एक पंक्ति का टेक (ध्रुव) देकर तोटक छन्द का प्रयोग है।[६] प्रकाशित पुस्तक में इस तोटक प्रबन्ध के अन्तर्गत श्लोकों की सङ्ख्या दे दी गई है, जिसकी आवश्यकता नहीं थी। अन्त में तीन पंक्तियों का आठवाँ प्रबन्ध है, जिसमें लघु अक्षरों के साथ स्रग्विणी की लय-बद्धता निश्चित है।[७] प्रस्तुत सङ्ख्या का बन्धन कवि ने इन प्रबन्धों में नहीं माना है। अतः उक्त समस्त छन्द दण्डकजातीय कहे जा सकते हैं। ये सभी शब्दचित्रात्मक अक्षर काव्य हैं।

डा० चौधुरी ने इस पद-योजना के सम्बन्ध में लिखा है कि 'यह न तो गद्य है, न पद्य और न इसे चम्पू ही कह सकते हैं। इसका सम्पूर्ण गद्य भी पद्य है, फिर भी यति और विराम की कठिनाइयाँ आती हैं। अतः यह समग्र रूप से विधिवत् पद्य नहीं रह जाता। तो भी इसे पद्य-बन्धन ही कहा जायगा। यह दीर्घ-समास-युक्त लयबद्ध गेय-शैली भारत में मुस्लिम शासन के समय विकसित हुई जान पड़ती है।'[८]

---

१. '······ वीरभानु-सभा-मण्डलाखण्ड-वंश-स्फुर-क्षीर-कल्लोलिनी-वल्लभ-प्रौढ-राका-सुधा-सूति-बिम्ब-प्रलम्ब······।'

२. 'रामचन्द्र-बघेल-पुरन्दर, कामकोटि-मनोहर-विग्रह ······।'

३. 'पृथुतर-मुजतट-जितकरिकुम्भ दृढ़तर-कविकुल-नवनिधि-कुम्भ। द्विजकुल-सरसिज-विकसन-डिम्भ-द्युमणि-किरणभर-मधुर-विजृम्भ ॥'

४. 'वीरारण-प्रभव हीरानिराम-रद धीरारविन्द-शरणे······।' (यहाँ 'वीरारण' शब्द वीरभानु के अर्थ में है।)

५. '········वीरसिंह-भूमिपाल-चक्रवंश-दुग्धसिन्धुनाथ-पर्वशर्वरी कलत्र-बिम्ब वीरभानुमेदिनीन्द्र-चक्रवाल-मौलिरत्न-गोत्र-पुण्डरीक······।'

६. 'अतिसुन्दर-गुणमन्दिरमिन्दुमुखी-मदनम्।
मदनारि-जटाविधु-चारुगुणं गुणि-चातक-चक्र नवीन-घनम्।
घनसार-रटीरज-लिप्त-तनुं तनुमध्य-निबद्ध-लसत्रसरम् ॥'

७. 'जय जय चण्डिकानाथ-लालाट-रङ्गस्थली-चण्ड-विक्रीविरच्छात-कौलच्छट······।'

८. वही, अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ८।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, गोविन्द भट्ट आरभटी वृत्ति से युक्त, ओज गुण से पूर्ण, दीर्घ-समास-युक्त शैली स्वीकार कर वीर या रौद्र रस से भरी हुई कविता के क्षेत्र में अधिक सफल हुआ है। उसकी यह शैली रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में क्रमबद्ध रूप से विकसित हुई है। इस शैली में चारणों द्वारा प्रयुक्त लय-बद्धता के भी दर्शन होते हैं और शास्त्रसिद्ध पाण्डित्य के भी। इस रचना-शैली पर हिन्दी के वीरगाथा-युग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत काव्य के दीर्घ प्रबन्धों में रस-निष्पत्ति, ध्वनि या व्यञ्जकता का कवि ने ध्यान नहीं रखा। इसके साथ ही यह मानना होगा कि इस कवि का पाण्डित्य और उसकी पद-योजना को लय में बाँधने की शक्ति सचमुच प्रचण्ड है। इस क्षेत्र में उसे अपने काल का अजेय कवि मानना ही होगा। डा० चौधुरी ने उचित ही लिखा है कि अकबरी सभा के तत्कालीन श्रेष्ठ संस्कृत कवि की लेखनी से निःसृत इस प्रबन्ध में स्वभावतः अप्रतिम कला और सौन्दर्य है।'[१] प्रबन्ध के श्लोकों में कुछ भाव-व्यञ्जनाएँ इस प्रकार हैं—

रामचन्द्र की दृष्टि कामधेनु है और वह शीघ्र ही अभिलाषाएँ पूर्ण कर देती है; मुक्ताहारों से सजी हुई रमणियाँ, मदमाते हाथी, काम्बोज देश के सवेग घोड़े, महल या भूमि— कौन सी ऐसी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती ?[२]

अरी गौरी सुन। बोल रम्भा, क्या कह रही है ? आ, सोने की नदी में क्रीड़ा कर ब्रह्मानन्द लें। अरी भोली, यह सोने की नदी कैसी है, किधर बह रही है ? अच्छा तो तू नहीं जानती ? राजा वीरभानु के वंश के उन्नायक (रामचन्द्र) के प्रताप की ज्वाला की उष्णता से गल कर स्वर्णाचल धारा के रूप में बह निकला है।[३]

---

१. राम० प्र० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ८

२. वही, श्लोक ७ (तथा पद्यवेणी, श्लोक १०५) :
'मुक्तालङ्कारवत्यः कुवलयनयनाः कुम्भिनः कुम्भकूट-
प्रश्यद्दान-प्रवाहाः पवनजवजितो दिव्य-काम्बोज-वाहाः।
प्रासादाश्चन्द्रशाला विलिखितवियतो भूयसी भूतधात्री
सूते किं किन्न सद्यः फलमभिलषितं रामदृक्-कामधेनुः॥'

३. वही, श्लोक २९ : (पद्यवेणी० ६९) :
'हे गौरि ब्रूहि रम्भे कनकमयनदीमेहि लीलावगाह-
ब्रह्मानन्दाय मुग्धे कनकमयनदी कुत्र केयं प्रयाति।
वीर-श्रीवीरभानु-क्षितितिलक-कुलस्तम्भ-चण्डप्रताप-
ज्वाला-कल्लोलताप-द्रुत-कनकगिरि-स्यन्द-धाराप्रवाहः॥'

हे रामचन्द्र ! साधुजनों को उच्चता का सर्जन करने वाले, प्रणत का पालन करने वाले, शत्रु-सेना को अनायास ही भस्मसात् कर देने वाले, लाल, साँवले और श्वेत रङ्गों से युक्त तुम्हारे कटाक्ष एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को लीला करते हैं।[1]

रामचन्द्र के सम्बन्ध में इस कवि के दो और मुक्तक पद्यवेणी में प्राप्त हैं। रामचन्द्र ने भिक्षुकों को जो हाथी दान में दिये हैं, उनको मद-धारा से सागर बन गये हैं—

'राम त्वद्दत्त-मत्तेभ-कुम्भ-निःसरदम्बुभिः।
दिशु भिक्षु-गृह-द्वारि वारां निधिरदृश्यत॥'[2]

'बघेल-केसरी (रामचन्द्र) के हाथों में तलवार नहीं, अपितु उनके प्रताप-रूपी सूर्य से विकसित हाथ-रूप कमल पर यह भौंरों की लहराती पंक्ति है। यह अपह्नुति का सुन्दर उदाहरण है—

'नृपैव निगदन्त्यमी जलद-कज्जल-ज्योतिषं
महासि-लतिकां करे तव बघेल-पञ्चानन।
प्रताप-तपन- स्फुरत्-कर-सरोज-कोशोदित-
द्विरेफ-लहरीति मे मनसि बुद्धिरुज्जृम्भते॥'[3]

अन्यत्र अन्य नरेशों के वर्णन भी ओजपूर्ण हैं। अकबर के धनुष की टङ्कार से ही दूर गिरते हुए शत्रुओं के कङ्काल लङ्कापति विभीषण को भयार्त कर देते हैं :—

'वीर त्वं कार्मुकज्वेदकबर कलयस्युग्र-टङ्कार-घोरं
दूरे सद्यः कलङ्का इव धरणिभृतो यान्ति कङ्काल-शेषाः।

---

१. राम० प्र०; श्लोक ८ : (पद्यवेणी १०६) :
'साधूनुच्चैः सृजन्तः प्रणतमनुदिनं सम्भ्रमात् पालयन्तः
कुर्वन्तो भस्मसाच्च प्रतिनृपति-चमूमण्डलं लीलयैव।
शोण-श्यामावदाताः सुमधरित घरच्चन्द्र-पौरस्त्य-शैल
श्रीराम त्वत् कटाक्षाः कमलज-बलिजिच्छम्भु-लीलां भजन्ते॥'
उपर्युक्त श्लोकों के अतिरिक्त श्लोक ३-'तुङ्ग ब्रह्माण्ड···।' पद्यरचना (श्लोक १४), सूक्तिसुन्दर (६३) और सुभाषित-रत्न-भाण्डागार (१३८।८९) तथा श्लोक ६—'मातदुर्वैतण्ड······' पद्यवेणी (१०४) और सुभा० र० भाण्डा० (४२२।९३) में उद्धृत हैं।
२. पद्यवेणी० श्लोक ९६।
३. वही, श्लोक १३९।

पाङ्कापन्नश्च किं कारणमिति मनसा भ्राम्ति पङ्कायितेन
त्यक्ताहङ्कारमङ्कात् विसृजति गृहिणीं किञ्च लङ्काधिनाथः ॥'[1]

गोविन्दभट्ट अपने काल का अवश्य ही अजेय कवि था, यह उसकी स्वाभिमान-पूर्ण उक्ति से स्पष्ट है—

'अनाराध्य कालीमनास्वाद्य गौरी-
मृते मन्त्र-तन्त्राद् विना शब्दचौर्यात् ।
प्रबन्धं प्रगल्भं प्रकर्तुं प्रयत्नुं
विरिञ्चि-प्रपञ्चे मदन्यः कविः कः ॥'[2]

उपर्युक्त प्रशस्तियों और स्तुतियों में अकबरी कालिदास की लेखनी की प्रौढ़ता प्रकट है। इनके अतिरिक्त सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्गृहीत अनेक कलात्मक मुक्तक इस कवि के नाम से प्राप्त हैं। इस कवि की समस्त रचनाओं में दीर्घ-समास-युक्त अलङ्कृत शैली का प्रयोग प्राप्त है। यह कहने में हानि नहीं है कि अकबर की सभा का कालिदास कहला कर भी यह कवि पांडित्य-प्रदर्शन में ही अपनी श्रेष्ठता समझता रहा तथा कालिदास की प्रसाद गुण-युक्त त्वरित रस-परिपाक कराने वाली शैली का इसने प्रायः अवलम्बन नहीं किया।

देखिये, वसन्त की विरहिणी के एक वर्णन में कवि अनुप्रासों में ही उलझा रह गया और वह पाठक के मन में विरहिणी के प्रति सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर सका—

पिकाली वाचाली भवतु बहुधाऽलीक-कथने
मृणाली व्यालीव व्यथयतु तरामङ्गमनिशम् ।'[3]

यत्र-तत्र रसात्मकता भी है—

क्षणं समाधाय मधुव्रतं वा
विस्मारयत्यम्बुजिनी-वियोगम् ॥'[4]

कवि की कुछ उपमायें बहुत अच्छी बन पड़ी हैं—

'मदन-विजय-यात्रा-मङ्गलं द्योतयन्ती
विलसति जलधि-मध्ये ताम्रपात्रीव भानुः ।
इयमपि पुरुहूत-प्रेयसी मूर्ध्नि संस्थं
कलशमिव सुधार्द्रं साधुमुल्लालसीति ॥'[5]

---

१. पद्यामृत०, श्लोक ९७ तथा सूक्ति० श्लोक १९८।
२. पद्यवेणी, श्लोक ७८६।
३. पद्यवेणी, ६११ (तथा सुभाषित-सार-समुच्चय ३०९)।
४. वही, ७३२।
५. पद्यवेणी, ५८० : सु० सा० स० २०५।

इस कवि का वास्तविक मूल्याङ्कन आरभटी वृत्ति के प्रयोग और ओज गुण के क्षेत्र में किया जा सकता है, यद्यपि वहाँ भी यह शब्दालङ्कारों का प्रयोग अनिवार्य मानता है। इन उक्तियों में प्रशस्त्यात्मक कल्पनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं।

(ग) प्रशस्तियों की परम्परा

'प्रशस्ति' शब्द का उल्लेख रुद्रट ने किया है,[1] जिसकी व्याख्या नमिसाधु ने इस प्रकार की है—

'तत्र यस्यामीश्वर-कुल-वर्णनं यशोऽर्थं क्रियते सा प्रशस्तिः।'[2]

अर्थात् प्रशस्ति में राजाओं के कुल आदि का वर्णन उनके यशोगान के रूप में किया जाता है। यह लघु काव्यों के प्रकरण में है। अतः 'प्रशस्ति' से यहाँ वह लघु काव्य अभिप्रेत है, जिसमें राजा का यशोवर्णन हो। 'प्रशस्ति' प्रभेद के लिए यह व्याख्या ठीक है, किन्तु हम इसका व्यापक अर्थ भी ले सकते हैं और जहाँ भी राजा का यशोवर्णन काव्य के रूप में प्राप्त हो, उसे प्रशस्ति कह सकते हैं।

इस व्यापक अर्थ को ग्रहण करने पर हम देखते हैं कि संस्कृत काव्य में राजा के यशोवर्णन की प्रवृत्ति परम्परात्मक है और वह काव्य के लगभग सभी प्रभेदों में दृष्टिगोचर होती है। महाकाव्य के क्षेत्र में प्रशस्तिमूलक ग्रन्थों की चर्चा हो चुकी है।[3] दृश्य काव्यों में भी मालविकाग्निमित्र जैसे अनेक रूपक उदाहरणार्थ मिल जायेंगे। कथा के क्षेत्र में राजतरङ्गिणी जैसे इतिवृत्तात्मक काव्य और हर्षचरित जैसे आख्यायिका-ग्रन्थ भी इसी प्रवृत्ति के सूचक हैं। भोंसला-वंशावली चम्पू और वीरभद्र चम्पू जैसे ग्रन्थ चम्पू काव्य की कोटि में भी राज-यशोवर्णन से पूरित मिलते हैं।

अनिबद्ध कोटि में भी प्रशस्तियाँ सभी रूपों में प्राप्त हैं। सुभाषित-सङ्ग्रहों में शुद्ध मुक्तक सङ्कलित मिलते हैं और ऐसे प्रत्येक सङ्ग्रह में 'राज-तरङ्ग' होता है। इसमें अनेक कवियों की रचनाएँ सङ्गृहीत होती हैं, जो व्यापक रुचि का द्योतक है। राजवंशों के वर्णन-परक काव्यों को हेमचन्द्र ने 'संहिता' नाम दिया है।[4] इस कोटि में हम गुरुवंश, चोल-वंशावली-चरित,

---

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : अध्याय १६।३६।
२. वही, नमिसाधु की व्याख्या।
३. पीछे, अध्याय ३ (ख)।
४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : १९०१ : पृ० ३४१।

यथेलवंशवर्णनम् आदि काव्यों को ले सकते हैं। शास्त्रीय लक्षण-ग्रन्थों में से रामवर्म-यशोभूषण और नञ्जराजयशोभूषण जैसी रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

रुद्रट ने जिस प्रशस्ति-प्रभेद की चर्चा की है, वह वास्तव में लघुकाव्य है। यह भी दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। पहला रूप हैं वे गद्य-पद्यमयी राजस्तुतियाँ, जिन्हें विश्वनाथ ने 'विरुद' संज्ञा दी है,[1] और जो शिला-लेखों के रूप में गिरनार, प्रयाग, मन्दसोर, ऐहोल आदि की प्रशस्तियों के नाम से ज्ञात हैं। दूसरी वे प्रशस्तियाँ हैं, जो प्रायः पद्यात्मक लघुकाव्यों के रूप में हैं, जैसे वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रशस्ति। श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने ऐसी प्रशस्तियों को 'विरुदावली' नाम दिया है। विरुदावली में ग्रन्थ का नाम वर्ण्य (राजा, आश्रयदाता) के नाम पर रखा जाता है; इसमें प्रचुर स्तुति रहती है और शब्दों और वाक्यों का भरपूर आडम्बर रहता है—

'वर्ण्य-नामाङ्क-विरुद-वर्णन-प्रचुरोज्ज्वला।
वाक्याडम्बर-संयुक्ता कथिता विरुदावली॥'[2]

प्रस्तुत काव्य रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध इसी विरुदावली कोटि में आता है, जैसा कि पीछे प्रदर्शित किया जा चुका है। उपर्युक्त प्रवृत्तियों को देखते हुए इस विरुदावली कोटि में रसात्मक अभिव्यञ्जना की कम आशा की जा सकती है। वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रशस्ति में वर्णनात्मकता और इतिहास प्रचुर मात्रा में है और रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में वाक्याडम्बर। शिलालेखों की प्रशस्तियाँ भी वाक्याडम्बरों से पूर्ण पाई जाती हैं, किन्तु उनमें प्राप्त इतिवृत्त कुछ गतिशील, प्रवाहपूर्ण रहता है और उसमें इसी कारण रोचकता रहती है। रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध शब्द-पाण्डित्य-पूर्ण, गतिहीन शब्दों का ऐसा आडम्बर है; जिसमें रोचकता का नितान्त अभाव है। तथापि संस्कृत के पण्डितों की रुचि और उनकी व्यवस्था को देखते हुए ऐसे काव्यों को अनादृत नहीं किया जा सकता। अतः पाण्डित्यपूर्ण विरुदावली-ग्रन्थों के बीच रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध को गणनीय मानना पड़ेगा।



१. साहित्यदर्पण : १९३१ : पृ० ३७७ : श्लोक ३३७।
२. वही, पृष्ठ १७८ : श्री द्विवेदी की टिप्पणी।

(२) कथाकाव्य : दशकुमार-पूर्वकथासारः

(क) पाण्डुलिपि का विवरण

बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में 'दशकुमार-पूर्वकथासारः' नाम से एक ग्रन्थ सुरक्षित है।[1] इस ग्रन्थ के आरम्भ में भैरव की वन्दना के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक है—

'बघेल-युवराज-श्रीवीरभद्र-गुणान्विता।
स्फुटो दशकुमाराणां कथासारो विरच्यते ॥ २ ॥'

प्रथम परिच्छेद के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री महाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-युवराज-श्री वीरभद्रदेवेन कृते दशकुमार-पूर्वकथासारे प्रथमः परिच्छेदः।'

रामचन्द्र बघेल के पुत्र इस युवराज वीरभद्रदेव द्वारा रचित 'कन्दर्पचूड़ामणि' ग्रन्थ की चर्चा पहले हो चुकी है।[2] इसी वीरभद्र के जन्मोत्सव पर हुमायूँ ने वीरभानु बघेल के पास उपहार भेजे थे।[3]

दशकुमार-पूर्वकथासार की उपर्युक्त पाण्डुलिपि का उल्लेख हरप्रसाद शास्त्री ने किया है। यह पाण्डुलिपि केवल प्रथम परिच्छेद की है।[4] ग्रन्थ का शेष भाग लुप्त हो चुका है। 'पूर्वकथासार' शब्द से अनुमान होता है कि कवि ने कथासार को दो भागों में रचा, जो क्रमशः दशकुमारचरितम् की पूर्वपीठिका

---

१. क्र० बी०, ६३६८ : ग्रन्थ की इस पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि मेरे पास सुरक्षित है। यह प्रतिलिपि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के असिस्टेंट लाइब्रेरियन (सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष) श्री गिरिजानाथ भट्टाचार्य ने २७-२-६३ को पूरी की थी। यह केवल प्रथम परिच्छेद है, जो २३ छोटे पृष्ठों में है। यही प्रतिलिपि हमारे द्वारा ग्रन्थ के मूल्याङ्कन का आधार है। मूल लिपिक का नाम या ग्रन्थ का रचनाकाल या लिपिकाल कहीं नहीं है। मूललिपि में व्याकरण की दृष्टि से यत्र तत्र त्रुटियाँ हैं, जो प्रतिलिपि में ज्यों की त्यों हैं।

२. देखिये पीछे अध्याय २ (ग)।

३. देखिये पीछे अध्याय ३ (ग)।

४. ए डेस्० कै० : कलकत्ता: १९३४ : पाण्डुलिपि क्रमाङ्क ५३८४।

और उत्तरपीठिका के सार होंगे। पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन आदि दस कुमारों की उत्पत्ति की कथा है।[१] प्रस्तुत पाण्डुलिपि में इसी प्रथम उच्छ्वास का सार-वर्णन है।

(ख) कवि-परिचय

दशकुमार-पूर्वकथा सार का प्रणेता वीरभद्रदेव बघेलखण्ड का राजकुमार था। हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानूदय काव्य की पाण्डुलिपि पर अङ्कित पहली मुहर का अङ्क ९६५ (हिजरी, सन् १५५८ ई०) पढ़ा, जिसके कारण वीर० भद्र की जन्मतिथि उन्होंने १५३५ ई० के निकट स्वीकार की।[२] हम शास्त्री जी के इस मत पर पीछे विचार कर चुके हैं।[३] एकत्रा बान्धोगढ़ में रामचन्द्र की जन्मतिथि सं० १५९२ (१५३५ ई०) और वीरभद्र की जन्मतिथि सं० १६१० (१५५४ ई०) दी हुई है।[४] वीरभद्र के जन्मोत्सव पर उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था।[५] वह १५५५ ई० में दुबारा दिल्ली का अधिकारी हुआ था।[६] अतः ये उपहार जन्म के कुछ मास पीछे आए होंगे।

गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सुरक्षित 'कथासरित्सागर' की एक पाण्डुलिपि पर 'वीरभदर बन्दह् सुलतान सलीम ९७७' मुहर अङ्कित है। सलीम का जन्म ९७७ हिजरी (१५६९ ई०) में ही हुआ था।[७] इसी वर्ष रामचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग का अधिकार त्यागा और वीरभद्र के हाथों किले की चाभी

---

१. देखिये दशकुमारचरितम् (दण्डिन्) : प्रकाशित प्रति : हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९९ : चौखम्बा संस्कृत सीरीज : वाराणसी—१ : १९५७ : (पूर्वपीठिका)।

२. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-५।

३. देखिये पीछे अध्याय ३ (क)।

४. परिशिष्ट १ (क) : राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५९२ के साल। सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक। बेटा २, जेठे राजा वीरभद्र·······। राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का। सं०·······राजा विक्रमादित्य का जन्म १६३९ के साल। सं० १६४६ के साल राज्याभिषेक।'

५. वीर० १२।२०।

६. वही, क्रि० ए० पृष्ठ १-५।

७. वही।

अकबर के समीप भेज दो। तब से वीरभद्र अकबर के दरबार में हाजिरी के लिए रहने लगा।[1] इस समय वह १५ वर्ष का होगा, सम्भवतः आते ही उसे सलीम की सेवा में नियुक्त कर दिया गया।

अकबर की सभा में गोविन्द भट्ट (अकबरी कालिदास), बीरबल और पद्मनाभ मिश्र आदि हिन्दी और संस्कृत के अनेक कवि थे। इनके सम्पर्क में वीरभद्र का कवित्व जागृत हुआ होगा। वीरभद्र के गुणों का पद्मनाभ मिश्र ने अनेक ग्रन्थों में अभिनन्दन किया है। वीरभानूदय और कथासरित्सागर की पाण्डुलिपियों पर प्राप्त उपर्युक्त मुहरें वीरभद्र की संस्कृत-निष्ठा प्रमाणित करती हैं। २३ वर्ष की आयु में उन्होंने लोकोचित विषय कामशास्त्र पर 'कन्दर्प-चूडामणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसी समय रचित अपने 'वीरभद्रचम्पू' ग्रन्थ में पद्मनाभ मिश्र ने वीरभद्र को महान विजेता घोषित किया है। वीरभद्र ने रतनपुर आदि स्थानों पर अधिकार किया था।[2] 'कन्दर्प चूडामणि' ग्रन्थ के पश्चात् ही वीरभद्र ने 'दशकुमारपूर्वकथासार' लिखा होगा। अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल १५८० ई० के निकट मान सकते हैं।

रामचन्द्र स्वयं अकबरी दरबार में हाजिर नहीं हो रहे थे। १५८३-८४ ई० में इधर अकबर का ध्यान गया और उसने रामचन्द्र का स्वाभिमान तोड़ने के लिए फौज को हुक्म दिया। वीरभद्र ने अकबर को कठिनाई से इस बात पर राजी किया कि बीरबल और जैन खाँ कोका रामचन्द्र को बुलाने जायें। रामचन्द्र फतेहपुर सीकरी में अकबर से मिले और वीरभद्र की समय-सूचकता से बघेलखण्ड बच गया। जब रामचन्द्र लौटे तब वे वीरभद्र को वहीं छोड़ आए। कुछ समय पीछे वीरभद्र को भी लौटने की अनुमति मिली।[3]

बीकानेर के राठौर कल्याण सिंह के पुत्र रायसिंह की पुत्री वीरभद्र को ब्याही थी और उसीकी छोटी बहन १५८७ ई० में सलीम को ब्याही गई।[4] वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य ने पहली बार रीवा नगर को राजधानी का पद दिया।[5]

---

१. आईन० : पृष्ठ ४०६-७।
२. देखिये आगे अध्याय ५ (क)।
३. ईलियट : हिस्ट्री आफ इण्डिया : भाग ५ (बदायुनी) : पृष्ठ ५३८।
४. आईन० पृष्ठ ३५७–५८
५. परिशिष्ट १ (क): एकथा बान्धोगढ़ : 'रीवा का किला—विकरमाजीत से किले मारें'।

१५९२ ई० में रामचन्द्र की मृत्यु हुई। अकबर ने वीरभद्र का राजा की पदवी देकर बान्धवगढ़ भेजा। मार्ग में सुखासन से गिरने से वीरभद्र को घातक चोट लगी। उनका रक्त बिगड़ गया और असमय पर नहाने धोने से रोग बढ़ता गया। १००१ हिजरी (१५९३ ई०) में वीरभद्र की मृत्यु हो गई।[१]

श्री रामप्यारे अग्निहोत्री ने मुझे वीरभद्र के एक पाट की नकल बतलाई थी, जो मथुरा में वीरभद्र के द्वारा सं० १६५३ का दान-पत्र था।[२] यदि यह ठीक है तो वीरभद्र १५९६ ई० में जीवित थे। उनकी मृत्यु से उत्पन्न अव्यवस्था में ही १५९६ ई० में अकबर ने बान्धवगढ़ पर आक्रमण किया।[३] अतः सम्भव है, इसी वर्ष मथुरा से लौटते समय वे सुखासन से गिर कर मरे हों। इससे पीछे मृत्यु-तिथि नहीं लाई जा सकती।

वीरभद्र की मृत्यु सुन कर उनकी राठौरिन रानी (रायसिंह की पुत्री) सती होना चाहती थी। अकबर ने उसे रोका और रायसिंह से मिल कर वीरभद्र के निधन पर शोक व्यक्त किया।[४] इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि वीरभद्र अपने समय का महत्वपूर्ण व्यक्ति था।

जमाबन्दियों में वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य का राज्याभिषेक सं० १६४६ (१५९० ई०) में बतलाया गया है, अर्थात् इस प्रकार वीरभद्र की मृत्यु उससे पूर्व होती है, किन्तु मुस्लिम लेख पूर्वोक्त तिथियों की ही सूचना देते हैं। प्रतीत होता है कि लिपिक की भूल से १६४९ सं० (१५९३) को यहाँ १६४६ लिख दिया गया है।

(ग) कथातत्त्व—दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में दस कुमारों के जन्म की कथा है। मगध का राजा राजहंस मालवेश से पराजित होकर विन्ध्य के वनों में विपत्ति के दिन काटता है। उसके मित्र मिथिलेश्वर के दो पुत्र तथा विदेश गये हुए उसके तीन मन्त्रियों के तीन पुत्र उसके पास लाए जाते हैं। राजकुमार राजवाहन भी यहीं विन्ध्याटवी में उत्पन्न होता है

---

१. समसाम-उद्दौला : मासिर-उल-उमरा (अनु० ब्रजरत्नदास) : पृ० ३३०-३४, ३५४।

२. 'फागुन वदि २, सौमे संवत् १६५३ का मथुरिया चौबे कमले चौबे की संतान का लिखि दीन।' श्री अग्निहोत्री ने यह प्रतिलिपि १९५७ ई० में लिखाई थी।

३. आईन० पृष्ठ ४०६–७।

४. समसाम-उद्दौला : मासिर-उल,उमरा (ब्रजरत्नदास) : पृष्ठ ३३०-३४ ३५४।

और राजा के पास रहनेवाले चार मन्त्रियों के भी एक-एक पुत्र होते हैं। इस प्रकार ये दस कुमार मित्र की भाँति रहते हुए युवक होते हैं।[१]

पूर्वपीठिका और कथासार की कथाओं में मौलिक अन्तर न होते हुए कुछ भिन्नता मिलती है। पूर्वपीठिका में प्राप्त राजहंस के एक मन्त्री सितवर्मा और उसके पुत्र सत्यवर्मा का नाम दशकुमार-पूर्वकथासार में मतिवर्मा और सत्यशर्मा है, यद्यपि सत्यवर्मा या सत्यशर्मा का पुत्र दोनों स्थानों पर सोमदत्त ही है। पूर्वपीठिका में पहले राजहंस मालवेश मानसार पर आक्रमण कर उसे परास्त करता है, यह अंश कथासार में नहीं है।

पूर्वपीठिका में मिथिलेश प्रहारवर्मा राजहंस की रानी वसुमती के सीमन्तोत्सव में सम्मिलित होकर वहीं कुछ समय तक रहता है। मानसार का आक्रमण होने पर वह युद्ध भी करता है, बन्दी बनाया जाता है और छोड़ दिया जाता है। वह प्रस्थान करता है तब उसके दो जुड़वाँ बच्चे और उनकी पालिकाएँ, एक बूढ़ा और उसकी कन्या, पीछे छूट जाती हैं। व्याघ्र से त्रस्त बूढ़ा पत्थर पर गिरती है और उसके हाथ का बालक छूट कर कपिला गाय के शव में घुस जाता है। व्याघ्र गाय को घसीटता है। शबर उसे मार कर बालक को ले जाते हैं। बूढ़ा लौटकर अपनी कन्या और दूसरे शिशु को नहीं पाती। वह एक तापस को समाचार बतला कर चली जाती है। तापस एक चण्डिका मन्दिर में पहुँचता है, जहाँ पहला बालक शबरों द्वारा बलि चढ़ाने के लिए लाया जाता है। तापस उसे अपना पुत्र कह कर प्राप्त कर लेता है और लाकर राजहंस को देता है, इसका नाम उपहारवर्मा रखा जाता है।

कथासार में एक मुनि इस बालक को गोबर में लिपटा हुआ पाता है और प्रणिधान से जानता है कि वह प्रहारवर्मा का पुत्र है। प्रहारवर्मा जब पुष्पपुर के सीमन्तोत्सव में सम्मिलित होने आता है, तब मार्ग में राजहंस की पराजय का वृत्तान्त पाकर लौट जाता है। मानसार के संकेत से पुलिन्द प्रहार वर्मा को लूटते हैं और यह बच्चा अकेले पीछे छूट जाता है।

पूर्वपीठिका में प्रहारवर्मा के दूसरे शिशु को एक शबर पाता है और अपनी पत्नी को देता है। राजहंस स्वयं उस शबरी की गोद में इस सुलक्षण बालक को देख कर प्रश्न करता है और समाचार जान कर बालक को अपने अधिकार में लेकर उसका नाम अपहारवर्मा रखता है। कथासार में प्रहारवर्मा

---

१. दश कुमारचरितम् : चौखम्बा : वाराणसी : १९६७ : पूर्वपीठिका : प्रथम उच्छ्वास।

को लौटने पर ज्ञात होता है कि उसके राज्य पर उसके सम्बन्धी अधिकार कर चुके हैं। अब वह अपने भानजे सुह्म नरेश के समीप जाते समय पुनः पुलिन्दों द्वारा लूटा जाता है। दूसरा बालक भिल्लों के हाथ पड़ता है और भिल्लपति उसे लाकर राजहंस को देता है।

पूर्व पीठिका के अनुसार राजहंस के मन्त्री पद्योद्भव का पुत्र रत्नोद्भव रत्नों का व्यापार करते करते कालयवन द्वीप में पहुँच कर वहाँ के कालगुप्त सेठ की कन्या सुवृत्ता को ब्याह कर समुद्र-मार्ग से लौटता है। उसका पोत टूट कर डूब जाता है। गर्भवती सुवृत्ता को उसकी धाय लकड़ी के सहारे किनारे लगाती है। पुष्पपुर की ओर जाते हुए दोनों विन्ध्याटवी में पहुँचती हैं। सुवृत्ता के पुत्र उत्पन्न होता है और वह मूर्छित हो जाती है। धाय बालक को लिए हुए मार्ग का पता लगाने के लिए कुछ दूर जाती है और संयोगवश वामदेव के शिष्य सोमदेव शर्मा से उसकी भेंट होती है। इसी समय हाथी को देख कर धाय बालक को छोड़ कर भागती है। हाथी बालक को उछाल देता है जिसे ऊपर बन्दर पकड़ लेता है। फिर बन्दर उसे सघन पत्तों पर गिरा देता है। सोमदेव शर्मा उसे राजा राजहंस के पास लाते हैं। इसका पुष्पोद्भव नाम पड़ता है। कथासार में ठीक यही कथा है किन्तु द्वीप का नाम यवन द्वीप और कालगुप्त की कन्या का नाम माहिष्मती है तथा पुष्पोद्भव को लाने वाला कोई 'मुनि' है।

पूर्वपीठिका में कहा गया है कि धर्मपाल मन्त्री का विलासी पुत्र कामपाल मणिभद्र यक्ष की कन्या तारावली से विवाह करता है। तारावली पुत्र को जन्म देती है और मणिभद्र की आज्ञा से राजवाहन की भावी सेवा के लिए अपना पुत्र रानी वसुमती के समीप दे आती है। रानी इसे राजा के पास लाती है। बालक का नाम अर्थपाल रखा जाता है। कथासार के अनुसार मणिभद्र यक्ष की कन्या तारावली लोपामुद्रा की उपासना कर लौटते समय कैलाश में प्रेतों के स्थान पर एक शिशु पाती है और लाकर पिता को बतलाती है। मणिभद्र उसे बालक सहित कुबेर के पास ले जाते हैं। कुबेर ध्यान द्वारा जानते हैं कि बालक कामपाल का पुत्र है और यक्ष-कन्या कान्तिमती से उत्पन्न हुआ है। कुबेर के आदेश से तारावली बालक को रानी वसुमती के पास लाकर सौंप जाती है।

पूर्वपीठिका और कथासार दोनों में राजहंस के पास रहनेवाले सुमित्र का पुत्र मित्रगुप्त, सुमति का पुत्र प्रमति, सुमन्त्र का पुत्र मन्त्रगुप्त और सुश्रुत का पुत्र विश्रुत ही है।

कीथ के मत के अनुसार दण्डी के मूल ग्रन्थ में परिवर्तन हुआ है। दण्डी के अनुसार अर्थपाल और प्रमति कान्तिमती और तारावली से कामपाल के पुत्र हैं तथा सोमदत्त, मित्रगुप्त और मन्त्रगुप्त वास्तव में कामपाल की शेष तीन पत्नियों के पुत्र हैं। पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका में अर्थपाल, प्रमति और विश्रुत के वर्णनों में विरोध है। पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नामों से तत्काल प्रतीत होता है कि ये दण्डी की कृति के भाग नहीं हैं। इस परिणाम की पुष्टि प्रचुर साक्ष्य से होती है।'[१]

इस मत को देखते हुए प्रतीत होता है कि ऊपर प्रदर्शित पूर्वपीठिका और प्रस्तुत दशकुमार-पूर्वकथासार में प्राप्त कथा का अन्तर क्रमिक परिवर्तनों के कारण है। वीरभद्रदेव को दशकुमारचरित की जो प्रति उपलब्ध रही होगी, उसी पर यह कथा-सार आधारित होगा, किन्तु इसे प्रमाणित करने के लिए पाठ-भेद के अन्य संस्करण उपलब्ध नहीं हैं।

(घ) काव्यकला : प्रस्तुत कथासार में कथा की मौलिकता नहीं ढूंढी जा सकती। भाषा के क्षेत्र में भी हमारे कवि वीरभद्रदेव को दण्डी का आधार प्राप्त था। यह एक स्वतन्त्र काव्य-रचना नहीं है। तथापि वीरभद्रदेव ने अपनी भाषा का पर्याप्त प्रयोग किया है और इसी क्षेत्र में हम उनकी रचना-शक्ति के दर्शन कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि अपनी शब्द-योजना और वाक्य-रचना में कवि ने दण्डी की शैली से ही समन्वय किया है। इस भाषा में वैदर्भी रीति, पद-लालित्य और अभिव्यक्ति की स्पष्टता है। लम्बे वाक्यों और दीर्घ समासों का तथा गूढता और जटिलता का परिहार वैसे ही अधिक हुआ है, क्योंकि यह रचना 'सार' है। साथ ही दशकुमार-चरित की भाँति ही यहाँ भी शब्दाडम्बर, अरुचित और कर्ण-कटु ध्वनियों से बचने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। शब्द-योजना में सौन्दर्य लाते हुए रस की अभिव्यक्ति की गई है।

मङ्गलाचरण में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास का सुरम्य समन्वय है तथा काव्य-शक्ति का उसमें अच्छा निदर्शन है—

'ताण्डवाडम्बरे यस्य स्रस्ता स्त्रगिव मस्तकात्।
भाति भागीरथी भूमौ भूत्यै तं भैरवं भजे ॥ १ ॥'

शैली के निदर्शनार्थ दो गद्यांश यहाँ प्रस्तुत हैं—

'यत्किल मगधाधीश-महामात्य-मतिशर्मसूनुः सत्यशर्मा तीर्थानि पर्यटन्नमुं

१. ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ २९७-९९।

देशं प्रविवेश । प्रविश्य च महान्तमनेहसमिहातिवाह्य कस्यचिद्ग्रहारस्य समान-कुलशीलां कालीन्नाम कन्यामुपायंस्त । तस्यां चानपत्यायां तत्स्वसारं गौरीं नाम कन्यामुदवहत् । सा च पञ्चेषु-सञ्चार-चतुरे वयसि वर्त्तमाना तस्य प्राणादपि प्रियतमा समभवत् । सोऽपि तस्याः । एवं विषयोपभोगपरयोस्तयोः कियताचित् कालेन सकलजननयना (नन्दन)-नन्दनस्समजनि । अहमेतस्य धात्रिकाऽमुं बालमादाय सह काल्या विकट-तट-दुःसंचारामामति गम्भीरायां सरिति विजन-प्रदेशे स्नातुमभ्ययासिषम् । असूया-कलुषाशया च काली दुरवगाहे तत्प्रवाहे सबालां मां पातयित्वा निजोऽवसथमपासरत् । प्रवाहपतिता चाहमुन्मज्जननिमज्जनाकुलित-चेता बालेनावलम्ब्यमाना विधि-विलसितेनानेक-शोकमयोकामोकह्मवालम्बिषि ।'

'......ततो राजवाहन-पुरःसरा दश कुमाराः कुमार-काय-व्यूह-प्रमाथायिनो वसुमत्या भूयसा प्रयासेन सम्वधिता विविध-विद्याविनोद-मोदमान-मानसा मदन-सर्वस्वमनेक-विलासोपदेश-पेशलभङ्गुरापाङ्ग-विश्रामधाम वयः समासदन् ।'[1]

संस्कृत के अन्य कथासार

संस्कृत के प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्यों में से अनेक ऐसे रहे हैं, जिन्होंने जनमानस को आन्दोलित-उद्वेलित किया है। कितने ही कवि अपनी मौलिक काव्य-रचनाओं के साथ साथ उक्त प्रभावकारी काव्यों के कथासार अपनी शब्दावली में प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। ईसा की कुछ शतियों के पश्चात् हमें यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगती है। यह पद्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में उपलब्ध है।

वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव अद्भुत रहा है। इस उपजीव्य ग्रन्थ की कथा का आधार लेकर जहाँ अनेक मौलिक काव्यों की सृष्टि हुई, वहाँ इसकी कथामात्र को भी प्रस्तुत किया गया है। क्षेमेन्द्र की *रामायण-मञ्जरी*, अप्पय दीक्षित का *रामायण-सार-संग्रह*, रघुनाथ का *रामायण-सार-संग्रह* और कृष्ण-राज उदयर तृतीय की *रामायण-कथा-पुष्प-मञ्जरी* उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पुराणों में प्राप्त कथाओं के सार भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जैसे महाभारत से क्षेमेन्द्र की *भारत-मञ्जरी* या कृष्णाराम का *नैषधचरितसार*,

---

1. पूर्वपीठिका से तुलना के लिए देखिये-*दशकुमारचरितम्* : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १ : १९५७ : प्रथमोच्छ्वासः पृष्ठ ३६-३९ ।

हरिवंश पुराण से गोविन्द दीक्षित का हरिवंश-सार-चरित, अथवा श्रीमद्-भागवत से कृष्णराज उदयर तृतीय का कृष्ण-कथा-पुष्प-मञ्जरी आदि ।

परवर्ती काव्यों में कथा-काव्य अधिक प्रभावकारी रहे हैं। बृहत्कथा के लघु संस्करण के रूप में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी और सोमदेव कथा-सरित्-सागर विख्यात हैं। इस कड़ी में हम कृष्णदेवराय का ग्रन्थ सकल-कथा-सार-संग्रह पाते हैं।

गद्य-काव्यों में कादम्बरी और दशकुमारचरित से विद्वज्जगत् सुपरिचित है। अभिनन्द ने कादम्बरी-कथासार नाम से सम्बन्ध रचना की। सुमतीन्द्र ने अभिनव कादम्बरी नामक ग्रन्थ लिखा है। इसी प्रकार अप्पय दीक्षित का दशकुमार-चरित्र-संग्रह ग्रन्थ लिखा गया और वीरभद्रदेव ने दशकुमार-पूर्वकथा-सार की सर्जना की।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीरभद्रदेव का दशकुमार-पूर्व-कथासार (जिसका दुर्भाग्य से प्रथम परिच्छेद ही प्राप्त है) कथासार लिखने की परम्परा को ही अग्रसर करता है। मौलिक न होने पर भी वह संस्कृत-साहित्य की इस धारा की एक सुरम्य तरङ्ग है।



१. विशेष विवरणों और उदाहरणों के लिए देखिये, हि० क्ला० सं० लि० लघुकाव्य।

(३) संहिता (वंशावली-काव्य): बघेलवंश-वर्णनम्

(क) पाण्डुलिपि और कवि का परिचय—संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची के अन्तर्गत हरप्रसाद शास्त्री ने सोमदेव द्वारा रचित 'कथासरित्सागर' की एक पाण्डुलिपि को सूचना प्रस्तुत की है, जिसका लिपिक रूपणि मिश्र है। यह पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। इसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों भागों के पृष्ठक्रम पृथक्-पृथक् है। पहले भाग में ४२२ पत्रों में ९ वें लम्बक-अलङ्कारवती तक की कथा है। पृष्ठ ४२२ पर निम्नलिखित श्लोक है :—

'वैशाखमासे सितकामतिथ्यां
श्रीमावसिंहाख्य-नृपाश्रयेव ।
श्यलेलि सद्रूपणिमिश्रकेण
पूर्वार्द्धमेतत्तु बृहत्कथायाः ॥'

दूसरे भाग में ४१४ पत्रा हैं तथा ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित उल्लेख हैं—

'समाप्तोऽयं कथासरित्सागरः ।
शुभमस्तु । श्रीरस्तु । संवत् १८६९ ॥'

इसके पश्चात् ७ पृष्ठ और हैं, जिनमें लेखक ने अपने आश्रयदाता माव-सिंह की वंशावली और उनके सभासदों के नाम १०० श्लोकों में दिये हैं। अन्त में पुनः निम्नलिखित पुष्पिका है—

'समाप्तश्चायं ग्रन्थो बृहत्कथाख्यः ।'

कथासरित्सागर के अतिरिक्त प्राप्त इन १०० श्लोकों को १९३४ ई० में शास्त्री जी ने सूची में ही प्रकाशित कर दिया है।[१]

तत्कालीन रीवा-नरेश महाराज गुलाबसिंह के प्रधान मन्त्री दीवान बहादुर पं० जानकी प्रसाद चतुर्वेदी ने इस वंशावली-काव्य को हिन्दी-अनुवाद

१. ए डेस० कै० : क्रमाङ्क ५३९८ : पृष्ठ ३०९-२२ ।

सहित प्रकाशित कराना चाहा। रीवा के श्री नन्दकिशोर पोद्दाचार्य ने हिन्दी-अनुवाद कर दिया। यह सानुवाद प्रति पंडित ब्रजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी के समीप तदा पीछे प्रो० (भूतपूर्व) अख्तर हुसेन निजामी के अधिकार में बघेलखण्ड हिस्ट्री रेकार्डस कमीशन में रही आई। प्रो० (अब प्रिंसिपल) चिन्तामणि मालवीय ने अनुवाद में संशोधन कर अंग्रेजी साराश भी तैयार किया। अनेक स्थानीय विद्वानों ने प्रकाशन-योग्य प्रति तैयार करने में सहयोग दिया। १९५७ ई० में विन्ध्य संस्कृत-विश्व-परिषद् ने रीवा से इसे प्रकाशित कर दिया। इस प्रकाशित प्रति में मन्त्री, विन्ध्य-संस्कृत-विश्व-परिषद् के अतिरिक्त नन्दकिशोर पोद्दाचार्य एवं श्री अख्तर हुसेन निजामी की महत्त्व-पूर्ण भूमिकाएं हैं। हिन्दी अनुवाद सहित मूल श्लोक हैं, जिनमें लिपि की त्रुटियाँ संशोधित रूप में छापी गई हैं और मूल शब्द (जो सूची में हैं), जिनमें परिवर्तन किया गया है, पाद-टिप्पणी में दे दिये गए हैं। अन्त में नामानुक्रमणी और अंग्रेजी सारानुवाद है। इस वंशावली का नाम इस प्रकाशित रूप में रूपणिशर्म्मणा कृतं 'बघेलवंशवर्णनम्' कर दिया गया है।[१] अतः अब 'बघेल-वंशवर्णनम्' नाम से ज्ञात इन १०० श्लोकों पर यहाँ हम विचार करने जा रहे हैं।

अन्तिम श्लोक में मङ्गल-कामना है। उससे पूर्व निम्नलिखित श्लोक है :--

'पाण्डवाग्न्यृषिचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कात् भूभृतः।
भाद्रे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायामलीलिखत् ॥ ९९ ॥'

अर्थात् संवत् १७३५ को भाद्र पूर्णिमा (१६७८ ई०) को यह ग्रन्थ लिखा गया। जैसा ऊपर पुष्पिका में संकेत है, कलकत्ता में प्राप्त पाण्डुलिपि का लिपिकाल संवत् १८६९ (१८१२ ई०) है।

कवि इन श्लोकों सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ को कहीं बृहत्कथा और कहीं कथासरित्-सागर कहता है —

नरवाहनदत्त-सङ्गता विविधाश्चर्य-रसा बृहत्कथा।
रचिता ननु सोमशर्म्मणा कुतुकं यं नृप-भावसर्म्मणः ॥ ९३ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि गुणाढ्य की पैशाची भाषा में लिखित बृहत्कथा पर आधारित होने से ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में सोमभट्ट द्वारा संस्कृत में

---

१. इस प्रकाशित ग्रन्थ में अन्तिम पुष्पिका का परिवर्तित रूप इस प्रकार है—'समाप्तश्चायं ग्रन्थो बघेलवंशवर्णनाख्यः।'

लिखित कथासरित्सागर को तत्कालीन पण्डित बृहत्कथा भी कहते थे। दूसरी बात यह भी प्रतीत होती है कि इस वंशवर्णन के प्रणेता ने इन १०० श्लोकों को अपनी ओर से कथा-सरित्सागर के अङ्गभूत ही बना देना चाहा है।

रूपणि ने कथासरित्सागर की इस प्रतिलिपि की कहानी की ओर भी संकेत किया है—

'काव्याख्यान-कला-विदग्ध-धिषणः श्रीभावसिंहो नृपः।
काश्मीराद् भगवन्मुखोद्गतमिदं प्राप्योल्लसत्सप्रदम्॥
संशोध्याखिल-पण्डितैः कृतचमत्कारं ततो रूपणि-
द्वाराऽलीलिखदद्भुतार्थ-गहनं सर्वार्थसारप्रदम्॥ ८८॥'

अर्थात् बघेल-नरेश भावसिंह (१६७५-९४ ई०) काव्य, आख्यान और कला के प्रेमी थे। उन्होंने भगवान् के मुख से उद्गत[1] इस सरस कथा (कथासरित्सागर) को काश्मीर से प्राप्त कर (अपनी सभा के) समस्त पण्डितों से संशोधित कराकर रूपणि से (शुद्ध रूप में) लिखवाया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी की ओर से रीवा में प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने वाले श्री रघुनाथ शास्त्री को 'ताराभक्ति-सुधार्णव' नाम की एक संस्कृत-पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी, जो १९५६ ई० मे काशी भेजी गई। इस ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार थी—

'संवत् १७४६ समये कार्तिक-कृष्णपक्ष-त्रयोदश्यां दिने लिखापितं सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज-श्रीभावसिंहदेवेन। लिखितमिदं पुस्तकं रूपणि-मिश्रेण बान्धवप्रदेशे अमरपट्टने।'

इन पंक्तियों को देखने से ज्ञात होता है कि सम्भवतः रूपणि मिश्र अमर-पाटन कस्बे (जिला सतना) का निवासी था और संवत् १७४६ (१६८९ ई०) में भी वह संस्कृत ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ महाराज भावसिंह के लिए किया

---

१. तुलना के लिए देखिये कथासरित्सागर के अन्तिम उल्लेख—
'इति नरवाहनदत्तः स्वकथामाख्याय मुनिजनं निखिलम्।'
'.......इत्येषा शशिशेखरेण तुहिनक्ष्माभृत्सुताऽभ्यर्थनात्।
सोत्साहेन बृहत्कथा निगदिता कैलासपृष्ठे पुरा॥'
'...एतां मद्वदनोद्गतां पठति यो यो वा शृणोत्यादरात्।'
यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कथासरित्सागर का प्रणेता भी इसे बृहत्कथा ही कहता है, अतः रूपणि की भूल नहीं मानी जा सकती।

करता था। यह सहज ही समझा जा सकता है कि रूपणि को संस्कृत का अच्छा ज्ञान रहा होगा।

बघेलवंशवर्णनम् के श्लोकों में से एक इस प्रकार है —

'सभासदानां विप्राणां श्लोकानां च समूहकः।

भार्वासिंहस्य तोषायालेखि रूपणि-शर्मणा ॥ ९८ ॥'

अर्थात् सभासदों, विद्वान् ब्राह्मणों और भार्वासिंह को सन्तुष्टि के लिए रूपणि शर्मा द्वारा ये श्लोक-समूह लिखे गये। अथवा भार्वासिंह के सन्तोष के लिए सभासद पण्डितों द्वारा रचित श्लोक-समूह रूपणि द्वारा लिपिबद्ध किये गये। यह दूसरा अर्थ इस बात पर कि रूपणि ही इन सो श्लोकों का रचयिता है, सन्देह उपस्थित कर देता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह विशिष्ट श्लोक तथा इससे पीछे के दो और श्लोक[1] एवं काश्मीर से ग्रन्थ-प्राप्ति का सूचक उपर्युक्त श्लोक अवश्य ही रूपणि द्वारा लिखे गये।

इस पाण्डुलिपि की चर्चा करने वाले महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री[2] डा० हरदत्त शर्मा[3] और श्री निजामी[4] ने इन समस्त श्लोकों का रूपणि शर्मा (या मिश्र) द्वारा रचित ही माना है।

हम यह देख चुके हैं कि रूपणि में श्लोक-रचना की शक्ति थी और उसे संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि इन श्लोकों का रचयिता रूपणि ही है, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इन श्लोकों के अन्तर्गत भार्वासिंह की सभा के नौ

---

१. श्लोक ९९—'पाण्डवा०' तथा १०० :

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम्।

मङ्गलं सर्वलोकानां भूमौ भूपति-मङ्गलम् ॥

२. ए० डेस० कै० : पृष्ठ ३२२ :

'लिपिक (रूपणि) की रचना पाण्डित्यपूर्ण है और वह काव्य-सौन्दर्य से रहित नहीं है। प्रतीत होता है कि वह भाव (सिंह) देव की सभा का एक विद्वान् रहा होगा।'

३. 'बाघेल कुलसं०' : 'रूपणि मिश्र एक विद्वान् पुरुष था। प्रतिलिपियों में उसने ९९ (१००) श्लोक जोड़ दिये, जिसमें उसने भार्वासिंह की वंशावली दी तथा उसके सभासदों का उल्लेख किया।'

४. 'नाइन जेम्स०' : 'रूपणि शर्मा ने स्वरचित श्लोक जोड़ दिये।' तथा निजामी : 'जीनियालाजिकल सोर्सेज आफ दि बघेल डायनैस्टी आफ रीवा' नवम भारतीय इतिहास परिषद् : अन्नामलइनगर : दिसम्बर, १९४५ : विवरण : पृ० १५०-५३।

रत्नों के उल्लेख हुए हैं जिनमें रूपणि का नाम नहीं है। इससे प्रकट होता है कि वंश-वर्णन के साथ नो रत्नों के उल्लेख भी रूपणि ही कर रहा है। अतः हमें उपर्युक्त श्लोक का पहला अर्थ स्वीकार होगा और 'अलेखि' शब्द को 'अरचि' के समान मानना होगा। वास्तव में यही तर्क-सम्मत है कि संशोधित कथा-सरित्सागर की प्रतिलिपि को पूरी करते-करते अपने आश्रयदाता भावसिंह एवं सभा के विद्वानों की प्रसन्नता के लिए रूपणि ने यह प्रशस्त्यात्मक वंशावली लिख दी।

ग्रन्थ के आरम्भ में दो श्लोकों में दर्शन-परक (ब्रह्म और प्रकृति की) वन्दनाएँ हैं। आगामी दो श्लोकों में बघेलवंश का गुणगान है। पाँचवें श्लोक में कर्णदेव से वंशारम्भ है। ३७ वें श्लोक तक रामचन्द्र तक १९ राजाओं का वर्णन है। ३७ से ५८ वें श्लोक तक रामचन्द्र और उनकी राजधानी रामनगर तथा दुर्ग बान्धवगढ़ (४०-४९) का काव्यात्मक वर्णन है। ५९ से ६४ वें श्लोक तक शेष राजाओं का उल्लेख है। ६५ से ७५ वें श्लोक तक भावसिंह की प्रशस्ति है। इस प्रकार कुल २४ राजाओं का वर्णन है। आगे भावसिंह की राजधानी रीवा और सभासदों (श्लोक ७९ ८७) का वर्णन देवस्तुति, फलस्तुति आदि हैं।

(ख) ऐतिहासिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन-बघेलखण्ड के इतिहास के सम्बन्ध में बघेलवंशवर्णनम् ग्रन्थ में जो सामग्री उपलब्ध है, उसे हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग है, कर्णदेव से बोलारदेव तक राजाओं की सूची, जिस पर मतभेद है। दूसरा भाग है, शेष राजाओं की सूची। तीसरा भाग है, विभिन्न स्थलों पर प्राप्त अन्य सूचनाएँ।

कर्णदेव से बोलारदेव तक पहला मतभेद संस्कृत के स्थानीय दो ग्रन्थों-वीरभानूदय और बघेलवंशवर्णनम् में ही है; दूसरा मतभेद बघेलवंशवर्णनम् और स्थानीय हिन्दी लेखों के बीच है। हिन्दी लेखों में एक वर्ग है स्थानीय जमावन्दियों का, जैसे एकना बान्धोगढ़। ये लेख बहुत कुछ प्रामाणिक हैं। दूसरा वर्ग है १९ वीं शती की कविताओं का, जो प्रायः चारणों द्वारा लिखित हैं। इनमें प्रशस्तिमूलक कल्पनाएँ हैं। तीसरा वर्ग है राजघरानों में प्राप्त वंशावलियों का, जिनमें परम्परा के साथ स्मृति का योग है। यहाँ यह बतलाना समीचीन होगा कि बोलारदेव तथा उसके पूर्ववर्ती नामों में ही मतभेद है। अतः उनमें से कुछ की ऐतिहासिकता पर भी संशय है। यहाँ पर हमारे विचार के मुख्य आधार संस्कृत के उपर्युक्त दो काव्य तथा जमावंदियाँ हैं। वंश-सूची के जिस प्रारम्भिक भाग पर मतभेद है, उसका तुलनात्मक स्वरूप निम्नलिखित है—

वीरभानूदयकाव्यम् सर्ग १।६-१९	बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ५-१६	जमाबन्दियाँ (परि० १)
(व्याघ्रपाद मुनि का वंश या भारद्वाज व्याघ्रपाद् गोत्र)	(गुर्जरेश्वर का सेवक बघेलवंश)	१—व्याघ्रदेव
	१—कर्णदेव (गुजरात)	२—कर्णदेव
	२—सुहागदेव	३—सोहागदेव
	३—सारङ्ग	४—सारङ्गदेव
	४—वीसलदेव (कालिंजर)	५—वीसलदेव (अन्यत्र विलास या विलास-देव) भाई कालिं-जर गहोरा
१—भीम (नरेन्द्र)	५—भीममल्ल	६—भीवमल (या भीमल)
२—राणिङ्गदेव (गहोरा)	६—रानिकदेव	७—रानिकदेव (अन्यत्र अनीकदेव)
३—वालनदेव	७—वलन	८—वलनदेव
	८—दलक	९—दलकेश्वर (या दलकेन्द्र)
	९—मलकेश	१०—मलकेश्वर
	१०—वरियार	११—वरियारदेव
४—वल्लारदेव	११—बोलारदेव	१२—बोल्लारदेव

हिन्दी के सभी लेख व्याघ्रदेव के साथ यह वंशावली देते हैं, और उनमें कहीं मतभेद नहीं है। वीरभानूदय काव्य में यह व्याघ्रदेव व्याघ्रपाद मुनि अथवा व्याघ्रपाद् गोत्र के रूप में विद्यमान है।[१] बघेलवंशवर्णनम् में व्याघ्रदेव की कहीं चर्चा नहीं है। इसके अनुसार बघेल लोग गुर्जरेश्वरों (सम्भवतः चौलुक्यनरेशों) के सेवक थे तथा कर्णदेव गुजरात में ही था।[२] जमाबन्दियाँ कर्णदेव की गुजरात में स्थिति की पुष्टि करती हैं, किन्तु उनमें से कुछ उसका सम्बन्ध बाघवगढ़ से जोड़ती हैं। कहीं यह कर्णदेव व्याघ्रदेव का पुत्र और

१. वीर० : सर्ग १।१५, १९, २१, २८।

२. श्लोक ४ : 'प्रतिक्षणानन्दित-गुर्जरेश्वरः।'

तथा ५ : 'स कर्णदेवः प्रबभूव गुर्ज्जरे।'

कहीं आई है[१]। सम्भव है, कर्णदेव ही गुजरात से आने वाला प्रथम व्यक्ति हो और इस कारण इस काव्य में वही वंश-प्रवर्तक रूप में रखा गया हो।

बघेलवंशवर्णनम् में वीसलदेव को कालिंजर के भर-वंशियों का सेवक बतलाया गया है। तथा भीममल्ल उसका पुत्र है।[१] जमाबन्दियों में ये दोनों भाई-भाई हैं और कालिंजर के भर राजा के चाकर (सेवक) होते हैं। कहीं भर राजा का नाम भी बीसलदेव है। इन भाइयों को गहोरा की जागीर और ठाकुर का पद मिलता है और भीममल्ल (या भीमल या भीमल) गहोरा के लोधी शासक के मन्त्री तिवारी को फोड़कर गहोरापर अधिकार कर लेते हैं।[२] वीरभानूदय में इसी भीम (नरेन्द्र) से वंशारम्भ होता है तथा उनके पुत्र रानिङ्गदेव के साथ गहोरा शासन का पहली बार उल्लेख होता है।[३] बघेलवंशवर्णनम् तथा जमाबन्दियों में भीम के पुत्र का रानिकदेव एवं चारणों के लेखों में अनोकदेव नाम मिलता

१. परिशिष्ट १ (क)—एकना० : "बघेलन के ओआदि लिखा जब ते गुजरात ते आए। पुरखा ठाकुर कहावै लागि। पुरिखा ३—जैसिंहदेव १ वीरधवलदेव २ व्याघ्रदेव ३। गुजरात ते आए पुरिखा तीन भे हैं—कर्णदेव ४ सोहागदेव ५ सारंगदेव ६।' परिशिष्ट १ (ख)—वंशावली बांधौ (ति)। 'गुजराति मा भे पुरिखा तीनि—१ जैसिंहदेव २ वीरमदेव ३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव। करनदेव की वंसावली गुजराति मा तीनि।' परिशिष्ट १ (ग) '......१ व्याघ्रदेव भाई कर्नदेव के बांधो। व्याघ्रदेव के वंसावली ४ पुत्र करनदेव ५ सोहागदेव।'

१. श्लोक ११ : 'भरान्वये वीसलदेव एधितः.........कलिञ्जरे....।'
तथा १३ : 'तत्सूनुरासीत्.....................स तु भीममल्ल :।'

२. परि० १ (क) : 'कालिंजर हिया दुइ भाई भर राजा के चाकर भे। बीसलदेव जेठे भीममल लहुरे गहोरहिं आऐं।.... ....भीमलदेव गहोरा के लोधिन कहँ मारि के गहोरा छँड़ाइ लीन्हेनि।'
परि १ (ख) : 'कालिंजर आइ दुइ भाई भर राजा वीसल देव के चाकर भें। गहोरा जागीरि पाइनि। ठाकुर कै खिताब पाइनि। लोधिन का मारिन। गहोरा अमल भा।'
परि १ (ग) : '....तिवारी मिलाइ कै आधा राज देइ काहीं हँसा। लोधिन का मारिनि।'

३. सर्ग ११६-२०

है।[१] बघेलवंशवर्णनम् के दल्लक और मलकेश का उल्लेख जमाबन्दियों एवं अन्य लेखों में दलकेश्वरदेव एवं मलकेश्वरदेव नाम से हुआ है। वीरभानूदय में इनका तथा मलकेश के पुत्र बरियार का नाम नहीं है। साथ ही बरियार[२] के पुत्र के रूप में बघेलवंशवर्णन एवं जमाबन्दियों में आया हुआ बोलारदेव[३] वीरभानूदय में सीधे वालन (या वलन) का पुत्र है।[४] इसके पश्चात् कोई मतभेद नहीं है।

बघेलवंशवर्णनम् में बोलारदेव से आगे के नाम इस प्रकार हैं—१२—सिंहदेव, १३-वीरम, १४-नरहरि, १५ भयद (तथा भेददेव), १६-शालिवाहन, १७-वीरसिंह, १८-वीरभानु, १९-रामचन्द्र, २०-वीरभद्र, २१-विक्रमादित्य, २२-अमरसिंह, २३-अनूपसिंह एवं २४-भावसिंह (कवि का आश्रयदाता)।

बोलारदेव के पुत्र सिंहदेव से लेकर वीरसिंह तक नाम-सूची छोड़ कर इस काव्य में कोई ऐतिहासिक सूचना नहीं मिलती। केवल प्रशस्त्यात्मक उद्गार प्रत्येक राजा के लिए प्राप्त हैं। वीरभानु को सुकुमारदेवी का पुत्र बतलाया गया है,[५] जिसका समर्थन वीरभानूदय से होता है।[६] वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के सम्बन्ध में नवीन सूचनाएँ हैं। रामचन्द्र के देश (राज्य) में बान्धव नामक दुर्गरत्न है।[७] दुर्ग के पार्श्व में रामचन्द्र की राजधानी रामनगर अवस्थित है।[८] उसके राज्य में ही प्रयाग है, जहाँ त्रिवेणी की शोभा है।[९] इसके आगे केवल भावसिंह के सम्बन्ध में कुछ नयी जानकारी दी गई है।

---

१. परिशिष्ट १ (क), (ख) तथा (ग)।

२. बघेल० श्लोक १८: 'बरियारनामा·······।'
तथा १९ : 'बोलारदेवोऽभवदस्य सूनुर्बघेल-वंशाब्धिमणिर्महीशः।'

३. वीर० १९ : 'पुनश्च·······बल्लारदेवो बलिदान-शौण्डः।'

४. वंशारम्भ-सम्बन्धी विस्तृत ऐतिहासिक चर्चा के लिए देखिये—पीछे अध्याय २ (क)।

५. श्लोक ३६ : 'अभूदयं श्रीसुकुमारदेव्यां·······।'

६. सर्ग १।८८-९७ : 'अथास्य देवी सुकुमारदेवी···सूते स्म पुत्रं······ श्री वीरभानुं·········।'

७. श्लोक ४० : 'देशे यस्य प्रसृतमहसो बान्धवो दुर्गरत्नम्।'
तथा ४१-४९।

८. श्लोक ५० : 'पार्श्वे तस्य क्षितिप ···नगरी···।'
तथा ५१ : 'विभाति रामनगरं···।' एवं ५२-५४।

९. श्लोक ५५ : 'तस्य श्रीरामनृपतेर्विषये तीर्थ-सेवितः। प्रयागोऽस्ति···॥'

भावसिंह अनूपसिंह की रानी कमला से उत्पन्न हुए।[१] ये बान्धवेश कहलाते थे।[२] दिल्लीश्वर (औरंगजेब) इनका मित्र था।[३] यवन सम्राटों से पीड़ित ब्राह्मणों का ये पालन करते थे।[४] बान्धवगढ़ उनका दुर्ग था। वे यज्ञ करते थे। उनकी राजधानी रीवा (रेवा पुरी) थी। उनकी राज्य-सीमा पर ये गाँव थे—केदा, कोटर, हंसजात और टमकु।[५]

श्री निजामी के अनुसार रामचन्द्र की राजधानी 'रामनगर' का तादात्म्य बान्धवगढ़ से ५ मील पूर्व स्थित रामपुर कस्बे के साथ हो सकता है।[६] वास्तव में यह रामपुर (नैकिन-जिला सीधी) बान्धवगढ़ (जिला शहडोल) से लगभग ६० मील दूर है और बान्धवगढ़ के निकट कोई अन्य रामपुर नहीं है। अतः यह रामनगर वर्तमान रामनगर कस्बा (तह० अमरपाटन, जिला सतना) हो सकता है, जो बान्धवगढ़ से लगभग ३५ मील उत्तर-पश्चिम है। यहाँ एक पुराना किला, बड़ी बस्ती और बाजार है। भावसिंह के छोटे भाई जुझारसिंह इसी रामनगर के इलाकेदार थे।[७]

प्रयाग पर रामचन्द्र का अधिकार होने का प्रमाण जमाबन्दियों में भी मिलता है।[८] साथ ही वीरभद्रचम्पू में भी यह अधिकार उल्लिखित है।[९]

---

१. श्लोक ६५ : 'तद्राज्ञी कमलाभिधा…… प्रासोष्ट…… श्री भावसिंहः।'

२. श्लोक ६६ : 'बान्धवगिरेः श्रीभावसिंहः प्रभुः।'
तथा ७८ : 'श्रीबान्धवेशमव्यादसौ विन्ध्य-भूमिधर-वासिनी।'

३. श्लोक ७३ : 'यं ……दिल्लीशो मनुते हितं……—।'

४. श्लोक ७५ : 'सम्राजो यवना द्विजातिदमनाः……।'

५. श्लोक ७६ : 'दुर्गो यस्य चकास्ति बान्धवगिरिः प्राज्याज्य-धारा-हुते-
स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति विदिता रेवापुरी सुन्दरी।
केदा-कोटर-हंसजात-टमकु-ग्रामाः परिच्छेदकाः
सीम्नो यस्य भुवः सदाऽवति सतः श्रीभावसिंहः प्रभुः।'

६. 'माइन जेम्स०'

७. परि० १ (क) एकत्रा। देखिये आगे अध्याय ५ (क)।

८. परि० १ (ग) : 'प्राग (प्रयाग) के किला के थूनि भै तब कालिं-जर छौंक गा।' अर्थात् रामचन्द्र ने १५६९ ई० में प्रयाग में किले की नींव डलवाई। किन्तु अकबर ने १५८४ ई० में प्रयाग का किला बनवाया और उसका नाम 'इलाहाबास' रखा। अतः इसके पूर्व ही कभी प्रयाग रामचन्द्र के हाथ से चला गया होगा। (देखिये—अकबर : निजामुद्दीन अहमद : ईलियट एण्ड डाउसन : भाग २ : १६५२ : पृष्ठ १२१।

९. देखिये आगे अध्याय ५ (क)

कवि के आश्रयदाता भावसिंह के पिता अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ (१६२५ ई०) में हुआ था। उनके जेठे पुत्र मानसिंह की पिता से पूर्व मृत्यु हो जाने से भावसिंह को राज्य मिला।[१] अनूपसिंह का राज्य १६५० ई० में आरम्भ हुआ। ओरछा (जिला दतिया) के पहाड़सिंह बुन्देल के आक्रमण से १६५१ ई० से ५ वर्ष तक अनूपसिंह रीवा के बाहर रहे। १६५६ ई० में वे शाहजहाँ के दरबार में हाजिर हुए। उन्हें तीन हजारी मनसब देकर पुनः रीवा की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया और बान्धवगढ़ पर भी उनकी सत्ता मान ली गई।[२]

इस समय छत्रसाल बुन्देला का उदय हो रहा था। १६७२ ई० में उन्होंने रीवा (जमुनीमान) बघेल वंश के बान्धव मैहर (जिला सतना) के बघेल शासक को पन्ना-राज्य का अधीनस्थ बना लिया और पश्चिमी बघेलखण्ड की बहुत सी सीमा बुन्देलखण्ड में सम्मिलित कर ली। दिल्ली के संकेत पर भावसिंह के राज्यकाल (१६७५-९४) में मुगल सेनाओं ने छत्रसाल की बाढ़ को पीछे धकेला।[३] सम्भवतः इसी अर्थ में रूपणि ने दिल्लीश्वर को भावसिंह का मित्र बतलाया होगा।

भावसिंह का जन्म श्रावण कृष्ण १४, संवत् १७०७ (१६५० ई०) में हुआ था। उनकी बहुत साहिबेई मिर्जा राजा जयसिंह कछवाहे के पुत्र राजा रामसिंह को तथा एक लड़की राणा भीमसिंह के पुत्र सुर्जमल को (सन् १६८७ में) ब्याही गई थी। भावसिंह का पहला विवाह १४ वर्ष की आयु में चित्तौड़ के राणा राजसिंह की कन्या अजब कुँवरि के साथ हुआ था। इसके अतिरिक्त १८ विवाह और हुए थे। इनके अनेक पुत्रों में से कोई जीवित नहीं रहे, इससे इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र अनिरुद्ध सिंह (जन्म सं० १७३३-१६७६ ई०) को गोद लिया और यह व्यवस्था भविष्य में अनिरुद्ध सिंह की हत्या का कारण बनी। भावसिंह की मृत्यु चैत्र शुक्ल ११ सं० १७५१ (१६९४ ई०) को हुई तथा अनिरुद्ध सिंह उसी वर्ष पौष शुक्ल १२ (सन् १६९५) को मारे गए।[४]

रूपणि ने भावसिंह की राज्य-सीमा के जिन चार गाँवों का उल्लेख किया है, उनमें कोटर का उल्लेख वीरभानूदय काव्य में प्राप्त है। यह गाँव यमुना-

---

१. परि० १ (क)—एकवा।
२. आईन० पृ० ४०७।
३. भगवानदास गुप्त (डा०): महाराजा छत्रसाल बुन्देला: आगरा: १९५८: पृ० ४३, ५६-७९।
४. परि० १ (क): एकवा।

तट पर था।[१] इससे प्रतीत होता है कि भावसिंह के राज्य की उत्तरी सीमा यमुना-तट तक विस्तृत थी।

अकबर ने १५९७ ई० में बान्धवगढ़ का ध्वंस कराया था और १६०२ ई० में वीरभद्र के अवैध पुत्र दुर्योधन को बान्धवगढ़ की सत्ता सौंप दी थी।[२] किन्तु जहाँगीर ने सं० १६६१ (१६०५ ई०) में बादशाह होते ही अपने 'धन्दह' वीरभद्र के वैध पुत्र विक्रमादित्य को राजा बनाकर १८ परगनों की सत्ता उन्हें सौंपी। विक्रमादित्य दिल्ली से लौटे किन्तु उन्होंने बान्धवगढ़ को राजधानी न बनाकर रीवा को बनाया।[३] तब से रीवा ही बघेलों की राजधानी रही, यद्यपि उन्हें 'बान्धवेश' कहलाना आज तक प्रिय है। रूपणि ने इसी रीवा-राजधानी को 'रेवा-पुरी' लिखा है।

रूपणि ने भावसिंह के ९ सभासदों के उल्लेख किये हैं। इनमें से ६ विद्वान् थे। बालकृष्ण सूरि शास्त्रों के ज्ञान में अजेय थे, साथ ही धैर्यवान्, उदार, सुशील, गम्भीर और विचारशील थे।[४] किशोर समस्त विद्याओं के व्यसनी और पण्डितों को मुग्ध करने में चतुर थे।[५] गोवर्द्धन वाजपेयी साहित्य और न्याय के मर्मज्ञ थे।[६] पाश्चात्य गौड़ वंश के लालमणि विद्वान्, सज्जन और

---

१. वीर० ४।१ : 'अथ प्रयातो वीरोऽयं कोटरं क्रमतोऽगमत्।
कालिन्द्यां विष्णुपद्यादि-प्रतिमाभिरलङ्कृतम्॥'
तथा ४।१४, ५३, ५८ : सम्भवतः यह एरच (झाँसे) से १४ मील पूर्व है।

२. आईन० पृष्ठ ४०६-७।

३. परि० १ (क) : एकत्रा-'तकसीम परगने माफिक फरमान जहाँगीर शाह का राजा विक्रमाजीत को जागीर का ''तवक सं० १६६१ के साल। फरमान सरकार महाल परगने १८।''''''रीमा का किला सलेमशाह बनवावा। '''''' बिकरमाजीत ले किले आएँ।' अर्थात् १५४४ ई० में जब शेरशाह सूर ने कालिंजर पर आक्रमण किया, तब उसके पुत्र सलेमशाह ने रीवा पर अधिकार कर किला बनवाया था। विक्रमादित्य बघेल से इस किले में रहना प्रारम्भ हुआ।

४. बघेलवंशवर्णनम् : श्लोक ७९ :
'सूरिस्तस्य विराजते नरपतेः श्री बालकृष्णाभिधः।'

५. वही श्लोक ८० : 'तस्यास्ति विद्वाननघः किशोरः।'

६. श्लोक ८१ : 'चकास्ति गोवर्द्धन-वाजपेयी।'

मधुरभाषी थे तथा सामवेद कौथुमी शाखा पर उन्हें विशेष अधिकार था।[१] औपगवि शास्त्रार्थ में कुशल, कवि-प्रतिभा में भारवि के समान, यज्ञकर्त्ता, वेदज्ञ एवं राजा को विशेष प्रिय थे।[२] कमलनयन दाक्षिणात्य वेदों में पारङ्गत, सज्जन, कुलीन, परोपकारी एवं शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ थे।[३] रूपणि ने सेठ गोपीनाथ, अंगरक्षक कोदू और प्रजापालक, राजरक्षक एवं गम्भीर बुद्धि वाले जगन्मणि नाम के मन्त्री का भी वर्णन किया है।[४]

श्री निजामी के कथनानुसार रीवा ऐतिहासिक अभिलेख कमीशन द्वारा उपर्युक्त व्यक्तियों के वर्तमान वंशधरों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की गई थी, किन्तु उपर्युक्त विद्वानों की कोई कृतियाँ उपलब्ध नहीं हुई।[५]

---

१. श्लोक ८२ : '..................पाश्चात्य-गौडाग्रणीः।
प्राज्ञः साम्नु कौथुमाख्य-विटपच्छान्दोग्य-वेत्ता हरेः।
भक्तो कालमणिश्चकास्ति.............................॥'

२. श्लोक ८३ :
'श्रीमानौपगविः समस्त-निगमैः काव्यैक-विद्याटवी–
प्रज्ञा-पञ्चमुखः कविर्विजयते राज्ञः सदैवप्रियः॥'

औपगवि का नाम कल्याणदास अग्निहोत्री था। ये राजा भावसिंह के गुरु और अग्निहोत्र-यज्ञ के कर्ता थे। इनके वंशज रम्बुकराम ने सं० १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत में 'अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली' लिखी है, जिसकी पाण्डुलिपि रीवा में उन्हीं के वंशज श्री रामप्यारे अग्निहोत्री के समीप है। इसमें 'औपगवि' का विवरण इस प्रकार है—

'वेनदासस्य पुत्रौ द्वौ ज्येष्ठो औपगवि-नामकः।'
तथा—'श्री भावसिंहो रणमेदिनीजयः कल्याण-औपगवेर्बभूव शिष्यः॥
......चकदही-रुगवाख्यश्च बंभौरीनामपत्तनम्।
कन्दोहा-नामक-ग्रामा प्राप्ता औपगवि-धर्मतो॥'

उल्लेखनीय है कि कल्याणदास के वंशज अग्निहोत्री सतना जिले के चकदही, रुंगवा, बम्हौरी और कंदोहा आदि ग्रामों में अब भी हैं। विशेष विवरण के लिये देखिए बघेल० संपादकीय टिप्पणी।

३. श्लोक ८४ : 'कमलनयन-नामा शोभते दाक्षिणात्यः।'

४. श्लोक ८५, ८६ और ८७ : 'जगन्मणिरयं यस्यास्ति मन्त्रिव्रजे।'

५. 'नाइन जेम्स०।'

(ग) भावसिंह—प्रस्तुत रचना में भावसिंह के सभी पूर्वजों की प्रशस्ति में रूपणि मिश्र ने कुछ न कुछ लिखा है। वे सभी वीर और यशस्वी थे। किन्तु इस वर्णन से उनके वास्तविक व्यक्तित्व की जानकारी नहीं मिलती। केवल रूपणि के आश्रयदाता भावसिंह के चरित्र पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है।

भावसिंह विद्या और विद्वानों के प्रेमी थे, अन्यथा रूपणि प्रधानमन्त्री जगन्मणि से पहले विद्वानों की प्रशंसा लिखने का साहस न करता। कथासरित् सागर तथा ताराभक्तिसुधार्णव की उपर्युक्त प्रतिलिपियाँ भावसिंह की साहित्य-सद्ग्रही वृत्ति को प्रकाश में लाती हैं। भावसिंह श्रीराम के अनन्य भक्त थे।[1] वे गम्भीर, दानशील, प्रतिभाशाली, प्रजापालक, सुरूप, ओजस्वी एवं धैर्यवान् थे।[2] वे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक तथा यज्ञकर्ता थे।[3] उन्हें कवि ने काव्य, आख्यान और कला के मर्मज्ञ लिखा है।[4] पीछे जिन वैवाहिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है, उनसे भावसिंह के समय में बघेलवंश की उच्च प्रतिष्ठा घोषित होती है। रीवा के किले में कई देवमन्दिरों का निर्माण तथा विख्यात महामृत्युञ्जय की मूर्ति की प्रतिष्ठापना भावसिंह के द्वारा कराई गई बतलाई जाती है।

(घ) काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व—बघेलवंशवर्णनम् का प्रथम ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि इसमें संस्कृत पद्यों में बघेल-वंश की क्रमबद्ध सूची प्रस्तुत की गई है। यह काव्य १६७८ ई० में लिखा गया। अतः यह सूची परवर्ती हिन्दी लेखों[5] के लिए अपने आप में एक और प्रमाण बन जाती है और

---

१. बघेल० श्लोक ६५ : 'श्रीमिथिलाधिराज-तनया-प्राणेश-भक्ताग्रणीः।'

२. श्लोक ६६ :

'गाम्भीर्येण महोदधीनधरयन् दानेन वैरोर्वानि
मत्या देवगुरुं प्रजाऽवनगुणेनेक्ष्वाकुमुर्वीपतिम्।
कान्त्या मन्मथमोजसा दिनकरं धृत्या महीमण्डलं
जीयादेष चिराय बान्धवगिरेः श्रीभावसिंहः प्रभुः॥'

तथा श्लोक ७३ :

'यं पल्यो मदनं वदन्ति रिपवो दावानलं साधवो
मान्धातारमुदीरयन्ति विविधा कल्पद्रुमञ्चार्थिनः।'

३. श्लोक ७५-७६ : '..........प्राज्याज्य धाराहुतै—
स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति.......।'

४. श्लोक ८८ : 'काव्याख्यान-कला-विदग्धधिषणः...।'

५. उदाहरण के लिए देखिए—रघुराजसिंह कृत आनन्दाम्बुनिधि (१८५४ ई०) पृ० ६१।

यह सिद्ध करती है कि कम से कम ३०० वर्ष पूर्व बघेलों के पूर्वजों की सूची इस रूप में थी; साथ ही यह वीरभानूदय आदि पूर्ववर्ती लेखों से जो मत-भेद उपस्थित करती है, उसके कारण वह इतिहासकारों को मतभेद के आधारों के परिशोध के लिए विवश करती है, इस प्रकार बघेलों के पूर्वजों के सम्बन्ध में जो विवाद या सन्देह है, उन पर स्वयं ऐतिहासिक प्रकाश डालते हुए यह काव्य अपने आप में एक आधार बन जाता है। इस काव्य के अभाव में सम्भवतः वर्तमान विद्वान् परवर्ती हिन्दी लेखों को अप्रामाणिक मान बैठते और डा० हीरानन्द शास्त्री की भाँति वीरभानूदय काव्य की सूची को अन्तिम मान लेते। विषयान्तर के भय से ऐतिहासिक तथ्यों एवं सम्भावनाओं के विस्तार को प्रश्रय न देकर हम मतभेदों के निवारण का भार यहाँ पर भावी इतिहास-प्रेमी लेखकों को सौंपते हैं और आशा करते हैं कि वे इस काव्य की सूचनाओं को उचित महत्त्व देंगे।

इस काव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है महाराज भावसिंह की सभा और उनके व्यक्तित्व की एक झाँकी प्रस्तुत करना। कवि के द्वारा वर्णित सभासदों के वंशधर आज भी वर्तमान हैं। अतः स्वभाविक है कि कमसे कम वे ३०० वर्षों पूर्व रीवा राजधानी की एक झलक इस काव्य के माध्यम से पाने में रुचि रखें। इतिहास के अन्वेषक तो इस दृष्टिकोण से रुचि लेंगे। तथापि यह कहना होगा कि इस काव्य का मूल्य अधिकतः प्रशस्त्यात्मक है और वीरभानूदय जैसे ऐतिहासिक काव्य के गौरव का बहुत थोड़ा अंश ही इसे मिल सकेगा।

(ङ) काव्यात्मक सौन्दर्य—प्रशस्त्यात्मक एवं ऐतिहासिक आधार होने पर भी बघेलवंशवर्णनम् में काव्य-सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में है। काव्य के मूल लक्ष्य के अनुसार इसमें स्वभावतः वीर एवं रौद्र रसों का परिपोष हुआ है। ऐसे स्थलों पर आरभटी वृत्ति, ओज गुण और गौडी वृत्ति के दर्शन

'वीरध्वज व्याघ्रदेव करन सोहागदेव
संगरामसिंह औ बिलासदेव आनिये।
भीमल अनिक देव बलदेव दलकेन्द्र
मलकेस बरियार बुल्लार मानिये ॥
सिंहदेव भैरोदेव नरहरि भेददेव
त्यों शालिवाहन विरसिंहदेव मानिये।
वीरभान रामसिंह वीरभद्र विक्रम जू
अमर अनूप भावसिंह को बखानिये ॥'

होते हैं। अलङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास कवि को प्रिय प्रतीत होता है। कुछ उदाहरण लीजिये—

'सुवीर-पट्टादिक-वीरभूषणः प्रतिक्षण-क्षत्रियराज-भीषणः।
विपक्ष-लक्षातिबलारि-दारणः क्षमासु क्षमाम यशः-परायणः ॥ १० ॥'

'तस्यासीत्तनयः सुभाषितनयः श्रीनिर्जितेन्द्रात्मजः
क्षोणीपालमणिः प्रतापतरणिर्दानेषु चिन्तामणिः।
नानाशास्त्रबलः कलासु कुशलः प्रौढारि-कालानलः
कीर्त्यालङ्कृत-सप्तवार्द्धि-वलयः श्रीवीरसिंहो नृपः ॥ ३१ ॥'

रूपणि ने अन्य अलङ्कारों के प्रयोग भी सुन्दर किये हैं। रामचन्द्र के राज्य (प्रयाग) में बहने वाली गङ्गा का गौरव सुनिये, जिसमें उपमा का रम्य प्रयोग है—

'हिमाद्रेः पार्वतीनाथ-करुणेव निरन्तरम्।
आविर्भूता पुनात्येषा भुवनानां परम्पराम् ॥ ५८ ॥'

रौद्र रस के साथ भ्रान्तिमान् का एक उदाहरण निम्नलिखित है। वीर भानु के द्वारा काटे हुए शत्रुओं के हाथियों के रक्त से धरती आप्लावित हो रही है और हंसों को आवास नहीं ढूँढे मिलता, क्योंकि कैलास रक्त से लाल हो गया है—

'यत्खड्गाघात-विद्ध-प्रतिभट-परम-प्रौढ-कुम्भीन्द्र-कुम्भ-
स्थावल्गद्-रक्तधाराः क्षितितलमखिलं व्याप्य सिन्धवस्य एताः।
कैलासं गैरिकाभा-रुधिरमभिनवं व्याप्दिशन्त्यः समन्तात्
हंसानावासभूमेरपरिचय-भ्रमैर्व्याकुलान् सन्दिशन्ति ॥ ३३ ॥

अत्युक्ति का एक प्रयोग देखिये। स्वर्णदान में रुचि रखने वाला माधवसिंह केवल मृगया के लिए बाहर निकला है, किन्तु स्वर्ण छिन जाने के भय से इन्द्र, शेष और सुमेरु को चिन्ता हो गई—

'यस्मिन् वाञ्छति हेमदेऽपि मृगयामक्षौहिणीभिः समं
पाकारिर्नगरीं निजां कलयति द्वार्दत्त-लोहार्गलाम्।
शेषोऽप्यानमितोन्नमत्-फणशतो धत्ते मणिं कच्छपो
दुःखाद् भारमुरीकरोति नितरां मेरुः समुत्कम्पते ॥ ७४ ॥'

रूपणि ने बान्धवगढ़ का १० श्लोकों में काव्यात्मक चित्राङ्कन किया है। इस स्थल पर प्रकृतिचित्रण भी सुन्दर रूप में है। इस ऊँचे पर्वत के ऊँचे वृक्षों के बीच चमकने वाले तारागण पुष्पों की भाँति एवं आकाश की नीलिमा पत्तों की भाँति प्रतीत होती है। पर्वत इतना ऊँचा है कि मध्याकाश तक पहुँच कर

भी चन्द्रमा नहीं दिखता, केवल कुन्द के फूल खिलने से ही उसका उदय माना जाता है—

'पुष्पौघस्ति तरौ तरौ स्फटिकता-शोभाजुषस्तारकाः
स्त्रोयन्ति च तारका-विरहिता नीला नभोऽस्मा अहो।
किञ्चौषधिश्वनः परं कुमुदिनी-रागप्रियश्चन्द्रमा
व्योम्नो मध्यगतोऽपि कुन्द-विकसितयाऽनीयते प्रत्ययम् ॥ ४६ ॥'

दुर्ग के भवनों में सदा लघु का दृश्य उपस्थित रहता है, क्योंकि रमणियाँ बिजली के समान, इन्द्रनील मणि की प्रसृत कान्ति का प्रवाह मेघ के सदृश, हाथियों की चिग्घाड़ घन-गर्जन की भाँति प्रतीत होती हैं तथा ज्योत्स्ना से पिघलने वाली चन्द्रकान्त मणियों से बूंदें टपकती रहती हैं—

'सौदामिन्यो हसितवदना यत्र कामिन्य एव
स्फीतश्रेणी घन-जलमुचामिन्द्रनीलाश्विरोघः।
गर्जा मत्त-द्विरद-पदली-चीत्कृतिर्बिन्दु-संघ-
श्चन्द्र-ज्योत्स्ना-प्रसर-विसरच्चन्द्रकान्त-प्रवाहः ॥ ४८ ॥'

वीरभद्रचम्पू, रामचन्द्रयशःप्रबन्ध एवं वीरभानूदयकाव्य का इस कवि को परिचय प्राप्त था, क्योंकि उनकी छाया इस काव्य में यत्र-तत्र झलकती है। वीरभद्रचम्पू की अनुकृति में रामचन्द्र की राजधानी को यहाँ भी अयोध्या (अ + योध्या) कहा गया है—

'अयोध्या नगरी यस्य पुरन्दरशतैरपि।
महीपाऽनुचराः सर्वे प्रतिपक्ष-विभीषणाः ॥ ३८ ॥
पवनात्मज-बल-कलिता सुग्रीवराधिता यस्य।
अङ्गद-बन्धित-शोभा सेना लङ्का भयं तनुते ॥ ३९ ॥'

रामचन्द्रयशःप्रबन्ध में जैसे दीर्घाकार प्रबन्ध हैं, उसी प्रकार एक स्थान पर कवि ने भी प्रयोग किया है—

'.... अतिविकसित-काश-कैलाश-कुन्देन्दु-शङ्खावदातो
द्वितीयां कलाबिद्वपुः प्रार्थयेदित्यसौ संशयानोऽर्द्ध-
नारीश्वरोऽभूद् ध्रुवं भाति मे ॥ ७१ ॥'

वीरभानूदय की शैली की छाया प्रशस्त्यात्मक श्लोकों में देखी जा सकती है, किन्तु प्रसाद गुण और अल्प-समासात्मकता न होने से रसनिष्पत्ति में उसकी तुलना में नहीं आती।

रामचरितमानस आदि हिन्दी के तत्कालीन काव्यों में हिन्दी के छन्दों में जैसे संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है,[१] उसी शैली की अनुकृति में प्रस्तुत

१. इन हिन्दी काव्यग्रन्थों में प्राप्त स्तुतियों में हिन्दी के साथ साथ

काव्य में दो छप्पय छन्दों के प्रयोग हैं। इनमें कोमल-कान्त-पदावली है और प्रयोग कलात्मक है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

'नव-नीरद-रुचि-हरण तरणि-तनया-तट-केतन,
मुरली-रव-माधुर्य-गोप-रमणी-हृत-चेतन ;
धृत-गोवर्द्धन-शैल जम्भरिपु-मान-विनाशन ;
चिर-निग्रह-गत-तात-हेतु-कंसासुर-नाशन ;
मगधाधिराज-सेना-दलन मधुसूदन करुणायतन।
श्री मार्वसिंह-भूपालमव दन्दशूक-कालिय-दमन ॥ ७७ ॥'

रूपणि मिश्र ने एक छन्द में प्राकृत भाषा और एकाक्षर—छन्दों के प्रयोग किये हैं—

'वरना सलपा-सहिअं वगहा कंधेन तिवकधा महिमम्।
गिरि-जल-कंवल-निवासो सो देव तुम्हाणं जय ॥ ९७ ॥'

(ब्रह्मा, रुद्र और नारायण, अपनी पत्नियों—सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के सहित वृषभ (नन्दी), गरुड़ और हंस के कन्धों पर सवार होने वाले, त्रिशूल, कमण्डलु और चक्र धारण करने वाले पर्वत (कैलास) जल (क्षीर-सागर) और कमल पर निवास करने वाले त्रिमूर्ति के रूप में परिणत वह देव तुम्हारी जय करे।)

मङ्गलाचरण को देखने से प्रतीत होता है कि रूपणि का दर्शन सम्बन्धी ज्ञान भी अच्छा था।[१]

संस्कृत के स्वच्छन्द मिश्रण मिलते हैं। देखिये—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड : वेदस्तुति —

'अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंचबिस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुरबेली अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥'

तथा—रघुराजसिंह : रामस्वयंवर : बम्बई १९८० पृ० ९९७-९८ :

'नमोऽच्युताय राघवाय रावणान्तकारिणे।
विदेहकन्यकाप्रियाय राजधर्मधारिणे ॥'

१. बघेल० श्लोक २ : साङ्ख्य मत :

'स्वात्मानं प्रकटीकरोति विधिना तत्त्वस्य वेत्तुः पुरो
यत्राविष्कुरुते निजाम्न विषमान् दोषान् यतः शङ्किता।
ब्रह्माण्डं समवायि-कारणतया व्याप्नोति या सर्वतः,
तां मूलप्रकृतिं प्रपञ्चमयतो मुक्त्यै सदोपास्महे ॥'

४. पत्र-काव्य : रामपरत्वम्

(क) कवि-परिचय—

'रामपरत्वम्' ग्रन्थ का परिचय देने से पूर्व हम ग्रन्थकार विश्वनाथसिंह के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी प्रस्तुत करना चाहते हैं। विश्वनाथसिंह की साहित्यिक कृतियों के सम्बन्ध में पीछे कहा जा चुका है।[1] उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें निम्नलिखित हैं—

पीछे भावसिंह के प्रकरण में उनके दत्तक पुत्र अनिरुद्धसिंह का उल्लेख किया गया है।[2] अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूत सिंह (१६९५–१७५५), उनके पुत्र अजीत सिंह (१७५५–१८०८), उनके पुत्र जयसिंह (१७६४–१८३४) और उनके पुत्र विश्वनाथसिंह थे। इनका जन्म वैशाख शुक्ल १४, सं० १८४६ (१७८९ ई०) में हुआ था। युवराज की अवस्था ही में १८१३ ई० में पिता जयसिंहदेव ने इन्हें राज्यकार्य सौंप दिया था। १८१४ ई० में अंग्रेजों के साथ हुई सन्धि पर जयसिंह के साथ-साथ विश्वनाथसिंह के भी हस्ताक्षर हुए थे। इस सन्धिपत्र में विश्वनाथसिंह को रीवा शासन से सम्बद्ध बतलाया गया है।[3] युवराज के रूप में विश्वनाथसिंह ने २० वर्षों तक राज्य-कार्य किया। अत्यन्त सफल शासक थे। मोंदूलाल पाण्डे उनके दीवान थे। उनकी ५ महारानियाँ, १ पुत्र रघुराजसिंह और तीन कन्यायें थीं। इनकी एक कन्या विष्णुकुँवरि विदुषी थीं।[4]

विश्वनाथ सिंह का राज्यारम्भ १८३४ ई० में हुआ और मृत्यु कार्तिक कृष्णा सप्तमी, सं० १९११ (१८५४ ई०) को हुई। जीवन के अन्त के लगभग ३५ वर्षों तक वे संस्कृत और हिन्दी में निरन्तर सर्जना करते रहे। इनकी सभा दार्शनिकों, कवियों और राजनीतिज्ञों से भरी रहती थी। ये स्वयं

---

१. अध्याय २ (ग)।

२. अध्याय ४ (३—च)।

३. ऐचिसन—सी० यू० : रीवा अंडर दि क्राउन : ट्रीटीज़ ऐण्ड सनद्स विद ब्रिटिश गवर्नमेंट : जिल्द ५ : दिल्ली : १९३३; चतुर्थ सन्धि : धारा ७ : पृ० २५७ तथा आगे।

४. संस्कृत वर्ग० : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी।

कितने ही काव्यकारों एवं विचारकों के प्रेरणा-स्रोत थे। ये अपने काल में उत्तर भारत में अत्यन्त विख्यात विद्वानों में से एक थे। चित्रकूट, काशी, मिथिला, अयोध्या, वृन्दावन, प्रयाग और काञ्ची जैसे विद्याकेन्द्रों के विद्वान् इनसे मिलने और शास्त्रार्थ करने आया करते थे। स्वयं भी अनेक स्थानों की यात्रा इन्होंने विद्वानों से वार्ता करने के लिए ही की थी।[१]

पाण्डुलिपि

सरस्वती कोष-भाण्डार, किला रीवा में 'रामपरत्वम्' नाम से ११ पत्रा का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल आषाढ़ शुक्ल ११ सं० १८१७ (१८४० ई०) दिया हुआ है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है।

भाण्डार के रजिस्टर में विश्वनाथ सिंह की संस्कृत रचनाओं में 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख है। यह दूसरी पाण्डुलिपि के रूप में (बस्ता ११६ स्टाक १६) सुरक्षित है। इसमें १५ पत्रा हैं और ग्रन्थ सम्पूर्ण है। इसका लिपिकाल 'कुंवार बदि १ संवत् १९१०' (सन् १८-५३) दिया हुआ है, किन्तु आगे फिर 'मिति पौष वदि १४ का लिखा श्री तिवारी हरीराम' लिखा है। सम्भवतः किसी लिपिक की कुंवार (आश्विन) में पूरी की गई प्रति की दूसरी प्रतिलिपि हरीराम तिवारी ने पौष (१८५४ ई०) में पूरी की। इस ग्रंथ में सब कुछ वही है, जो उपर्युक्त रामपरत्वम् में है। अर्थात् 'रामपरत्वम्' की ही ये दो अखण्ड प्रतियां हैं। इसका नाम 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' पड़ने का कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः इस नाम से अनन्ताचार्य स्वामी ने कोई ग्रंथ लिखा था, जिसका यह प्रतिवाद है। ग्रन्थ का ५ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः।
श्रीविश्वनाथ-विहिता मतयः सन्तु सन्ततः॥'

स्वामी अनन्ताचार्य ने १५ दिन पूर्व ही विश्वनाथसिंह को कोई खर्रा (विवेचनात्मक पत्र) भेजा था, जिसका उत्तर विश्वनाथसिंह ने भेजा। स्वामी जी का पत्र १ वर्ष पूर्व विश्वनाथसिंह द्वारा भेजे हुए अन्य पत्र का उत्तर था।

१. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रकाशित बम्बई : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा युगलदास-कृत विश्वनाथसिंह-चरित्र (रचनाकाल सं० १९११) : सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा। साथ ही देखिये सं० शा० दे० : पृष्ठ १३०-२२५।

सम्भवतः स्वामी अनन्ताचार्य चित्रकूट में इन दिनों स्थायी रूप से निवास कर रहे थे।[1]

स्वामी जी के सम्बन्ध में हमें अधिक ज्ञात नहीं है, किन्तु उनके साथ हुए विश्वनाथ सिंह के एक शास्त्रार्थ का, जो प्रस्तुत ग्रन्थ से सम्बद्ध विषय पर ही हुआ प्रतीत होता है, विश्वनाथसिंह के सायकलमयुगलदास 'युगलेश' ने उल्लेख किया है।[2]

रामपरत्वम् ग्रन्थ में प्रारम्भ में १६ श्लोक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ८ श्लोक आचार्य जी की प्रशस्ति के रूप में हैं। इन्हीं ■ श्लोकों पर काव्यात्मक

१. रामपरत्वम्-श्लोक-९-१६ :

'श्रीमतो पत्रमायातं चित्रोदन्तेन सम्मतम्।
··· परामृशा दृष्ट्वेदं परमाद्भुतम्॥
मनोमयद्रलं चारस्वदीयं तन्मदन्तिकम्।
मदलेति महाचार्यः स्वपत्रे मां प्रति स्फुटम्॥
आषाढ-कृष्णैकादश्यां चित्रकूट-तटे विभो।
निश्चितस्तद्युतोदन्तः········· ॥'
'औदासीन्येन गमने ज्ञायते नेव कारणम्।
इति त्वदीय दलतः शङ्का विज्ञात-पूर्विका॥
आगम्यत इति प्रोक्तं कुतो हेतोश्च नाऽऽगतम्।
आगम्यते कदा चेति पत्रीं तां गतवार्षिकीम्॥
त्वयैव प्रेषितां राजन् नूनं विस्मृतवानसि।
समागमे प्राथमिके क्व गच्छति भवानिति॥
पृष्टत्वाद् भवता प्रीत्या नापणादेरभावतः।
अवस्थितेः स्थलादीनामप्रदर्शन-कारणात्॥
मदीयाशीर्वचः श्रुत्वा वैष्णवान्नानुमोदनात्।
उद्दिश्य सदनस्यैवमनाकारण-कारणात्॥'
'अत्र प्रयुक्तरं किञ्चिद् विज्ञान् विज्ञापयामि वः॥'

२. विश्वनाथ-प्रकाश (या विश्वनाथसिंह-चरित्र) : स० को० मा० रीवा :

'आचारिन में श्रेष्ठ जो प्रथित अनन्ताचारि।
शास्त्रार्थ करि जीति लिय तिनसों मध्वमंसारि॥
थैं सर्रा जो लिख्यो तेहि खण्डन कीन्हों वंस।
ग्रन्थ विदित सो विबुध सब जानत कह जुगुलेस॥'

दृष्टि से यहाँ पर विचार किया जायगा। अन्तिम ८ श्लोक (जो पीछे टिप्पणी में दिये जा चुके हैं) दोनों ओर के पत्र-व्यवहार की एवं वार्ता की चर्चा करते हैं। १६ वें श्लोक के पश्चात् विश्वनाथसिंह दार्शनिक भूमिका पर उतर कर राम के सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करते हैं। यह विवेचन गद्य में है, किन्तु प्रमाण और उद्धरण यथास्थान गद्य एवं पद्य दोनों में हैं। विवेचन भाष्य-शैली में है।[1] वास्तव में यह दार्शनिक विवेचन ही, जो पत्र के रूप में लिखा गया, 'रामपरत्वम्' ग्रन्थ के रूप में बन गया तथा प्रारम्भिक श्लोकों को भूमिका-मात्र मानना चाहिए। यहाँ इतना और कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि युगलेश ने शास्त्रार्थ में सभा के बीच विश्वनाथसिंह की अनन्ताचार्य के ऊपर विजय का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है, किन्तु विश्वनाथसिंह और स्वामी जी दोनों के ही पत्र अत्यन्त शिष्टतापूर्ण और परस्पर प्रशंसात्मक हैं। विश्वनाथ-सिंह की भाषा में स्वामी जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता के प्रति भावपूर्ण प्रणति है, उसमें विजय-गर्व की गन्ध कहीं नहीं है।

(ख) ग्रन्थ में प्राप्त काव्य-सौन्दर्य

प्रशस्ति के रूप में प्रारम्भ में प्राप्त ८ श्लोकों में से प्रथम ३ काव्यात्मक विशेषण हैं। इनमें एक ओर स्वामी जी की अगाध महिमा का दिग्दर्शन है, दूसरी ओर विश्वनाथसिंह की पाण्डित्यपूर्ण प्रौढ पदयोजना है। अनुप्रासों का गुम्फन दीर्घ समासों के साथ हुआ है। पहला उदाहरण कुलक का है—

'स्वस्ति श्रीशाङ्कवेदाऽप्रतिम-सरसिजोल्लासना-भास्करेषु,
प्रस्फूर्जद्दर्शनाली-गहनतर-वनी-वार-पञ्चाननेषु।
नम्रद्-वन्दार-भूमीपति-मुकुट-मिलन्मुग्ध-माणिक्यमाला-
(भा)भादित्यांशु-जाल-व्यतिकर-विकसन्मञ्जु-पादाम्बुजेषु ॥ १ ॥
भ्राजद्-वैकुण्ठ-कुण्ठीकरण-करगणोद्भासि-साकेत-केतु-
श्रीराजद्-रामचन्द्रातुलपद-युगलाम्भोज-पुष्पन्धयेषु।
श्रीमन्नारायणेन्दूद्भव-विमल-लसच्चन्द्रिका-पान-लोला-
(''') चेतश्चकोरेष्वनुपम-कविता-सार-पायोधरेषु ॥ २ ॥
दृप्यद्-वादि-द्विपेन्द्रोदित-करट-तटी-कूट-कुट्टाक-कोटि-
स्फूर्जद्···(?)···वचन-नखर्योर्ण····कण्ठीरवेषु।
माहात्म्याम्भोधि-पूर्णोदित-विशद-यशश्चन्द्र-विद्योत्तराजी-
विभ्राजल्लक्ष-वर्णप्रकर-कुवलयोल्लास-लोकम्पृणेषु ॥ ३ ॥

---

१. ग्रन्थ के अन्त में—'तस्मान्निखिल-प्रमाणां प्रभुः श्रीरामचन्द्र एवास्तीति सिद्धान्तः।'

येषां व्याख्यायते व्याख्या प्रतिवादि-भयङ्करा ।
तेषु श्रीमदनन्तार्य-पादाम्भोजेषु मञ्जुषु ॥ ४ ॥
मुक्ति-मुदित-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः ।
श्रीविश्वनाथ-विहिता नतयः सन्तु सन्ततः ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् प्रसादात्मक शैली में तीन श्लोकों में स्वामी जी की अत्यन्त भावपूर्ण प्रशस्ति है। इन श्लोकों में भक्ति का तीव्र प्रवाह है। इनमें प्राप्त भावोद्रेक इन्हें स्तुतिगीत बनाने में पूर्णतः सक्षम है। इनमें प्राप्त कवि के उत्तरङ्ग हृदय का उद्वेलन रसिक प्राणी का अभिषेक कर सकता है—

यौष्माकीणानुकम्पातः सम्पातः सर्वपाप्मनाम् ।
कल्याणानि प्रमाणानि संस्फुरन्ति निरन्तरम् ॥ ६ ॥
तमांसि ध्वंसन्ते परिणमति भूयानुपशमः,
सकृत् संवादेऽपि प्रथत इह चामुत्र च शुभम् ।
भय प्रयासङ्गः कमपि महिमानं वितरति
प्रपन्नानां वाचः फलमपरिमेयं प्रसुवते ॥ ७ ॥
व्यतिकरित-दिगन्ताः शोममानैर्यशोभिः
सुकृत-विलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अतुलित-महिमानः केतनं मङ्गलानां
कथमपि भुवनेऽस्मिंस्त्वादृशाः सम्भवन्ति ॥ ८ ॥

दर्शन

विश्वनाथसिंह श्री राम के अनन्य उपासक थे। अनेक ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने श्रीराम के परात्पर रूप की प्रतिष्ठापना की है। यही बात राम-परत्वम् में भी है। आप सखी-उपासना मानते थे। आपके मत के अनुसार श्रीराम नित्य रासबिहारी हैं। रासमण्डल में प्रवेश ही मुक्ति है। सखी रूप की प्राप्ति से ही रासमण्डल में प्रवेश सम्भव है। श्रीराम ही श्रीकृष्ण रूप से वृन्दावन में, नारायण रूप से वैकुण्ठ में एवं राम रूप से ही चित्रकूट, मिथिला और साकेत में शाश्वत विहार करते हैं।

श्रीकृष्ण के नखों की किरण से पूर्ण ब्रह्म का उद्भव होता है। श्रीकृष्ण के अंशांश ही महाविष्णु आदि अनेक देव हैं। श्रीकृष्ण से ऊपर केवल श्रीरामचन्द्र की सत्ता है। कृष्ण श्रीराम के श्रृङ्गार रूप हैं। इस प्रकार समस्त प्रभुओं के प्रभु श्रीरामचन्द्र ही हैं।[1]

---

१. रामपरत्वम् : स० को० भा० :
'श्रीकृष्णस्य नखेन्दु-किरण-श्रेणी पूर्णब्रह्मणः एकं मुख्यं कारणमि-

पत्र के रूप में प्राप्त यह गीति-शैली संस्कृत-साहित्य में एक दुर्लभ प्रयोग है। १९ वीं शती के मध्य भाग में प्राप्त होने से इस प्रयोग का मूल्य और बढ़ जाता है। यह निदर्शन इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि कम से कम १९ वीं शती में संस्कृत का परस्पर भावाभिव्यक्ति के रूप में उपयोग किया जाता था; साथ ही उस समय संस्कृत न केवल सप्रमाण एवं सशक्त भाषा थी, अपितु वह विकासशीला थी। जो लोग बारहवीं शती को संस्कृत सर्जन की अन्तिम शती मान बैठे हैं, उनके चक्षुरुन्मीलन के लिए अकेले राम-परत्वम् पर्याप्त है।

❁

त्वयनेन पूर्णब्रह्मणः श्रेष्ठत्वं श्रीकृष्णस्य। श्रीकृष्णांशांशा एव महाविष्णु-प्रमुखास्तथा च सर्वप्रभोः श्रीकृष्णस्यापि प्रभुः श्रीरामचन्द्र इति। सुदर्शनसंहितायामपि-

'कृष्णः शृङ्गाररूपश्च वृन्दावन-विभूषणः।
एते चांशकलाः पुंसो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥'

विश्वनाथसिंह के दर्शन-ग्रन्थों और मतों की विस्तृत चर्चा के लिए देखिये—सं० वा० दे० पृष्ठ १८१–२१२। अपने मत की सविस्तार चर्चा विश्वनाथसिंह ने ब्रह्मसूत्र के राघावल्लभीय-मत-प्रकाशक-भाष्य (स० को० भा०, रीवा) में की है।

५. स्तुति-काव्य

(क) कवि रघुराजसिंह का परिचय

बघेलखण्ड में ६ स्तुति-काव्य प्राप्त हैं और छहों रघुराजसिंह द्वारा रचित हैं तथा संस्कृत कृतियों के रूप में रघुराजसिंह द्वारा संस्कृत में रचित केवल यही ६ ग्रंथ उपलब्ध हैं।[१] ये हैं—१. सुधर्मविलास, २. जगदीशशतक, ३. शम्भुशतक, ४. नर्मदाष्टक, ५. लोकनाथाष्टक एवं ६. रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली।

रघुराजसिंह ने रस-सिद्धान्तों पर संस्कृत में राजरञ्जन ग्रन्थ लिखा अवश्य है,[२] किन्तु यह ग्रन्थ लुप्त है। इसके प्राप्त होने पर रघुराजसिंह की काव्य-प्रतिभा पर यथार्थ प्रकाश पड़ेगा। आज हम विवशतापूर्वक इतना ही कह सकते हैं कि स्तुति के अतिरिक्त काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी रघुराजसिंह ने प्रवेश किया था।

रघुराजसिंह ने पितामह जयसिंहदेव और पिता विश्वनाथसिंह की गौरव-मयी काव्य-सर्जन-परम्परा को एक ओर अक्षुण्ण रखा, दूसरी ओर उसमें नई धाराओं को जन्म दिया।

१८२३ ई० रानी सुभद्राकुँवरि के गर्भ से रघुराजसिंह का जन्म हुआ था। पिता विश्वनाथसिंह इन्हें 'भागवतप्रसाद' कहा करते थे।[३] इन्हें लक्ष्मणबाग रीवा में ब्रह्मशिला से आए हुए स्वामी मुकुन्दाचार्य ने नारायण मन्त्र दिया था। कलकत्ता के नवकृष्ण चौधुरी ने अंग्रेजी की शिक्षा दी। उन्होंने जगदीश-पुरी, काशी और मथुरा में (तीन बार) अपनी तौल भर स्वर्णदान किया था। उन्होंने विश्वनाथसिंह के विरुद्ध विद्रोह भी किया था किन्तु पिता की

---

१. रघुराजसिंह के साहित्यिक परिचय के लिए देखिये पीछे—अध्याय २ (ग)।

२. रामस्वयंवर : बम्बई : १९८० वि० : पृष्ठ ४ :
'रच्यों राजरंजन बहुरि, सब रस मतन प्रकाश।'
तथा पृष्ठ ९७२ : 'रुचिर राजरंजन सुरबानी।'

३. देखिये जगदीशशतक, श्लोक ९८ :
'लक्ष्मीरितो मतिवरो प्रचकार्यन्नाम यद् भागवतप्रसादम्।'

बुद्धिमत्ता से सद्दर्प बन गया। इनके प्रसिद्ध दीवान का नाम दीनबन्धु पांडे था।[१]

१८४२ ई० में रघुराजसिंह को युवराजपद मिला। १८५४ ई० में वे पूर्णाधिकारी हुए और कुछ वर्षों तक तीर्थयात्राएं कीं। सोहागपुर और अमरकंटक के क्षेत्र कभी मराठों द्वारा छीने जा चुके थे। १८५७ ई० में जब अंग्रेजी सत्ता के प्रति देश में क्रान्ति की लहर उठी तब रघुराजसिंह ने २,००० सैनिक अंग्रेजों की सहायता के लिए दिये। इन्होंने मेहर और विजयराघौगढ़ को भी जीता। क्रान्ति समाप्त होने पर अंग्रेजों ने सोहागपुर और अमरकंटक रघुराजसिंह को पुरस्कार-स्वरूप दे दिये।[२] १८६२ ई० में इन्हें अंग्रेजों से गोद लेने की सनद मिली।[३]

रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् थे तथा अंग्रेजी भी जानते थे। आप फारसी में भी कुशल थे। विश्वनाथसिंह के रामरहस्यत्रय की प्रकाशिनी टीका लिखने वाले रामानुजदास ने इन्हें विद्यागुरु के रूप में रामायण और भागवत पढ़ाई थी। रामानुजदास आगे चल कर अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त हुए थे।[४] अपने रामस्वयंवर ग्रन्थ के अन्त में रघुराजसिंह ने अपनी संस्कृत-रचनाओं के सहायकों के रूप में पं० गोकुलप्रसाद, सुदर्शनदास शास्त्री, रामचन्द्र शास्त्री और काशी के पं० विश्वनाथ के नामों का उल्लेख किया है।[५]

---

१. युगलदास कृत विश्वनाथसिंह-चरित्र : स० को० भा०। तथा 'संस्कृत वर्क्स०' जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी।

२. ग्लोरी आफ बान्धो : रीवा : १९४८ : पृष्ठ ९।

३. ऐचिसन : रीवा अंडर दि क्राउन : ट्रीटीज एण्ड सनद्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट : जिल्द ५ : दिल्ली १९३३ । पंचम सन्धि—१८६२ रघुराजसिंह को 'नाइट ग्रैंड कमाण्डर आफ दि मोस्ट एग्जाल्टेड आर्डर आफ द स्टार आफ इण्डिया' की उपाधि प्राप्त थी।

४. युगलदास : 'विश्वनाथसिंह चरित्र' तथा रामरहस्यत्रयम् : टीकारम्भ—श्लोक २।

'श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथामति ।
श्रीविश्वनाथराजेन्द्राज्ञप्तो व्याकुरुते मुदा ॥'

५. प्रकाशित पृष्ठ : ९७० :

विद्यागुरु रामानुजदासा । जन्म अवधपुर सदा निवासा ॥
श्री भागवत और रामायण । वेद वेदांत शास्त्र पारायण ॥
बालकाल से मोहिं पढ़ायो । तिनसम द्वितिय न दृग तर आयो ॥

रघुराजसिंह ने भागवत की जो ब्रजभाषा-टीका लिखी है, उसका संशोधन विश्वनाथसिंह करते थे।[१] इससे प्रकट होता है कि पिता ने ही रघुराजसिंह को काव्य-सर्जन की ओर प्रवृत्त या प्रेरित किया। संवत् १८९८ (१८४१ ई०) में विश्वनाथसिंह ने रघुराजसिंह के शिक्षण के लिए रीवा से १ मील पर लक्ष्मणबाग आश्रम की प्रतिष्ठापना कर वहाँ उन्हें दीक्षित कराया। इनके अतिरिक्त लक्ष्मण-किला अयोध्या के महन्त युगलानन्यशरण का भी रघुराजसिंह पर प्रभाव पड़ा।

रघुराजसिंह के अनेक विवाहों में से एक उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहन सौभाग्यकुँवरि के साथ हुआ था। इनके अनेक पुत्रों में से अन्तिम वेंकटरमण सिंह थे, जो महाराज की मृत्यु (१८८० ई०) के समय केवल ४ वर्ष के थे। रघुराजसिंह विशालकाय थे। इनकी भारी तलवारें और बन्दूकें धुबेला संग्रहालय (जिला छतरपुर) में सुरक्षित हैं। रघुराजसिंह श्रीकृष्ण के उपासक थे। वेंकटरमण सिंह ने उनके अनेक हिन्दी और संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित कराए थे।[२] हिन्दी के भक्ति और शृङ्गार के कवि के रूप में रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी गणना की है।[३] मुकुलेश ने विश्वनाथसिंह-चरित्र में ठीक ही लिखा है—

'यश प्रताप मंदिर कर्‌यो विश्वनाथ महराज।
तापर कलशा ताहि को धर्‌यो भूप रघुराज॥'

(ख) स्तुति-काव्यों का विवरण :

१. सुधर्माविलास :

इस ग्रन्थ की प्रकाशित प्रतियाँ सरस्वती कोष-भाण्डार रीवा में प्राप्त हैं।

कान्यकुब्ज गोकुल परसादा। अति उदण्ड व्याकरण विवादा॥
शास्त्री मुर्मति सुदर्शन दासा। उत्तम न्याय वेदान्त विलासा॥
काशीवासी विप्रवर विश्वनाथ जिहि नाम।
काव्य व्याकरण न्याय महँ लोकवेद मति धाम॥
रामचन्द्र शास्त्री मतिमाना। सब नैयायिक माँह प्रधाना॥

१. देखिये एकादश स्कन्ध की टीका : स० को० भा०, रीवा : बस्ता ८०।१२ : पुष्पिका।

२. सं० बा० दे० : पृष्ठ २२६-२७।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास–काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८ वि० पृष्ठ ५५४।

एक प्रति रामवन (सतना) में भी है।[१] ये सभी लियो-मुद्रण की प्रतियाँ हैं। अन्त में 'मार्ग सुदि ८ का संवत् १९२४ के सद्र राज रीवा' छपा है। इससे प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन रीवा से १८६७ ई० में किया गया होगा। यह भी सम्भव है कि यह इस वर्ष की पाण्डुलिपि हो, जो पीछे प्रकाश में आई हो। ग्रन्थ की रचना स्पष्टतः बान्धवगढ़ में रघुराजसिंह द्वारा अगहन शुक्ल ४, संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में की गई—

'गुण-ग्रह-खण्डेन्दु-वर्षस्य राधेऽवलशाग्यपक्षे चतुर्थ्यां कृतोऽयम्।
सुधर्माविलासः स्थितो बान्धवाद्रौ महाभूभुजा विश्वनाथात्मजेन ॥'

इस ८८ पृष्ठों में प्रकाशित ग्रन्थ में १७ उल्लास और ८५० श्लोक हैं। प्रथम उल्लास में ९७ श्लोकों में भगवान् कृष्ण की वैकुण्ठ के अन्तर्गत अवस्थित द्वारका नगरी और सुधर्मा नामक सभा का विवरण है।[२] द्वारका में समस्त यदुवंशी, अप्सरायें, गन्धर्व, सूत, वन्दीजन आदि भी निवास करते हैं।

द्वितीय उल्लास में ९१ श्लोकों में भूमि से वैकुण्ठ पहुँचाने के लिए मार्ग-

---

१. रामवन में प्राप्त सुधर्माविलास की इस प्रति में अन्त में इस प्रकार उल्लेख है—

'संवत् १९२२ के कातिक वदि ३० गुरौ (गुरुवार) का लिखा लाला व्याकरण श्री गोविन्दगढ़ वंते।' अर्थात् व्याकरण लाला ने गोविन्दगढ़ में १८६५ ई० में यह पाण्डुलिपि तैयार की। गोविन्दगढ़ रीवा से सीधी रोड पर १२ मील पूर्व एक कस्बा है। इसे रघुराजसिंह ने राज्य के दूसरे वर्ष १८५५ ई० में बसाया था। उनके द्वारा बनवाए हुए राजभवन और विश्वनाथ-सागर नामक विशाल तालाब दर्शनीय हैं। रामवन के सुधर्माविलास तथा लोकनाथाष्टक आदि कई ग्रन्थ श्री राममित्र चतुर्वेदी वर्तमान आचार्य, ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय रीवा (म० प्र०) द्वारा प्राप्त हुए हैं।

बड़ोदा में भी सुधर्माविलास की एक प्रति उपलब्ध है (देखिये— राघवन नैम्बियार : ऐन अल्फाबेटिकल लिस्ट आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियेण्टल इंस्टीट्यूट आफ बड़ोदा : भाग २ : १९५० : पृष्ठ १०५२ : ग्रन्थ क्रमाङ्क ८५३। १३०४०)।

२. 'द्वारका सा सुधर्मा च वैकुण्ठे तिष्ठते सदा।'
तथा—सुधर्मायां विराजन्तं यदुभिः परिवारितम्।
हेमसिंहासनासीनं बलभद्र-समन्वितम् ॥'

निर्देश है।[1] एकाग्र-चिन्तन आदि साधनाओं द्वारा शक्ति प्राप्त कर साधक उत्क्रमण कर सकता है। मार्ग में मेघमण्डल, रविमण्डल, अल्प-भूमण्डल, विपुल भानुमण्डल, चन्द्रमण्डल, भुवर्लोक, स्वर्ग, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्य-लोक, ध्रुवलोक, लोकालोक, महान्धकार, पञ्चभूत-मण्डल, सौवर्णी धरणी, समुद्र, सुधा-सरोवर तक पहुँचने पर दिव्य रूप की प्राप्ति होगी। फिर वैकुण्ठ के अन्तर्गत भूमा नारायण का वैकुण्ठ, रमा-वैकुण्ठ श्रीमन्नारायण का वैकुण्ठ और विरजा नदी से हो कर कृष्ण के वैकुण्ठ तक पहुँचा जा सकता है। मार्ग में पड़ने वाले उपर्युक्त स्थानों के लक्षण-रूप भी बतलाए गए हैं।

तृतीय उल्लास में वैकुण्ठ के प्रथम आवरण और भक्तों के वर्णन ८५ श्लोकों में है। ये भक्त सालोक्य-मुक्त, सारूप्य-मुक्त, सामीप्य-मुक्त, शरणागत, कैङ्कर्यकारी आदि कोटियों के हैं।

चतुर्थ उल्लास में साकेत और गोलोक पर १०१ श्लोक हैं। पाँचवें उल्लास में २७ श्लोकों में वैकुण्ठ का चतुर्व्यूह और छठें उल्लास में ४६ श्लोकों में विशेष सभा वर्णित है। यहाँ तक लगभग आधा ग्रन्थ विवरणात्मक स्वरूप में है और वह सम्प्रदाय विशेष की धारणाओं का पद्यबद्ध निदर्शन-मात्र है।

सातवें उल्लास में भक्त द्वारा भगवान् की प्रणति ४९ श्लोकों में वर्णित है। आठवें में दशावतार-स्तुति के रूप में १२ पद हैं। इन पर गीत-गोविन्द की छाया है यहाँ से कवि की भावधारा नया मोड़ लेती है और आगे भी कवि गीत-गोविन्द की ही अनुकृति में स्तुति-गीत प्रस्तुत करता है। नौवें उल्लास में रामावतार (रामायण) परक ११ पद हैं। दशम उल्लास श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित १०८ पदों में कृष्ण-स्तुति है। ग्यारहवें उल्लास में कृष्ण और राम दोनों पर २८ श्लोक हैं। भगवान के दयालुत्व आदि गुणों का गान बारहवें उल्लास में ८५ श्लोकों में है। १३ वें उल्लास में बलभद्र-स्तुति ८५ श्लोकों में प्रस्तुत की गई है। चौदहवें उल्लास में २३ श्लोकों में प्रद्युम्न और पन्द्रहवें उल्लास में १७ श्लोकों में अनिरुद्ध की स्तुतियाँ हैं। गुरु मुकुन्दा-चार्य की वन्दना सोलहवें उल्लास में ९ श्लोकों में है। अन्तिम सत्रहवें उल्लास में साधक के वैकुण्ठ से निवर्तन (लौटने) का वर्णन है।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सम्प्रदाय के पोषण और प्रचार को दृष्टि में रख कर लिखा गया है। यह मूलतः दर्शन-ग्रन्थ है। गीत-गोविन्द की अनुकृति में जो स्तुतियाँ और पद लिखे गए हैं, उनमें मौलिकता

---

१. 'यदिच्छेद् गमनं तस्यां यदीच्छेद् हरिदर्शनम्।
तदैतादृश-मार्गेण कर्तव्या भावना सदा॥'

का अभाव है। अनुकृति के कारण स्वाभाविक भावोद्रेक नहीं लक्षित होता। तथापि इन स्तुतियों और पदों को काव्यात्मक स्वरूप देने का प्रयत्न है, जिसके कारण ग्रन्थ काव्य की परिधि में प्रविष्ट हो जाता है।

२—जगदीशशतकम्

लिथो-मुद्रण के रूप में ही प्राप्त दूसरा ग्रन्थ जगदीशशतकम् है, जिसके अन्त में इस प्रकार की पंक्तियाँ हैं—

'रामेन्दुखण्ड-विधुभिर्मितेऽब्दे पौषे उत्तमे।
शनावमायां शतकं जगदीशस्य निर्मितम् ॥ ११० ॥

'इति सिद्धिश्री—बान्धवेश—महाराजाधिराज—श्रीमहाराजा—श्रीराजाबहादुर—श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारि—श्रीरघुराजसिंहजूदेव—विरचितं जगदीशशतकं समाप्तम् ॥'

अर्थात् यह ग्रन्थ पौष अमावास्या, शनिवार, संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को पूर्ण हुआ। रघुराजसिंह के ग्रन्थों में केवल इसी पर टीका हुई है। इसके टीकाकार रङ्गाचार्य वाधूल थे।[१] इस ग्रन्थ का प्रथम लिथो मुद्रण संवत् १९२२

---

१. टीका के अन्त का श्लोक—

'श्रीबान्धवेश-रघुराज-विनिर्मितस्य;
नीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्थपूर्तेः।
वाधूल-सत्कुलभवो विरचय्य रङ्गाचार्यो
जगत्पति-पदेऽर्पयति स्म टीकाम् ॥'

टीका के आरम्भ के मङ्गलाचरण के चार श्लोक रंङ्गाचार्य का सुन्दर कवि रूप प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ—

'नव-जलधर-गात्रं नीरजस्पर्धिनेत्रं,
स्मित-विकसितवक्त्रं सिन्धुकन्या-कलत्रम्।
दामित्र-नमदमित्रं शेषशय्यातपत्रं,
परमतम-पवित्रं पातु मां पार्थमित्रम् ॥
यस्याः श्रीरघुराजसिंह-नृपतिः प्रज्ञावदग्रेसरो
भाषा संस्कृत-भव्य-काव्य-रचना-चातुर्य-धुर्यः कविः।
श्रीमन्नीलगिरिप्रभुर्हि विषयो निस्सीम-भूमाशयो,
गम्भीरो विवरीतुमीदृशकृतिं को वा कृती शक्नुयात्।

अपने ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में रघुराज सिंह ने लिखा है कि रङ्गाचार्य दक्षिण के यादवगिरि के वासी अनन्ताचार्य के पौत्र और नृसिंहाचार्य के पुत्र थे। ये न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि

(१८६५ ई०) में[१] और द्वितीय मुद्रण सं० १९३१ (१८७४ ई०) में रीवा में ही हुआ। टीका के साथ ग्रन्थ ४९ पृष्ठों का है। शतक में १९८ श्लोक हैं। फलस्तुति मिलाकर कुल ११० श्लोक हैं।[२]

अनुश्रुति यह है कि रघुराजसिंह संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में रीवा से जगन्नाथ स्वामी (पुरी-उड़ीसा) के दर्शनार्थ गये थे, किन्तु वहाँ पट बन्द हो गए। तब इन्होंने जगदीश की स्तुति में एक शतक हिन्दी और दूसरा संस्कृत में रचा। तत्पश्चात् पट खुल गये।

उक्त पट बन्द होने की अनुश्रुति में जो कुछ सत्य हो, किन्तु रङ्गाचार्य के लेख के अनुसार रघुराजसिंह जगदीश-दर्शन के लिए जाते समय बहुत ही भाव-विभोर थे और मार्ग ही में उन्होंने दिदृक्षा-प्रेरित होकर ये श्लोक लिखे[३]।

शास्त्रों के मर्मज्ञ थे तथा दण्डावदार परकाल यति के शिष्य थे। ये रीवा आकर आनन्दाम्बुनिधि की रचना (सं० १९०७-११-सन् १८-५०-५४) में सहायक हुए थे। इस प्रकार कम से कम १८५० से १८६० ई० तक ये रीवा में अवश्य रहे। टीका की तिथि का निर्देश नहीं किया गया। युगलधाम के अनुसार इन्हीं रङ्गाचार्य ने सं० १९११ (१८५४ ई०) में रघुराज सिंह का तिलक किया।

१. मूलमात्र, पृ० १८ : सं० कौ० मा० बस्ता २२।१४१ : बनारस लाइट छापाखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित की।

२. देखिये टीका के अन्त में बघेली हिन्दी में उल्लेख :

'इति स्वस्ति श्री सामराज (साम्राज्य) श्री महाराजा श्री कृष्णचन्द्र कृपापात्राधिकार (रि)—श्रीमन्नृपति-श्रीराजसिंहजू देव बहादुर-जी० सी० येस० आई० कृत जगदीश (श) त (श) तक-सतिलक। विद्यालय छापाखाना में छपा। मुकाम रीवा। लिखा कृपानाथ प्रधान। शोधा वंश गोपाल कवि। छापा बदलू कारीगर। दुती असाढ सुदि १२ सनी का संवत् १९३१। समाप्तम्॥ शुभमस्तु॥'

३. टीकारम्भे—'अथ खलु श्रीमन्महाराजाधिराज......श्रीरघुराजसिंह नामा ......श्रीमन्नीलाचलाधिराज-सन्दिदृक्षया प्रस्थितो मध्येपथं तद्दर्शन-विलम्बमसहमानः कदा कदा द्रक्ष्यामीति तद्दर्शनौत्सुक्यातिरेकाविष्टमना-स्तमेवानवरतमनुसन्दधानो............कानपि तमेव तोष्टूयमानस्तदनु-ध्यानजनित-प्रेम-परीवाहरूपा......श्रीमज्जगन्नाथशतकाख्यां स्तुतिमरी-रचत्।'

हिन्दी के शतक की भी रचना-तिथि यही है। वह पुरी पहुँचते-पहुँचते हिन्दी भाषाप्रेमियों के निमित्त लिखा गया।[1]

धार्मिक गीतियों के क्षेत्र में जगदीशशतक का स्थान ऊँचा रहेगा। इसमें देवता-परक-भक्ति या उद्रेक तीव्र है। इसमें भक्त के अन्तःकरण की ऐसी तड़प है, जो भक्ति रस को एक स्वतन्त्र रस बना देती है, जो पाठक को भाव-विह्वल बनाए बिना नहीं छोड़ती। तुलना के लिए कह सकते हैं कि मीरा के 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' में जो पीड़ा है, उसी पीड़ा की झलक रघुराजसिंह के इन श्लोकों में प्राप्त है। इनमें से अनेक प्रारम्भिक श्लोक दर्शन-सिद्धान्तों से पूरित भी हैं, जिनकी यथार्थ एवं विवेचनात्मक टीका विद्वान् रङ्गाचार्य ने की है। भावपूर्ण शब्द-योजना पर जैसा अधिकार रघुराजसिंह ने प्रदर्शित किया है, रङ्गाचार्य की भाष्यात्मक शक्ति उससे अंशमात्र घटकर नहीं है। यह सहज ही कहा जा सकता है कि लेखनी में इनकी बहुश्रुत अभिव्यञ्जना-शक्ति सवेग

---

१. हिन्दी ग्रन्थ का नाम जगन्नाथशतक है। यह आषाढ़ शुक्ल २ संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को खेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया। ७१ पृष्ठों की प्रकाशित प्रति रामवन में प्राप्त है। इसका दूसरा संस्करण भी रामवन में है, जो भारतभ्राता प्रेस, रीवा से पौष, १९५८ वि० (१९०२ ई०) में दिनेश कवि द्वारा संशोधित रूप में छपा। इसकी भूमिका रीवा राज्य के तत्कालीन सेनापति लाल बल्देवसिंह ने लिखी है—'संवत् १९१४ में जगदीश के दर्शनार्थ महाराजसिंह अपनी कई हजार प्रजा के सहित पुरी के लिए पधारे। यात्रा प्रारम्भ करने के दिन से ही श्रीमान् विश्वपालक के दर्शन-अभिलाषा में निमग्न हो संस्कृतललित छन्दों में जगन्नाथ जी की स्तुति आरम्भ किये और वहाँ पहुँचते-पहुँचते जगदीशशतक नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ। पुरी पहुँच जाने पर श्रीमान् ने भाषा-प्रेमियों के चित्त-विनोदार्थ पुनः श्री जगन्नाथ जी की वन्दना ललित भाषा छन्दों में किया और इसका नाम जगन्नाथ-शतक रखा।'

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत ग्रन्थ की रचना पहले हुई। यहाँ यात्रा का संवत् १९१४ बतलाया गया है, किन्तु जगदीश-शतक में रचना का संवत् पौष १९१३ वि० है। अतः महाराज की यात्रा पौष १९-१३ वि० के पूर्व प्रारम्भ हुई और कई मास तक वे पुरी में रहे। हिन्दी का ग्रन्थ इसी वर्ष (१९१४ वि०) बम्बई से प्रकाशित हो गया।

प्रवाहित हुई है। जगदीशशतक बघेलखण्ड के उत्कृष्टतम संस्कृतकाव्यों में से एक तथा रघुराजसिंह की सर्वोत्तम कृति है। यह एक ही कृति इस कवि को संस्कृत के क्षेत्र में अधिकार प्रदान कर देती है।

३. रघुराजमङ्गलचन्द्रावली

रीवां के सरस्वती-कोष-भाण्डार में १७५ पत्रों की यह पाण्डुलिपि सुरक्षित और सम्पूर्ण है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्रीमासार्द्ध-वासर-विरचितायां विलसत्कृष्ण-रसावल्यां श्रीरघुराज-मङ्गल-चन्द्रावल्यां परो वाणी-विलासस्सम्पूर्णः ।'[१]

अर्थात् ग्रन्थ का नाम रघुराजमङ्गलचन्द्रावली है। इसका लक्ष्य है स्तुति द्वारा कृष्ण से रक्षा और मङ्गल की याचना। यह ग्रन्थ मासार्द्ध अर्थात् १५ दिनों के प्रयत्न में पूर्ण हुआ। इस बात से रघुराजसिंह की काव्य-निष्ठा और श्लोक-रचना की शक्ति प्रकट होती है। ग्रन्थ के दो भाग किये गये हैं, जिनमें से ४८ अध्याय तक 'पूर्ववाणीविलास' और आगे 'परवाणीविलास' है। कुल ८९ अध्याय हैं। ये १५५ वें पत्रा तक श्लोकबद्ध रूप में समाप्त होते हैं। १५६-५७ पत्रा फलस्तुति के हैं तथा १५८ से १७५ वें पत्रा तक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रारम्भ के २४ पत्रा तक श्लोक-संख्या ७३ है। तत्पश्चात् श्लोक-गणना नहीं की गई है। रचनाकाल का निर्देश कहीं नहीं है और न पाण्डुलिपि का लिपिकाल ही है।

ग्रन्थ के अध्याय-विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय हैं। तदनुसार श्लोक कृष्णचरित पर आधारित हैं। इन श्लोकों में कृष्ण-कथा का सङ्केत मात्र होता है, कथावर्णन लक्ष्य नहीं है। प्रत्येक अध्याय में भागवत के उसी अध्याय में वर्णित कृष्ण-चरित्र पर आधारित कृष्ण के स्वरूप का ध्यान किया गया है और उस भगवत्स्वरूप से कवि ने अपने लिए रक्षा या आशीष चाही है। अतः अध्यायों की समाप्ति पर कथा के अनुसार पुष्पिकाएँ रखी गई हैं और उनका नाम आशीष ही है। अन्तिम उदाहरण इस प्रकार है—'इति श्रीमद्भागवतोत्तरार्द्धे—दशमस्कन्धे द्विजकुमाराहरणा-भिधानः—नवाशीतितमाध्याय—प्रतिपादनानाष्टभुज—श्रीमन्नारायण—प्रतिपन्ना-शिषः ॥'

ये अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त हैं। प्रत्येक श्लोक में 'रघुराज (अथवा राजा

---

१. क्र० १४४।१४६ ।

रघुराज) की रक्षा करें', इस आशय की शब्दावली है। उदाहरण के लिए आरम्भ के श्लोक इस प्रकार हैं—

> 'रक्षतु सा राधा जगदनुराधा राधारमण–सुराधा।
> दूरीकृत–बाधा दुरितदुराधा नृप–रघुराजमगाधा ॥ ५ ॥
>
> वृन्दावन–चारी रासविहारी रक्षतु जगदवतारी।
> राधापतिभाजं नृपरघुराजं व्रज–कौतूहल–कारी ॥ ६ ॥
>
> देव्यागमित–रोहिणीतनयो बलदेवो बलशाली।
> पातु राज–रघुराजमुदारं शरणागत–जनपाली ॥ ७ ॥

ग्रन्थ के अन्त में गद्य में व्रजराज–यदुराज शब्द की व्याख्या की गई है। अतः समग्र रूप में यह ग्रन्थ भी साम्प्रदायिक लक्ष्य रख कर लिखा गया है।

४. शम्भुशतकम्

सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा तथा रघुराज–स्मारक रामवन (सतना) में शम्भुशतक की लिथो-मुद्रित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। यह मुद्रण 'बनारस लाइट छापाखाने' *में १९२१ ई० में हुआ। ग्रन्थ की रचना* मङ्गलवार, आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् १९१८ (१८६१ ई०) को गोविन्दगढ़ में पूर्ण हुई।[१]

रघुराजसिंह इस वर्ष चरण-रोग से अत्यन्त पीड़ित थे। इसी विकलता के बीच रोग-निवारण के लिए आपने मृत्युञ्जय शङ्कर की स्तुति में यह शतक रचा।[२]

५. नर्मदाष्टकम्

इस ग्रन्थ की भी मुद्रित प्रतियाँ रीवा और रामवन दोनों स्थानों में सुरक्षित हैं। यह ग्रन्थ सोमवार, पौष शुक्ल द्वितीया, संवत् १९१३ (१८५७ ई०)

---

१. अन्तिम उल्लेख :

> 'सिद्धि-ग्रह-निधीन्द्वब्द इषे कृष्णे कुजे तिथौ।
> द्वादश्यां शम्भुशतकं गोविन्दनगरे कृतम् ॥'

२. शम्भुशतकम् :

> दुःखार्णवे शोक-तरङ्ग–सङ्कुले, पीडा-ग्रहेऽहं पतितः स्व-कर्मणा।
> नाऽन्यो गतिर्मेऽद्य ऋते भवन्तं, कृपा-कटाक्षेण नयस्व पारम् ॥ ३६ ॥
>
> यक्रेण नक्रेण यथा हरिर्गजं, ग्रस्तं हि चक्रेण तमुज्जहार।
> तथैव मां पादरुजा गृहीतं, त्वमुद्धरस्वाशु शशाङ्क-शेखर ॥ ३८ ॥

को निमित हुआ।[१] ग्रन्थ में कुल ११ श्लोक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ९ श्लोक वन्दना के हैं। नर्मदा मेकल कन्या है, उसके तटों पर स्थित वृक्षों, वन्य जातियों, और स्थानों के उल्लेख दिये गये हैं।

६. लोकनाथाष्टकम्

रामवन में 'रघुराजसिंह कृत लोकनाथाष्टकम्' नाम से एक पाण्डुलिपि प्राप्त है। लिपिकाल का निर्देश नहीं है। यह रचना रघुराजसिंह द्वारा शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी, संवत् (१८९९ ई०) को पूर्ण की गई।[२] रघुराजसिंह के उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में यह पहली रचना है। इसमें प्रारम्भ के ८ श्लोकों में भगवान् शिव की वन्दना है।

ग्रन्थों की रचना-तिथियों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि संवत् १९१२ का वर्ष रघुराजसिंह को संस्कृत-सर्जना की ओर प्रवृत्त करने वाला विशेष वर्ष था। इस वर्ष उन्होंने ज्येष्ठ में लोकनाथाष्टक, मार्गशीर्ष में सुधर्मविलास, पौष कृष्ण में जगदीशशतक और पौष शुक्ल में नर्मदाष्टक की रचना की। नर्मदाष्टक का पौष शुक्ल द्वितीया का रचनाकाल यह द्योतित करता है कि इस तिथि को महाराज ने अमरकण्टक में नर्मदा स्नान किया, जैसा युगलेश ने भी लिखा है। जगदीशशतक की समाप्ति इससे ठीक दो दिन पूर्व बतलाई गई है। अतः प्रतीत होता है कि पौष मास के प्रारम्भिक दिनों में रीवा में जब जगदीश-यात्रा की तैयारी हो रही थी, तभी भाव-मग्न होकर रघुराजसिंह ने जगदीशशतक की रचना प्रारम्भ की। अतः इस शतक का कुछ अंश रीवा में ही लिखा गया और अमरकण्टक पहुँचते पहुँचते ग्रन्थ पूर्ण हो गया।

---

१. 'रेवाष्टकमिदं दिव्यं रघुराज-विनिर्मितम्।
अस्य प्रपठनान्माता नर्मदा मे प्रसीदतु ॥ १० ॥
मिते संवत्सरे पौषे गुण-ग्रह-निधीन्दुभिः।
सिते सौमे द्वितीयायां निर्मितं नर्मदाष्टकम् ॥ ११ ॥

२. 'लोकनाथाष्टकमिदं रघुराज-विनिर्मितम्।
पठतां शृण्वतां शश्वल्लोकनाथः प्रसीदतु ॥ ९ ॥
अग्नि-ब्रह्माङ्क-शुभ्रांशु-मितेऽब्दे तपसीदृशम्।
लोकनाथाष्टकं बाण-तिथौ कृष्णे कृतं कवौ ॥ १० ॥

इति सिद्धिश्री-बान्धवेश-महाराजाधिराज-श्रीमहाराजाबहादुर-श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-श्रीरघुराजसिंहजूदेव-विरचितं लोकनाथाष्टकं समाप्तम् ॥ शुभमस्तु ॥

अमरकण्टक से आगे की यात्रा में संस्कृत जगदीशशतक नहीं लिखा गया (शेष यात्रा में हिन्दी का जगन्नाथशतक लिखा गया होगा)।[१]

ग—प्रस्तुत काव्यों में प्राप्त दर्शन

उपर्युक्त स्तुति-काव्यों में जो दर्शन उपलब्ध है, उसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—१ : परम्परात्मक २ : साम्प्रदायिक। परम्परात्मक दर्शन वह है, जो वेदान्त के अन्तर्गत भक्ति के रूप में विकास को प्राप्त हुआ और जिसकी एक निश्चित सीमा को समस्त उपासना-परक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं। अन्तर यह पड़ता है कि अन्य देवों को अस्वीकृत न करते हुए विशिष्ट सम्प्रदाय अपने इष्टदेव को परात्पर ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठापित करता है और शेष देवों को उस इष्टदेव के अधीनस्थ रूप में प्रस्तुत करता है। विष्णु और उनके नारायण, राम, कृष्ण, आदि अवतारी रूप तथा विष्णु के अतिरिक्त शिव, शक्ति (काली, दुर्गा, चण्डी आदि रूप), गणपति तथा सूर्य की उपासनाएँ ब्रह्म रूप में होती रही हैं। इनकी स्तुतियों में कितने ही शतक, अष्टक आदि ग्रन्थ भी लिखे जाते रहे हैं।

रघुराजसिंह के सुधर्मा-विलास को छोड़कर शेष पाँचों ग्रन्थों को हम इन्हीं परम्परात्मक प्रतिष्ठाओं से युक्त पाते हैं। इनमें से रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली को इसलिए पृथक् किया जा सकता है कि उसके लेखन में भागवत का आधार है और उसमें कोई अपनी दार्शनिक रुचि कवि ने प्रदर्शित नहीं की। शेष ४ ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थ शम्भुशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् शिव-प्रहारव परक हैं। इनमें स्तुति और स्तोत्र के लक्षण मिश्रित हैं। अर्थात् कवि भगवान् के गुणों और विभूतियों की चर्चा करते हुए निवेदन करने लगता है।

भगवान् शङ्कर अपने दासों को मृत्यु के मुख से मुक्त कर सकते हैं।[२] देव, असुर और मानव तथा गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि सभी उनकी

१. रामरसिकावली में जुड़े हुए युगलेश कवि द्वारा रचित अंश में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्राप्त है—
'तहँ मज्जन करि दै बहु दाना। रेवा अष्टक रच्यो सुजाना।।'
'शतक संस्कृत यक जगदीशा। विरच्यो मै निज आँखिन दीशा।।
भाषा-शतक कवित में दूजो। विरचन लग्यो सोऊ मग पूजो।।'

२. शम्भुशतकः श्लोक ३७ :
'मृत्योर्मुखान्मोचयसे स्व-दासांस्तस्माद्धि मृत्युञ्जय-नामधेयः।'

वन्दना करते हैं और किसी फल की प्राप्ति के लिए उन्हीं की आराधना करते हैं।[१] वेद और पुराण, उपनिषद् और संहिताएं उनकी प्राप्ति के मार्ग बतलाती हैं, वे ब्रह्मा और इन्द्रादि देवों द्वारा वन्द्य हैं।[२] नर्मदा शिव की ही प्रिया है।[३]

रघुराजसिंह अपने को 'श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारी' लिखते थे। वे वास्तव में भगवद्रूप श्रीकृष्ण के उपासक थे। श्रीकृष्ण को ही उन्होंने परात्पर ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है। रघुराजसिंह के जगदीशशतक में उनकी यह कल्पना साकार हुई है। प्रस्थान-त्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता) में ब्रह्म के जिस सच्चिदानन्द, विभु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकारण-रूप की उद्भावना की गई है, उसी में करुणा-वरुणालय, जगद्धितैषी, अवतारी स्वरूप को संयुक्त कर जगदीशशतक में प्रस्तुत किया गया है। इस भावना को हम इस रूप में परम्परात्मक मानते हैं कि समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में परमात्मा का यही 'चिदचिद्विग्रह' प्राप्त है। केवल इष्ट का अन्तर है। नाम-मात्र के लिए परमात्मा का नाम कहीं कृष्ण या राम है, तो अन्यत्र नारायण आदि है, किन्तु विभूतियाँ वही हैं। जगदीशशतक के टीकाकार ने अधिक विशद एवं विस्तृत रूप में दर्शन को स्पष्ट किया है।

श्रीकृष्ण के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व भासित है। सूर्य, चन्द्र, तारागणों में भी उन्हीं का प्रकाश है। उनके भ्रू-विलास-मात्र से प्रलय, उत्पत्ति और पालन

---

१. शम्भुशतक : श्लोक : ३९ :
'देवासुराणां च तथा नराणां गन्धर्व-विद्याधर किन्नराणाम्।
त्वया न सेवा-फलमीश लोपितं प्रसीद मय्यापु शिवाशुतोष ॥'

२. लोकनाथाष्टकम् : श्लोक १।
'देवं वेदैः पुराणैरुपनिषदवली-संहिताभिस्सुगम्यं
गम्यं सिद्धैर्मुनीशैररति-रतिसहितैर्यस्य पादारविन्दम्।
विन्द्यं ब्रह्मेन्द्र-वन्द्यं विरति-निरविदं ब्रह्म-विज्ञान-वेद्यं
वेदं वन्दे विशालं कलि-कलुष-हरं कामदं वामदेवम् ॥'

३. नर्मदाष्टकम् : श्लोक २ :
'गिरीश-रूप-शोभिते गिरीश-भाव-भाविते
सुरैरपि सिद्ध-वन्दिते""""सुरेन्द्र-हर्ष-सम्प्रदे ॥'
तथा 'शिवस्वरूप-दायिके सरिद्गणस्य नायिके
सुवाञ्छितार्थ-धायिके ह्यमायिके सुकायिके।
सुमानसस्य कायिकस्य वाचिकस्य पाप्मनः
प्रहारिके त्रितापहे नमामि देवि नर्मदे ॥ ९ ॥'

होते हैं। देवगण उनके चरण-रज की प्राप्ति के लिए सयत्न रहते हैं।[१] सिद्ध, मुनि, सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, शिव और ब्रह्मा कल्याण के लाभार्थ निरन्तर उनका ध्यान करते हैं।[२] श्रीकृष्ण ही सृष्टि के पूर्व थे; वे अनादि, अलिप्त, अनन्त एवं विभु हैं।[३] श्रीकृष्ण से ही जगत् की उत्पत्ति होती है, उन्हीं की माया जगत् में स्थिति-काल में व्याप्त रहती है और उन्हीं में जगत् का लय होता है।[४]

श्रीकृष्ण भगवान् के विश्वरूप की कल्पना भी ऋग्वेद और श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रस्तुत की गई है—

'यः पातालपदो मही-कटितटः स्वर्लोक-वक्षोऽस्ति यो
मार्तण्डेक्षण दिक्श्रुतिः श्रुतिमुखो गीर्वाणबाहुः कचीः ।
माया-हासनको जगद्वपुरजो होमो हृदिस्थैर्गुणै-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम् ॥ ७ ॥'[५]

आगे चल कर भक्ति-सिद्धान्तों और साकार-रूप-कल्पनाओं पर आधारित

---

१. जगदीशाष्टकम् : श्लोक १ :
'यद् भासा सुविभाति विश्वमखिलं सार्केन्दु-तारागणं
यत्किञ्चिद्-भृकुटी-कटाक्षकलया नाशोद्भवौ पालनम् ।
यत्पादाम्बुज-धूलि-धारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुराः
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपतिं वन्दे जगद्वन्दितम् ॥'

२. श्लोक २ :
'यं सिद्धा मुनयः सुरासुरगणा गन्धर्व-यक्षोरगा-
स्त्वेशानाः सचतुर्मुखाः प्रतिदिनं ध्यायन्ति शं प्राप्तये ।'

३. श्लोक ३ :
'यः पूर्वं जगतामनादिरमलोऽनन्तः परो भव्ययः
स्रष्टा गोपयिता कटाक्षकलया हन्ता नियन्ता विभुः ।'

४. श्लोक ४ :
'..............................यस्माज्जगज्जायते
यस्मायापरिपूरितं जगदिदं यस्मिश्च तल्लीयते ।'

५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद) : १०।९०।१३ : 'चक्षोः सूर्यो अजायत ।
तथा १०।९०।१४ :
'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥'
एवं श्रीमद्भागवतः २।२

अनेक प्रसङ्गों के उल्लेख किये गये हैं। गङ्गा के जन्म एवं पावनत्व की कथा का सङ्केत देखिये—

'मत्पाद-पङ्कज-जलं चतुराननोऽसौ
सुद्धर्यं कमण्डलुमुखे सुतरां दधार।
अद्यापि मूर्द्धनि शिवो वहतीष्टरूपं
वन्दे प्रभुं पतितपावन-नामधेयम् ।। १० ।।'

श्रीराम और श्रीकृष्ण में अभेद मान लिया गया है और रामावतार की लीलाओं का भी पाँच श्लोकों में स्मरण किया गया है।[१] एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'विज्ञान-भक्ति-विरतीष्ट-सुधर्म्म-हीना
भीचा महावनचरी शबरी हि तस्यं।
भुक्त्वा तदर्पित-फलं प्रददौ गतिं यो
वन्दे प्रभु पतितपावन-नामधेयम् ।। २८ ।।'

श्री कृष्ण के ही दस रूपों को दशावतार मान कर परम्परात्मक रूप में सुधर्माविलास में वन्दना की गई है—

'मीनं कूर्मं वराहं नरहरिमतुलं वामनं विश्वनाथं
रामं रामं च कृष्णं खलमतिदरणं बुद्धरूपं विचित्रम्।
म्लेच्छ-व्यूहन्दृणन्तं कृतयुगकरणं कल्किनं वाजिवाहं
वन्देऽहं वासुदेवं दशविधवपुषं देवकीनन्दनस्तम् ।।'[२]

रघुराजसिंह के भक्ति-दर्शन के परम्परात्मक स्वरूप पर सम्पूर्ण रूप से श्रीमद्भागवत और उससे निःसृत वैष्णव-सम्प्रदायों की परिकल्पनाओं का प्रभाव है, यह सहज ही कहा जा सकता है। यही बात उनके साम्प्रदायिक दर्शन के सम्बन्ध में कही जा सकती है, किन्तु इसके साथ सम्बद्ध सम्प्रदायों की विस्तृत परिकल्पनाओं को अधिक महत्व देना पड़ेगा। यह साम्प्रदायिक दर्शन ब्रह्माण्ड और श्रीकृष्ण की साकार विभूतियों का सविस्तर वर्णन प्रस्तुत करता है, जो रघुराजसिंह के सुधर्माविलास ग्रन्थ के विवरणों के रूप में उपलब्ध है। उत्क्रमण का मार्ग-वर्णन, श्रीकृष्ण की सुधर्मा सभा और श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का चतुर्व्यूहात्मक स्वरूप ये सम्प्रदायों की उद्भावनायें हैं। इन उद्भावनाओं पर विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है।

---

१. श्लोक २६—३०

२. उल्लास ८, पद १० : तुलना के लिए देखिये—जयदेव। गीत-गोविन्द : सर्ग १ अष्टपदी १।१२। 'वेदानुद्धरते—…।'

सगुण उपासना में पाञ्चरात्र या[1] भागवत मत का विशेष समर्थन हुआ है। सुधर्मविलास की रचना भी इसी कड़ी को आगे बढ़ाती है। इस मत के अनुसार ब्रह्म (यहाँ पर श्रीकृष्ण) में अप्राकृत गुण भी हैं। वह षड्गुण-रूप और सगुण-रूप है, अतः उसकी भगवान् संज्ञा है।

भगवान् (श्रीकृष्ण) जगत् के कल्याण के लिए स्वतः व्यूह, विभव, अर्चावतार और अन्तर्यामी चार रूपों की सृष्टि करते हैं। व्यूह चार हैं—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।[2] षड्गुण-युक्त भगवान् ही वासुदेव हैं, यही रघुराजसिंह सुधर्मविलास के श्रीकृष्ण हैं। शेष तीन व्यूहों में दो दो गुण ही विद्यमान रहते हैं। भगवान् का यह विश्वव्यापी व्यूह रूप विभव-रूप में भी परिणत होता है, जिसे अवतार (मुख्य दशावतार तथा शेष गौण मिल कर चौबीस अवतार) कहते हैं। अर्चावतार भगवान् की शालग्राम आदि शिला-मूर्तियाँ हैं, जिनके सहारे साधक अर्चना कर सके। अन्तर्यामी रूप नित्य प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला भगवद्रूप है। इस पाञ्चरात्र मत का शङ्कराचार्य ने खण्डन किया था किन्तु रामानुज ने इसे पुनः प्रामाणिक ठहराया और समस्त परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों ने इसे स्वीकार किया।[3]

यह कहना कठिन है कि सुधर्म-विलास में श्रीकृष्ण की जिस विभूति और ब्रह्माण्ड की जिस रचना की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है, उसके आधार मूल ग्रन्थ कौन-कौन हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें इष्टदेव का ब्रह्मत्व स्थापित किया गया है, किन्तु शेष परिकल्पनाएँ मूलतः समान हैं। त्रिपाद्-विभूति-महानारायणोपनिषद् में विभूति-वर्णन के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं—

'ब्रह्म पाद-चतुष्टयात्मक है—१. अविद्यापाद, २. सुविद्यापाद, ३. आनन्दपाद और ४. तुरीयपाद। इनमें प्रथम पाद नीचे और तीन पाद ऊपर हैं।[4] ऊपर की

---

१. पाञ्चरात्र-परमसंहिता : गायकवाड़ ओ० सिरीज: बड़ौदा: ३।७
'निराकारे तु देवेशे नार्चनं सम्भवेन्नृणाम्।
न च ध्यानं न च स्तोत्रं तस्मात्साकारमर्चयेत्॥'

२. पाण्डे-कपिलदेव (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : चौखम्बा : वाराणसी : १९६३ : पृष्ठ ३०३ : व्यूहरूप।

३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : बनारस : २०१५ वि० : पृष्ठ ८०५।

४. तुलना के लिए देखिये पुरुषसूक्त : ऋग्वेद १०।९०।१—५।

त्रिपाद्-विभूति अखण्ड अमित तेजोराशि से प्रज्ज्वलित है। मध्यम पाद में तेज:-प्रवाहाकार नित्य वैकुण्ठ है। उसके मध्य महाविष्णु का परम पद है। सूर्यमण्डल के अन्तर्गत जैसे सूर्य हैं, उसी प्रकार दिव्य सुदर्शन-तेज के अन्तर्गत सुदर्शन आदिनारायण है। वही तुरीय ब्रह्म है।[१]

साकार के दो भेद हैं १—सोपाधिक या अविद्योपाधि। यह सावयव होने से अनित्य है। २—निरुपाधिक, जिसके तीन प्रभेद हैं—ब्रह्मविद्यासाकार, आनन्दसाकार और उभयात्मक-साकार। इन तीनों की दो दो विधाएँ हैं—नित्य साकार और मुक्त साकार। नित्य साकार आद्यन्त-शून्य शाश्वत है। उपासना से मुक्ति को प्राप्त होने वाले मुक्त-साकार कहलाते हैं। अखण्ड ज्ञान से आविर्भूत यह साकार भी शाश्वत है। ...तुरीय परमेश्वर से अनन्तशीर्षा सगुण-निर्गुण रूप स्थूल विराट्स्वरूप होता है। यह अविद्या के समस्त अण्ड में व्याप्त है। इसके एक एक रोम-कूप में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक अण्ड में एक नारायण हैं। नारायण से हिरण्यगर्भ, अण्ड विराट्, स्रष्टा, प्रजापति, एकादश रुद्र, अखिल लोक, आदित्य-इन्द्रादि सर्व देव उत्पन्न होते हैं।[२]

'भक्त की उत्क्रान्ति के समय वैकुण्ठ-पार्षद् आते हैं। प्राकृत-देह-त्याग के पश्चात् साधक को महाविष्णु का सारूप्य-विग्रह प्राप्त होता है। वह आनन्दमय नदी में स्नान कर अनेक पुण्य लोकों का अतिक्रमण करता है। फिर क्रमशः सत्यलोक (ब्रह्मा का लोक), शैवलोक, महर्षिमण्डल, सूर्य-सोम-मण्डल, ध्रुवमण्डल, शिशुमार-चक्र को पार करता है। तब वैकुण्ठ में विरजा नदी में स्नान कर ब्रह्ममय वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। यहाँ ब्रह्मानन्दाचल में ज्योतिर्मय स्थानों में पद्मकर्णिका में शुद्ध-शेष-भोगासन पर स्थित आदिनारायण की आराधना कर उनकी अनुज्ञा से पञ्चवैकुण्ठों को पार कर अण्डविराट् कैवल्य के समीप परमानन्द को प्राप्त होता है।'[३] इसी प्रकार विस्तृत विवरण और भी हैं।

(घ) रचना-शैली

रघुराजसिंह की रचना-शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। उसमें क्लिष्ट, दीर्घ एवं कठिन समास-युक्त अथवा अनेकार्थक पदावली का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भक्ति-रस के अनुकूल सात्वती वृत्ति और वैदर्भी रीति प्रयोग में

---

१. त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषद् : अध्याय १।
२. वही, अध्याय २।
३. वही, अध्याय ५।

लाई गई है। त्वरित रस-परिपाक रघुराजसिंह की विशेषता है। पांडित्य-प्रदर्शन की उलझन प्रायः नगण्य है, यद्यपि उनकी बहुश्रुतता के सर्वत्र दर्शन होते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि रघुराजसिंह के स्तुति-गीतों में गीत-गोविन्द की शैली का अनुकरण है। इस अनुकृति को सुधर्माविलास की स्तुतियों और पदों में, विशेषतः ८ वें से १० वें उल्लास तक देखा जा सकता है। शैली की अनुकृति होने पर भी विषयान्तर के साथ रघुराजसिंह की अपनी पद-योजना द्रष्टव्य है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'निशिचरकुल-कृत-महिमण्डल-बहुभारम् विलुलित-सकल-सुधर्माचारम्।
दीनमुनीनवलोक्य दयाकर-वेशम् प्रकटन-याचित-कोसल-देशम्।
जनक-सुरमता-रक्षण-विपिन-विहरणम् कृत-रण-खर-दूषण-संहरणम्।
कृतकपिसख्य-रचित-सागर-वरसेतुम् कन्दित-सकल-निशाचर-केतुम्।
श्रीरघुनाथन्नौमि जय यदुनाथ हरे ॥८।७॥
यदुकुल-जलधि-विवर्धन-सुखद-सुधाङ्कम् वृन्दावन-विहरण-मकरन्दम्।
यदुकुल-कण्टक-कन्दन-कठिन-कुठारम् अवतारित-जगतीतल-भारम्।
पाण्डव-रथ-सारथिमतिशोभित-वेशम् रणरजरञ्जित-कुञ्चित-केशम्।
षोडश-दश-शत-रमणी-विरचित-रासम् द्वारवती-कमनीय-विलासम्।
श्रीगोविन्दन्नौमि जय यदुनाथ हरे ॥८।८॥'[१]

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता कि वृत्त में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु जहाँ गीतगोविन्द में प्रत्येक अवतार के लिए केवल दो पंक्तियाँ हैं, तीसरा पंक्ति ध्रुव (टेक) के साथ रहती है, वहाँ उपर्युक्त पदों में प्रत्येक अवतार के लिए ८-८ पंक्तियाँ हैं और नौवीं पंक्ति ध्रुव के साथ है।

गीतगोविन्द के १८ पंक्तियों से युक्त दूसरे पद[२] की अनुकृति में ठीक १८ पंक्तियों से युक्त सुधर्माविलास के एक पद की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

'मृदु मुरली-रवकारित गोपीमोहन ए। रसिक-शिरोमणि-कान्त जय गोपीश हरे॥
विविध-विलास-विशालिक वनमालिक ए। मदन-मद-मथन-रूप जय गोपीश हरे॥

१. तुलना के लिए देखिए—गीतगोविन्द-सर्ग १।१ :
'प्रलय पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्। विहित वहित्रचरित्रमखेदम्।
केशवधृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥'

२. 'श्रित-कमला-कुचमण्डल धृतकुण्डल ए।
कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे॥......'

····गोपीमण्डल-मण्डित रस-पण्डित ए। रचित-रुचिर-रस-रास जय गोपीश हरे ॥
गीत-नृत्य-सुविशारद शारद सुख ए। विहित धन्य-रघुराज जय गोपीश हरे ॥
····१०।५८-६५॥'

रघुराजमङ्गल-चन्द्रावली में गीतगोविन्द के २८ मात्रा वाले छन्द[1] की अनुकृति में सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही छन्द में लिखा गया है। इसे लय-तालात्मक अनुकरण कहा जा सकता है, किन्तु विषय और शब्दों के चयन में कवि ने स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रयोग किया है। ये श्लोक रसात्मक होते हुए भी काव्य-सौन्दर्य से हीन नहीं हैं। इनमें भावात्मकता भी झलकती है—

'प्रावृट् परमसुन्दरो शरदपि रेमे यत्र विहारी।
पातु राज-रघुराजमुदारं व्रज-जनिता-रति-कारी॥
नन्दसूनु - वर - वेणुगीत-रव-मोहित-दार-वतंसाः।
पान्तु राज-रघुराजमुदारं विलसद्-रत्नवतंसाः॥
आयतनयना यं रघुराजं नृप्यः पपुरनुरागम्।
पान्तु राज-रघुराजमुदारं हरि-पद-पङ्कज-रागम्।।'[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जयदेव की मधुर-कोमल-कान्त-पदावली के समक्ष रघुराजसिंह की पद-योजना का मूल्य बहुत कम रह जाता है। आह्लाद की सृष्टि में, रसिक हृदयों को नृत्य-विभोर करने में सक्षम जयदेव अपने क्षेत्र में अप्रतिम ही रहे हैं। तथापि जयदेव की इस परम्परा को उन्नीसवीं शती के उत्तर भाग तक ला कर लय-बद्ध गीतात्मक काव्य की सृष्टि करने वाले रघुराजसिंह का महत्त्व इतिहास की दृष्टि से अवश्य है, जब कि उनके साथ शब्दशक्ति का भी योग हुआ ही है। उनका यह महत्त्व शिव-ताण्डव-स्तोत्र अथवा लहरी-काव्यों की परम्परा को अग्रसर करते हुए नर्मदा-ष्टक की सर्जना में भी है। यहाँ वे अधिक मौलिक हैं और शब्दालङ्कारों के सुन्दर प्रयोग करते हैं—

'वदस्य स्थम-लसितं सकच्छ-कच्छपान्विते
सुरस्र-पक्षि-सच्छटे ह्यरत्र-रक्षण-क्षमे।
मुदस्र-दस्र-यस्र-वाञ्छितेन-यस्र-पत्तने
विचक्षण-क्षण-क्षणे नमामि देवि नर्मदे॥ ५॥
महात्मनां उदात्मनां सु-धर्म-कर्मवर्तिनां
तपस्विनां यशस्विनां मनस्विनां मनः प्रिये।

---

१. सर्ग १।३ = 'ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे।····'
२. गाढ़-दर्पण से।

मनोहरे धरिद्धरे सुखङ्करे मियां हरे
चराचरे जयोद्धरे नमामि देवि नन्दे ॥ ६ ॥'[१]

बलदेव उपाध्याय ने लिखा है 'संस्कृत का भक्त कवि कभी भगवान् की दिव्य विभूतियों से चकित हो उठता है, तो कभी भगवान् के भी विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्म विस्मृत हो जाता है।—संस्कृत का मुक्तक-साहित्य हृदय के भावों का वर्णन करने में अपनी तुलना नहीं रखता। वह उस लघु चित्र के समान होता है, जिसके छोटे से दायरे में चित्र के पूरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग खींचे जाते हैं तथा जो देखते ही अद्भुत चमत्कार पैदा करता है।'[२]

सामान्यतया मुक्तकों के रूप में प्राप्त समस्त स्तोत्र-साहित्य को गीति-काव्य मान लिया जाता है, किन्तु यह ठीक नहीं है। 'गीतिकाव्य कवि के भावलोक अथवा अन्तःप्रदेश में उद्वेलित होते हुए मनोवेगों के तीव्रतम होने के उपरान्त, उसकी घनीभूत अनुभूति के फलस्वरूप बाहर निकली हुई अभिव्यञ्जना है।'[३]

संस्कृत के श्लोकों में लयबद्धता और सङ्गीत का सामान्य तत्त्व समस्त पद्यसाहित्य में अभिव्याप्त रहता ही है। अतः गीत मूलतः गीति का आधार नहीं बन सकता। गीति वही है, जिसका कलेवर आत्मनिष्ठापरक उत्तरङ्ग भावधारा से ओत-प्रोत हो। जो वाल्मीकि के सदृश करुण के उद्रेक से व्यथित हो जाय; जो मीरा की भाँति भगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण कर चुका हो, जो सूरदास के समान कृष्ण के प्रणय में लुटी हुई, विवश गोपियों की वेदना का साक्षात्कार कर सके, जो भर्तृहरि की भाँति संसार के अहङ्कार और विश्वासघात की चोट खा कर उसे सर्वथा असार मान चुका हो, वह गीति-काव्य की रचना कर सकता है। भक्ति के क्षेत्र में आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी में से आर्त्त के उद्गार ही हृदयद्रावक होंगे। जो विभिन्न योनियों में संसरण के त्रास से कम्पित होगा अथवा जीवन के किसी मर्मान्तिक कष्ट से आहत होगा, वही अशरणशरण को अन्तःकरण की सच्चाई के साथ

---

१. तुलना के लिये देखिये शिवताण्डव स्तोत्र-
'जटा-कटाह-सम्भ्रम भ्रमन्निलिम्प-निर्झरी'।'

२. संस्कृत-आलोचना : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ ६५।

३. शकुन्तला दूबे (डा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय : वाराणसी : १९५८ : पृष्ठ २९९।

पुकारेगा। यही उद्‌गार, यही स्वर काव्यबद्ध होकर गीति बनते हैं। ये गीत्यात्मक स्वर हमें शम्भुशतक और जगदीशशतक में मिलते हैं।

शम्भुशतक का कवि रोगार्त्त होकर मरण-भय से कम्पित है और वह मृत्युञ्जय शिव को प्राण-रक्षा के लिए पुकारता है—

'जानाम्यहं नाथ न योगचर्यामर्चाविधानं मननं तपश्च।
विधाय मूर्ध्नाञ्जलिमङ्घ्रि-सन्निधौ मा पाहि मां पाहि वदन्नमामि ॥३५॥
मृत्योर्मुखान्मोचयसे स्वदासांस्तस्माद्धि मृत्युञ्जय-नामधेयः।
न मोक्ष्यसे मां यदि दुःखसङ्घात् सार्थं कथं स्यात्तव दिव्य नाम ॥३७॥'

जगदीशशतक का कवि जीवन के पापों की स्मृति से पीड़ित है; वह मुमुक्षु है, किन्तु अपनी असहायता का अनुभव करता है और समझता है कि भगवान् की कृपा ही उसका उद्धार कर सकती है—

'यथाम्बरं वै गतिरस्ति पक्षिणां यथा पशूनां पृथिवी गतिश्च।
अस्मादृशां पापनिविष्टचेतसां गतिस्त्वमेवासि तथा न चान्यः ॥ ६६ ॥
प्रारब्धदोषाद्यदमूदमुत्तच्छोचामि किञ्चिन्नहि तस्य दुःखम्।
शोचामि यत्त्वच्चरणागतं मां प्रबाधते पाप-पराभवोऽयम् ॥ ७१ ॥
श्व याम्यहं कलितरां स्मराणि नान्योऽस्ति लोके प्रभु-दीननाथः।
त्वते भवन्तं जगदेकमायमुपायहीनः शरणागतोऽहम् ॥ ७६ ॥
शोचामि नाऽहं नरक-प्रयाणं शोचामि नाऽहं पतितोऽभवं यत्।
शोचाम्यहं त्वच्छरणागतस्य नेयं दशा नाथ तवानुरूपा ॥ ८० ॥

'भक्तिरसामृत-सिन्धु' एवं 'उज्ज्वल-नीलमणि' आदि ग्रन्थों में रूपगोस्वामी तथा अन्य गौड़ीय वैष्णवों ने भक्ति-रस को सर्वश्रेष्ठ आदि रस माना है।[१] उपर्युक्त श्लोकों में वह भक्ति रस पूर्णतः प्रवहमान है। यहाँ श्रीकृष्ण-विषयक रति स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण (जगदीश-रूप में ब्रह्म) आलम्बन है। जगदीश-पुरी की प्रसङ्ग-प्राप्त तीर्थ-यात्रा उद्दीपन है। श्रीकृष्ण की लीला का कीर्तन, अपने अपराधों की स्वीकृति और उद्धार के लिए निवेदन ही अनुभाव है तथा अमति की चिन्ता, वितर्क आदि सञ्चारी भाव हैं।

उपर्युक्त स्तुति-काव्यों में अनेक स्थल केवल वर्णनात्मक हैं, जिन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। वे दर्शन-परक सूचनाएँ हैं। जहाँ स्तुतियों का रूप कथात्मक हो जाता है, वहाँ अन्य रस भी प्रवेश करते हैं। जैसे निम्नलिखित श्लोक में शृङ्गार-रस है—

१. बलदेवउपाध्याय : संस्कृत आलोचना : पृष्ठ २११-१२।

'मन्निरीक्ष्य देव्यो यदुवीरं सुस्मर-खिन्न-शरीराः ।
पान्तु राज रघुराजमुदारं विरलयनीव्यो घोराः ॥'[1]

शब्दालङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास, यमक तथा श्लेष के अनेक सुन्दर प्रयोग रघुराजसिंह ने किये हैं—

'सकल-कारण-कारण-कारणः पतित-तारण-तारण-तारणः ।
निखिल-भावन-भावन-भावनः पतितपावन माधव पाहि माम् ॥
विपुल-जीवन-जीवन-जीवनो जन-विलोपन-लोपन-लोपनः ।
विशद-कामद-कामद-कामदः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥
सकल-गोकुल गोकुल गोकुलः सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः ।
सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥'[2]

श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करते समय रघुराजसिंह की रचनाओं में पद-लालित्य आकर्षक हो उठा है—

'स्मितमुखं सरसीरुह-लोचनं रुचिर-नासिकया परिराजितम् ।
अलिविशाल-मृणाल-विरोचितं समवलोकितुमुत्सहते मनः ॥
उरसि हार-विहार-मनोहरं सुललितका-वनमालिकयाऽश्चितम् ।
कलित-कौस्तुभ-कण्ठ-दरोत्तमं समवलोकितुमुत्सहते मनः ॥'[3]

(६) स्फुट रचनाएँ :

ऐसे चार कवियों का पता चलता है, जो बघेल राजाओं के सम्पर्क में आए और जिन्होंने संस्कृत पद्यों में इन राजाओं की प्रशस्तियाँ लिखीं । ये कवि हैं—१ : रामचन्द्र भट्ट २ : भानुकर ३ : गोविन्द भट्ट या अकबरी कालिदास तथा ४ : पद्मनाभ मिश्र । इनमें से प्रथम तीन की चर्चा पीछे हो चुकी है ।[4] चौथे पद्मनाभ मिश्र पर अगले अध्याय में प्रकाश डाला जायगा ।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, उपर्युक्त प्रथम तीन कवियों के कुछ मुक्तक, जो उनके किसी ग्रन्थ रूप में प्राप्त नहीं हैं, सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित हैं । गोविन्द भट्ट के इन मुक्तकों के काव्य-सौन्दर्य की चर्चा की जा चुकी है । रामचन्द्र भट्ट (या रामचन्द्र कवि) के केवल २ श्लोक प्राप्त हैं, जिसमें रामचन्द्र (बघेल) की प्रशस्ति है ।[5] इन श्लोकों के आधार पर इतना

१. रघुराज-मञ्जुल चन्द्रावली : पूर्ववाणीविलास : रासवर्णन ।
२. जगदीशशतकम् : श्लोक ४५-४६, ४९ ।
३. जगदीशशतकम् : श्लोक ५२-५३ ।
४. अध्याय २ (ग) ।
५. पद्यरचना १०९ एवं सूक्ति० १९२ ।

ही कहा जा सकता है कि प्रशस्ति में वीर रस है। रामचन्द्र भट्ट की रचना प्रसाद गुण से युक्त है। वह आलङ्कारिक शब्दावली का प्रयोग करता था।

डा० चौधुरी के शब्दों में भानुकर उच्च कोटि का कवि था। वह महान् आलङ्कारिक था, अतः उसकी रचनाएँ अलङ्कारों से समृद्ध हैं। उसने अनेक विषयों पर लेखनी चलाई है। सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त उसकी मनोहर रचनाएँ त्वरित प्रभाव करती हैं।[१]

वीरभानु (बघेल) के प्रति उद्दिष्ट भानुकर के तीन मुक्तक प्राप्त हैं। इनमें प्राप्त पदावली रामचन्द्र भट्ट की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्राञ्जल है। प्रशस्ति होने से वह स्वभावतः ओज से पूर्ण है।

वीरभानु का प्रताप लङ्का में भी छा गया है। पुनः लङ्का में आग लग गई है, यह सोचकर नारियाँ व्याकुल हो उठी हैं और पतियों से भयवश लिपट गई हैं। उन नारियों की वाणी में कम्प है, वे हाथ फटकार रही हैं, मोती के हार टूट रहे हैं, आँसू बह रहे हैं, वेणी छूट गई है—

'लङ्का-धामनि वीरभानुनृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापोदयं
प्रत्यागारमघोर-नीरजदृशो भूयो हुताश-भ्रमात्।
स्पन्दद्-वाणि विधुत-पाणि विगलन्-मुक्तामणि प्रस्खलद्-
वाष्प-श्रेणि विलोल-वेणि दयितं कण्ठस्थले बिभ्रति ॥'[२]

वीरभानु ने रण-यात्रा की है। भेरी बज रही है, घोड़ों और हाथियों का कोलाहल दिशाओं में गूँज उठा है, ब्रह्माण्ड फटने लगा है। प्रताप-रूपी अग्नि को चिनगारियाँ लेकर ब्रह्मा ने चन्द्रमा, तारागण और आकाशगङ्गा का निर्माण कर दिया है—

'भेरी-भाङ्कृतिभिस्तुरङ्ग-निनदैः कुम्भीन्द्र-कोलाहलैः
प्रस्थाने तव वीरभान दलितं ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरम्।
आधाय ज्वलति प्रताप-दहनैरङ्गैः पुनर्वेधसा
तारानायक-तारका-पुरसरिद्-व्याजादिवायोजितम् ॥'[३]

बन्दीगण वीरभानु को प्रशस्ति में बतलाते हैं कि दिल्लीपति, गज नरेश

१. मुस्लिम पैट्रनेज० भाग १ : प्राच्यवाणी : कलकत्ता : १९५४ : पृष्ठ २० : विशेष चर्चा के लिये देखिये, पृष्ठ २-३२ :

२. पद्यवेणी० श्लोक ६८ : सूक्ति० श्लोक १०२ : पद्य० १३।२३ : रसिक० १३।२३।

३. पद्यवेणी० श्लोक ११४ : सूक्ति०, श्लोक १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९।ए।७६।

(उत्कल), गौड़राज तथा गुर्जरेश्वर—ये सभी आपको नमन करते हैं। यह सुनकर वीर-श्री के कपोलों पर पुलक प्रकट होता है—

'दिल्लीशो द्वारदेशे नमति गजपतिस्तत्परस्तादुपास्ते
गौडेन्द्रो नम्रमूर्धा तदनु नरपतिर्गुर्जरोर्वीश्वरोऽपि ।
श्रुत्वैवं बन्दि-वृन्दादवनत-वदनो गौरवं तत्र कुर्वन्
वीर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं वीरलक्ष्मी-कपोले ॥'[१]

⊙

१. सारसङ्ग्रह (शम्भूदास पण्डित) : रा० ए० सो० : पाण्डुलिपि : ३१ पृ । साथ ही देखिये-चौधुरी : 'मुस्लिम पैट्रनेज०' : पृष्ठ ८ ।

चम्पू

(क) वीरभद्रदेव-चम्पू :

१– कवि-परिचय

वीरभद्र-चम्पू या वीरभद्रदेव-चम्पू अथवा वीरभद्रदेव-चरित का उल्लेख संस्कृत-साहित्य की सूचियों में उपलब्ध है।[१] यह ग्रन्थ कलकत्ता से प्रकाशित किया जा चुका है।[२] प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में पुष्पिकाओं में ग्रन्थकार का नाम पद्मनाभ मिश्र मिलता है—

'स्वस्ति-श्रीमद्-बघेलकुलावतंस-महाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-श्री-यशोदा-नन्दन-युवराज-श्रीवीरभद्रदेव-चरिते-मित्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भ-सम्भव-सकल शास्त्रारविन्द प्रद्योतन-भट्टाचार्य-श्रीपद्मनाभ-विरचिते प्रथम उच्छ्-वासः समाप्तः।'

स्पष्ट है कि इस चम्पू-ग्रन्थ वीरभद्रदेव-चरित का प्रणेता पद्मनाभ मिश्र और चरितनायक युवराज वीरभद्रदेव था, जो रामचन्द्र बघेल का पुत्र था।

पद्मनाभ मिश्र के ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर सर्वप्रथम महामहोपाध्याय (वर्तमान पद्मविभूषण) पं० गोपीनाथ कविराज का ध्यान आकर्षित हुआ। पं० गङ्गानाथ झा और गोपीनाथ कविराज के सम्पादन के साथ १९२० ई० में पद्मनाभ मिश्र का ग्रन्थ 'किरणावली भास्कर' प्रकाश में आया। इस ग्रन्थ में गोपीनाथ जी ने ग्रन्थकार का संक्षिप्त किन्तु शोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है, जो मूलतः पद्मनाभ की ही कृतियों के अन्तःसाक्ष्य पर आधारित है[३]। १९२४ ई० में गोपीनाथ कविराज और ढुण्ढिराज शास्त्री के सम्पादकत्व में भूमिकाओं के सहित वैशेषिक-दर्शन के प्रशस्तपाद-भाष्य पर सूक्ति और व्योमवती टीकाओं के साथ-साथ पद्मनाभ मिश्र की 'सेतु' व्याख्या भी क्रमशः

---

१. हि० क्ला० सं० लिट्० पृष्ठ १०११ तथा १०७४ में उद्धृत वीरभद्र-देव चम्पू : पीटर्सन० भाग १।१०१ : १८८२-८३ (बाघेल रूलर्स०)।

२. सम्पादक डा० जे० बी० चौधुरीः प्राच्यवाणी संस्कृत सिरीज : कलकत्ता क्र० १२:१९५२

३. सरस्वती भवन टेक्स्टः क्र० १ : गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी : बनारस।

प्रकाशित की गई।[1] १९२९ ई० में नारायण शास्त्री खिस्ते की भूमिका के साथ चन्द्रालोक की पद्मनाभ-कृत शरदागम अथवा चन्द्रालोक-प्रकाश टीका प्रकाशित की गई।[2]

किरणावली-भास्कर के अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका प्राप्त होती है—

'इति श्री-जगद्गुरु-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्रीपद्मनाभ-कृतः किरणावली-भास्करः सम्पूर्णः।'

इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि किरणावली-भास्कर और वीरभद्रदेव-चम्पू दोनों का प्रणेता पद्मनाभ एक ही व्यक्ति है। वह अपने पिता बलभद्र मिश्र को 'जगद्गुरु' कहता है, माता का नाम विजय-श्री बतलाता है और गौरव के साथ अपने को विश्वनाथ का अनुज कहता है।

केशव मिश्र द्वारा प्रणीत तर्कभाषा पर 'तर्कभाषा-प्रकाश' नाम की टीका लिखने वाले गोवर्द्धन मिश्र ने इस कृति के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक दिये हैं—

'विजयश्री तनूजन्मा गोवर्द्धन इति श्रुतः।
तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मिताम्॥
श्री विश्वनाथानुज-पद्मनाभानुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा।
तनोति तर्कानधिगत्य सर्वान् श्रीपद्मनाभाद्विदुषो विनोदम्॥'[3]

इस उल्लेख को उपर्युक्त उल्लेख के साथ तुलनात्मक रूप से देखने पर स्पष्ट होगा कि पद्मनाभ के छोटे भाई का ही नाम गोवर्द्धन मिश्र था। गोवर्द्धन को पद्मनाभ ने ही न्यायशास्त्र की शिक्षा दी थी। इसी गोवर्द्धन मिश्र ने अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर न्यायबोधिनी टीका भी लिखी है।[4] गोपीनाथ कविराज के अनुसार गोवर्द्धन मिश्र ने भी अपने पिता बलभद्र को 'जगद्गुरु' लिखा है।[5]

---

१. चौखम्बा संस्कृत सिरीज : भाग १ : ग्रंथ क्रमाङ्क ३१६ : अन्य भाग पीछे १९२८ ई० तक प्रकाशित हुए।

२. काशी संस्कृत सिरीज : क्रमाङ्क ७९।

३. गोस्वामिन्-सुरेन्द्रलाल : तर्कभाषा (केशवमिश्र कृत) : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०१ : सटीक तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृ० १।

४. सम्भवतः इसी न्यायबोधिनी टीका के लिए डा० कीथ ने लिखा है कि १५८९ ई० के पूर्व अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर टीका लिखी जा चुकी थी (ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ पृ० ४८३)।

५. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४।

पद्मनाभ के पिता बलभद्र वैशेषिक और वेदान्त के विशेष मर्मज्ञ थे। उन्होंने १२ वीं शती में लिखित शिवादित्य के ग्रन्थ सप्त-पदार्थी, वरदराज के ग्रन्थ तार्किकरक्षा और १४ वीं शती में लिखित केशव-मिश्र-कृत तर्कभाषा पर टीकाएँ लिखीं। वर्द्धमान के किरणावली-प्रकाश ग्रन्थ पर बलभद्रमिश्र ने 'युक्ति-कल्पद्रुम' नामक अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण टीका लिखी।[१]

पद्मनाभ मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'किरणावली-भास्कर' में आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक लिखे हैं—

'उपदिष्टा गुरुचरणैरस्पृष्टा वर्द्धमानेन।
किरणावल्यामर्थास्तन्यन्ते पद्मनाभेन ॥ १ ॥
विलसद्-वर्द्धमानार्पि तिरोहित-दिवाकरा।
सकलार्थ-प्रकाशाय न क्षमा किरणावली ॥ २ ॥
बलभद्र-मुखाम्भोज-वचनादुदयाचलात् ।
उदितो भास्करस्तस्मादादरेण निषेव्यताम् ॥ ३ ॥'

अन्त में यह श्लोक है—

'यस्तर्क-दुस्तर-तरार्णव-कर्णधारो
वेदान्त-धर्म-निरताध्वग-सार्थवाहः।
श्रीपद्मनाभ-रचितेन दिवाकरेण
तुष्टोऽमुनास्तु स कृती बलभद्रमिश्रः ॥'

इन उद्धरणों से प्रतीत होगा कि बलभद्रमिश्र की प्रतिभा गहन-गम्भीर थी और वे तत्कालीन 'जगद्गुरु' ही थे। उनके सुयोग्य पुत्रों ने उन्हें ही अपना सर्वथा गुरु बनाया और उनकी तुष्टि के लिए स्वयं ग्रन्थ-रचनाएँ कीं। पद्मनाभ ने अन्य स्थलों पर भी पिता को गुरु लिखा है।[२] हम यह भी देख चुके हैं कि बलभद्रमिश्र ने तर्कभाषा पर भी टीका लिखी थी। अतः गोवर्द्धन का उपर्युक्त 'तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मिताम्' उल्लेख अपने पिता बलभद्र मिश्र को ही गुरु घोषित करता है।

सुरेन्द्रलाल गोस्वामी ने लिखा है कि 'रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर द्वारा सङ्कलित १८८२-८३ ई० की रिपोर्ट पृष्ठ २१३ पर 'गुरुनिर्मितां तर्कानुभाषां विविच्य तनुते' इस उल्लेख के आधार पर गोवर्द्धन मिश्र केशव मिश्र का शिष्य है,

---

१. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४–५।

२. राद्धान्तमुक्ताहार में पद्मनाभ ने अन्तिम कारिका में पिता के गुरु को 'गुरु का गुरु' लिखा है—'प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः।' देखिये कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ६-टि०।

यह सिद्ध होता है। यह गोवर्द्धन मिश्र विजयश्री और बलभद्र मिश्र का पुत्र और विश्वनाथ तथा पद्मनाभ का अनुज है। इससे केशव का पद्मनाभ आदि का समकालीन तथा चौदहवीं शती के अन्त में होना अनुमित होता है।'[१]

सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य विश्वेश्वर ने भी भ्रमवश लिखा है कि गोवर्द्धन के गुरु केशव मिश्र थे और विश्वनाथ एवं पद्मनाभ केशव मिश्र के अग्रज थे तथा बलभद्र मिश्र केशव मिश्र के पिता थे।[२] पद्मनाभ मिश्र के वीरभद्रदेव चम्पू की रचना-तिथि असन्दिग्ध रूप से १५७७ ई० ज्ञात है। अतः बलभद्र मिश्र को अधिक से अधिक १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक ले आया जा सकता है। केशव मिश्र की तर्कभाषा पर टीका लिखने वाला बलभद्र मिश्र केशव मिश्र का पिता नहीं हो सकता, वंशज हो तो हो। डा० कीथ ने केशव मिश्र का काल १३ वीं-१४ वीं शती माना है।[३]

गोवर्द्धन और पद्मनाभ के अग्रज और बलभद्र मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र विश्वनाथ अवश्य ही विद्वान् रहे होंगे, क्योंकि उनके दोनों अनुजों ने उनका उल्लेख गौरव के साथ किया है। खेद है कि उनकी कृतियाँ अभी तक अदृश्य ही हैं।

पद्मनाभ पर पिता के गुरु प्रगल्भ भट्टाचार्य का भी प्रभाव था। उसने उनके मतों का अपने ग्रंथों में उद्धरण दिया है। प्रशस्तपाद-भाष्य पर लिखित अपनी 'सेतु' टीका में जहाँ इस प्रकरण पर लिखा है कि 'तमस् द्रव्य है या गुण है अथवा केवल आलोकाभाव है', उसने प्रगल्भ भट्टाचार्य का मत उद्धृत किया है—

'अस्मत्-पितृचरणाराध्या : श्री प्रगल्भ-भट्टाचार्यास्तु
आलोकाभावस्य तमस्त्वे......................।'[४]

किरणावली-भास्कर में भी द्रव्य-निरूपण के अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—'प्रौढ-प्रकाशक तेजो-ऽभावस्तम इति प्रगल्भ भट्टाचार्याः।'[५]

पद्मनाभ मिश्र ने प्रगल्भाचार्य की प्रसन्नता के लिये ही ८१ कारिकाओं से युक्त वैशेषिक-ग्रन्थ राद्धान्तमुक्ताहार का प्रणयन किया। इसमें प्रगल्भ के

---

१. तर्कभाषा : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०१ : 'सटीक तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृष्ठ १ तथा पृष्ठ ३ : 'केशवमिश्रस्य चतुर्दशशताब्दि-शेषभाग पूर्वत्वं पद्मनाभादि-समानकालिकत्वं च शक्यमवगन्तुम्।'
२. (हिन्दी) तर्कभाषा : चौखम्बा : बनारस : २०१० वि० : भूमिका : पृ० ५६-५८।
३. 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्०' : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ ४८६।
४. कि० भा० : अंगरेजी भूमिका : पृष्ठ ६।
५. वही, मूल, पृष्ठ ४०।

सिद्धान्तों का प्रवर्तन करते हुए पद्मनाभ ने उनकी प्रसन्नता के लिए अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रयोग किया। अन्तिम कारिका से यह सूचना मिलती है—

'यद्यदत्र विनिक्षिप्तं नव्यं सिद्धान्त-वर्त्तिना।
पद्मनाभेन तैः प्रीतः प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः॥'[1]

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ अवश्य ही पूर्व भारत का था। यह स्पष्टतः ज्ञात नहीं होता कि वह मैथिल था अथवा बङ्गीय। उसने अपने को 'मिश्र' और 'भट्टाचार्य' लिखा है और परम्परा उसे मैथिल मानती है।'[2] किन्तु विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने न्यायकन्दलीकार श्रीधराचार्य को भट्टाचार्य होने के कारण बङ्गदेशीय माना है।[3]

उपर्युक्त वीरभद्रदेव-चम्पू और किरणावली-भास्कर की पुष्पिकाओं के अनुसार पद्मनाभ ने अपने को 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन' और 'भट्टाचार्य' लिखा है। ये दोनों पद्मनाभ की उपाधियाँ प्रतीत होती हैं। चन्द्रालोक की शरदागम टीका के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री-महाराजाधिराज-श्री-रामचन्द्रदेवात्मज-युवराज-वीरभद्रदेवादिष्ट-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-विरचिते चन्द्रालोक-प्रकाशे शरदागमे दशमो मयूखः समाप्तः।'

सम्भवतः इसी पुष्पिका के आधार पर आफ्रेक्ट ने अपनी ग्रन्थ-सूची में

---

१. कि० भा० : अंग्रे० भूमिका : पृष्ठ ६, टि०।
'प्रगल्भ भी मिश्र थे। वे लाडी वंश के नरपति मिश्र के पुत्र थे। उनका अन्य नाम शुभङ्कर था और वे प्रज्ञाचक्षु थे। देखिये-खण्डन-खण्डखाद्य : चौखम्बा : ग्रन्थ क्र० ४४५ : बनारस : १९३६ : प्रगल्भ मिश्र कृत खण्डन-दर्पण टीका के आरम्भिक श्लोक २-४ :
'लाडीवंशे ''श्रीमन्नरपतिमहामिश्रवर्यो बभूव।
तस्यात्मजः'''श्रीमच्छुभङ्कर इति प्रथमः कवीनाम्॥
तेनाक्षुण्ण-विचार-मन्थमथितेरुद्धृत्य विद्यार्णवात्
प्रज्ञानेत्रतया निरुद्धविलसत्-सत्खण्डनार्यामृतम्।
श्रीमच्छङ्कर-वर्द्धमान-चरितोपायान् विलाप्यापि च
श्रीहर्षस्य कृतेर्मया कृतिमुदे श्रीदर्पणो रच्यते॥'

२. कि० भा० अं० भूमिका : पृष्ठ ३।

३. वैशेषिक-दर्शनम् : जयकृष्णदास गुप्त : बनारस : १९१९ : विज्ञापनम् : पृ० १६ पादटिप्पणी : '''भट्टाचार्यत्वाच्च बङ्गदेशीयः।'

पद्मनाभ मिश्र का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' माना।[१] कविराज जी ने १९२० ई० में ही आफ़े० की इस भूल की ओर सङ्केत कर बतलाया कि पद्मनाभ ने अपनी बहुमुखी विद्वत्ता के अभिज्ञानस्वरूप सम्बद्ध राजसभा से 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन (या प्रद्योत) भट्टाचार्य (या भट्ट)' की गौरवमयी उपाधि प्राप्त की। यह उपाधि किरणावली-भास्कर, कणादरहस्यम्, वर्द्धमानेन्दु, शारदागम आदि पद्मनाभ की अनेक कृतियों में प्राप्त है। 'प्रद्योतन' स्पष्टतः 'सकल-शास्त्रारविन्द' शब्द के साथ ग्रहण करने से उपाधि का सूचक है, व्यक्ति-नाम नहीं। शारदागम में मूल नाम न होने से यह भूल हुई प्रतीत होती है।'[२]

किन्तु भूल चलती रही। हरदत्त शर्मा ने लिखा कि "('कन्दर्प-चूड़ामणि', १५७७ ई० के प्रणेता) वीरभद्रदेव ने शारदागम के रचयिता किसी 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' को आश्रय दिया। क्या वीर (या वीरभद्र) चम्पू के कर्ता एक अन्य कवि 'प्रद्योतन-पद्मनाभ मिश्र' और 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' एक ही व्यक्ति हैं? दोनों ही बलभद्र के पुत्र हैं। आफ़े० के विवरणों से विदित होता है कि गोवर्द्धन मिश्र और विश्वनाथ पद्मनाभ के भाई थे।...मैं यह विश्वास करना चाहता हूँ कि प्रद्योतन पद्मनाभ और प्रद्योतन भट्टाचार्य एक ही व्यक्ति हैं।[३]

अधिक आश्चर्य की बात यह है कि पद्मनाभ की सेतु टीका की भूमिका में गोपीनाथ कविराज के साथ सह-सम्पादक रूप में पं० ढुण्ढिराज शास्त्री ने पद्मनाभ का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य माना।[४] इसी प्रकार १९३८ ई० में प्रकाशित चन्द्रालोक की राकागम टीका की भूमिका में अनन्तराम शास्त्री वेताल ने शारदागम को प्रद्योतन-भट्टाचार्य-कृत लिखा।[५] इसी के साथ की भूमिका में बटुकनाथ शर्मा ने भी शारदागम के रचयिता को प्रद्योतन-भट्ट

१. कि० भा० : अंग० भूमिका पृष्ठ ५–टि० : आफ़े० जिल्द १ : पृष्ठ ५९४।

२. वही, पृष्ठ ५ तथा शारदागम टीका : आरम्भ में—
क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम्।
शारदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन॥'

३. वाघेल रूलर्स०।

४. चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला–६१ : बनारस : १९३० : पृष्ठ १ : प्रद्योतन-भट्टाचार्यापराभिधान–श्रीपद्मनाभमिश्र-निर्मितः सेतुः.........।' तथा पृ० ५।

५. चौखम्बा : ग्रन्थ संख्या ८३ : पृष्ठ २ : प्राचीनतमेका प्रद्योतनभट्टाचार्येण निर्मिता शारदागमनाम्नी.....।'

लिखा।[१] चन्द्रालोक की पौर्णमासी टीका की भूमिका में नन्दकिशोर शर्मा ने भी शारदागम व्याख्या को 'प्रद्योतनभट्टाचार्य' द्वारा रचित बतलाया है, यद्यपि वह पद्मनाभ मिश्र का ही दूसरा नाम लिखा है।[२] हीरानन्द शास्त्री ने भी पद्मनाभ मिश्र का दूसरा नाम प्रद्योत (या-तन) भट्ट (या भट्टाचार्य) लिखा है।[३] नारायण शास्त्री खिस्ते ने ऐसा ही लिखा है।[४]

वैशेषिक-दर्शन पर प्रशस्तपाद-भाष्य की अपनी 'सेतु' टीका के आरम्भ में पद्मनाभ मिश्र ने निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

'बल-वशीकृत-दुर्दम-भूपति-
निज-भुजार्जित-लोक-समुन्नतिः।
अगतिकार्थि-जनस्य परा गति-
र्जयति वीरवरः पृथिवीपतिः॥ ३॥'[५]

सेतुकार ने 'सेतु' के तीन भाग किये हैं। अन्तिम तृतीय भाग के अन्त में ये श्लोक हैं—

भाष्याम्भोनिधि सेतौ वीरवरीये यशो-हेतौ।
चरमे लक्षणभागो रचितः श्रीपद्मनाभेन॥ १॥
अमुनाऽनुयोकृता बदमन्द-वदान्याद् विशिष्टेन।
प्रद्युपकार-धियाऽयं रचितो ग्रन्थस्ततोऽस्माभिः॥ २॥

---

१. वही, दूसरी भूमिका—पृ० ११ :
अयं चन्द्रालोकस्य टीकारूपो ग्रन्थः प्रद्योतन-भट्टेन विरचितः। बलभद्रमिश्र-तनयः प्रद्योतनभट्टो.....।'

२. चौखम्बा : सं० १९९३ वि० : पृष्ठ ३ : चन्द्रालोकस्य सर्वतः प्राचीना-शारदागमाख्या व्याख्या प्रद्योतनभट्टाचार्येण विरचिता।' तथा पृष्ठ ६-७।

३. वीर० क्रि०ए० : पृष्ठ ३ : पद्मनाभ मिश्र, जिसका दूसरा नाम प्रद्योत (या प्रद्योतन) भट्ट या भट्टाचार्य था, उसको (वीरभद्र की) सभा का एक कवि था और उसने कई ग्रन्थ रचे।

४. चन्द्रालोकः शारदागमटीका : १९२९ : ग्रन्थ का शीर्षक : श्रीमद्पद्मनाभमिश्रापराभिधान प्रद्योतनभट्टाचार्य-विरचितया—।' तथा अंग्रेजी और संस्कृत भूमिका में अनेकत्र।

५. चौखम्बा संस्कृत सीरीज ग्रन्थ क्र० ३१६ : बनारस : १९२४। पृष्ठ २।

यथानिष्ठानीतं मुनिमतमिदं तातचरणै-
स्तथा भ्रातुर्नित्र प्रभवति विशेषं गुरुरपि ।
अनुच्छिष्टं यच्चेदिह हि पर-विद्वद्वर-धिया
सदास्वाद्यास्वाद्यं भवत कृतिनस्तर्ककृतिनः ॥ ३ ॥

इति श्रीमदखिल-भूचक्र-चक्रार्कवल सुस्त्राण-प्रताप-तपन-बर्द्धमान-शोभातिशय-यशोराजिजीव-महाराजाधिराज-श्रीवीरवरीये मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्री-पद्मनाभकृतौ-वैशेषिकसेतौ तृतीयः परीवादः सम्पूर्णः ॥'[१]

सेतु में प्राप्त इस उक्ति के आधार पर गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ ने अपने आश्रयदाता के औदार्य गुण का कृतज्ञता के साथ स्मरण किया है। वीरभद्र (बघेल) की कृपा के प्रत्युपकार के रूप में उसने टीका लिखी और इसे वीरवरीय नाम दिया। उसने 'अन्यवदान्याद् विशिष्टेन' वीरभद्र के सन्दर्भ में लिखा है। 'वीरवर' नाम नहीं, एक सम्मानित उपाधि है।—इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि कन्दर्पचूडामणि में वीरभद्र के विशेषण के रूप में वीर शब्द प्रयुक्त हुआ है—भूचक्र-चक्रवर्ती वीरः श्रीवीरभद्रोऽसौ।[२]

नारायण शास्त्री खिस्ते[३] तथा नन्दकिशोर शर्मा[४] ने भी लिखा है कि 'सेतु' टीका में पद्मनाभ ने वीरभद्र की विशेष स्तुति की है।

सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने लिखा है कि बूंदीनगर में वीरसिंह (१३४१-१४१९) राजा था। छन्दः पूर्ति के लिए वीरसिंह को पद्मनाभ ने वीरवर लिखा होगा।[५] श्री गोस्वामी के इस तर्क को नहीं माना जा सकता, क्योंकि पद्मनाभ उक्त वीरसिंह से कम से कम ढाई सौ वर्ष पीछे हुआ।

---

१. वही, ग्रन्थ क्रमांक ३७५ । १९२८ ई० । पृष्ठ ४२३ ।
२. कि० मा० अंगरेजी भूमिका : पृष्ठ ३-४ (टि० सहित) : तथा कन्दर्प-चूडामणि (रामचन्द्र शास्त्री) : संस्कृत-पुस्तकालय : लाहौर। १९२६ : अ० ५।३।१ ।
३. चन्द्रालोक : शरदागम टीका : बनारस : १९२९ : संस्कृत-प्रस्तावना : पृष्ठ ५ : 'प्रशस्तपाद-भाष्य-टीकायां 'सेतु' नामिकायामनेन वीरभद्रदेवः सविशेषं स्तुतः ।'
४. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृष्ठ ६—७ ।
५. तर्कभाषा : बनारस : १९०१ : सटीक-तर्कभाषाया विज्ञापनम् । पृष्ठ ३—४ ।

जैसा उपर्युक्त श्लोकों और पुष्पिकाओं से प्रतीत होगा, यहां पर पद्मनाभ द्वारा उल्लिखित व्यक्ति न तो वीर है और न वीरभद्र। यह व्यक्ति वीरवर है, जो बीरबल का संस्कृत रूप है। उपर्युक्त पुष्पिका में प्राप्त शब्द सुरत्राण है, जो सुलतान का संस्कृत रूप बनाया गया था।[१] उक्त पुष्पिका के आरम्भ में अखिल भूचक्र-शक्र शब्द अगले पद अकबल सुरत्राण का विशेषण है, जो अकबर सुलतान के स्थान पर है। अतः यह वीरवर बीरबल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। मुस्लिम लेखों में भी हमें यत्र-तत्र बीरबल का नाम वीरवर प्राप्त है।[२] इस प्रकार यह बात असन्दिग्ध है कि 'सेतु' टीका बीरबल की 'वदान्यता' के प्रत्युपकार में ही लिखी गई। बीरबल ने ही पद्मनाभ को आश्रय देकर 'अनृण' किया।

प्रशस्तपाद भाष्य पर लिखित 'सेतु' टीका में व्यञ्जना का पदार्थान्तरत्व खण्डित करते हुए पद्मनाभ ने अपने अलङ्कार-ग्रन्थों के नाम दिये हैं, जिनमें शरदागम भी है—

'व्यञ्जनायां साधन-दूषण-प्रकार-विस्तारश्च मत्कृतालङ्कार-भास्कर-काव्य-प्रकाशप्रकाश तत्खण्डनैकावली-विवरण-शरदागम-मनोरमादौ सचमत्कारं द्रष्टव्य इति[३]।'

श्री लिस्ते ने इस शरदागम टीका का रचनाकाल १५८३ ई० बतलाते हुए लिखा है कि 'अनेक विद्वानों ने इस तिथि का उल्लेख किया है', किन्तु श्री लिस्ते ने अपनी जानकारी के स्रोत का उल्लेख नहीं किया।[४] सम्भवतः कुछ पाण्डुलिपियों में यह रचनाकाल होगा। आफ्रे ने अपनी सूची में शरदागम का रचनाकाल १५८३ ई० लिखा है।[५] अतः इस तिथि पर विश्वास किया

---

१. राम० प्र० पृ० ३ : 'सुरित्राण-साहालिम.....'
तथा वीर० सर्ग १०।१३ : 'सुरत्राण-मुहम्मशाहिः।'

२. आईन० पृष्ठ ४०६ तथा अल-बदाओनी : को : भाग २ : पृष्ठ ३५७-५८ : इन लेखों में बीरबल का नाम 'बिरहमदास' (ब्रह्मदास) भी मिलता है। (वही भाग १ : पृष्ठ १४ टि० : बीरबर गदाई बिरहमदास)।

३. प्रशस्तपाद-भाष्य : सूक्ति-सेतु-व्योमवती टीका : चौखम्बा : ग्रन्थ क्र० ३१६ : १९२४ : सेतु-टीका-पृ० ८२ :

४. चन्द्रालोक : शरदागम : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ७ तथा संस्कृत भूमिका पृष्ठ ३।

५. आफ्रे० भाग ३ : पृष्ठ ३९।

जा सकता है। बटुकनाथ शर्मा ने इस रचना-तिथि को १६२६ वि० (१५६९ ई०) लिखा है, किन्तु कोई आधार नहीं बतलाया। यह तिथि विश्वसनीय नहीं है।[१]

'सेतु' टीका में शारदागम का उल्लेख होने से 'सेतु' का रचनाकाल १५८३ ई० के पीछे आता है। बीरबल की मृत्यु काबुल के युद्ध में ९९५ हिजरी १५८७ ई० में हुई।[२] अतः सेतु का रचनाकाल १५८३ और १५८७ ई० के बीच है। सम्भवतः सेतु ही पद्मनाभ की अन्तिम रचना है।

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि यह विद्वान् (पद्मनाभ) विधिवश पूर्वीय क्षेत्रों से चल कर बुन्देलखण्ड के पार्वत्य प्रदेशों में पहुँचा और बघेल राजाओं की राजसभा के सभासद रूप में बस गया।[३] श्री लिस्ते का कथन है कि बघेलखण्ड के अलंकार रीवा के महाराज वीरभद्रदेव ने उसे आश्रय दिया, जिनकी सभा का वह प्रधान पण्डित हुआ।[४] बटुकनाथ शर्मा के अनुसार पद्मनाभ बुन्देलवंशीय महाराज वीरभद्रदेव का सभा पण्डित था।[५]

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि बघेलों द्वारा शासित प्रदेश बुन्देलखण्ड के उत्तर-पूर्व, यमुना-गङ्गा से नर्मदा तक बघेलखण्ड नाम की पृथक् सत्ता रखता था। साथ ही पद्मनाभ का आश्रयदाता बघेलखण्ड का युवराज और तत्कालीन महाराज रामचन्द्र का पुत्र था, स्वयं महाराज नहीं, जैसा कि शारदागम और वीरभद्रचम्पू में पीछे निर्दिष्ट पुष्पिकाओं से स्पष्ट है। इस समय बघेलों की राजधानी रीवा नहीं, गहोरा थी और वे बान्धवगढ़ में निवास कर रहे थे, जैसा कि स्वयं पद्मनाभ ने वीरभद्रचम्पू में लिखा है।[६]

---

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत भूमिका : पृष्ठ ११ : बटुकनाथ शर्मा ने यहीं पर कन्दर्प चूडामणि की रचना-तिथि १६२० वि० (१५६३ ई०) बतलाई है, जब कि उसी ग्रन्थ में तिथि १६३३ वि० (१५७७ ई०) दी हुई है (अ० ७-२-४९)।

२. ईलियट-भाग ५ : बदायुनी : मुन्तखब-उत्तवारीख : पृष्ठ ५२९-३०।

३. कि० भा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ३।

४. चन्द्रालोक : शारदागम : अंग० भूमिका पृष्ठ ७ तथा संस्कृत-भूमिका पृष्ठ ५।

५. वही, राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत-भूमिका : पृष्ठ ११ : 'शारदागमः'।

६. उच्छ्वास १।१३ : 'अस्ति·····नगरी गहोरा। ·····साऽस्य·····राजधानी।' तथा '·····तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः। ·····साम्प्रतं समधितिष्ठति।'

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि अपनी बहुश्रुतता की प्रतिपत्ति के रूप में पद्मनाभ ने आश्रय देने वाली राज्य-सभा से 'सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त की होगी। यह उपाधि किरणावली-भास्कर, कणाद-रहस्यम्, वर्द्धमानेन्दु और शारदागम आदि (वीरभद्रचम्पू और वैशेषिक सेतु) में प्राप्त है।[१]

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि पद्मनाभ ने अकबरी-कालिदास गोविन्दभट्ट की भाँति अकबर का स्तुति-गान नहीं किया। पद्मनाभ यथार्थ रूप में शास्त्र जीवन का पक्षपाती, विद्या का उपासक और साहित्य का साधक प्रतीत होता है, पद का आराधक नहीं। इसीलिए वह युवराज वीरभद्र जैसे विद्या-प्रेमी और कवि-गोष्ठियों के आयोजक[२] तथा बीरबल जैसे कवि की ओर आकृष्ट हुआ, इन्हीं की सहायता से ऋणमुक्त होकर उसने कृतज्ञता-पूर्वक इनके यशोगान किये।

ऊपर जिन ६ ग्रन्थों में 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त है, उनमें से दो वीरभद्रचम्पू और शारदागम वीरभद्रदेव के प्रीत्यर्थ एवं तीसरा वैशेषिक-सेतु बीरबल की प्रसन्नता के निमित्त लिखा गया है, किन्तु शेष तीन में से कणाद-रहस्य और उसकी मूल कारिकाएँ (राद्धान्त-मुक्ताहार) पद्मनाभ के पिता बलभद्र के गुरु प्रगल्भाचार्य को सन्तुष्ट करने के लिए एवं किरणावली-भास्कर तथा वर्द्धमानेन्दु स्वयं पिता के प्रसादार्थ लिखे गये। इनके अतिरिक्त अन्य अनुपलब्ध ग्रन्थ हैं, जिनमें भी उक्त उपाधि का उल्लेख हो सकता है और जो पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं। अतः अधिक सम्भव यही प्रतीत होता है कि उक्त उपाधि पद्मनाभ ने स्वतः ग्रहण की और वह उसकी स्वाभिमानोचित है, किसी दरबार या राज-सभा द्वारा प्रदत्त नहीं।

बीरबल और वीरभद्र में परस्पर दीर्घकालीन सम्बन्ध था।[3] अतः परवर्ती

---

१. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ५।

२. शारदागम का मङ्गलाचरण : वीरभद्र के सन्दर्भ में पद्मनाभ की उक्ति : श्लोक ६ : '·······कवि गोष्ठी-दैवताराम:।'

३. अक० भाग २ : पृष्ठ २८१-८३ : बीरबल की मध्यस्थता से अकबर ने आसफ खाँ को १५६२-६३ ई० में फर्मान जारी किया कि रामचन्द्र बघेल (बान्धवगढ़) पर से घेरा हटा लिया जाय। आईन० पृष्ठ ४०६-७ : (वीरभद्र ने १५८३-८४ ई० में अकबर को इस पर राजी कर लिया कि रामचन्द्र को बुलाने के लिए बीरबल और जईन कोका भेजे जायें।) तथा अल-बदाओनी : अनु० लो : भाग २ :

जीवन में पद्मनाभ इन दोनों का समीपी रहा होगा। किन्तु वीरभद्रचम्पू में बघेलखण्ड के अनेक स्थलों, क्षत्रियों, रामचन्द्र और उनके परिवार एवं राज्य-क्षेत्र आदि का जिस प्रकार उल्लेख है, उससे प्रतीत होता है कि पद्मनाभ सम्भवतः वीरभद्र के साथ अवश्य ही बघेल सभा (बान्धवगढ़) में कुछ वर्षों तक रहा होगा और वीरभद्र द्वारा रत्नपुर आदि क्षेत्रों पर चढ़ाई के समय भी उनके साथ रहा होगा। वीरभद्र की सेना के सजीव वर्णन में 'मया दृष्टाः' शब्द से यह सूचित होता है।[१]

पद्मनाभ के ग्रंथ :

सकल शास्त्रों के मर्मज्ञ पद्मनाभ के उपलब्ध एवं उल्लिखित ग्रन्थ न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, साहित्यशास्त्र और काव्य (चम्पू) के क्षेत्रों को व्याप्त करते हैं। इनकी संख्या १५ है, जिनमें से एक सन्दिग्ध है।[२]

न्याय-ग्रंथ १ चिन्तामणि-परीक्षा--१२०० ई० के निकट गङ्गेश ने तत्त्व-*चिन्तामणि नामक* महत्त्वपूर्ण न्याय ग्रंथ की रचना की,[३] जिस पर पद्मनाभ ने टीका लिखी है।

वैशेषिक-ग्रन्थ २. न्याय-कन्दली-टीका (सन्दिग्ध)—वैशेषिक सूत्रों पर लगभग ५वीं शती में प्रशस्तपाद ने मौलिक भाष्य रचा, जिसका नाम 'पदार्थ-धर्म-सङ्ग्रह' रखा गया। श्रीधराचार्य ने ९९१ ई० (शकाब्द ९१३) में इस

पृष्ठ ३४५ : (वीरवर, जो भाठ के राजा रामचन्द्र की नौकरी में पहले रह चुका था, उसे बुलाने को भेजा गया।)

१. देखिये आगे वीरभद्रचम्पू का विवरण। सेना के वर्णन के लिए देखिये सं० बा० दे० पृष्ठ ९९-१००। इस युद्ध का समय और पद्मनाभ का बघेलखण्ड में आगमन १५७७ ई० से कुछ वर्षों पूर्व होगा :

२. देखिये आफे० : जिल्द १-३१२ ए : हरदत्तशर्मा ने इसे अपने लेख 'बाघेल रूलर्स०' में उद्धृत किया है। साथ ही देखिये—कि० भा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ५-१० : ढुण्ढिराज शास्त्री की भूमिका : प्रशस्तपाद भाष्य सूक्ति-सेतु-व्योमवती : चौखम्बा-१९३० : पृ० ६ : नारायण शास्त्री लिखते : शरदागम : १९२९ : संस्कृत प्रस्तावना। पृष्ठ ५ : नन्दकिशोर शर्मा : पौर्णमासी : चौखम्बा : ग्रंथ संख्या ५७ : १९४५ ई० भूमिका : पृ० ७।

३. कीथ : 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्० : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ ४८४।

भाष्य पर 'न्याय-कन्दली' नाम की टीका लिखी।[1] गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'कहा जाता है कि पद्मनाभ ने इस न्यायकन्दली पर टीका लिखी है, किन्तु कोई पाण्डुलिपि उपलब्ध न होने से यह सन्दिग्ध है। किरणावली की भूमिका (पृष्ठ ४) में विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।[2]

श्री द्विवेदी का विज्ञापन देखने पर यह उल्लेख नहीं मिला।[3] ढुण्ढिराज शास्त्री ने लिखा है कि पद्मनाभ की 'सेतु' टीका पर इस न्याय-कन्दली का प्रभाव है।[4]

३. वर्द्धमानेन्दु—प्रशस्तपाद-भाष्य पर उदयन द्वारा लिखी हुई 'किरणावली' नामक टीका को बहुत मान्यता प्राप्त हुई। किरणावली के द्रव्य-प्रकरण पर गङ्गेश के पुत्र वर्द्धमान ने किरणावली-प्रकाश नाम की टीका लिखी।[5] वर्द्धमान की इस टीका पर पद्मनाभ के पिता बलभद्र मिश्र ने 'युक्ति' या 'युक्ति-कल्पद्रुम' अथवा 'युक्ति-कामधेनु' नाम से महत्त्वपूर्ण टीका लिखी। पद्मनाभ ने पिता की इस युक्ति' नामक कृति का सार-भाग ग्रहण कर 'वर्द्धमानेन्दु' नामक ग्रन्थ लिखा।[6]

४. तत्त्व-प्रकाशिका टीका—इस ग्रन्थ का विवरण प्राप्त नहीं है। आफ्रे॰ के आधार पर केवल हरदत्त शर्मा ने इसकी सूचना प्रस्तुत की है।[7] अन्यत्र इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं है।

---

१. किरणावली : वि॰ प्र॰ द्विवेदी : बनारस : १९१९ : विज्ञापनम् : पृ॰ १५-१७ : 'व्यधिक-दशोत्तर-नवशत-शकाब्दे।'

२. कि॰ भा॰ अंग॰ भूमिका : पृ॰ ७।

३. किरणावली : विज्ञापनम्।

४. प्रशस्तपादभाष्य : 'सूक्ति-सेतु-व्योमवती' : चौखम्बा-बनारस : १९३० : पृ॰ ५।

५. कि॰ भा॰ : भूमिका : पृ॰ २ : वर्द्धमान का मङ्गलाचरण :
'यस्तर्कतन्त्र-शतपत्र-सहस्ररश्मिर्गङ्गेश्वरः सुकवि-कैरव-काननेन्दुः।
तस्यात्मजोऽतिगहनां किरणावलीं तां प्राकाशयत् कृतिमुदे बुध-वर्द्धमानः॥'

६. कि॰ भा॰ : अंग॰ भूमिका : : पृ॰ ६–७ :
वर्द्धमानेन्दु के आरम्भ में यह श्लोक है—
'बलभद्र-कृताम्भोधेरुद्धृत्यातिप्रयत्नतः।
वर्द्धमानेन्दुरधुना पद्मनाभेन तन्यते॥'

७. वाधेल स्टर्स॰। आफ्रे॰ जिल्द १-२२२ ए। हरदत्तशर्मा ने वर्द्धमानेन्दु को वर्द्धमान के न्यायनिबन्ध प्रकाश की टीका बतलाया है।

५. किरणावली-भास्कर—पद्मनाभ ने उपर्युक्त 'किरणावली-प्रकाश' पर वर्द्धमानेन्दु टीका लिखते समय उसे अपर्याप्त पाया। उसने स्वयं पूरक रूप में किरणावली पर अपनी टीका 'किरणावली-भास्कर' नाम से लिखी। इस ग्रंथ का वास्तव में स्वतन्त्र मूल्य है। पद्मनाभ के मन में वर्द्धमान के प्रति प्रतिद्वन्द्विता का उदय होने से साहित्य-जगत् को लाभ हुआ। किरणावली-भास्कर की दो पाण्डुलिपियाँ कविराज जी को गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी बनारस में उपलब्ध हुई थी।[१]

६. सेतु या वैशेषिक सेतु—पद्मनाभ ने प्रशस्तपाद भाष्य पर बीरबल की उदारता के प्रत्युपकार के निमित्त १५८३ ई० से १५८७ ई० के बीच 'सेतु' टीका लिखी। यह टीका द्रव्य-प्रकरणान्त है। इस ग्रन्थ का आधार पिता के तर्क थे और लक्ष्य था भाषा को सरल करना। चौखम्बा-संस्कृत-ग्रन्थमाला बनारस से ग्रन्थ क्रमांक ३१६, ३४२, ३५४, ३७४ और ३७५ के क्रम से १९२४ ई० से १९२८ ई० तक यह ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हो चुका है। क्रमाङ्क ३७५ में सेतु टीका समाप्त हो जाती है।[२]

७. राद्धान्त-मुक्ताहार और उसकी स्वकृत टीका कणाद-रहस्य—राद्धान्त-मुक्ताहार[३] पद्मनाभ का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें ८९ कारिकाएँ हैं। अपने पिता बलभद्र मिश्र के गुरु प्रगल्भ मिश्र भट्टाचार्य की प्रसन्नता के लिए पद्मनाभ

---

१. भूमिका। साथ ही देखिये-'किरणावली'। बनारस : १९१९। वि० प्र० द्विवेदी का विज्ञापन : पृष्ठ ९ : टिप्पणी—'ग्रन्थोऽयं श्लोक-त्रिस-हस्रात्मकः।'

२. भाग १ (ग्रन्थ क्र० ३१६) : आरम्भ के श्लोक—

'स्मृतिपथमुपनीय श्रीमतस्तात-वक्त्रा-
　　दुचितमुचितार्थं वाक्यमत्यादरेण।
जयति विरचितोऽसौ पद्मनाभेन यत्ना-
　　दुदयन-कृति-पार-प्राप्तये सेतुरुच्चैः॥ १॥

उदयन-कृत-चन्द्रिकया वृद्धो भाष्याम्बुधिस्तरितः।
बालानामपि सुगमस्तत्र मया रच्यते सेतुः॥ २।

३. हरदत्त शर्मा ने अपने लेख (बाघेल रूलर्स०) में आफ्रे की सूची के आधार पर इन कृतियों के नाम 'रद्धान्त-मुक्ताहार' और 'काणाद-रहस्य' दिये हैं, जो अशुद्ध हैं (देखिये-आफ्रे० जिल्द १-३२२ ए।)

ने यह ग्रन्थ लिखा और पीछे स्वयं इन कारिकाओं की 'कणाद-रहस्य' नाम से टीका लिखी।[१]

वेदान्त-ग्रन्थ—

८. खण्डन-खण्ड-खाद्य-टीका—१२ वीं शती के उत्तरार्द्ध में नैषधीय-चरित के प्रणेता श्रीहर्ष ने खण्डन-खण्ड-खाद्य नाम का वेदान्त-ग्रन्थ लिखा, जिस पर यह टीका है।[२]

धर्मशास्त्र—

९. प्रायश्चित्त-प्रकाश[३]

काव्यशास्त्र—

१०. अलङ्कार-भास्कर[४]

---

१. पीटर्सन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी से संबद्ध १८८४-८६ के जर्नल (पृ० २६१) में कणाद-रहस्य टीका के आरम्भ में निम्न-लिखित श्लोक बतलाया है—
'आरभ्य प्रयत्नाद्यैरिहैकार्थाति-कारिकाः।
आचार्य-पद्मनाभेन व्याख्या सम्प्रति तन्यते॥'
अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—
'इति श्रीमन्-मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलभद्रात्मज-विश्वनाथानुज-विजय-श्रीगर्भसम्भव-सकलशास्त्रारविन्द-द्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्रीमत्पद्म-नाभकृतौ स्वकृत-राद्धान्त-मुक्ताहार-व्याख्याने कणाद-रहस्यं समाप्तम्।'
देखिये—तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस। १९०१ : विज्ञापनम् पृ० २।

२. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ७।

३. चन्द्रालोक-पौर्णमासीटीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका पृष्ठ ७। अन्यत्र इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं है।

४. प्रशस्तपादभाष्य-सूक्ति-सेतु व्योमवती : ग्रन्थ क्र० ३१६। चौखम्बाः १९२४ : पृष्ठ ८२ : सेतु टीका में पद्मनाभ की उक्ति-'मत्कृता-लङ्कारभास्कर-काव्यप्रकाशप्रकाश-तत्त्वग्डनैकावली-विवरण-शरदागम-मनोरमादौ। साथ ही देखिये, इस उक्ति पर ढुण्ढिराज शास्त्री का मत (वही, नं० ३६६ : चौखम्बा : १९३०) : भूमिका पृ० ६ : शास्त्री जी ने 'शरदागम-मनोरमा' को एक ही ग्रन्थ मान कर इन्हें साहित्य-ग्रन्थ-चतुष्टय लिखा है। किन्तु शरदागम ग्रन्थ

११. एकावली-विवरण।

१२. मनोरमा।

१३. शरदागम या चन्द्रालोक-प्रकाश—यह टीका १९२१ ई० में सम्पादक और भूमिका-लेखक नारायणशास्त्री खिस्ते के अनुसार प्रथम बार प्रकाशित हुई। श्री खिस्ते के अतिरिक्त अनन्तराम शास्त्री वेताल[१] और नन्दकिशोर शर्मा[२] ने भी इसे प्राचीनतम टीका माना है। अप्पय दीक्षित ने अपने कुवलयानन्द ग्रन्थ की समाप्ति पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

'चन्द्रालोको विजयतां शरदागम-सम्भवः।
हृद्यः कुवलयानन्दो यत्प्रसादादभूदयम्॥ १७२॥'[३]

इस आधार पर शरदागम टीका का महत्व और भी बढ़ जाता है। श्री खिस्ते और आफ्रे० ने १५८३ ई० रचनाकाल दिया है।[४]

शरदागम के मङ्गलाचरण में निम्नलिखित श्लोक आश्रयदाता के परिचय के रूप में प्राप्त है—

'अस्य स्थितिरो नगरी भवतोऽयोध्या भवत्यखिला।
इति रघुवंशादधिको जयति बघेलाऽभिधो वंशः॥ ३॥
देवपतेरिव शक्तिर्यस्य जये प्रभूतां प्रथिता।
श्रीवीरभद्रदेवस्तत्र धराऽऽखण्डलो जातः॥ ४॥
दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह वीरभानु-भूपालः।
आबद्ध-धर्म-सेतुर्जगति समुद्रे समुद्भूतः॥ ५॥
तत्तनयो नयनिर्मल-कीर्तिः स्वर्निम्नगा-मूलम्।
जयति तदीयस्तनयः कवि-गोष्ठी-दैवतारामः॥ ६॥
क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम्।
शरदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन॥ ७॥

के साथ वास्तव में मनोरमा शब्द कहीं प्रयुक्त न होने से हमने मनोरमा को पृथक् साहित्य-ग्रन्थ माना है।

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : चौखम्बा : बनारस : १९३८ : पृष्ठ २ (भूमिका)।

२. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृ० ३, ६।

३. पणशीकर—ल० वा० : निर्णयसागर : बम्बई : चतुर्थ आवृत्ति : १९१७ : पृष्ठ १८८ : अन्तिम श्लोक।

४. आफ्रे० : भाग १ : पृष्ठ ३९।

प्रथम मयूख के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-युवराज-श्रीवीरभद्रदेवादिष्ट-मिश्र-श्रीवलभद्रात्मज सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतन-भट्टाचार्यविरचिते चन्द्रालोकप्रकाशे शरदागमे प्रथमो मयूखः ॥ १ ॥'

द्वितीय और दशम मयूखों में भी समान पुष्पिकाएँ हैं। शेष मयूखों में पुष्पिकाएँ नहीं हैं।

उपर्युक्त श्लोकों के साथ पुष्पिकाओं को देखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी लिपिक को मूल से ही श्लोक क्रमाङ्क ४ में 'वीरसिंह' के स्थान पर 'वीरभद्र' शब्द रख दिया गया है। अन्यथा जो ग्रन्थकार पुष्पिका में वीरभद्र को रामचन्द्र का पुत्र बतला रहा है और उसी वीरभद्र के आदेश से यह टीका-ग्रन्थ लिख रहा है, वह उसी के पूर्वज और उसके पितामह वीरभानु के पिता के स्थान पर उसी वीरभद्र का नाम कैसे लिखेगा?

पद्मनाभ ने इस टीका के प्रत्येक मयूख के अन्त में ऐसे श्लोक दिये हैं, जिनमें वीरभद्र के आदेश पर इस रचना का सङ्केत है। साथ ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ के आरम्भ में इस आश्रयदाता के प्रति शुभाशंसा प्रकट की गई है। उदाहरण-स्वरूप द्वितीय अध्याय के आरम्भ और अन्त में ये श्लोक हैं—

'श्री वीरभद्रदेवे दिशतु जयं शङ्कर-प्रकरे।
मीनावतार-शाली कालीयोत्पादनाच्चतुरः॥'
'श्रीवीरभद्रदेवादेशादुदित-प्रयत्नेन।
प्रथमाग्रिमो मयूखश्चन्द्रालोके कृतः सार्थः॥'

मङ्गलाचरण में भैरव और श्रीराम की वन्दना है तथा दशावतार-रूप में अन्य मयूखों में क्रमशः मीन, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, हलधर, बुद्ध और कल्की की वन्दना की गई है।

१४. काव्यप्रकाश-प्रकाश—निर्णयसिन्धु (१६११ ई०) के कर्ता कमलाकर भट्ट ने काव्य-प्रकाश पर अपनी टीका में काव्यप्रकाश के पूर्ववर्ती टीकाकारों के नाम दिये हैं, जिनमें पद्मनाभ-कृत-टीका भी है।[१]

१५. वीरभद्रचम्पू।[२]

---

१. काव्यप्रकाशः वा० रा० झलकीकर : निर्णयसागर : बम्बई : १९१७ : प्रस्तावना : पृ० ३०-३१।

२. देखिये अगले पृष्ठ। कृष्णमाचारियर (हि० क्ला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३०४) ने पद्मनाभ भट्ट-कृत 'गोपालचरित', (आफे० भाग ३।३५) की भी सूचना दी है। यदि यह पद्मनाभमिश्र की रचना हो तो कृतियों की कुल संख्या १६ होगी।

२. वीरभद्रदेवचम्पू का विवरण

सरस्वती-कोष भाण्डार रीवा में सं० १९९१ (१९३४ई०) में लिखित इस चम्पू की एक प्रतिलिपि है, जिसमें लिपिक ने निम्नलिखित वाक्य जोड़े हैं—

'वि० सं० १९९१ श्रावण शुक्ला १३ बुधवासरे श्रीमेदपाटान्तर्गतोदयपुर-नगरे यावदार्यकुल-कमल-दिवाकर-श्रीमन्-महाराजाधिराज-महाराणा-श्रीभूपाल-सिंह-श्रीविजयराज्ये श्रीसरस्वती-भाण्डार-कार्यालये दधिवाडिया-चारण-करणी-दानस्याध्यक्षतायां पल्लीवाल-जातीय नन्दकिशोर-शर्मणा लिखितमिदं पुस्तकम् ।'

अर्थात् महाराणा-उदयपुर के पुस्तकालय में प्राप्त पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि सं० १९९१ में रीवा लाई गई। हीरानन्द शास्त्री ने इस बात का उल्लेख कर लिखा है कि रीवा महाराज ने उदयपुर में प्राप्त मूल ग्रन्थ की प्रतिलिपि सरस्वती-कोष-भाण्डार में रखवाई।

शास्त्री जी ने एक अन्य (लाहोर की) पाण्डुलिपि की भी चर्चा की है[१], जिसका विवरण डा० पीटर्सन ने संस्कृत-पाण्डुलिपियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया था। इसका नाम 'वीरचम्पू' बतलाया गया है। पुष्पिकाएँ रीवा की प्रति के ही समान हैं, यद्यपि लिपिक-कृत-पाठभेद हैं,[२] जिनमें 'श्री वीरभद्रदेव-चरिते' शब्द प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में प्राप्त प्रत्येक पुष्पिका में है। अन्त में ये शब्द हैं—

'समाप्तो वीरचंपूनामा ग्रन्थः ॥'

संवत् १९४८ समये आषाढ़-शुद्ध- तृतीयायां सोमे लाहुरपुरे अनन्तरामभट्टेन-लिखि(तं) पुस्तकमिदम् ॥'

अर्थात् यह लिपि १९९१ ई० की लाहोर की है।[३] यह संयोग की बात है कि इसी वर्ष वीरभानूदय काव्य की पाण्डुलिपि काशी में लिखी गई, जो प्रकाश

१. वीर० क्रि० ए० । पृष्ठ ३-४ : सम्भवतः शास्त्री जी को भूमिका के लिए 'चम्पू' के उल्लेखों की आवश्यकता पड़ी।

२. जैसे मङ्गलाचरण (श्लोक १) : भैरव-वन्दना : 'प्रथम पंक्ति-लाहोर की प्रति-'नियत-रुधिर-पानारक्त···।' उदयपुर की प्रति- 'नियत-रुधिर-पानारक्त···।'

तीसरी पंक्ति-लाहोर की प्रति— स्थायिनिष्कीर्तिमल्लो···'

उदयपुर की प्रति-'स्थायिनिष्कीर्तिमल्लो—'

यहाँ 'स्थायिनीः कीर्तिमल्लो—' उचित प्रतीत होता है। शारदागम के प्रथम श्लोक में भी भैरव की ही वन्दना है 'पृथ्वी पृथ्वी न पद्भ्यां—।'

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ ३-४ :

में आई।[1] चम्पू की पाण्डुलिपि आषाढ़ और वीरभानूदय की पाण्डुलिपि अगहन (मार्गशीर्ष) मास में सम्पूर्ण हुई। दोनों के लिपिकाल में केवल ५ मास का अन्तर है। सम्भव है, यह प्रतिलिपि भी वीरभद्र की प्रेरणा से की गई हो।

वीरभद्रचम्पू के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है। ग्रन्थकार की ही सूचना के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, संवत् १६३४ (१५७७ ई०) को ग्रन्थ की सम्पूर्ति हुई—

'युग रामर्तु-शशाङ्के वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे।
श्रीवीरभद्रचम्पूः पूर्णाभूच्छ्रेयसे विदुषाम्॥'

वीरभद्र ने अपना ग्रन्थ 'कन्दर्प-चूड़ामणि' इस तिथि के ठीक एक मास पूर्व सम्पूर्ण किया था।[2] प्रतीत होता है कि वीरभद्र और पद्मनाभ का साहित्याभ्यास साथ साथ चलता था। १९५२ ई० में कलकत्ता से वीरभद्रचम्पू का आंशिक प्रकाशन कर दिया गया है।[3]

३. चम्पू का कथातत्त्व

वीरभद्रचम्पू में ७ उच्छ्वास हैं। कथावस्तु निम्नलिखित रूप में है—

प्रथम उच्छ्वास—उदयपुर की प्रति में 'अथ श्री वीरभद्रचम्पूः लिख्यते' से ग्रन्थारम्भ होता है। मङ्गलाचरण में भैरव और श्रीराम की वन्दना है।[4]

रामचन्द्र (बघेल) के पुत्र वीरभद्र की रणवाहिनी के प्रस्थान से आकाश में धूल छा गई है। लङ्का में मन्दोदरी विभीषण से भयपूर्वक कहती है कि

---

१. अन्तिम पुष्पिका : 'संवत् १६४८ समये अगहन-शुक्लपक्ष-द्वितीयायां भौमवासरे लिखितमिदम् विश्वेश्वरसन्निधे॥'

२. कन्दर्पचूड़ामणि, ७।२।४९ :
'हरलोचन-हरलोचन-रस-शशिभिर्विमुते समये।
फाल्गुन-शुक्ल-प्रतिपदि पूर्णो ग्रन्थः स्मर-स्मेरः॥'
(फा० शु० १, सं० १६३३)।

३. प्राच्यवाणी : भाग ९ : श्री पी. के. गोडे, पूना से प्राप्त प्रतिलिपि पर आधारित।

४. वीरभद्रदेव-रचित कन्दर्पचूड़ामणि का आरम्भ भी भैरव-वन्दना से होता है—
'अरुणाऽसि दशकोशाद् भक्तजनुरक्तेषु सानुरागेव।
कल्याणाय जगत्या दृष्टिः श्रीभैरवस्यास्तु॥१-१-१॥
दशकुमार-पूर्वकथासार में भी देखिए [पीछे अध्याय ४-२ (घ)]—
'ताण्डवाडम्बरे····।'

विन्ध्याचल किसी कारण अगस्त्य की आज्ञा की उपेक्षा कर आकाश में उठ रहा है। उसने पक्षियों एवं सूर्य और वायु की गति रुद्ध कर दी है; अथवा वर्षा-काल द्वारा प्रसारित पृथ्वी के किसी चक्रवर्ती नरेश की प्रतापाग्नि की भीषण धूमराशि उठी है, जो दिशाओं के अन्तराल को निगलती जा रही है।

विभीषण मन्दोदरी को बतलाता है कि यह धूलि है, जो वीरभद्र के असंख्य सैन्धव (सिन्धुदेशीय) घोड़ों के दौड़ने से उठी है। मन्दोदरी समझती है कि रामचन्द्र की सेना पुनः लंका पर चढ़ आएगी। विभीषण बतलाता है कि यह अन्य रामचन्द्र है। यह भानु का नहीं, वीरभानु का वंशधर है। यह बघेल-वंश का है। इसकी राजधानी गहोरा है। इसके राज्य में बान्धव दुर्ग है, जहाँ वह इन दिनों शत्रुओं के अस्त होने की प्रतीक्षा में रहता है।

विभीषण वीरभद्र की इस रण-यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए कहता है कि यह आक्रमण रेवा-तट के उन राजाओं पर है, जिन्होंने दण्डस्वरूप देय हाथी अभी तक नहीं दिये हैं। वीरभद्र की माता यशोदा ने ब्राह्मणों को हाथी देने का संकल्प किया है, किन्तु हाथी कम पड़ रहे हैं।

इसके पश्चात् विभीषण की सभा में बृहस्पति आते हैं और बतलाते हैं कि इन्द्र भी इस रणयात्रा से आशङ्कित थे। उन्हें नारद ने बतलाया है कि वीरभद्र की माता ने सूर्य-ग्रहण के समय गज-दान का संकल्प किया था। आश्विन-पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण होने वाला है। अतः वीरभद्र दण्ड द्वारा हाथी लाने का उद्योग कर रहे हैं। नारद से यह सुन कर इन्द्र की चिन्ता समाप्त हो गई है। इसी प्रसङ्ग में इन्द्रपुरी का भी वर्णन है।

द्वितीय उच्छ्वास में रणवाहिनी बढ़ती है और शत्रु-देशों में आतङ्क छा जाता है। यहाँ कवि ने काश्मीर, काबिल (काबुल), प्रतिष्ठान, अङ्ग आदि लगभग २५ देशों (या राज्यों) की सूची-सी प्रस्तुत की है, जहाँ सेना के प्रयाण से खलबली मच गई है।

तृतीय उच्छ्वास में रणवाहिनी का ही वर्णन आगे चलता है। यहीं पर कामताधिनाथ (चित्रकूट के राजा) का दूत सन्धि-पत्र लेकर वीरभद्र के निकट पहुँचता है। इस प्रसङ्ग में शिविर आदि का वर्णन है। पत्र लाने वाला व्यक्ति कामाख्या प्रसाद कवि है, क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि वीरभद्र कवियों का आदर करता है।

चतुर्थ उच्छ्वास में विभीषण अपने दूत से बातें करता है। दूत को 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' कहा गया है। विभीषण ने इस दूत को रामनवमी के दिन राम के जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर विभीषण द्वारा प्रेषित उपहार

देने को भेजा था। दूत को श्रीराम का प्रसाद (प्रसन्नता का सूचक उपहार) भी विभीषण तक लाना था। जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर इन्द्र ने श्रीराम के कण्ठ में मन्दारमाला अर्पित की थी। श्रीराम ने विभीषण को प्रसाद-रूप में यही मन्दार-माला भेजी है, जिसे दूत लाया है। इस उच्छ्वास में वीरभद्र के पिता रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति भी है।

पाँचवें और छठें उच्छ्वास में भी विभीषण और दूत की यह वार्ता चलती रहती है। पाँचवें उच्छ्वास में दूत ने अनेक देवों और मुनियों की गणना की है, जो उत्सव में सम्मिलित हुए थे। केवल अगस्त्य और विभीषण सम्मिलित नहीं हो सके, क्योंकि (बान्धवगढ़ में रामचन्द्र के अधिष्ठित होने से) विन्ध्य पर्वत दुर्लङ्घ्य हो गया था। यहीं प्रसङ्गवश प्रयाग-तीर्थ, अलर्क-नगरी (अरैल) और श्यामवट का वर्णन भी है।

छठें उच्छ्वास में 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' दूत ने बतलाया है कि उसने मार्ग में किस प्रकार वीरभद्र की सेना देखी। इस सेना का वर्णन ३१ श्लोकों में है और तत्कालीन क्षत्रियों की बीसों जातियों-उपजातियों तथा वीरभद्र के मित्र रूप अन्य सत्ताओं के उल्लेख हैं।

सातवें उच्छ्वास में वीरभद्र की सेना का आगमन सुनकर रत्नपुर में पलायन होता है। अर्थात् मूलतः इस आक्रमण का सम्बन्ध रत्नपुर (रतनपुर, जिला बिलासपुर) से है। शत्रुओं के आज्ञाधीन हो जाने से वीरभद्र सागर-वेला तक के नरेशों से अनेक कर लेकर बान्धवगढ़ लौट आते हैं। यह समाचार विभीषण को सर्वथा निश्चिन्त कर देता है। यहीं कथा समाप्त होती है।

४. ऐतिहासिक उल्लेख

(अ) युद्ध का मूल कारण

वीरभद्रदेव चम्पू में लक्षित मूल घटना का बीज लगभग २० वर्ष पूर्व लिखित ऐतिहासिक महाकाव्य वीरभानूदय में सुरक्षित है, जिससे प्रतीत होता है कि बघेल राजाओं का रत्नपुर के शासकों से परम्परागत द्वेष चल रहा था। वीरसिंहदेव ने रत्नपुर के शासक को परास्त कर उससे कर ग्रहण किया था।[१] सम्भवतः यह पराजित राजा दादूराय था, जिसकी कन्या राममती वीरभानु

१. वीर २।६५ :

'यदा नृपो रत्नपुरस्य दर्पान्न शासनं मूर्धनि वैरसिंहम्।
भादत्तवांस्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा ययाचत् ॥'

को ब्याही गई। यह विवाह दण्ड रूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि वीरभानु को रायमती के कहने से ही दादूराय को (पुनः) दण्ड देने का निश्चय करना पड़ा।[१] रत्नपुर को जीतकर भी बघेलों ने वहाँ के शासक को पदच्युत इसलिए नहीं किया होगा कि वह सम्बन्धी बन गया था। अतः इस चम्पू के अनुसार पुनः रत्नपुर के शासक ने, जो दादूराय का पुत्र या पौत्र हो सकता है, बघेलों के विरुद्ध सिर उठाया होगा, जिसके कारण रामचन्द्र के आदेश से युवराज वीरभद्र ने उसका दमन किया और पुनः कर लेकर छोड़ दिया। यह रणयात्रा रेवा (नर्मदा) पर्यन्त थी।[२] अतः नर्मदा के वे तटीय प्रदेश, जिनका उल्लेख चम्पू में हुआ है[३], इस आक्रमण से सम्बद्ध हो सकते हैं।

(आ) तत्कालीन प्रदेश[४]

वीरभद्र की रणवाहिनी से जो प्रदेश आतङ्कित बतलाए गए हैं, वे केवल कवि की भौगोलिक जानकारी सूचित करते हैं। ये तत्कालीन प्रदेश हैं, जो निम्नलिखित हैं—

काश्मीर, काबिल (काबुल), राढ़ा (लखनावटी-बंगाल में गङ्गा के पश्चिम क्षेत्र)[५], चम्पारणीय (चम्पारन-बिहार), तैरभुक्त (तिरहुत), कार्णाट (कर्नाटक), द्रविड़ (आन्ध्र), बङ्ग, अंङ्ग (गंगा से पूर्व का क्षेत्र), प्रतिष्ठान (झूँसी-प्रयाग), मुद्गल (मुगलों द्वारा शासित प्रदेश), कामता (चित्रकूट), भिल्ल और किरात (गोंड़वाना)।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन बघेलखण्ड के परिसर में स्थित निम्नलिखित क्षेत्रों (या राज्यों) के नाम हैं, जिनका ऐतिहासिक मूल्य है, किन्तु आवश्यक नहीं है कि वीरभद्र का इन सभी पर आक्रमण हुआ हो—

तथा सर्ग २।६६ :

'जिता गढ़ा रत्नपुरेण सार्क, जितो बहारः सहओरदेशः।'

१. वही, ७।६८-७५ : 'दादूराय-नृपे ···। ··· रत्नपुरे ··· ।'
यहाँ रत्नपुर की समृद्धि का भी वर्णन है—'अहर्दं रत्नपुरं नाम।'

२. उच्छ्वास-१ : 'सागरावधि रेवायां यात्राविधिः।'

३. उच्छ्वास २ : आतङ्कित देश-गढ़ा (जिला जबलपुर), काची-बिजौरा, सिंधरौली (सीधी जिला), रत्नपुर, भिल्ल, किरात (गोंडवाना) आदि।

४. वीरभद्रचम्पू : उच्छ्वास २।

५. तबकात नासिरी : पृष्ठ ६८० : ।

गढ़ा,[१] सिंगरौली,[२] अगोरी,[३] रोहितास दुर्ग,[४] पद्मनती,[५] विजयगिरि,[६] कालींजर-विजौरा, दडकोर, मरवार[७]।

(ई) क्षत्रिय-जातियाँ[८]

वीरभद्र की सेना में सम्मिलित क्षत्रिय जातियों का ओजस्वितापूर्ण वर्णन प्राप्त है। इनमें से प्रायः सभी के वंशज आज भी बघेलखण्ड में बसते हैं।

(१) बघेल—(राजवंश)।

(२) तोमर—इस समय ग्वालियर तोमर सत्ता का केन्द्र था।

(३) चौहान (न)—रीवा जिले की मऊगंज तहसील और सीधी जिले में सोन नदी के तट पर चौहान हैं। यह क्षेत्र चौहानखण्ड भी कहा जाता है।

(४) यादव—यदुवंशी-रीवा के वर्तमान महाराज मार्तण्डसिंह जू देव का विवाह कच्छ के यदुवंशियों के यहां हुआ है।

(५) पंवार—पमार-परमार का अपभ्रंश। सतना जिले के बरौंधा परगने के रीहा गांव में पमार क्षत्रिय हैं। यहाँ वीरभद्रदेव की छतरी है।

(६) रैकवार—रीवा जिले में हैं।

(७) दिक्षित—गोरैया (जिला सतना) के राजा दिक्षित वंश के हैं। इनके यहाँ बघेल नरेश विश्वनाथसिंह (१८०६-३४) का विवाह हुआ था।

(८) बड़गूजर—कहा जाता है कि नवाब छतारी, बुलन्दशहर (उ० प्र०) बड़गूजर राजपूत जाति से परिवर्तित हैं।

(९) गहरवार—काशी-कन्नौज के गहड़वालों की शाखा।

---

१. जिला जबलपुर। १५६४ ई० में आसफ खाँ द्वारा यह क्षेत्र रानी दुर्गावती से छीनकर मुगल-शासित प्रदेश बना दिया गया था।

२. वर्तमान म० प्र० के सीधी जिले की एक तहसील-सिंगरौली। यहां गोंड़ों की सत्ता रही होगी। आज भी यहां गोंड़ बहुत हैं।

३. जिला मिर्जापुर। यहां चन्देल-जमींदार थे। बघेलों के साथ इनके विवाह सम्बन्ध थे।

४. जिला मिर्जापुर का ऐतिहासिक किला।

५. दतिया—ग्वालियर की सीमा पर पँवाया नामक स्थान।

६. सम्भवतः जबलपुर जिले का विजयराघोगढ़।

७. जिला जबलपुर और छत्तीसगढ़ की पुरानी रियासतें। ये स्थान उस समय बघेलखण्ड के प्रभाव क्षेत्र में रहे होंगे।

८. वीरभद्र-चम्पू : उच्छ्वास ६।१५-४२ : उदाहरण के लिए देखिये—सं० ग्रा० दे० पृष्ठ ९६-१०० ।

(१०) चन्देल—अजयगढ़, जिला पन्ना में चन्देल सत्ता थी।

(११) सुरकि—सोलंकी जाति की एक शाखा। १८ वीं शती में सुरकि जाति के क्षत्रिय रीवा में दीवान थे।

(१२) सोमवंशी—प्रतापगढ़ (अवध) के सोमवंशियों की कन्या रीवा के राजा अनिरुद्धसिंह (१६९९ ई०) को ब्याही थीं।

(१३) नागवंशी—छोटा नागपुर में नागवंशी क्षत्रियों के घर अजीतसिंह (१७५५-१८०९) बघेल का विवाह हुआ था। बीकानेर के नागवंशियों के यहाँ वीरभद्र का विवाह हुआ था।

(१४) हैहय—भावसिंह बघेल (१६७८-९४) का विवाह रतनपुर (जिला बिलासपुर) की हैहयवंशीय रानी मदनावती के साथ हुआ था। भोंसलों ने इन्हें समाप्त कर दिया।

(१५) पुलस्ति-वंशीय—गढ़ा-मंडला के गोंड ठाकुर अपने को पौलस्त्य वंश के (रावण-वंशी) लिखते हैं।

(१६) रक्सेला—सुरगुजा के क्षत्रिय।

(१७) कछवाह—मूलस्थान ग्वालियर के कच्छपघाट। जयपुर के राजा मानसिंह कछवाह थे। मैहर (जिला सतना) के राजा कछवाह वंश के हैं।

(१८) परिहार—नागोद उँचेहरा (जिला सतना) के राजा परिहार हैं। इनके यहाँ विश्वनाथसिंह का विवाह हुआ था। वीरभानूदय काव्य के अनुसार वीरसिंहदेव ने नरो (जिला सतना) से परिहारों को हटाया था। बर्दी-छिबौरा (जिला सतना) में परिहार हैं।

(१९) सिसौदिया-उदयपुर। रघुराजसिंह का विवाह उदयपुर के महाराणा के यहाँ हुआ था। उनकी बहन भी उदयपुर में ब्याही गई थीं।

(२०) मुद्गल—इस्लाम धर्मावलम्बी जो बघेल सेना में थे।

(२१) प्रतिष्ठान-वासी—सम्भवतः कलचुरि (झूँसी प्रयाग)।

(२२) भरद्वाज—सोलंकियों का गोत्र है। ये उन्हीं की शाखा के होंगे।

इनके अतिरिक्त (२३) सूर्यवंशी, (२४) खोचर, (२५) किकान, (२६) सकरवार, (२७) कुशिकवंशी (कौशिक) और (२८) श्यालकीवंशीय क्षत्रियों के भी उल्लेख हैं।[१]

उपर्युक्त वर्णनों से पद्मनाभ का व्यापक जन-सम्पर्क और सूचना द्योतित होती है। उस काल में राजपूतों की युद्ध-प्रिय जातियों पर भी यहाँ अच्छा प्रकाश पड़ता है। बघेल सत्ता की प्रचण्डता भी लक्षित होती है।

---

१. सर्ग २।४८-६४।

(इ) राज्य-सीमा

रामचन्द्र बघेल द्वारा शासित प्रदेश के सीमा-क्षेत्रों पर भी पद्मनाभ ने अच्छा प्रकाश डाला है। चम्पू से विदित होता है कि इस समय (१५७७ ई० तक) भी रामचन्द्र की राजधानी गहोरा ही थी।[१] इस सूचना से दो प्रश्न हल होते हैं। पहला यह कि यद्यपि कालिंजर रामचन्द्र के हाथ से मुगलों के अधिकार में जा चुका था[२], गहोरा नगर राजधानी के रूप में बघेलों के अधिकार में सुरक्षित था, जब कि गहोरा (जिला बाँदा) कालिंजर दुर्ग के समीप है। दूसरा यह कि बान्धवगढ़ यद्यपि एक सुदृढ़ दुर्ग, सैनिक केन्द्र और आवश्यकता पड़ने पर निवास स्थान का काम देता था, वह राजधानी नहीं था। अन्यत्र रूपणि ने इसी रामचन्द्र की राजधानी का नाम रामनगर बतलाया है, गहोरा नहीं।[३] अतः प्रतीत होता है कि १५७७ ई० के पश्चात् किन्तु रामचन्द्र की मृत्यु (१५९२ ई०) से पूर्व ही राजधानी गहोरा से बदलकर रामनगर में कर दी गई। चम्पू में रामचन्द्र के राज्य में प्रयाग और अरैल (अलर्क) नगरी बतलाये गए हैं।[४] वीरभानूदय काव्य में प्रयाग[५] और अरैल[६] तथा बघेलवंशवर्णनम् में भी प्रयाग[७] को रामचन्द्र की राज्य-सीमा में बतलाया गया है। प्रयाग पर यह बघेली सत्ता १५८४ ई० के पूर्व समाप्त हो गई, जब अकबर ने वहाँ अपना दुर्ग बनवाया।[८]

---

१. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १।११ :
'अस्ति प्रशस्तिभिरलङ्कृत-दिग्विभागा
राजानुरक्त-मनुजा नगरी गहोरा।'
....साऽस्य पाण्डवार्पित-खाण्डव-दावानल-प्रबल-प्रतापस्य राजधानी।'

२. अक : भाग २ : पृष्ठ ४९८-४९९ :
'कालिंजर पर अधिकार होने का समाचार ११ अगस्त, १५६६ ई० को पहुँचा।'

३. बघेल० : पृष्ठ १४ : श्लोक ५०-५१।
'पार्श्वे तस्य क्षितिप-नगरी....। विभाति रामनगरं...॥'

४. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १ तथा ५। अलर्क का वर्णन सजीव है (देखिये प्राच्यवाणी : भाग ९ : १९५२ में चम्पू की भूमिका)।

५. प्रकाशित-रीवा : १९३८ : सर्ग ९।३३ : 'प्रयागे ते वासः...।'

६. वही, सर्ग १२।१९ : 'निषेविताऽलर्कपुरे सुतावैः····।' तथा अन्यत्र।

७. बघेल० : श्लोक ९५ : 'तस्य श्रीराम-नृपतेर्विषये तीर्थसेवितः। प्रयागोऽस्ति....।'

८. ई० डा० : अकबर : निजामुद्दीन अहमद : १९५२ : पृष्ठ १२१ :

इसी प्रसङ्ग में चम्पू का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि गहोरा राजधानी होने पर भी रामचन्द्र इन दिनों 'किसी कारण' बान्धवगढ़ में ही रहा करते थे, क्योंकि नीतिज्ञ राजा शत्रु के अस्त होने की प्रतीक्षा करते हुए दुर्ग का आश्रय लिया करते हैं, जैसे कृष्ण मानो जरासन्ध के भय से ही मथुरा राजधानी छोड़कर द्वारका में रहते थे, यद्यपि वे पहले चाणूर, कुवलयापीड और कंस आदि को मार चुके थे।[१] यह उपमा सर्वथा रामचन्द्र के पूर्व जीवन की ओर सङ्केत करती है, जो इब्राहीम सूर जैसे शत्रुओं को जीतने के पश्चात् १५६३ ई० में अकबर के सेनापति आसफ़ ख़ाँ से लड़कर हार चुके थे। एक अन्य उल्लेख भी चम्पू में है, जिससे रामचन्द्र का राज्य यमुना तट तक होने का सङ्केत मिलता है।[२] वीरभद्रदेव को यहाँ भी यशोदा देवी का पुत्र बतलाया गया है,[३] जिससे वीरभानूदय काव्य में प्राप्त इस सूचना की पुष्टि होती है।[४]

(३) वंशागत सूचना

वीरसिंहदेव से निर्गत वंश और वीरभद्र के समकालीन परिवार की महत्त्व

'२९ वें वर्ष (१५८४ ई० में) शाहंशाह ने गंगा-यमुना के सङ्गम पर एक किला बनाने और शहर बसाने का हुक्म दिया, जिसे 'इलाहाबाद' नाम दिया गया।

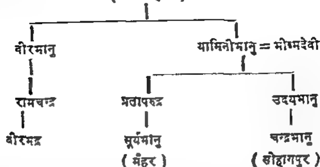
१. उच्छ्वास १ : '....तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः। कस्माच्चिन्निमित्तात् साम्प्रतं समधितिष्ठति। यस्मा हि नीतिविदां प्रभूणां यत् प्रतिपक्षास्तमय-समय-प्रतीक्षया दुर्गमेवाश्रयन्ते। तथा हि,
'चाणूरं चूर्णयित्वा दलित-कुवलयापीड-मूर्द्धा निहत्य
प्राक् कंसं पातयित्वा यदुभिरिह परैः कांश्चिदन्यान् द्विषश्च।
सन्त्रस्तो मागधेशादिव विपुलबलात् सङ्गरोद्दाम-कीर्ति-
स्त्यक्त्वा स्वां राजधानीं सुतनु-सुमधुरां द्वारकामाप कृष्णः॥'

२. देखिये पीछे अ० ४ (३-घ)।

३. वीरभद्रचम्पू, उच्छ्वास १ :
'श्रीवीरभद्रदेवस्याम्बया यशोदया कतिचित् करटिनः समुत्सृष्टाः।'

४. वीर० सर्ग १२।२ :
'श्रीरामचन्द्रस्य सदात्मजस्य बभूव भार्या सुभगा यशोदा।'
तथा १२।६ : 'तस्यामभूत्तस्य सुतः स्थितस्य....।'
और १२।१२ : 'चक्रेभिधां तस्य यथाविधानं श्रीवीरभद्रेति....।'

पूर्ण ऐतिहासिक सूचना भी वीरभद्रदेव चम्पू में प्राप्त होती है। इसके आधार पर वंशवृक्ष निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—



इनमें से प्रतापरुद्र, उदयभानु, सूर्यभानु तथा चन्द्रभानु वीरभद्र के साथ युद्ध में उपस्थित थे। तुलाराम मन्त्री भी युद्ध में था। यामिनीभानु के लिए 'आसीत्' शब्द का प्रयोग होने से ज्ञात होता है कि १५७७ ई० के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी। वीरभद्र और उदयभानु में मैत्री थी।[1] चम्पू में वीरभद्र के मामा रत्नसेन और उसके भाई हेम का भी उल्लेख है।[2]

चम्पू में प्राप्त वीरभद्र के इस कर्तृत्व से यह बात भी अपने आप सिद्ध हो जाती है कि वीरभद्र मुगल दरबार की हाजिरी में निरन्तर नहीं रहे। वे १५६९ ई० में सलीम के जन्मकाल से ही उसकी सेवा में बतलाए गए हैं।[3] अतः १५६९

---

१. षष्ठ उच्छ्वास :

'आसीत् किलास्य श्रीमतो वीरभद्रदेवस्य पितुर्महाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवस्य पितुर्वीरभानुदेवस्य सोदरो यामिनीभानुदेवः।··· तस्माद् भीष्मदेव्यां च महाराजकुमारावेतौ शोभनक्रियाया इव धर्मार्थौ प्रतापरुद्रोदयभानुदेवावाविर्भूतौ। ··· मैत्री च श्रीवीरभद्रोदय-भानुदेवयोर्नर-नारायणयोरिव दृष्टा क्रिया-फल-पर्यवसायिनी। कुमारौ च प्रतापरुद्रोदयभानु-तनुद्भवौ सूर्यभानु-चन्द्रभानू वीरौ तत्र कटके दृष्टौ।'

२. वही, श्लोक १९ : 'भ्रात्राऽसौ हेमनाम्ना सह······मातुलो···· रत्नसेनः।'

इनके अतिरिक्त वीरभद्र की धाय का पुत्र कर्पूर सेवा में बतलाया गया है।

३. देखिये पीछे—अध्याय ४ (२)।

और १५७७ ई० के बीच में कभी बघेलखण्ड आये होंगे, पद्मनाभ उनके साथ होगा और उसने वीरभद्र की भारी विजय देख कर काव्य की प्रेरणा प्राप्त की। सिंगरौली-रत्नपुर-विजय की यह घटना १५७५ ई० [redacted] निकट मानी जा सकती है।

५. प्रमुख चरित्र

वीरभद्रदेव चम्पू-ग्रन्थ स्वाभाविक रूप से वीरभद्र की वीरता की प्रशस्ति के निमित्त केवल एक युद्ध की घटना का आधार लेकर लिखा गया है, अतः इसमें बहुमुखी चरित्र-चित्रण की अपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर भी, रामचन्द्र और वीरभद्र के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक एवं प्रशस्त्यात्मक चित्र खींचे गए हैं, जिनकी चर्चा हो सकती है।

(१) रामचन्द्र—पीछे कहा जा चुका है कि रामचन्द्र के अधीन एक विशाल सेना थी, जो इस समय वीरभद्र के अधिकार में दी गई थी। कवि बतलाता है कि इस सेना में बहुत से हाथी-घोड़े भी हैं।[१] रामचन्द्र का बघेलवंश कभी परशुराम से पराभूत होकर अधोगस्य हो गया था। इसी वंश में शक्तिशाली कान्तिमान् और वैभवसम्पन्न राजा रामचन्द्र हुआ।[२] उसकी राजधानी अलंघ्य है। वह गुप्तचर भी रखता है।[३] उसने शत्रुओं का विनाश कर डाला है और दान में वह कल्पवृक्ष के समान है।[४] वह प्रजाप्रिय है।[५] वह नीतिज्ञ है और बान्धव दुर्ग का आश्रय लिये है।[६] वीरभद्र ने अन्यत्र स्वयं भी रामचन्द्र के इन गुणों का वर्णन किया है।[७]

---

१. वीरभद्रदेवचम्पू : उच्छ्वास ६।१५-४५ :
   तथा उ० १।६ : 'भाटी धावदतङ्ग्य-सैन्धव-खुर-प्रातैः।'
२. उ० १।९ : 'वंशः प्राप्त-पराभवो भगवतः क्षत्रद्रुहो भार्गवा-
   द्वाजायां विबुधोपमो विजयते राजां बघेलाभिधः।
   शक्त्या स्कन्द इव श्रिया स्मर इव श्यारया विवस्वानिव
   स्फीत्या धाक्र इवात्र राजति सदा श्रीरामचन्द्रो नृपः॥'
३. उ० १।८ : अयोध्या नगरी यस्य प्रतिपन्ना निशा-चरैः।'
४. उ० १ : प्रारम्भ—'अथ कदाचन प्रत्यर्थि-पार्थिव-सार्थ-कदर्थन-सार्थक-
   मनोरथस्य निरस्तगणनार्थिव्रात-कृतार्थीकरणाल्पीकृत-कल्पतरुयशसो
   रामचन्द्रदेवस्य।'
५. उ० १।१३ : 'अस्ति राजानुरक्त-मनुजा नगरी गहोरा।'
६. उ० १ : '.....तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः।
   पन्था हि नीतिविदां प्रमूणां.....।'
७. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।११ :

(२) वीरभद्रदेव—रामचन्द्र के सम्बन्ध में प्राप्त उपर्युक्त यशोवर्णन को वीरभद्रदेव से भी सम्बद्ध किया जा सकता है। वीरभद्रदेव का जो प्रमुख गुण यहाँ चित्रित हुआ है, वह है उसका सेनापतित्व एवं जयशीलत्व। इस युद्ध में वह एक विशाल सेना का सञ्चालन करता है; वह शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कृतसङ्कल्प है और स्वयं अच्छा धनुर्धर है।[१] वह अनेकों राजाओं को कर देने के लिये विवश कर देता है और पिता रामचन्द्र के निर्देश से अनुशासित है।[२] वीरभद्र मातृभक्त है और वह माता की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही युद्ध के लिये उद्यत होता है।[३] वह काव्य-रसिक था। उसके इसी गुण के कारण कामता (चित्रकूट) देश का स्वामी एक कवि को उसके समीप दूत के रूप में भेजता है।[४]

'कामादप्यभिरामो भीमादपि बाहुशालिनां मान्यः।
कर्णादपि च वदान्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽस्य॥'
तुलना के लिये देखिये-वीर० सर्ग १०.

१. वीरभद्रदेवचम्पू। प्रथम उच्छ्वास। श्लोक १८:
भूमी-चक्रभृतोऽस्य दुष्पलहरी-भूषा गुणश्रेणयो
नूनं हाटक-कूट-रोचित-मल-स्वच्छा धनुः-कान्तयः।
गङ्गा-तङ्गत-शेष-शैल-शिखराकारा यशोराशयो
भास्वद्-भासुरकाञ्चनाचल-रुचः प्रौढाः प्रतापप्रभाः॥'
यहीं पर दीर्घ गद्यात्मक प्रशस्ति भी द्रष्टव्य है।
तथा षष्ठ उच्छ्वास: श्लोक २०. 'वीरभद्रमरि-निग्रहोद्यतम्।
श्लोक ३२: 'इमां सेनामस्य प्रबल-पर-भूभृद्-बलमिदः।'
श्लोक ३५: 'श्री वीरभद्रनृपोऽमुनस्य व्याग्रहे पार्थेत्।'

२. वही, सप्तम उच्छ्वास: अन्तिम श्लोक:
'पाथोधि वेलावधि-भूमिपाल-समर्पितानेक-कर-प्रकारान्।
आदाय भूमीपति-रामचन्द्र-निर्देशतः स्वे भवने चकास्ति॥'

३. वही, प्रथम उच्छ्वास:
'श्रीवीरभद्रदेवस्याम्बया यशोदया कतिचित् कराटिनः
समुपसृष्टाः। तानदण्डप्राप्तान् दातुमयमुद्योगः…।
स हि निज-जनन्या…सङ्कल्पितान् दन्तावलान्…
दण्डकृष्टान् कर्तुं साम्प्रतं सोद्योगः।'

४. वही, तृतीय उच्छ्वासः कामाख्याप्रसाद कवि। तुलना के लिये देखिये—शरदागम का आरम्भ श्लोक ६।

प्रतीत होता है कि वीरभद्र को अवश्य ही इस युद्ध में भारी यश मिला था, क्योंकि इसी काल में लिखित अपने ग्रन्थ में उसने स्वयं ही अपने शौर्य का प्रमाद वर्णित किया है।[1] साथ ही शरदागम में भी पद्मनाभ ने वीरभद्र की युद्धप्रियता का उल्लेख किया है।[2]

(६) वीरभद्रदेवचम्पू में प्राप्त साहित्य

वीरभद्रदेवचम्पू में जो गद्य प्राप्त है, उसे हम दो रूपों में देख सकते हैं, पहला विवरणात्मक और दूसरा काव्यात्मक। विवरणात्मक गद्य के पुनः दो भेद हो सकते हैं—पहला 'अथ कदाचन', आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाला, किसी पद्य की भूमिका या पूरक के रूप में तथा दूसरा कथाविस्तार के लिये वर्णन के रूप में। कथा-विस्तार के लिये जिस गद्य का प्रयोग है, वह प्राञ्जल पदावली से युक्त होकर भी सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण, अल्प-समास-युक्त, प्रायः अनलङ्कृत एवं लघु वाक्यों वाला है; उदाहरणार्थ—

> 'विभीषणः—तन्वि । नाऽस्य वयमुद्देश्यः । अपि तु केनचिन्निमित्तेन सागरावधि रेवायां यात्राविधिः।'
>
> 'तेषु मध्ये केचित् गजा ब्राह्मणेभ्यो न दत्ताः।
> दानदण्डप्राप्तान् दातुमयमुद्योगः।'
>
> 'मन्दोदरी—किमस्यापि वीर-भानोरन्वयः ?
>
> विभीषणः—तन्वि ! वीरभानोर्नतुभानोः।
>
> मन्दोदरी—कान्त ! किं भास्वतश्चन्द्रमसश्च परम्परातः समन्यन्येऽपि राजानः ?'

यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि संवाद प्रस्तुत कर कवि ने चम्पू में अभिनेयता का समावेश किया है और इसमें दृश्यकाव्यत्व प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ तक कि कवि ने अभिनयात्मक निर्देश भी दिये हैं, जैसे—सस्मितम्, प्रकाशम्, बृहस्पतिः प्रविशति, आसन उपविशति आदि।

---

१. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।१३-१४ :

> 'राजोचित-गुणसीमा भीमावरजादिहाधिको धनुषि ।
> तनयो विनय-समुद्रो जयति तरां वीरभद्रोऽस्य ॥
> विद्यायां सुरगुरुरिव सौन्दर्ये पञ्चबाणतोऽप्यधिकः ।
> दाने कल्पतरोरयमुपमेयस्तेन केनेह ॥'

२. चन्द्रालोक की शरदागम टीका : बनारस : १९२९ : द्वितीय मयूख की टीका का आरम्भ—'श्रीवीरभद्रदेवे दिशतु जयं सङ्गर-प्रकरे।'

पद्यों की भूमिका-रूप में जो गद्य प्रयुक्त हैं, वे या तो अति संक्षिप्त हैं अथवा काव्यात्मक और दीर्घ-समास-युक्त हैं। पहली शैली में कहीं कहीं केवल 'अथ च' 'अपि च' 'अपरं च' 'किं च' आदि पद प्रयुक्त होकर पद्यों की संख्या बढ़ाते चले जाते हैं। इसी निमित्त कहीं-कहीं 'प्रिय' या 'प्रिये' आदि सम्बोधन भी उपयोग में लाए गए हैं और संवादात्मकता समाविष्ट की गई है—

'यदि वा केनापि भुवनैक-चक्रवर्तिना प्रतापलङ्केश-निदेशस्य कृपालोः

प्राप्तुं प्रणयपक्षपातिता

नोऽलं काकोदरारा''' कुलवह्निः ॥ ५ ॥

विभीषणः—प्रिये ! नैवमपि तु,

श्रेयस्कर ··· — — कुलजः ॥ ६ ॥

मन्दो०—(सहासं) प्रिय ! प्रिय ! सत्वरं प्रेयस्यानुसरणामो येषु

यावद् ··· ··· ··· सम्भावयति ॥ ७ ॥

तथा—'विभीषणः—प्रिये !

'वंश ··· — ··· ··· ··· नृपः ॥ ९ ॥

अपि च—

स्वकान्ति ··· ··· ··· पृथक्व ॥ १० ॥

किं च—सहृदयवर ··· भूतनाथः ॥ ११ ॥

अपरं च—यानेषु पितु ···यशः ॥ १२ ॥ (उ० १)

दूसरी विवरणात्मक शैली में कथा-विस्तार का लक्ष्य होते हुए भी प्रौढ़-आडम्बर-पदावली का प्रयोग है—

'मन्दोदरी-दुष्कालानलाधिक-ज्वाला-प्रताप-मार्तण्ड-शात्रिताराति-
राजन्यावरोध-वधूवदनकमल-कमलोऽस्य का राजधानी ?

'विभीषणः—···· ··· ··· ··· सात्त्व पाण्डवाग्नि-
कालवत्-सायक-प्रबल-प्रतापस्य राजधानी।'

तथा—'अथ कदाचन प्रार्थि-सार्थ-कार्य-कदर्थन-
सार्थक-मनोरथस्य निरस्त-गगनाधिनाथ-कुमार्गी-
करणाली कृत-कल्पतरुयशो विरोचि वधू-मान-
मोदानन्द-सन्दोह-कुमुद चन्द्रमसः श्रीमतो रामचन्द्रदेवस्य
हनुमन्तः श्रीवीरभद्रदेवस्य यात्रायां
कल्लोलिनी कूलोद्यानोत्र मन्दोदरी विभीषणस्य लङ्काधिपतेरङ्के
निविशमाना सादरमाह—

'प्रिय ! किमिदमाकस्मिकं दिक्चक्रवालमाक्रम्य
भूलोकादुत्थितं व्योमान्तरालमापूरयति नूनम् ?' (उ० १)

इस प्रकार इस चम्पू में चारों प्रकार के गद्यों—मुक्तक (समास-रहित) वृत्त-गन्धि (पद्यों से संस्पृष्ट), चूर्णक (अल्पसमास-युक्त) तथा उत्कलिका-प्राय (दीर्घ-समासयुक्त) की उपलब्धि होती है। चम्पू में दूसरा रूप काव्यात्मक गद्य का है, जिसमें उत्कलिका-प्राय शैली ही है। यहाँ कवि का लक्ष्य काव्य-प्रदर्शन है, कथा-विस्तार नहीं। यह शैली अलङ्कृत, दीर्घसमास-युक्त, प्राञ्जल पदावली से पूर्ण और स्पष्टतः कादम्बरी की अनुकृति है। उदाहरणार्थ—

'अस्ति किल सुमेरुरिव सुवर्णाश्रयो हिमाचल इव
परतेजोभिरसन्तापितो मन्दर इवाहितानेक-वाहिनीनाथः
क्षोभयन् पूर्वाचल इव भास्वद्भूः पश्चिमाद्रि-
रिवापित-परतेजोऽस्तमयः कैलास इव सन्निहित-
चन्द्रचूडो मलय इव भोगिकुलालम्बनं विन्ध्य
इवानेकवारणः कल्पतरुरिव सन्तुष्टाश्रितो नारायण इव
वनमाला-वेष्टितः तस्य विषये दुर्गरत्नं वाल्यदः।'[१] (उ० १)

स्पष्ट : इस शैली में रमणीयता एवं हृद्यता है। उपमा और श्लेष के योग से प्रौढ़ि का आकर्षक प्रदर्शन किया गया है। इस चम्पू में अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन हैं।

इसी प्रकार श्लेष का प्रयोग देखिये—

'अयोध्या नगरी नित्यं प्रतिपन्ना निशाचरैः।
तथापि रामचन्द्रोऽयं दशाननभिदः परः॥' (उ० १।८)

निम्नलिखित श्लोकों में उत्प्रेक्षा और अत्युक्ति का सङ्कर द्रष्टव्य है—

'विन्ध्याद्रिरद्यावधि सन्निरुद्ध-
स्वात्मानमभ्यर्थनया महर्षेः।
सम्प्रत्यवन्नाय कुतोऽपि हेतो-
र्भूयः समुत्तिष्ठति सम्भ्रमेण॥
आक्रम्याशावकाशान्निखिल-जगतो रंहसा सन्निरुध्य
ज्योतिः प्रच्छाद्य भानोरति-विपुल-जगत्क्रोड-विश्रान्त-भानोः।
धामोरान्छिद्य भासाः सकल-तनुभृतां चक्षुराकृष्य दूराद्
भूयोऽप्यावृत्य भूमीतलमखिलमथाम्बरं संवृणोति॥'[२]

---

१. तुलना के लिये देखिये : कादम्बरी-पूर्वभाग : विन्ध्याटवी-वर्णन—
'अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेला-वनलग्ना ··· ··· विन्ध्याटवी नाम।'

२. उ० १।३-४।

उपमा और श्लेष का सुन्दर संयोग गहोरा राजधानी के वर्णन में देखिये। यहाँ कवि की भाषा ललित हो उठी है—

> कादम्बिनीव दलिताखिल-लोकतापा
>
> कात्यायनीव रिपुवर्ग-मयानभिज्ञा।
>
> दा पूर्व-पर्वत-शिखेव करावदान-
>
> मित्रोदय-प्रणयिनी सततं विभाति ॥'[१]

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विवरणों से तथा वीरभद्रदेवचम्पू के प्रत्यक्ष दर्शन से प्रतीत होगा कि जिस पद्मनाभ को प्रतिभा दर्शन के क्षेत्र में शुष्क-तीव्र तर्कों के प्रभावी प्रयोग में अव्यर्थ रही है, उसी कवि की कल्पना एवं शब्द-शक्ति ने काव्य के क्षेत्र में भी रससिद्धि प्रदर्शित की है। मध्य युग के कवियों की प्रथम पंक्ति से पद्मनाभ को नीचे नहीं लाया जा सकता।

वीरभद्रदेवचम्पू मूलतः वीर रस-प्रधान रचना है। यह वीर रस प्रमुख रूप से पद्यों में निष्पन्न हुआ है। इन पद्यों में ओज गुण, परुषा वृत्ति और गौड़ी रीति वीर रस के अनुकूल ही प्रयुक्त हुई है। ऐसे स्थलों पर शब्दालङ्कारों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं, किन्तु उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अर्थालङ्कार भी उपलब्ध हैं। वीरभद्रदेव के सैन्य-सागर में सम्मिलित होने वाले ओजस्वी क्षत्रियों के कुछ चित्र देखिये—

> 'अटत्-कटक-घोटकोद्भट-खुराग्र-टङ्क-त्रुटत्-
>
> प्रभूत-धरणी-रजो-निचय-रुद्ध-भास्वत्कराः।
>
> समापतुररिव्रज-द्विरदयूथ-कुम्भस्थली-
>
> कपाट-पटु-पाटन-प्रहित-सायकाः क्षीचराः ॥
>
> दंष्ट्रा-दष्टाधरोष्ठा भृकुटि-कुटिलता-भीम-भालाट-पट्टाः
>
> कोदण्डाकृष्टि-सक्रोद्भट-करटि-करोद्दण्ड-दोर्दण्ड-चण्डाः।
>
> आयाता वात-वेगाधर-गति-विजितान् योगि-चित्त-प्रचारा-
>
> नश्वानारुह्य वश्य-प्रतिभट-कटका धौतधानाः किकानाः ॥
>
> प्रत्यर्थि-प्रधन-प्रौढ़-प्रताप-परिशीलिताः।
>
> प्रभुं पुनरया प्राप्ताः परिहाराः प्रहारिणः ॥'[२]

वीरभद्र की रणवाहिनी द्वारा उड़ाई हुई धूलि से त्रस्त मन्दोदरी विभीषण को उपहार भेजने का परामर्श दे रही है, अन्यथा धूलि से ही समुद्र में सेतु बन

---

१. उ० १।१५।

२. वीरभद्रदेव-चम्पू : षष्ठ उच्छ्वास : श्लोक २१, २५, ४२।

जायगा और वीरभद्र के द्वारा शत्रुओं के मस्तक रणदेवता को अर्पित कर दिये जायेंगे—

'धावद्-घोटक-कोटि-टाप दलितैर्भूचक्र-धूलीभरैः-
र्बद्ध्वा सेतुमिहापरं जलनिधावावृत्य लङ्कापुरीम् ।
स्फूर्जत्कार्मुक-निस्सरच्छरकृतैश्छित्त्वा शिरो विद्विषां
षड्यमाङ्गण-देवताः प्रति बलीनामाशु सम्पास्यति ॥'[1]

कीर्ति वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग कर अत्युक्ति प्रदर्शित की है—

'सहज-धवलमच्छं भाल-बालेन्दु-शोभा-
दपि च विमल-कान्ति स्वर्धुनी-वारि-पूरैः ।
निज-वपुरमृतामं निर्जितं यस्य कीर्त्या
धवलयति नितान्तं भस्मना भूतनाथः ॥'[2]

७. चम्पू-साहित्य की परम्परा

डा० व्रजेश्वर वर्मा का कथन है कि 'काव्य की इस विधा (चम्पू) का उल्लेख साहित्य-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों, भामह, दण्डी, वामन आदि ने नहीं किया ।..... चम्पू नाम के प्रकृत काव्य की रचना दसवीं शती के पहले नहीं हुई ।......यह काव्य-रूप अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका और न काव्य-शास्त्र में इसको अधिक मान्यता हुई ।'[3]

आगे चल कर श्री वर्मा स्वयं लिखते हैं कि" 'दण्डी (सातवीं शती) ने......मिश्र (गद्य-पद्य समन्वित काव्य) के नाटकादि और अन्य-मिश्र चम्पू का उल्लेख किया है '[4] इस प्रकार श्री वर्मा स्वयं अपने कथन के विपरीत चले जाते हैं। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि दण्डी द्वारा चम्पू-प्रभेद का उल्लेख ही यह प्रमाणित कर देता है कि अन्य लघुकाव्यों की भांति चम्पू की रचनाएँ भी प्राचीन हैं, यद्यपि उस काल का बहुत कुछ साहित्य नष्ट हो जाने से उपलब्ध नहीं है। साहित्य शास्त्रों में नाटक और महाकाव्य जैसे महा-प्रबन्धों की ही विशेष चर्चा हुई है तथा उनके लक्षणों पर अत्यन्त सूक्ष्मता

---

१. वही : प्रथम उ० : श्लोक ७ ।
२. वही, प्र० उ० : श्लोक ११ ।
३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : संवत् २०१५ : पृ० २८५ : 'चंपू' ।
४. वही : पृ० ८४९ : "साहित्य-रूप" तथा काव्यादर्शः १।३१ 'गद्य-पद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ।'

से विचार हुआ है। लघुकाव्यों पर उतनी सूक्ष्मता से विचार न होना स्वाभाविक और अपेक्षित ही है। गमों लघु-प्रबन्धों की ओर कवियों और शास्त्रकारों ने कम ध्यान दिया है। वही बात चम्पू के साथ है।

यह होते हुए भी आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनव गुप्त ने[1] तथा पीछे हेमचन्द्र[2] और विश्वनाथ ने[3] चम्पू-प्रभेद के उल्लेख किये हैं।

अन्य लघु-प्रबन्धों की भाँति चम्पू में भी रुद्रट की व्याख्या के अनुसार चतुर्वर्ग में से एक वर्ग की सिद्धि की जाती है तथा वह एक रस का ही परिपोष करता है।[4] यह रस प्रायः शृङ्गार या वीर होता है।

इस प्रकार निर्मित चम्पू-ग्रन्थों की परम्परा के सम्बन्ध में कुछ जानकारी है। त्रिविक्रम-कृत नलचम्पू की रचना दसवीं शती के आरम्भ में हुई। भोजराज ने ११ वीं शती में चम्पू-रामायण की रचना की। हेमचन्द्र ने १२ वीं शती के अपने ग्रन्थ काव्यानुशासन में वासवदत्ता-चम्पू को उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया है। इनके अतिरिक्त सोमदेव सूरि का यशस्तिलक, कर्णपूर का आनन्द-वृन्दावन, जीव गोस्वामी का गोपालचम्पू, अनन्त का चम्पू-भारत तथा उत्तर चम्पू-रामायण, मदालसा, नीलकण्ठ, देवराज-चरित और वीरभद्रदेव-चरित आदि चम्पूकाव्यों के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त अनेक चम्पू-ग्रन्थों की रचनाएँ हुई हैं।

लौकिक पद्धति के प्रशस्ति-परक चम्पूकाव्यों में प्रायः किसी युद्ध को लक्ष्य बना कर वीर-रस-प्रधान रचना की जाती है। बीच बीच में शृङ्गार, हास्य, रौद्र, भयानक, अद्भुत आदि रसों के स्पर्श करने वाले कथोतर मुक्तकों का गुम्फन किया जाता है। पौराणिक कथाओं पर आधारित अनुत्पाद्य कोटि के चम्पू प्रायः शृङ्गार-प्रधान पाये जाते हैं और कथा के किसी विशिष्ट अङ्ग की पूर्ति को लक्षित कर काव्यात्मक उद्भावनाओं से युक्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

प्रायः समस्त चम्पू-काव्यों की शैली पाण्डित्य-प्रदर्शन की शैली होती है। इनमें दीर्घ-समास-युक्त, श्लेष-प्रवण, अनेकार्थक और जटिल पदावली के प्रयोग पाए जाते हैं। कथा का प्रवाह मन्द पड़ जाता है और कवि चमत्कार-प्रदर्शन

---

१. उद्योत ३ कारिका ७ : लोचन-टीका : 'आदि-यद्यपाद्यचम्पू:।'

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बंबई : १९०१ : पृ० ३४० 'गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पू:। यथा-वासवदत्ता।'

३. साहित्यदर्पण : निर्णयसागर : बंबई : १९३१ : परि० ६।३३६ : 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'

४. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बंबई : १९२८ अध्याय १६।६।

में उलझ जाता है। यही बात वीरभद्रदेव-चम्पू में प्राप्त है। यह लौकिक पद्धति का प्रशस्ति-परक ग्रन्थ है।

चम्पू काव्यों के लिखने की जो प्रवृत्ति सामान्यतः परिलक्षित होती है, उसी का परिणाम वीरभद्रदेव-चम्पू का प्रणयन है। इसकी पदावली और पाण्डित्यपूर्ण चमत्कृति तुलनात्मक दृष्टि से घट कर नहीं है। अपनी १५ (या १६) कृतियों में से केवल इसी में पद्मनाभ ने काव्यकला का प्रयोग किया है। पद्मनाभ की भाषा सशक्त और प्राञ्जल है, उसकी कल्पनाएँ और सूक्त आकर्षक हैं, उसकी पदयोजना और अलङ्कृति प्रभावोत्पादक हैं। अतः यह काव्य चम्पू-काव्यों के बीच महत्त्वपूर्ण है, साथ ही बघेलखण्ड के काव्यों में यह प्रथम श्रेणी में गिना जायगा।

(ख) विश्वनाथसिंह की कृतियाँ :

सङ्गीत रघुनन्दनम् और रामचन्द्राह्निकम्

१. पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध जानकारी।

सङ्गीत-रघुनन्दनम्—

सरस्वती-कोष-भाण्डार, रीवा में इस ग्रन्थ की ६ प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४ स्टाक १३।१) :

टीका के अन्त में—'पौष सुदी शुक्ले तिथि पौर्णमास्यां बुधवासरे समाप्तम्' है।

(२) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।२)।

(३) पत्रा ५९—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।३)।

(४) पत्रा ४८—प्रारम्भ के दो पत्रा लुप्त (बस्ता १५४।१३।४)। टीका के अन्त में 'माघ सुदि ७ संवत् १८९२ के साल' लिखा है।

(५) प्रारम्भ के २१ पत्रा, खण्डित प्रति (बस्ता १५४।१४।)।

(६) अन्तिम १४ पत्रा, खण्डित प्रति (बस्ता ६।७२)।

प्रथम सर्ग के अंत में मूल में 'महाराजकुमार बाबू साहेब' शब्द हैं। इन सभी प्रतियों में मूल की पुष्पिकाओं में 'महाराजकुमार' और कहीं-कहीं 'बाबू साहेब' शब्द होने से यह निश्चित है कि ग्रन्थ का प्रणयन राजकुमार विश्वनाथसिंह ने किया। प्रारम्भ में प्राप्त यह श्लोक भी इस बात को प्रमाणित करता है—

'विन्ध्ये रिपु-गज-सिंहो जयसिंहो राजसिंहोऽस्ति।
तनुते तस्य तनुजो ग्रन्थं सङ्गीत-रघुनन्दनाख्यम्॥'

इस प्रकार ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) से पूर्व होना चाहिये।

समस्त पाण्डुलिपियाँ टीका-सहित हैं। प्रथम प्रति में टीका के अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति सिद्धि-श्रीमन्महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा-बहादुर-सीतारामचन्द्रकृपा-पात्राधिकारि-श्रीविश्वनाथसिंहदेव-कृतायां व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका-नाम्नि टीकायां षोडशः सर्गः :

राम-प्रेम-चमत्कार-प्रमोदाय महात्मनाम् ।
विश्वेश-विश्वनाथेन कृता व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका ॥'

यह पुष्पिका स्पष्ट करती है कि ग्रन्थ की टीका स्वयं विश्वनाथसिंह ने महाराज होने (१८९१ वि०-१८३४ ई०) के पश्चात् लिखी और उसका नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' रखा।

भाण्डार की उपर्युक्त चौथी प्रति में लिपिकाल 'माघ सुदि ७ सं० १८९२' प्राप्त है। प्रथम प्रति में संवत् नहीं है, केवल पौष-पूर्णिमा का निर्देश है, किन्तु माघ में 'समाप्तम्' शब्द है। यह टीका की समाप्ति की तिथि (पौष १८९२ वि० १८३५ ई०) प्रतीत होती है। अतः यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि १८३५ ई० में टीका लिखी गई।

आफ्रेक्ट ने अपनी सूची में सङ्गीतरघुनन्दन की एक प्रति की जानकारी दी है और लिखा है कि "विश्वनाथ किन्हीं सीता रामचन्द्र बहादुर के अधिकारी थे।"[१] (यह भ्रान्ति 'श्री सीतारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारी' शब्दों के भ्रान्तिपूर्ण उल्लेख से जनित है।)

हरप्रसाद शास्त्री ने बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी में सङ्गीत-रघुनन्दन की एक प्रति का होना सूचित किया है, जिसका लिपिकाल १९३७ वि० (१८८० ई०) है। आपने इसे प्रियादास-कृत माना,[२] जिसका आधार सङ्गीत-रघुनन्दन का गुरु प्रियादास की वन्दना में लिखित यह श्लोक है—

'जयति सच्चिदानन्द-घन-वरद-वर-सर्वगुण-
शालि-शृङ्गार-रस-माल-मूर्तिः ।
सर्व-जन-वत्सलः प्रतिगलित-मत्सरः
प्रेम-पाथोधि-पुरुषार्थ-पूर्तिः ॥

---

१. आफ्रे० भाग १ पृ० ५८९।

२. ए डेस्क० कै० : जिल्द ७ : क्र० ५२५९।

उर्वमत-सर्वमत-सर्ववन्दितचरण-
सर्वधरणामतोद्धृत-विहारी ।
गुरुरूप-रघुवरः श्री प्रियादास इह
विश्वनाथान्तर-मोदकारी ॥'

अन्तिम पंक्ति के आधार पर हरदत्तशर्मा ने भी पहले लिखा कि विश्वनाथ सिंह के आश्रय में किन्हीं प्रियादास ने यह ग्रन्थ लिखा, यद्यपि पुष्पिका देखने से यह विश्वनाथसिंह की ही रचना प्रतीत होती है।'[1] कृष्णमाचारियर को भी हरदत्त शर्मा के इस लेख के आधार पर भ्रान्ति हुई।[2] पीछे अन्य लेख में हरदत्तशर्मा ने सङ्गीतरघुनन्दन की प्रथम और षोडश सर्गों की पुष्पिकाओं के उल्लेख किये (जिनकी चर्चा हरप्रसाद शास्त्री ने की थी) और चर्चा प्रस्तुत कर लिखा कि 'विश्वनाथसिंह निम्न स्तर के कवि नहीं प्रतीत होते, अतः (उपर्युक्त श्लोक के आधार पर) यह आवश्यक और तर्कसम्मत नहीं होगा कि सङ्गीत-रघुनन्दन का कर्ता विश्वनाथसिंह को न मान कर प्रियादास को माना जाय।'[3] श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती और श्री पी० के० गोडे ने रामचन्द्राह्निक के साथ साथ इस ग्रन्थ की चर्चा कर दोनों के प्रणेता विश्वनाथसिंह को ही माना है। श्री गोडे ने यह भी लिखा है कि 'लीडर' (इलाहाबाद) में १५ मई, १९४० ई० को प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने ९ मई, १९४० ई० को एक सभा में रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल से प्राप्त उन्नीसवीं शती की पाण्डुलिपियों में से ४ ग्रन्थ प्रदर्शित किये थे, जो सभी महाराज विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थ थे—

१. रामचन्द्राह्निकम् (२ प्रतियाँ),
२. रामममन्त्रार्थ निर्णयः (बंगला लिपि—सं० १९०७),
३. राधावल्लभीय-मत-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्य (लिपि० सं० १९००) तथा।
४. सङ्गीतरघुनन्दनम् (१९३७ वि०)।[4]

श्री राघवन नेम्बियार ने "सङ्गीत-रघुनन्दनम् सव्याख्यम्" नाम से

१. 'बाघेल रूलर्स ०'।
२. हि० क्ला० सं० लिट्-पृ० ८५० परि० १००० ।
३. 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास ऐण्ड हिज वर्क्स' : इ० हि० :' भाग १६: १९४०: पृ० ३१८-१९।
४. 'संस्कृत वर्क्स०' : पृ० ४५५-५६ तथा पी० के गोडे : 'संस्कृत ऐण्ड हिन्दी वर्क्स०'।

बड़ौदा में एक प्रति होने का उल्लेख किया है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है और व्याख्या का नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' है[१]। कृष्णमाचारियर ने सङ्गीत-रघुनन्दन की ३ पाण्डुलिपियों की सूचना दी है।[२] इस प्रकार इस ग्रन्थ की लोकप्रियता सूचित होती है।

रामचन्द्राह्निकम्—

सरस्वती-कोष-भाण्डार रीवा में इस ग्रन्थ की एक सम्पूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है। इसमें ५१ पन्ना हैं।[३] रामवन (जिला सतना) में भी ५० पन्ना की एक सम्पूर्ण प्रति है।[४]

आफे ने रामचन्द्राह्निक की दो प्रतियों की जानकारी दी है।[५] हरप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत-ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ की २ प्रतियों के उल्लेख किये हैं।[६] कृष्णमाचारियर ने इस ग्रन्थ का अनेकशः उल्लेख किया है।[७] चिन्ताहरण चक्रवर्ती[८] और पी. के. गोडे[९] ने इस काव्य की चर्चा की है। अतः यह भी लोकप्रिय रचना मानी जा सकती है। समस्त प्रतियाँ टीका-सहित हैं।

---

१. ऐन अल्फाबेटिकल लिस्ट आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ओरिएंटल इंस्टीट्यूट आफ बड़ोदाः भाग २ : १९५० : पृ० १०५०ः ग्रन्थ क्र० ८२५।१३०८१।

२. हि० क्ला० सं० लिट्० पृ० ८५१—१. कैटेलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स इन अडियार लाइब्रेरी : भाग २।४५ : ।२. कैटे० अवध० भाग ५।१८। पृ० ३४४ : कैटे० अलवर-९८०।
देखिये परिच्छेद २९८, ८८०, १००१।

३. बस्ता १३६।२१।१।

४. तुलसी-संग्रहालय, ग्रन्थ क्र० २८०९।

५. मित्रा० भाग १।७३। इस प्रति की प्राप्ति बनारस के बाबू हरिश्चन्द्र के यहाँ से हुई थी। इसका नाम रामचन्द्रचम्पू है। अन्तिम पुष्पिका-रामचन्द्राह्निक-टीकायामष्टमो यामः।' अर्थात् इसमें अध्यायों के नाम याम हैं, जिनकी संख्या ८ है। इस पुष्पिका में लिपिक की भूल से 'विश्वनाथसिंह-जूदेव' के स्थान पर 'विश्वनाथसिंह भूदेव' लिखा है। तथा कैटे० अलवर०क्र०९६२ : 'रामचन्द्राह्निकम्'।

६. ए० डेस्० कै० : क्र० ५२५५ और ५२५६।

७. हि० क्ला० सं० लिट्० परि० ५४१,९६२,१०००, १०६४।

८. 'संस्कृत वर्क्स०'।

९. 'संस्कृत एंड हिन्दी वर्क्स०'।

ग्रन्थ का मूल और उसकी टीका दोनों ही 'महाराज-विश्वनाथसिंह-कृत' हैं। प्रथम याम के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

मूल—'इति सिद्धिश्री महाराजाधिराजा-श्रीराजाबहादुर-रामचन्द्रकृपापात्रा-धिकारि-श्री विश्वनाथसिंहजूदेव-विरचिते श्रीरामचन्द्राह्निके प्रथमो यामः।'

टीका—'इति श्री·······विश्वनाथसिंहजूदेव-विरचितायां·········· रामचन्द्राह्निक-टीकायां········।'

अर्थात् टीका का कोई नाम नहीं रखा गया है।[1]

टीका की प्रति में अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्रीमहाराजा०···रामचन्द्राह्निके टीकायां अष्टमोऽध्यायः।'

प्रकार प्रतीत होता है कि किसी लिपिक ने 'याम' में अन्त किया है और किसी ने 'अध्याय' में। आह्निक में वास्तव में श्रीराम की दिनचर्या यामों (प्रहरों) में विभाजित की गई है। अतः 'याम' शब्द ही उपयुक्त है।

ग्रन्थ का रचनाकाल कहीं सूचित नहीं है। प्रतीत होता है कि सङ्गीत-रघुनन्दन की टीका (१८३५ ई०) पूरी करने के पश्चात् श्रीराम में शृङ्गारी रूप के चित्रण की अधिक लालसा से महाराज ने इस रामचन्द्राह्निक ग्रन्थ का निर्माण किया और स्वयं टीका लिखी। अतः इन दोनों की सृष्टि १८३५ से १८५४ ई० के बीच की गई।

टीका के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक है—

'दिव्याणो रघुनन्दने परतर-स्नेहस्य संसिद्धये
सिद्धिश्री-जयसिंहदेव-तनय-श्री विश्वनाथास्यतः।
बन्धैः संसृति-भीरुभिर्गुरुपदैर्यो गरीयानसौ,
ग्रन्थश्चीक्रियतेऽधुना प्रकटितः श्रीरामचन्द्राह्निकः॥'[2]

इस श्लोक में भी विश्वनाथ के मुख से गुरुचरण (प्रियादास) ही रामचन्द्राह्निक को स्पष्ट कर रहे हैं, जैसे कि सङ्गीत-रघुनन्दन में पीछे निर्दिष्ट श्लोक में विश्वनाथ के अन्तःकरण में प्रविष्ट गुरु प्रियादास ने गीत लिखे हैं। यह कवि का विनम्र शिष्टाचार है कि वह अपने कृतित्व का श्रेय गुरुचरणों को देना चाहता है। प्रियादास ने भी अपनी कृतियों का श्रेय अपने गुरु को दिया है।[3]

---

१. रामवन की प्रति : पृष्ठ १३।
२. वही, पृ० ७.
३. सुसिद्धान्तोत्तम, भक्तिप्रभा आदि सभी ग्रन्थों में।

२. कथातत्त्व : (अ) सङ्गीतरघुनन्दनम्

सङ्गीत-रघुनन्दन को गीतगोविन्द की शैली की पूर्णतः अनुकृति कहा जा सकता है। यह भी १६ सर्गों में विभाजित है। कथा का तत्त्व अवश्य ही रामकथा पर आधारित, अतः मौलिक है। इसमें श्रीराम को रास-रसिक[1] और सीता को रासेश्वरी[2] रूप में चित्रित किया गया है। कथानक का स्थल अयोध्या का राजभवन और सरयूतट, विषय रासक्रीड़ा और काल श्रीराम का राज्य-काल है। इसमें श्रीराम का नितान्त व्यक्तिगत आनन्दमय जीवन चित्रित है, जिसमें पात्र केवल राम और सीता हैं तथा सखियाँ सहायिकाओं के रूप में हैं। कथानक पर श्रीमद्भागवत के रासवर्णन की भी छाया है। सर्ग छोटे छोटे हैं।

प्रथम सर्ग में वन्दना और मङ्गलाचरण है, जिसमें दशावतार और अन्य अवतारों की भी वन्दनाएँ गीतगोविन्द की भाँति हैं।

द्वितीय सर्ग में ३ गीतों में गुह-रास-वर्णन हैं। इसमें सीता का स्वाधीन-पतिका भाव चित्रित है। कोई सखी रास-नृत्य का वर्णन करती है।[3]

तृतीय सर्ग में गद्य के प्रयोग से वसन्त ऋतु को चित्रित कर वसन्त रास के अन्तर्गत नृत्य प्रस्तुत किया गया है। श्रीराम भी नृत्य करते हैं।[4]

चतुर्थ सर्ग में सीता अन्तर्धान होकर राम के विरह में गीत गाती हैं। राम की प्रेरणा से कामा और वसन्तिका सखियाँ रत्नाद्रि-कुञ्ज में सीता को ढूँढ कर राम का गुणगान सुनाती हैं।

पञ्चम सर्ग में कामा के उक्त गीत से प्रभावित जानकी की व्यथा को देखकर सखियों की परस्पर वार्ता का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग में कमला सखी चारुशीला से सीता की विरह-व्यथा को स्पष्ट करती हुई उसे राम को बुलाने को भेजती है। राम सीता के पास आ जाते हैं।

---

१. सर्ग १।७ : टीका-'श्रीराम-रास-रसिक-विनोदाय विधीयते।'

२. वही, १।२ : 'सर्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता नयतां मदीय भणितिं रासेश्वरी चारुताम्॥'

३. सर्ग २।३ : गायति काचन नृत्यति काचन रमयति काचन रामम्।
कापि च नटयति कापि च रटयति कापि च घटयति कामम्॥
रमणीमण्डलमिह कुण्डलितं नृत्यति गति-सङ्गीतम्।
गायति सरति सीतया साकं श्रीरामो रस-गीतम्॥'

४. सर्ग ३ : 'ताथ ताथ-तत्थइ-तत्थइ-थइ-निनदापूरित-दावम्।
वीणा-नाद सुसङ्गत-सिञ्जितमर्धक-व्यञ्जित-भावम्॥'

सप्तम सर्ग में राम सीता को मनाते हैं। उनके दो गीत यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं। सीता आँखें खोलती हैं। सीता और राम का समागम होता है।[1]

अष्टम सर्ग में सीता-राम का मिलन देखकर सखियाँ गीत गाती हैं। राम सीता का शृङ्गार करते हैं।

नवम सर्ग में एक भवन में आकर सीता और राम परस्पर झूला झुलाते हैं।[2] सखी गीत गाती हैं।

दशम सर्ग में सीता और सखियों को लेकर राम सरयू तट पर विहार करने जाते हैं। यहाँ सखी राम की सर्वाङ्ग शोभा का वर्णन करती हैं।

एकादश सर्ग में सखी पति के साथ क्रीड़ा करती हुई सीता का वर्णन करती है। यहीं पर रासक्रीड़ा होती है। राम गीत गाते हैं तथा सीता और राम नृत्य करते हैं। यह काव्य का सर्वोत्कृष्ट अंश है।[3] यहाँ भागवत की छाया है।

द्वादश सर्ग में भागवत की रास-कथा का अनुसरण आगे बढ़ता है। सखियों के गर्व को दूर करने के लिये राम अन्तर्हित हो जाते हैं। सखियों का विरह-वर्णन प्रभावी है।[4]

त्रयोदश सर्ग में राम प्रकट होते हैं। सखियों की संयोग-चेष्टाओं का कवि वर्णन करता है। राम सीता से सरयू का वर्णन करते हैं।

चतुर्दश सर्ग में जलक्रीड़ा का वर्णन है। सरयूतट पर विहार होता है। सीता और राम सिंहासन पर बैठ कर परस्पर रसानुभव करते हैं।

पञ्चदश सर्ग में सबके साथ राम राजभवन लौट आते हैं। प्राङ्गण में

---

१. 'निमिराज-सुता विविभ्रमन्ती रमणं रास-परायणं हृदब्जे।
समवाप्य सुमालिका-सुगन्धि सहज-स्नेह-समाकुलाऽऽलिलिङ्ग॥'

२. 'परस्परान्दोलन-हर्ष-विह्वलौ परस्पर-प्रेम-रसानुसारिणौ।
परस्परालोकन-कौतुकान्वितावुभौ समालोक्य जगाद काचन॥'

३. 'प्रकाश्य परमानन्दं परमानन्द-विग्रहः।
रामो रमयते रामां रास-सङ्गीत-नर्तनैः॥'

४. 'नृत्यन्ती रासमध्ये निजगुण-गुरुता-गर्व सम्भार-भाजः
प्रेयांसं प्रीयमाणं स्ववशमुपगतं निर्भरं मन्यमानाः।
रामा रामोऽवलोक्याभिमतिमुपचितां हर्तुकामस्तदानीं
तासामन्तर्हितोऽभूत्प्रियतम विरह-व्याकुलास्ता विचेरुः॥'
तथा 'पृच्छन्ति स्म लता-तरून्……।'

रासलीला होती है। यहाँ काव्य समाप्त हो जाता है। अन्त में तीन पृष्ठों में समस्त सखियों की सूची दी गई है।

षोडश सर्ग में साम्प्रदायिक उपासना प्रदर्शित की गई है। नीराजन एवं भावपूर्ण पद्य और मङ्गलगीत के साथ कवि ग्रन्थ का उपसंहार करता है।

सर्वत्र विस्तृत टीका प्रस्तुत कर भाव स्पष्ट किये गए हैं।

इस काव्य में प्रयुक्त गद्य गीतात्मक और अत्यल्प है। अतः यह खण्ड-काव्य ही माना गया है। शैली की दृष्टि से यह मधुर गीति-काव्य है। गीतों और नृत्यों से पूर्ण होने से यह नाट्य गीति माना जा सकता है।

रामचन्द्राह्निकम्—इस ग्रन्थ में भी श्रीराम और सीता ही प्रमुख पात्र हैं तथापि इसमें श्रीराम का सामाजिक जीवन चित्रित है। इसमें श्रीराम का राजकुमार अवस्था में विवाहोत्तर जीवन अङ्कित हुआ है। वैभव और विलास के बीच, राज्य-भार से मुक्त श्रीराम एक दिव्य, आनन्दमय, निश्चिन्त तरुण-जीवन बिता रहे हैं।

श्रीराम की दिनचर्या आठ यामों में विभाजित कर उनके आह्निक[1] का सविस्तर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। तूर्यनाद आदि के द्वारा याम बीतने की सूचना दी जाती है।

प्रथम याम में अलस-भाव में स्थित श्रीराम को प्रभात-काल में वन्दी-जन जगाते हैं। सखाओं से मिल कर श्रीराम स्नान करते हैं। उनका शृङ्गार होता है। सीता आकर श्रीराम का पूजन करती हैं। सिंहासन पर सीता और श्रीराम अधिष्ठित होते हैं। सखियाँ आरती उतार कर गीत-नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

द्वितीय याम अधिक विवरणात्मक है। श्रीराम बाहर सभाभवन में आते हैं और ऊर्मिला आदि के साथ सीता सासों की सेवा करने जाती हैं। सभा-भवन में भरत आदि श्रीराम का षोडशोपचार पूजन करते हैं। श्रीराम कौतुक देखते हैं, गजारोहण और अश्वारोहण करते हैं तथा लक्ष्मीनिधि आदि के साथ नगर मार्गों से निकलते हैं। लाजा-वर्षण होता है। श्रीराम दशरथ के भवन में जाते हैं। पिता का वात्सल्य-लाभ कर वे मातृदर्शन करते हैं। वहाँ भोजन कर गीत-नृत्य देखते हैं। पुनः वे पिता के साथ भोजन करते हैं। यहाँ तक सखा साथ में रहते हैं। फिर श्रीराम हाथी पर चढ़ कर अपने भवन आते हैं और निद्रा लेते हैं। द्वितीय याम की झल्लारिका होती है। श्रीराम को जगा-कर बतलाया जाता है कि व्याघ्र ने महिष को वन में मारा है।

---

१. विश्वनाथसिंह की टीका : 'अह्नः निर्वृत्तं कर्म आह्निकम्।'

तृतीय याम में श्रीराम मृगया के लिये जाते हैं। यहाँ मृगया की तैयारी, राजपथ से निकलने, पौरों की चर्चा, वन-प्रदेश, व्याघ्रावरोध, व्याघ्र, और अन्य जन्तुओं के वध तथा तालाब में मत्स्यवध आदि का विस्तृत वर्णन है।

कौशल्या की सेवा कर सीता लौटती हैं और श्रीराम को मृगयार्थ गए हुए पाकर अधीर हो जाती हैं। वे सखी को श्रीराम को बुलाने को भेजती हैं। श्रीराम मृगया से उत्साहित होकर जल में तैर रहे हैं। वे दूती की बात नहीं सुनते। सखा के समझाने से श्रीराम लौटना स्वीकार करते हैं। दूती लौटकर सीता को बतलाती है। सीता लौटते हुए श्रीराम को सौध शिखर से देखती हैं। श्रीराम और सीता मिलते हैं और वार्ता करते हैं। इस समय सहजा सखी प्रणयकोप से श्रीराम पर व्यङ्ग्य कर मानवती होकर चली जाती है।

चतुर्थ याम में श्रीराम प्रमदवन में विहारार्थ जाते हैं। सखियाँ वसन्त का आगमन सूचित कर होली खेलने का प्रस्ताव रखती हैं, किन्तु सहजा की अनुपस्थिति में श्रीराम नहीं खेलेंगे, इस पर वे ताने कसती हैं। श्रीराम सहजा का पता लगाते हैं।

पञ्चम याम में श्रीराम होली खेलने की तैयारी का आदेश देकर सहजा के भवन को जाते हैं। उसे मना लाते हैं। खेल की सामग्री जुटती है और सखियाँ खेल आरम्भ कर देती हैं।

षष्ठ याम में होली-खेल का सविस्तर वर्णन है। बीच-बीच में नायिका-भेद, मान करना, मनाना आदि है। अर्द्धरात्रि को झल्लरिका सुनकर होली-खेल बन्द होता है। श्रीराम सिंहासन पर विराजते हैं। वाम भाग में सीता और दक्षिण भाग में सहजा सखी रहती हैं।[१]

वास्तव में कथा यहीं समाप्त होती है। इसके पश्चात् सिंहासन पर सुशोभित श्रीराम का सखियों द्वारा षोडशोपचार पूजन और आरती होती है। श्रीराम शयनागार में प्रवेश कर पर्यङ्क पर जाते हैं। पहरुए चतुर्विध वाद्यध्वनि करते हैं। श्रीराम रमणी (सीता) से मृदु गीत सुनते हैं और वह उन्हें

---

१. रीवां की प्रति में मूल में भूल से यहाँ 'इति....सप्तमो यामः' लिखा है। उक्त प्रसङ्ग का अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है—

रास-मण्डले कल्यन्तामी रामो होली खेलाम्।
अर्द्धनिशा-झल्लरिकां श्रुत्वा ज्ञात्वा शयितुं वेलाम्॥

वामेतरे सहजया सहितस्तथा सीतया वामे।
रेजे विश्वनाथ-नाथो मणि-सिंहासनेऽभिरामे॥'

कोई कामकथा कहती हैं। टीका के अनुसार यहाँ विहार व्यञ्जित है। यहीं सप्तम याम की समाप्ति सूचित है।[1]

अगले पृष्ठों में अनुक्रमणिका में कवि ने ध्यान प्रस्तुत कर आह्निक-विधि का पद्यात्मक सार प्रस्तुत किया है। यहाँ आह्निक के विकल्प प्रस्तुत किये गए हैं; जैसे—श्रीराम कभी-कभी भवन में स्नान न कर सरयू में नहाने जाते हैं। वे कभी दशरथ के साथ, कभी माता के यहाँ और कभी अपने भवन में ही भोजन करते हैं। वे कभी मृगया को जाते हैं तो कभी करमूल्पट, उपवन या भवन में ही सखाओं के साथ खेलते हैं, कभी शस्त्राभ्यास, काव्यरचना, सङ्गीत-श्रवण आदि में सखाजनों के साथ समय बिताते हैं। वे कभी दर्शनार्थ आए हुए मुनि-जनों से मिलते हैं, कभी रणाङ्गण में धनुर्धर करते हैं। सायङ्काल के पश्चात् सखियों और जानकी के साथ नित्य विहार करते हैं, तब सोने जाते हैं। उस समय चतुर सखियाँ कथा कहती हैं अथवा कुछ समय तक गीत चलते हैं। इस वर्णन के अन्त में श्रीराम की स्तुति है तथा अन्त में टीका में 'इति... अष्टमो यामः' लिखा है।

३. शैली और काव्य-सौन्दर्य (अ)सङ्गीत-रघुनन्दन का गद्यकाव्य :

सङ्गीत-रघुनन्दन में अपेक्षाकृत गद्यों का प्रयोग कम हुआ है। उनमें से कुछ गद्य निर्देशात्मक रूप में प्राप्त हैं, जो इस ग्रन्थ को गीति-नाट्य का रूप देते हैं। मूलतः यह ग्रन्थ पद्यात्मक है और ग्रंथकार का लक्ष्य गीति प्रस्तुत करना है। इस लक्ष्य के साथ कथा का आधार होने से पीछे हमने इसे गीत-गोविन्द की भाँति खण्डकाव्य माना है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ गीत-गोविन्द में सर्वथा पद्यों का ही प्रयोग है, निर्देश भी पद्यात्मक है, वहाँ सङ्गीत-रघुनन्दन में गद्य-बद्ध निर्देश है। इसके अतिरिक्त काव्य-सृष्टि के लक्ष्य के साथ भी गद्यों के प्रयोग हैं। इनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं। हम कह सकते हैं कि कवि ने कादम्बरी से प्रेरणा ली होगी किन्तु यह बात समस्त परवर्ती गद्य-काव्यों के लिये कही जा सकती है। अतः सङ्गीत-रघुनन्दन में प्राप्त काव्यात्मक गद्यों को हम मौलिक ही मानेंगे। इनमें दीर्घ समासों किन्तु ललित

---

१. मूल—रमणी बहुरमणीय-रागतो सुस्वयन्मृदु स्वरं गायन्ती।
विश्वनाय-नाथं रघुनाथं कामपि कामकथां कथयन्ती॥'

टीका—'अत्र कामकथा-कथन-रूप-वस्तुनि

तत्रापि विहाररूपं वस्तु व्यज्यते। इति सप्तमो यामः॥' यह शब्द-शक्त्युत्थ संलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्य-ध्वनि का उदाहरण है।

एवं कोमल-कान्त-पदावली के साथ उत्कलिका-प्राय शैली में गद्यों के दर्शन होते हैं। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

'मालती-लवङ्ग-वल्लयः कुसुमिताः किसलय-सम्भारनताः कूजन्मधुमत्त-कोकिला गुञ्जत् षड्ङ्घ्रिनिकराः शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीरणोल्लासिताः पाद-पालिङ्गनोत्सुका नितान्तकान्ताभिसरणोद्यता वनिता इव लता यत्र विलसन्ति तस्मिन् वसन्तागमे वनोपवन-वाटिकासु विहरति वल्लभित-वधू-व्रज-वलित-विलास-समुल्लासित-मानसे-मान-मोचापनोदन-चतुरे मनोमन्मथ इव जनकनन्दिनी-सहिते श्रीरघुनन्दन आलपति युगल-प्रेम-परिपूर्णो विश्वनाथो वसन्तरागमिमम्।' (सर्ग १)

इसी प्रकार काव्य के अन्त में एक सुन्दर गद्य-रूपक प्राप्त है, जिसमें कवि गीत और भाव से विभोर हो उठा है। यहाँ कवि की सङ्गीत-मर्मज्ञता का परिचय भी मिलता है —

'विश्वनाथ-मानस-सरो-निःसृत-छन्दः-कोकनदव्यद्द्राय-मकरन्दमिश्रित-रागरस-सम्भृत-तालग्रामालवलित-तान-तरङ्गोच्छलित-मूर्च्छनामीनसङ्कुलित-सप्तस्वरावर्त-कलित-श्रुतिमरालकुलाकुलित-लघुगुरु-प्लुतादिभेद-पुलिनोज्ज्वलित — ज्ञानकमंकूल-दलनोल्लसित - विविधपाद - गीतकुमुदिनीलहरित - लयसत्त्वरिस-सच्छुवणसागर-मिलितसीतारामचलित-सरिद्रूप त्वामहं गायामि।' (सर्ग १६)

(आ) रामचन्द्राह्निक का गद्य-काव्य :

सङ्गीत-रघुनन्दन की उपर्युक्त मौलिकता रामचन्द्राह्निक में बहुत कम रह गई है। इसमें कथा-विस्तार की दृष्टि से भी गद्यों का प्रयोग हुआ है और जैसा 'रामचन्द्र-चम्पू' शब्द से ग्रन्थ का लक्ष्य स्पष्ट है, कवि गद्य-प्रयोग के लिये भी उतना ही उत्सुक है, जितना पद्य-प्रयोग के लिये। इस स्थिति में विश्वनाथसिंह ने राम की *दिनचर्या बतलाते समय कादम्बरी के सम्बद्ध अंशों* के अनुकरण किये हैं। अनेक स्थल ऐसे हैं, जिन पर कादम्बरी की छाया है किन्तु उससे भी अधिक स्थल ऐसे हैं जिनमें कादम्बरी की भाँति शब्द-प्रयोग भी हैं। कथा के आधारों पर भी वही छाया है। शूद्रक और तारापीड का राजवैभव एवं चन्द्रापीड का गौरव थोड़े बहुत हेरफेर के साथ दशरथ के वैभव और राम के गौरव के रूप में परिणत कर दिया गया है। कादम्बरी के शब्दशः अनुकरणों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

'कृत-दन्तधावनश्च....सलीलं सलिलकुण्डमवततार।
अवतीर्णश्च...समयमुपमर्दितशरीरः कुण्डसलिला—
त्समुत्थाय मूर्तिमान् शृङ्गार इव मूर्तिमन्तमनुरागमिव

पद्मरागपीठमलङ्चकार (राम० प्रथम याम)[१]

'कृत-मधुरव्यायामः.......स्नानभूमिमगच्छत् ।

....वारिमध्यप्रविष्टः....रराज राजा ।

द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममल स्फटिक-धवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह ।' (काद० पूर्व० शूद्रकवर्णनम्)[२]

'ततः...सद्यः समागत्य काश्चिन्मरकत-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-श्यामायमान-शरीरा अनेक-ब्रह्माण्ड-समागताः कलिन्द-कन्यका इव कमलिनी-दल-पुटैः काश्चिन्माणिक्य-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-शोणायमान-शरीराः सरस्वत्य इव दर-दलित-कोकनद-कोरकैः काश्चिद् हीरक-कलशहस्ताः कलशोत्क्षेपण-श्रम स्वेदार्द्र-शरीरा विविधरूपधरा गङ्गा इव प्रभात-पुण्डरीकैः श्रीमन्महाराज-कुमारं रघुनन्दनं स्नापयामासुः ।' (राम० प्रथम०)[३]

'ततस्ताः काश्चिन्मरकत-कलश-प्रभा-श्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः काश्चिद्रजतकलश-हस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्र-मण्डल-निर्गतेन ज्योत्स्ना-प्रवाहेण काश्चित् कलशोत्क्षेप-श्रम-स्वेदार्द्रशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलशैः स्तीर्थजलेन'''राजानमभिषिषिचुः ।' (का० पू० शूद्रक०)[४]

'तत्र च राजानोऽहमहमिकया प्रणामलालसाः सरभसापनीतातपत्रातपाः भूम्यधिरस एकैकतश्च स्व-नाम-ग्रहण-पूर्वकं प्रविचलित-मुकुट-पद्मराग-किरणोद्गमच्छलेनान्तःकरणादधिका '''''''मनुरागमिवो-द्वमयद्भिर्दूरावनतैः शिरोभिः श्रीरघुनन्दनं प्रणेमुः ।' (राम० द्वितीय०)[५]

'अहमहमिकया च प्रणामलालसाः सरभसापनीतातपत्र-भूम्यधिरसः'''राज-पुत्रास्तं पर्यवारयन्त । एकैकशश्च प्रतिनामग्रहमावेदमाना बलाहृकेन विचलित-मुकुट-पद्मराग-किरणोद्गमच्छलेनानुरागमिवोद्वमद्भिः''''''दूरावनतैः शिरोभिः प्रणेमुः ।' (का० पू० चन्द्रापीड०)[६]

'''' कृतप्रणाममेहीहीत्यभिदधानो दूरादेव प्रसारित-भुजयुगलः सिंहासनादीष-दुल्लासित-मूर्तिरानन्द-जलापूर्यमाण-लोचनः समुद्गत-पुलकतया सोऽग्न्नियैकी-कुर्वन्निव पिबन्निव पिता विनयावनतात्मजमालिलिङ्ग ।' (राम० द्वितीय०)[७]

१. स० को० भा० रोवा की प्रति ।
२. पण्डित-पुस्तकालय : काशी : १९९९ : पृ० ३०-३१ ।
३. रीवा की प्रति ।
४. पृ० ३१-३२ ।
५. रामकन की प्रति : पृ० १६ ।
६. पृ० १७२ ।
७. रामवन० : पृ० १८ ।

'......कृतप्रणाममेहोहीत्यभिदधानो दूरादेव प्रसारित-भुजयुगल: शयनतला-दोपदुत्थ्रसित-मूर्तिरानन्द-जल पूर्यमाणलोचनः समुद्गत-पुलकतयासोऽयलि-वैकीकुर्वन्निव पिबन्निव तं पिता विनयावनतमालिलिङ्ग ।' (का० पू० चन्द्रापीड०)

ऊपर प्रदर्शित प्रकार की छाया रामचन्द्राह्निक के गद्य-भाग में प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। नवीनता इतनी है कि उपजीव्य ग्रन्थ कादम्बरी के रम-णीक गद्यांशों का प्रयोग राम के अष्टयाम-वर्णन के रूप में कर दिया गया है। कथा के आधार के अनुकूल कवि ने स्वकृत गद्य-साहित्य का योग भी बीच-बीच में किया है, यद्यपि शैली की छाया वहाँ भी प्राप्त है।[1] इस रूप में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :—

'ततो यामविराम-बोधिकां वृहत्-मल्लरिकां श्रुत्वा निज-निज-परिचर्यो-पसाधन-सामग्री-सनाथ-पाणिना परिचारिका-वर्गेण सखीसमूहेन चानुगम्यमानया जानक्योपशोभित-वामभाग आभ्यन्तरीय-प्रथमकक्षाभ्यन्तरं प्राप्य सखी-हस्त-गृहीत चत्र-चामर व्यजनैर्भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नैः प्रिय-सख-सलैश्च प्रणम्यमानो रघुनन्दनस्सादरं तान् सत्कृत्य जानकीं विसृज्य बहिरुपससार।'

'तत इतस्ततः प्रधावतां जनानां सङ्घर्षविलोकन-कुपित-तुरङ्ग-हेषणाघर्षण-रथचरण-नेमीनां झञ्झनायमान-किङ्किणीनां घणघणायमान-घण्टानां सरभस-महामात्र-परावर्तित-गजेन्द्र-बृंहितानां स्वर्णमय-व्याघ्रमुख-दण्डहस्तानां जयजीवा-वलोकयेत्यभिदधानानां प्रतीहाराणां सरभसं प्रयमतां स्वनायमानाभरणानां च निनाद एकीभूय ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरमभिपूरयन्नद्भुतो ध्वनिराविरासीत्।'

(इ) सङ्गीत-रघुनन्दन का पद्य-काव्य—

प्रस्तुत काव्य के अन्तिम सोलहवें सर्ग का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

'एषा माधुर्य-धारा धरणितल-गता विस्तराद-प्रचारा
भास्वद्रसन्तान-सारा परिहृत-विशद-ध्यान-सन्धान-सारा।
पापौघोदम्भदारा भव-जलधि-समुत्तारणे नौरुदारा
भृङ्गारैक-प्रचारा जयति पर-गुण-ग्राहक-स्वान्तकारा ॥'

इसकी स्वकृत टीका में विश्वनाथसिंह ने लिखा है कि—'ईदृशोऽन्येषु ग्रन्थेषु माधुर्यरसः नास्ति।' अर्थात् सं० १८९२ से पूर्व विश्वनाथसिंह ने जो ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें उन्हीं के मत से माधुर्यरस इस मात्रा में नहीं आ पाया है। उनकी यह उक्ति उनके परवर्ती ग्रन्थों के लिये भी सत्य हुई है। अर्थात् रामचन्द्राह्निक आदि ग्रन्थों में जो यद्यपि प्रचुर मात्रा में माधुर्य की सृष्टि की

---

१. रामचन्द्र की प्रति : पृ० १३ तथा पृ० १६। तुलना के लिये देखिये—कादम्बरी—पूर्वभाग में शूद्रक और चन्द्रापीड के प्रसङ्ग।

गई हैं, तथापि शृङ्गार रस और माधुर्य भक्ति से पूर्ण भावाङ्कन के क्षेत्र में सङ्गीत रघुनन्दन विश्वनाथसिंह के ग्रन्थों में अद्वितीय रह गया है। गीत-गोविन्द की शैली में रचित रघुराजसिंह के स्तुति-काव्यों में यद्यपि माधुर्य-भाव और शृङ्गार-रस के आकर्षक उन्मेष उपलब्ध हैं, सङ्गीत-रघुनन्दन का स्वर उससे अधिक उच्च, तीव्र, गम्भीर एवं प्रभावी है। पद्यों में प्रयुक्त भाषा अलङ्कृत और समास-युक्त होते हुए भी सरल, बोधगम्य, प्रवाहपूर्ण एवं ललित है। इसे हम शृङ्गार रस के अनुकूल वैदर्भी रीति, कोमला वृत्ति एवं प्रसाद गुण से पूर्ण पाते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, सम्पूर्ण काव्य में गीतगोविन्द की शैली और यत्र-तत्र पदावली की भी अनुकृति है। यह होते हुए भी अपनी कथा के अनुकूल कवि ने मौलिकता और नवीनता लाने का पर्याप्त प्रयास किया है और बहुत अंशों में वह सफल हुआ है। काव्य में प्राप्त गीतों के वृत्त और उनकी रचना शैली भी गीतगोविन्द का सर्वथा अनुसरण करती है। कवि का स्वतन्त्र भावातिरेक लगभग समस्त काव्य में प्राप्त होने से यह ग्रन्थ सम्पूर्णतः सफल गीति-काव्य है।

प्रारम्भ में २४ अवतारों की वन्दना के पश्चात् दशावतार-वन्दना निम्न-लिखित रूप में तुलनात्मक दृष्टि से द्रष्टव्य है—

'नृप-बोधद-वेद-क्षिति-पालनकारी,
प्रलय-पयोधि-सलिल-सञ्चारी,
श्रीरघुवर मीन-सुरूप, जय जगदीशपते।
जलधि-मथन-बहु-खिन्न-सुरासुर-त्राता,
जल-तल-यात-मन्थ-नग-धाता,
श्रीरघुवर कमठ-सुरूप, जय जगदीशपते॥'[1]

'प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्,
विहित-वहित्र-चरित्रमखेदम्,
केशवधृत-मीन-शरीर, जय जगदीश हरे।
क्षितिरति-विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे,
धरणि-धरण-किण चक्र-गरिष्ठे,
केशव-धृत-कच्छप-रूप, जय जगदीश हरे॥'[2]

---

१. सङ्गीत० सर्ग १ : सरस्वती-कोष-भण्डार रीवा की प्रति-१५४।१३।२ : पृ० ६।

२. गीतगोविन्द : निर्णयसागर : बम्बई : १९२९ : पृ० १०–११ : सर्ग १।१।१-२।

'मीनाकारवपुषे महीमुद्धरते दैत्यान् हतो रक्षते,
धर्मानाचरते स्मृती रक्षयतेऽधर्मं निराकुर्वते ।
भक्तान् भावयते यशो जनयते बाणान् धनुर्बिभ्रते
साकेत-प्रमदावने विहरते रामाय तुभ्यं नमः ॥'[१]

'वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्र-क्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते,
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥'[२]

'ललिताकौमल-मण्डित , रस-पण्डित हे ।
चपल-चटुल-मणिमाल जय जय राम हरे ॥
क्षितिनृप-मण्डल-मण्डन खल-खण्डन हे ।
समुद्दण्ड-कोदण्ड जय जय राम हरे ॥
हत-दूषण-खर-दूषण भवभूषण हे ।
दशमुख-गज मृगराज जय जय राम हरे ॥
विश्वनाथ , जनरक्षण शुभलक्षण हे ।
श्रम-निगमागम-गीत जय जय राम हरे ॥'[३]

इसी प्रकार विश्वनाथसिंह ने अनेक पद प्रस्तुत कर गीतात्मक लयबद्धता के साथ उल्लासमय गीति प्रदर्शित करने का प्रयास किया है । यद्यपि गीतगोविन्द के पदों के साथ तुलना करने से विश्वनाथसिंह के पदों में वह लालित्य, सुयोजित पद-योजना और श्रुति-माधुर्य नहीं आ सका है, यह एक ही दृष्टि में कहा जा सकता है, तथापि जयदेव को अजेय मानने के पश्चात् विश्वनाथसिंह का १९वीं शती के पूर्वार्द्ध का यह प्रयास निराशाजनक नहीं है । उदाहरण के लिये कुछ मधुरतर पद नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

'मृदुलसमीरे सरयूतीरे विलसित-ललित-तिलकनम् ।
काञ्चन-थाले मणिमयजाले मन्ये मदनमुदयनम् ॥
चन्दन-चर्चित-कुसुम-समर्चित-महो-परम-रमणीयम् ।
चन्द्र-सुचुम्बित-चन्द्रकान्त-चय-चलित-सलिल-कमनीयम् ॥'[४]

---

१. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ ।
२. गीत० सर्ग १।१।१२ ।
३. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ । तुलना के लिये देखिये गीतगोविन्द : सर्ग १।२ : 'श्रित-कमला-कुच-मण्डल-धृतकुण्डल ए··· ।'
४. सङ्गीत० : सर्ग २।१ : पाण्डुलिपि १५४ । १३ । २ : पृ० १४ : देखिये गीत० सर्ग ५ । ११ : 'धीरसमीरे यमुनातीरे··· ।'

'विहरति रघुपतिरिह ऋतुराजे ।
किसलय-कुसुम-समाकुल-तरुकुल- कोकिल-कोर - समाजे ।।
विलसित मञ्जुल वञ्जुल-गुञ्ज-निकुञ्ज-महोज्ज्वल-भासे ।
विकसित-सारस-सङ्कुल-खगकुल - सरसी - सरसोल्लासे ।।
तरल-तरङ्ग-तरुण- लतिकातति- लीला - सुखद - समीरे ।
दृढ-परिरम्भण-वलित-लतावलि-वन - विकलीकृत - धीरे ।।
पवन - विसारि - पराग - पटल-पट - घटितानेक-विताने ।
मनसिज - मत्त - युवति - जन-सङ्कुल-युवजन-मोदनिधाने ।।'[१]

सङ्गीत-रघुनन्दन के ग्यारहवें सर्ग में सम्भोग-शृंगार का सम्पूर्ण चित्रण करते हुए कवि ने जानकी और रघुनन्दन का संयुक्त गान और नृत्य प्रदर्शित किया है। रास-नृत्य का यह सजीव वर्णन अनुप्रासों की छटा से युक्त एवं गीत-वाद्य के अनुकूल लयबद्ध है। नृत्य के साथ सहज विलासमयी चेष्टाएँ भी मुखरित हो उठी हैं—

'मिलितेतरेतर-स्वरगानं धृतेतरेतर-कण्ठम् ।
नृत्यति नर्तयते न विमुञ्चति जनकदुहितुरुरकण्ठम् ।।
नीराजयति मुकुट-रुचि-राजिभिरासामानन-चन्द्रम् ।
कर-चलनेन चालयति चेतः पदगतेन कं मन्दम् ।।
भ्रमद्-भ्रुकुटि-दर-चल-लोचनेन कुरुते गीतनिरुक्तिम् ।
कान्ता-कान्त-कटाक्षाकलने कलयति कामपि युक्तिम् ।।
काचिद् वाद्य-मिलन्मणि-नूपुर-मान-दान-कलगानैः ।
अतिप्रसन्नं कुरुते रमणं कोक-कला-रस-पानैः ।।
कानि मेघ-रमणीय-रागतो वर्षात्वं दर्शयते ।
नायक-नयन-नवीन-घनेन च सुखनीरं वर्षयते ।।
दाराः केदारा-कल-गानैः कुर्वन्त्यम्बरममलम् ।
विश्वनाथ इति वदति विकसितं नवनायक-हृत्कमलम् ।'[२]

उपर्युक्त पद्यों में विशेषतः अनुप्रास-प्रवण कोमल पदावली तथा अन्य अलङ्कार भी हैं। अनुप्रासों का और एक सुरम्य उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

---

१. सङ्गीत० : सर्ग ३ । वसन्तरास० : देखिये गीत० सर्ग १।३ 'विहरति हरिरिह० ।'

२. पाण्डु० १५४।१३।२ : पृ० ४९-४७ ।

'कीर-केकि-कोकिल-कोलाहल-ऋतुकुल-ललित-विलासैं ।
कुरबक - बकुल - केतकी - कैरव-कुन्द-कदम्ब-विकासैं ।
विलसति विपुल-पुलक-विधुवदना-वल्गु-विनोद-विधिभैं ।
चकित-चकोर-चक्षुरिह चन्द्रं चुम्बति चारुचरित्रैं ॥'[1]

ग्रन्थारम्भ करते हुए सीता की स्तुति में रूपक का प्रयोग मनोरम है—

'राम-प्रेम-पयोधि-वर्द्धन-विधुः शृङ्गार-सारास्पदं,
संसारार्णव - तार - कारण - तरिर्माया-तमो-दीपिका ।
विद्युद्भाः सुखदम्बु-वर्षणकरी कादम्बिनी काव्यसौ,
मद्धृत्पङ्कज-निवासिनी विजयतां श्री जानकी सर्वदा ॥'

कवि ने इस ग्रन्थ में भी यत्र-तत्र हिन्दी की शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं। एक दोहा देखिये—

'शिव हरि-चरित-सरोवर-व्यङ्ग्य-कमल-रस-भृङ्ग ।
शरणं तव चरणं भजे, ध्यानाश्रित-गिरि-शृङ्ग ॥'[2]

नृत्य-बोधक तालों और स्वर-सप्तकों से युक्त पदावली भी पद्यबद्ध की गई है। यह कवि की सङ्गीतज्ञता का परिचय देती है। उदाहरणार्थ—

'सा-स-नि-नि-ध-ध-ग-म-प-ध-नि-सा-सा ।
ग-ग-रि-स--स-नि-ध-म-गी-प-प-मा-गा ॥'[3]

व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका नाम से महाराज ने स्वयं सङ्गीत-रघुनन्दन की टीका लिखी है। इस टीका में भावों के स्पष्टीकरण के साथ साथ नायिका-भेद, रस, अलङ्कार एवं ध्वनि आदि काव्याङ्ग भी प्रदर्शित किये गये हैं। टीका की शैली उच्च स्तर की है।[4] एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

मूल-'रमणं रास-रतं पश्यन्ती ।
पति-प्रेम दर्शयितुं सीता भाने सखी-गणं नमयन्ती ।'

तथा—'मम तनु-विजित-मूढ-मन्मथ इह
मुग्धति निशित-शरैरस्नेहम् ।
अति मतिमन्दो दिवस-दीप-इव
हिम-किरणोऽपि दहति मम देहम् ।'

टीका-रमणमिति । रमणं श्रीरघुनन्दनं रासरतं रासासक्तं पश्यन्ती पत्युः प्रेम स्वस्मिन् दर्शयितुं भाने सखीगणं नमयन्ती नम्रं विदधती सती ।

---

१. रीवा की द्वितीय प्रति: सर्ग २।३ : गृह-रास : पृ० १६ ।
२. वही, सर्ग १।६ : वन्दना : पृ० ५ ।
३. वही सर्ग ३।१ : वसन्त-रास : पृ० १७ ।
४. रीवा की प्रति (१२४।१३।३) : सर्ग ३।३ : पृ० १८-१९ ।

ममेति। मम तन्वा शरीरेण विजितः स चासौ मूढो मूर्खो मन्मथः कामो मम देहं निशितैस्तीक्ष्णैः शरैर्न स्नेहः प्रीतिर्यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यादेवं मुन्यति पीडयति। हे प्रिये ! यः पूर्वं त्वया सहितस्य मम शरीर–शोभाधिक्येन परास्तः स एव काम इदानीं त्वद्वियोगेन मम शरीर–शोभा–हान्या जिगीषतीति भावः। अत्र मूढ–पदेन दुःखिते प्रहारो वीराणामनुचित इति व्यज्यते। तेन च तस्य निर्बलत्वम्।

अति मतिमन्दो हिमकिरणश्चन्द्रोऽपि दिवस-दीप इव सूर्य इव मम देहं, दह कामस्तु स्व-कान्ति-ह्रासकरत्वेनापराधिनं मां पीडयतु नाम, अयं तु निज-स्वभावं त्यक्त्वा निरपराधं पीडयतीत्यतोऽतिमतिमन्द इति भावः।'

टीका के आरम्भ में पृथक् मङ्गलाचरण है और उसमें प्राप्त स्तुतियाँ भी भावात्मक एवं काव्यमय हैं—

'वन्दे तरुंदकमलं यस्य मरन्दः पुनाति जगदखिलम्।
उरलं परागलेशश्चेतनतां सीघ्रमानयति॥
राजेन्द्र-नन्दन विलोचन-चञ्चरीक-
संसेव्यमान-वदनाम्बुरुहां सखीभिः।
स्त्रीय-प्रभा-जित-रमा-रुचिभिः परीतां
रासेश्वरीं हृदि भजे निमिराजपुत्रीम्॥'[१]

(ई) रामचन्द्राह्निक का पद्य-काव्य :

रामचन्द्राह्निक के पद्य-गीतों में विवरणात्मकता अधिक है तथा इस ग्रन्थ की कथा की आत्मा मूलतः गीतगोविन्द से भिन्न है। इस आधार पर यद्यपि वृत्तों के प्रयोग और लयबद्धता में प्रचुर संख्या में गीतगोविन्द की शैली पर छन्दों

---

१. टीका (पृ०८) में यह उल्लेख भी है कि विश्वनाथसिंह को शिव ने स्वप्न में षडक्षरमन्त्र का उपदेश किया और पीछे प्रियादास ने वही मन्त्र दिया—'स्वप्ने स (शिवः) एव मन्त्रं महामपि दत्तवान् पश्चान्मया श्रीहरिगुरु प्रियादासमुखाच्छ्रुतः।'

इसका उल्लेख संवत् १८९७ (१८४१ ई०) में लिखित अपने ग्रन्थ राधावल्लभीयमतप्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-भाष्य में भी मङ्गलाचरण (श्लोक६) में विश्वनाथसिंह ने किया है—

'योऽस्वोधयन्मां गिरिजार्द्धदेहः स्वप्ने षडर्णं निशि राममन्त्रम्।'

ऐसा ही उल्लेख रामचन्द्राह्निक की टीका में भी है—

'मम आदिगुरवे स्वप्ने दत्तप्रथमोपदेशाय…'

— (प्रथमयाम, श्लोक ५ की टीका)।

की रचना की गई है, वे अन्तस्तत्त्व की दृष्टि से गीतगोविन्द से पृथक् हैं। पद्यों के साथ साथ निर्देशात्मक गद्य भी गीतों के बीच बीच में समाविष्ट है। नायक-नायिका-भेद की ओर भी कवि का ध्यान पर्याप्त रूप से गया है। उदाहरणार्थ षष्ठ याम से होली-वर्णन का कुछ अंश देखिये—

'ततः श्रीजानकी तद्वृत्तमवगत्य सखीमण्डलमण्डिता तत्राजगाम। तत्र जानकीदर्शन-वर्द्धितोत्साहाः सख्यो जानकी च तत्प्रहारं तृणीकृत्य रघुनन्दनं सहजासखीं चारणचूर्णेन समावृण्वन्ति स्म।

'गद्गद-निनदो निगदति विधुरिति वीक्ष्य कुरङ्ग-स्पन्दनम्।
निरवकाशतामृच्छति सम्प्र-चरणचूर्ण-परिपूर्ण गगनम्॥
श्रुत्वा रोहिण्यपि तद्विवश्वोदरयावृतमपि पश्य सुहसितम्।
विश्वनाथ-होलिका-चमत्कृति-चकितचतुरालीगण-लसितम्॥

ततो रङ्गसंपण-मग्न-प्रक्षिप्यमाण-रङ्ग-सलिल-धाराभिः प्रशान्तैरुणचूर्ण-पटलान्धकारे सहजा-जानकी-सखीधारे द्वन्द्व-युद्धं प्रावर्तत—

सहजा सा नु येन नामीते ते विहॄन रहस्यम्।
चामीकर-मन्वेरित-चन्दन-वर्षणया कुरुते तदद्भुतम्॥
करकम्पेन च वक्रधारया सततं सिञ्चति बाला-वारम्।
विश्वनाथ यद् भवति सुखं ते क्षीतेच्छति तद् वारंवारम्॥

...सहजा मध्यात्यमारोप्य परिहसति...

यत्त्वं कमले रचयसि वचनम्।
तेन विभावे मनोऽभिलषितं प्रियेण होला-खेलारचनम्॥
मृगमद-चन्दन-पूर्ण-चूर्णमाकाशं कृत्वा तमः करिष्ये।
विश्वनाथ-सहितां कृत्वा त्वां स्वान्ते मुदं भरिष्ये॥'[१]

रामचन्द्राह्निक में पद्यों का रूप अधिक व्यापक है। इसमें महाकाव्य-शैली का काव्य भी प्राप्त होता है। *निम्नलिखित श्लोक की रचना प्रौढ़ है—*

'विचित्र-चित्रावलिभिर्विराजिते
गृहे प्रसुप्तं सुरतश्रमालसम्।
अहर्मुखे बोधकरा रघूद्वहं
विबोधयामासुरुदार-भाषितैः॥'[२]

ग्रन्थ के अन्त में पाण्डित्य-पूर्ण शैली का आश्रय लेकर कवि ने एकाक्षर श्लोक में मङ्गल प्रस्तुत किया है—

---

१. इस होली-वर्णन के अधिक विस्तार के लिये देखिये सं० ना० दे० पृ० २१८-१९।

२. रामचन्द्राह्निक की प्रति : मूल-श्लोक १ पृ० ४ (प्रथम याम)।

'रेरेररररारर-रारारीरिरिरेररम् ।
राररेरिरिरेरोरी-रारारारारररर: ॥'

बीच बीच में कवि ने हिन्दी काव्य-शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं। वीररस के प्रयोग के लिये प्रसिद्ध 'अमृतध्वनि' का एक उदाहरण यहाँ देखिये—

'कर-करवाल - विराजितोपदशरथ - रण-दक्ष-
स्वर्णपुङ्ख - भूषित - शितपक्ष- क्षुभित-विपक्ष-
पक्ष - क्षुभित - विपक्ष-क्षितिभृदलक्ष्य-क्षितिवल-
नन्दल-दिन-यमनन्दन - दितिजममन्द- द्युतिवल-
विद्याऽयन-समृद्ध्यव्यवसिति-सिध्यद्-धृतिधर-
क्रुध्यद्-युत्तभुज-पुष्यद्मरणि मदान्धोद्धृत-कर ॥'[१]

७ भगण और २ गुरु से युक्त एक सवैया उद्धृत किया जाता है—

'दक्षिणपाणि-कृपाणधरं कविका-गुणमग्यकरेणदधानम्,
गोल-कपोल-विलोल-लसन्मणि-कुण्डल-कुन्तल-कान्ति-निधानम् ।
चञ्चल-मौक्तिक-मञ्जरिकायुत-मञ्जु-किरीट-मयूख-वितानम्,
रामकुमारममुं सुखसारमवेक्ष्य न को रहयेत्तनु-मानम् ॥'[२]

हिन्दी शैली के अन्य छन्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं[३] :—

बरवै—'इयं कथा पितृ-गेह-स्मृतिं ददाति ।
कौशल्ये ! मम नयने जलमायाति ॥'

दोहा—'विरह-दशामवलोक्य मे सजले इमे सुकेशि ।
तव नयने विदितं मया नियतमसञ्जन-केशि ॥'

चौपाई—'तदा चित्र-भवने वर-वेषा ।
मल्लोचनातिथिस्तनुरेषा ॥
सोऽसौ सेयं न हि सप्रेमा ।
गच्छ वद प्रियमहमक्षेमा ॥'

रामचन्द्राह्निक की टीका में गद्य-खण्डों की विवृति मात्र है किन्तु पद्यों की व्याख्याएँ अत्यन्त विशद हैं, मूल में श्लोक, उपजाति, नाराच, तोटक, भुजङ्गप्रयात, चम्पकमाला, ब्रह्मचारी, प्रियंवदा, स्रग्धरा, पृथ्वी, शार्दूल-विक्रीडित, रथोद्धता, प्रमिताक्षरा, छप्पय, अमृतध्वनि आदि छन्द हैं। अल-ङ्कारों में उपमा, श्लेष, रूपक, विभावना, उत्प्रेक्षा, अर्थापत्ति, अत्युक्ति,

१. वही, द्वितीय याम ।
२. वही, द्वितीय याम : पृ० १५ ।
३. रामचन्द्र की प्रति : तृतीय याम : पृ० २२-२३ ।

समासोक्ति, अपह्नुति, विरोध, दीपक, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, अनुप्रास आदि हैं। इन सबका प्रदर्शन टीका में संक्षिप्त लक्षणसहित किया गया है।

टीकाकार ने अन्य भक्त कवियों की भाँति ही ७ गौण रस, अद्‌भुत, रौद्र, वीर, भयानक, हास्य, बीभत्स और करुण माने हैं तथा शृङ्गार और शान्त का भक्ति-रस में अन्तर्भाव कर भक्ति के ५ मुख्य रस बतलाए हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। टीका में काव्य-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। जिनमें मम्मट का काव्यप्रकाश मुख्य है। वाणी-वन्दना करते हुए मम्मट की छाया में ही काव्य के प्रयोजनों का सङ्केत है—

'प्रमदा-तुल्यतयोपदेशन-युजे वित्ताय सत्कीर्तये
दुःखच्छिन्नस्य च विच्छिदे व्यवहृति-ज्ञानस्य सम्पत्तये।
झटिति श्रोतृ-सुखाय यद्भवति तत् काव्यं जडोऽपि प्रभू
रचितुं यत्कृपया सरोजवदनां वन्दे गिरं तामहम् ॥'[१]

उदाहरणार्थ एक श्लोक की टीका प्रस्तुत की जाती है। इसमें शब्दशक्ति का प्रदर्शन है[२]—

मूल—'अपीह तिष्ठन्नधुना भविष्यद्-
वेत्थ त्वामित्युक्तवती पुनः सा।
कस्मैचिदेषा मुकुरं प्रदर्श्य-
वदच्च संयोजय मञ्जमेनम् ॥'

टीका—'क्षणार्द्धमपि विरहमसहमानां जानकीं मन्यमाना सखी पुनराह, अपीहेति। अधुना वसन्त-समयेऽपि इह कुसुमित-वने तिष्ठन् भविष्यत् भावि जानकी-दशामवस्थारूपं वेत्थ जानासि। अत्र वसन्तकालस्य वैशिष्ट्यं व्यङ्ग्यम्। अत्राधुनापदेन वसन्तकालस्य अतिशय-कामोद्दीपक-कुसुम-सम्पत्तिमत्व-रूप-वैलक्षण्यात् कुसुम-सम्पत्तिमवलोक्य मां विना जानकी न जीविष्यतीति विजानतस्तवैतद् कथनं नोचितमिति व्यज्यते। प्रकाशे यथा-गुरु०।[३]

---

१. रामवन की प्रति : पृ० २ टीका-श्लोक ४ : तुलना [illegible] लिये देखिये, काव्य प्रकाश : १।२ :
'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥'

२. वही, तृतीय यामः पृ० २४।

३. काव्यप्रकाश (मम्मट-कृत) : ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० : पृ० ८८ : उल्लास ३।२१ : काल के वैशिष्ट्य में व्यञ्जकता—

एषा दूती कस्मैचित् सख्ये भग्नं मुकुरं प्रदर्श्य एवं भग्नं संयोजयेत्यवदत्। एवं भवतः प्रीत्यां त्रुटितायां न कश्चित् सङ्घटयितुं शक्नोतीति तच्चेष्टया व्यज्यते। प्रकारो यथा-'द्वारोपान्त-निरन्तरे।'[1]

४. दोनों काव्यों में प्राप्त राम का स्वरूप :

सङ्गीत-रघुनन्दन और रामचन्द्राह्निक दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह ने राम का जो स्वरूप रखा है, उसे हम दो दृष्टियों से परख सकते हैं-(१) कलात्मक रूप और (२) उपास्य रूप।

(क) कलात्मक रूप—कला की दृष्टि से, जैसा कहा जा चुका है, दोनों काव्यों में गीति की प्रधानता है, राम और सीता दोनों ही मुख्य पात्र हैं और दोनों में राम के वैयक्तिक पक्ष की साधना है। राम का शृङ्गारी मानव रूप ही दोनों में प्रधान है।

राम एक धीरललित नायक हैं।[2] सङ्गीत-रघुनन्दन में उनकी अभिषिक्त सम्राट् की अवस्था का चित्र है और रामचन्द्राह्निक में विवाहोत्तर राजकुमार-जीवन का। दोनों ही अवस्थाओं में वे उच्चतम वैभव के उपभोक्ता हैं। सर्वथा निश्चिन्त, कलाप्रिय और सुखी रूप में वे रह रहे हैं। उनका अनुपम लावण्य और मधुर रसमय व्यवहार अतिमात्र आकर्षक है। इस स्थिति में वे नित्य आनन्द, रास-सङ्गीत और विहार में मग्न हैं।

इस पृष्ठभूमि के साथ दोनों काव्यों में शृङ्गार रस[3] की साधना की गई

'गुरुअणपरवस पिअ किं भणामि तुह मंदभाइणी अहकम्।
अज्ज पवासं वज्जसि वज्ज सअं जेव्व सुणसि करणिज्जम्।।'

संस्कृत—'गुरुजन-परवश प्रिय किं
भणामि तव मन्दभागिनी अहम्।
अद्य प्रवासं व्रजसि व्रज
स्वयमेव श्रोष्यसि करणीयम्।।'

अत्राद्य मधुसमये यदि व्रजसि तदाहं तावत् न भवामि तव तु न जानामि गतिमिति व्यज्यते।'

१. काव्यप्रकाश (मम्मट कृत): ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० : पृ० ८८ : उल्लास ३।२२ : 'द्वारोपान्त०'.... । तथा वृत्ति : चेष्टा के वैशिष्ट्य में व्यञ्जकता।

२. दशरूपकः २।४ : 'निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।'

३. वही, ४।४७-४८ :

'रम्य देश कला-काल-वेष-भोगादि-सेवनैः।

है। इसके संयोग पक्ष के लिये सङ्गीत-रघुनन्दन में अनेकशः रास-नृत्य और रामचन्द्राह्निक में होला-खेलन की व्यवस्था की गई है। दोनों ही काव्यों में मान[1] और प्रवास[2] से जनित विप्रयोग-शृङ्गार भी है, किन्तु त्वरित मिलन की व्यवस्था की जाती है, अतः संयोग-शृङ्गार की साधना ही कवि का मुख्य लक्ष्य है। अयोग या पूर्वानुराग की स्थिति पहले ही सम्पूर्ण हो चुकी है क्योंकि विवाहोत्तर जीवन का चित्रण है।

(ख) उपास्य रूप—उपर्युक्त दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह द्वारा स्वीकृत उपास्य रूप है और वही प्रमुख रूप है। वास्तव में कवि का मूल लक्ष्य काव्य-सर्जना नहीं, किन्तु काव्य के माध्यम से अपने उपास्य श्रीराम को प्रसन्न करना है। कवि मूलतः भक्त है और वह अपने समस्त शृङ्गार-रसात्मक युगल मूर्ति (सीता-राम) का ध्यान रखता है। वह दोनों काव्यों के आरम्भ में पहले भक्त पर कृपा करने वाली सीता की वन्दना करता है।

कीर्ति, भू और श्री सीता के ही अन्य नाम हैं, ह्लादिनी आदि शक्तियाँ उनके चरणों की सेवा करती हैं, वे माया की स्वामिनी हैं, वे रासमण्डल की रासिका हैं—

'कीर्त्याः कीर्तिरथो भुवोऽपि च तथा भूः श्रीः श्रियश्चोत्तमा
ह्लादिन्यादि सुशक्ति-सेवित-पदा मायादिक-स्वामिनी।
सर्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता भवतां मदीय-भणितिं रासेश्वरी पात्वताम्॥'[3]

प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्य-रक्तयोः॥
प्रहृष्यमाणः शृङ्गारो मधुराङ्ग-विचेष्टितैः॥'

१. वही, ४।५९ : 'स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः।' ईर्ष्यामान के प्रयोग ही अधिक हैं, कहीं कहीं प्रणयमान भी हैं।

२. वही, ४।६४ :
'कार्यतः सम्भ्रमाच्छापात् प्रवासो भिन्न-देशता।'
रामचन्द्राह्निक में मृगया के कारण तृतीय याम में, कार्यतः प्रवास होता है।

३. सङ्गीत-रघुनन्दन : सर्ग १।२ : मङ्गलाचरण। तुलना के लिये देखिये-विश्वनाथसिंह का राधा-वल्लभीय-मत-प्रकाशक ब्रह्मसूत्र-भाष्य (स० को० भा०) : मङ्गलाचरण का आरम्भ—
नित्यानुराग–सिन्धूत्थ–रस–चन्द्र–स्फुरत्प्रभाम्।
श्रीभूर्लीलादिभिः स्तुत्यां स्तौमि श्रीराम-वल्लभाम्॥'

गीतगोविन्द में जैसे श्रीकृष्ण को दश और चौबीस अवतार ग्रहण करते हुए बतलाया गया है और श्रीकृष्ण को ही पूर्ण-ब्रह्मत्व प्रदान कर उनके नित्य विहार का ध्यान किया गया है,[३] उसी प्रकार सङ्गीत-रघुनन्दन में सभी अवतार श्रीराम के बतलाए गए हैं और उन्हें नित्य विहारी, रसिक-शिरोमणि माना गया है।[२]

युगल-उपासना की यह प्रवृत्ति कृष्ण-भक्ति के रूप में विकसित हुई। युगल-उपासना पर अष्टयाम और आह्निक नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इनमें हिन्दी ब्रजभाषा में नाभादास का रामाष्टयाम अत्यन्त प्रभावी हुआ। इनके अनुसार अवध अखण्ड विहार-भूमि है, जहाँ नित्य युगल रूप श्रीराम समस्त अवतारों से सेवित होते हुए लीला-मग्न रहते हैं। वे समस्त गुणों के विश्राम-स्थल, द्वादश रसों एवं अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त हैं। माधुर्य से पूर्ण उनके विहार में संयोग-वियोग, युगल-सन्धि, माधुर्य-रति तथा नित्य सुख-भोग है।[३]

श्री राम की इस युगल-उपासना में सखी-भाव का भी सङ्गम हो गया। कुछ सखियाँ राम की ओर कुछ सीता की हैं। ये युगल-सन्धि में सहायक होती हैं। वास्तव में समस्त सखियाँ सीता की ही प्रतिकृतियाँ हैं। इस कल्पना में विश्वनाथसिंह ने राधावल्लभ-मत का समावेश करते हुए यह माना है कि भक्त की अन्तिम मुक्ति है यह शरीर—सखीरूप की प्राप्ति। तदनन्तर वह रासमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार भक्त ही सखीरूप में परिकल्पित है।[४]

विश्वनाथसिंह शृङ्गारी रामभक्ति के प्रमुख स्तम्भ माने गए हैं। उन्होंने रसिकभाव की साधना प्रियादास से सीखी थी, इन पर अयोध्या के महात्मा रामचरणदास का अधिक प्रभाव था।[५]

यह मानना अनुपयुक्त होगा कि श्रीराम-जानकी के युगल रूप की उपासना अथवा श्रीराम के पूर्ण ब्रह्मत्व की कल्पना नितान्त परवर्ती रूप है। वास्तव में यह परम्परात्मक और क्रमिक विकास है। विश्वनाथसिंह ने अपने दर्शन-ग्रन्थों में सैकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत कर श्रीराम का परत्व प्रतिपादित किया है।[६]

---

१. सर्ग १। २. सर्ग १।
३. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : (डा० कपिलदेव पाण्डेय) चौखम्बा। वाराणसी : १९६३ : पृ० ५१३।
४ हिन्दी साहित्य-कोश : (भाग १) : सं० २०१५ : पृ० ६४०-४१।
५. वही भाग २ : सं० २०२० : पृ० ५४५।
६. देखिये सर्वसिद्धान्त तथा राधावल्लभीय भाष्य में उद्धृत अगस्त्य-संहिता, रामतापनीयोपनिषद्, आदि—
'अन्ये चांश-कला: पुंस: रामस्तु भगवान् स्वयम्।'

नाटक

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम्

(क) परिचयात्मक विवरण :

१. पाण्डुलिपियाँ

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्यों में केवल एक ही नाटक उपलब्ध है, जो उन्नीसवीं शती के मध्य में विश्वनाथसिंह द्वारा लिखा गया। इसका नाम आनन्द-रघुनन्दन है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में तथा विद्वानों के निबन्धों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं मिलती। खोज-विवरणों में भी इस ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त नहीं हैं। अभी तक की जानकारी के आधार पर इस ग्रन्थ की उपलब्धि केवल सरस्वती-कोष-भाण्डार रीवा में है। यहाँ प्राप्त तीन प्रतियों का विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रथम-प्रति—बस्ता १९१८ : सम्पूर्ण, कुल पत्रा १२६।

प्रथम अङ्क में २४ पत्रा हैं। प्रतीत होता है कि प्रारम्भ के १९ पत्रा लुप्त हो गए थे। पीछे कभी लिख कर जोड़े गये हैं। इनकी लिपि आधुनिक है। खेद इस बात का है कि इस लिपि में और भी अधिक अशुद्धियाँ हैं। २० वें पत्रा से अन्त तक प्राचीन लिपि है। प्रथम अङ्क के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है —

'इति श्रीमदानन्द-रघुनन्दन-नाम्नि[1] नाटके प्रथमोऽङ्कः।'

पाँचवें अङ्क तक इसी प्रकार की पुष्पिकाएँ हैं। छठे अङ्क में निम्नलिखित रूप है—

'इति श्रीमन्निखिल-रामायण-नाटक-प्रधाने श्रीमदानन्द-रघुनन्दनाभिधाने दशवदन-निधनं नाम षष्ठोऽङ्कः।' अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) काण्डः ॥

सिद्धि श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहाराजा-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-विश्वनाथसिंह-जूदेव-कृतमानन्द[2]-रघुनन्दननाम—नाटकं सम्पूर्णम्। शुभं भूयात् ॥'

---

१. देखिये परिशिष्ट २ : तृतीय प्रति में—'नाम'।

२. तृतीय प्रति में—'निमित'।

द्वितीय-तृतीय और चतुर्थ अङ्क के पत्रा सम्मिलित हैं। यहाँ से पृष्ठ-गणना पुनः १ से प्रारम्भ हो गई हैं और अन्त (पत्रा ९२) तक चलती हैं। इस खण्ड में ३६ पत्रा हैं। पञ्चम अङ्क में १०, षष्ठ में ३३ और सप्तम में ११ पत्रा हैं। कुल १२६ पत्रा हैं।

(२) द्वितीय प्रति : बस्ता ३९।८।१, खण्डित इसमें केवल युद्धकाण्ड के १७ पत्रा हैं, यह भी अपूर्ण है।

(३) तृतीय प्रतिः बस्ता ३९:८।२: सम्पूर्ण इसमें प्रथम अङ्क में २५ और पूरे ग्रन्थ में १०४ पत्रा हैं। सम्पूर्ण पुष्पिकाएँ और सामग्री प्रथम प्रति से लगभग सर्वथा मेल खाती है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

२. रचनाकाल —

उपर्युक्त प्रतियों में से किसी में भी लिपिकाल और रचनाकाल का निर्देश नहीं है। अतः ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त पुष्पिका के आधार पर, जिसमें विश्वनाथ सिंह के साथ महाराज शब्द हैं, इतना ही कहा जा सकता है कि संवत् १८९१ से १९११ वि० (१७३५-५४ ई०) के बीच कभी इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ।

हिन्दी ब्रजभाषा में भी आनन्द रघुनन्दन नाम से विश्वनाथसिंह का एक नाटक प्राप्त है[१]। विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन रीवा ने इसे १९६० ई० में प्रकाशित कर दिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों और हिन्दी रूपकों के समीक्षा-ग्रन्थों में प्रायः सर्वत्र इसका उल्लेख प्रथम हिन्दी नाटक के रूप में हुआ है। श्री गौड़ के अनुसार श्यामसुन्दर दास ने सन् १९०७ ई० में प्रयाग में हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी नाटक, आनन्द-रघुनन्दन की २ प्रतियाँ बतलाई थी, जिनमें से एक १८३५ और दूसरी (क्र० २८) १८३० ई० की थी। यह दूसरी प्रति दिलराज लाला द्वारा सं० १८८७ (१८३० ई०) में लिखी गई थी। अर्थात् रचना इससे भी पूर्व की होगी। दोनों ही पाण्डुलिपियों में 'श्रीमहाराजकुमार बाबूसाहेब' शब्द हैं।[२]

---

१. दे० अध्याय २ (ग)।

२. 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वर्क्स०'।

यहाँ हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की निम्नलिखित प्रतियों के उल्लेख हैं :—

(१) एच० ई० पोलमैन्स : सेन्सस आफ इंडिक मैन्युस्क्रिप्ट्स इन यू० एस०-ए० ऐंड कैनाडा : १९३८ : हिन्दी : पृ० ३०२ : क्र० ५८२०।

अतः हिन्दी का नाटक राजकुमार की अवस्था में लिखा जाने से निश्चित रूप से उसी नाम के संस्कृत नाटक से पहले लिखा गया, क्योंकि संस्कृत नाटक उपर्युक्त पुष्पिका के आधार पर *'महाराज विश्वनाथसिंह'* (*राज्यारम्भ संवत्* १८९१–१९३४ ई०) द्वारा लिखा गया।

यह पूर्वापरता निश्चित होने पर भी प्रस्तावना में प्राप्त अन्तःसाक्ष्य विचारणीय है। हिन्दी नाटक की प्रस्तावना में निम्नलिखित शब्द हैं—

'सूत्रधार—(नान्द्यन्ते) अरे मारिष।
मोकों राजकुंवर की नाट्य करिबे की आज्ञा भई।'

इसी के समकक्ष संस्कृत की प्रस्तावना[1] में भी निम्नलिखित समानार्थक शब्द हैं—

'(नान्द्यन्ते) सूत्रधार : —अलमति विस्तरेण। मारिष ! महाराजकुमारस्य नाट्यकरणाज्ञा ममासीत्···।'

यहाँ 'महाराजकुमार' उल्लेख का एक ही अभिप्राय हो सकता है कि 'महाराजकुमार विश्वनाथसिंह' स्वयं स्वरचित नाटक में अपने समक्ष प्रदर्शन की कल्पना प्रस्तुत कर रहे हैं। हिन्दी नाटक के लिये तो यह कल्पना ठीक ही है किन्तु संस्कृत नाटक की अन्तिम पुष्पिका में 'महाराज' शब्द होने से संस्कृत का 'महाराजकुमारस्य' उल्लेख कठिनाई उत्पन्न करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८३० ई० से पूर्व ही हिन्दी नाटक पूरा होने पर विश्वनाथसिंह ने उसी को संस्कृत रूप देने का विचार किया और उसमें हिन्दी के समानार्थक शब्द रखे।[2] अतः राजकुमार अवस्था में ही (१९३४ ई० से पूर्व) संस्कृत नाटक लिखना भी आरम्भ हो गया, किन्तु सम्पूर्ति होते होते विश्वनाथसिंह महाराज हो चुके थे, अतः पुष्पिका में महाराज शब्द

(२) *कैटे० उदयपुर : क्र० ११६।*
(३) कैटे० बीकानेर : १८९१ वि० का लिखा।
(४) श्यामसुन्दरदास : हिन्दी पाण्डु० का वार्षिक विवरण : प्रयाग : १९०७ : क्र० ३८ : ८५×२२२५ श्लोक तथा त्रैवार्षिक विवरण : १९१२ पृ० ९२-९३।

१. देखिये-सं० बा० दे० पृ०—१४ : यह सम्पूर्ण प्रस्तावना साथ में प्रकाशित है।

२. हिन्दी नाटक के समान अर्थ की शब्दावली संस्कृत के सम्पूर्ण नाटक में है, जैसा कि आगे विचार किया जायगा।

रखा गया। यदि यह तर्क ठीक है, तो संस्कृत के आनन्द-रघुनन्दन नाटक की सम्पूर्ति १८३५-३६ ई० के आसपास मानी जा सकती है।

३. वस्तु-तत्त्व

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में रामकथा वर्णित है। इसमें ७ अङ्क हैं।

नाटक का आरम्भ नान्दी के ४ श्लोकों के साथ होता है। नान्दी में राम के ब्रह्मरूप का स्मरण और प्रथम अङ्क (बालकाण्ड) की कथा की ओर सङ्केत भी है।[१]

नान्दी के पश्चात् परम्परानुसार प्रस्तावना में सूत्रधार और पारिपार्श्वक राजकुमार की आज्ञानुसार नाटक को अभिनीत करने के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। सूत्रधार कहता है कि उसे आकाशवाणी सुनाई पड रही है, अनुपम नाटक प्राप्त होगा। इस प्रस्तावना की समाप्ति पर भाव प्रवेश कर सूत्रधार को त्रिकालज्ञ आदिकवि की पत्रिका देता है। पत्रिका में आदिकवि वाल्मीकि सूत्रधार को शिष्य कहते हैं और बतलाते हैं कि 'रावण के दुष्कृत्यों से आक्रान्त पृथ्वी ने ब्रह्मा की आज्ञा से जगत् के स्वामी से निवेदन किया है, अतः प्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण होने वाले हैं। उनके चरित को पहले मैंने (वाल्मीकि ने) काव्य बद्ध किया था। विन्ध्य (बान्धव-प्रदेश) के राजा जयसिंह के पुत्र विश्वनाथ (सिंह) आनन्द-रघुनन्दन नाटक रचने वाले हैं, जो ब्रह्मा के वरदान से मुझे स्फुरित हो रहा है।[२] तुम मेरे पास आकर उसे समझ लो। उसे नाटयरूप में प्रस्तुत कर तुम प्रभु को प्रसन्न करना। यह पत्रिका सूत्रधार की समस्या को सुलझा देती है।

दृश्य बदलता है। गुरु (वाल्मीकि) के शिष्य सूत्रधार (श्रुतधर) आनन्द रघुनन्दन नाटक पढ़ाने के लिये निवेदन करता है, जिसे उसी दिन

---

१. प्रथम अङ्क : श्लोक २ :

कल्याणं कलयन्तु शङ्कर-धनुर्मौर्वी-समाकर्षणात्
काठिन्य-प्रतिभासि-पाणि-लसिताः श्माजाङ्गुलि-श्रेणयः।
शोणाम्भोरुह-मध्य-सम्पुट-मिलत्संवर्तिका-सम्भ्रमाः
मासूदमुङ्ग-विभा विभान्ति महिजा-जानेः कटाक्ष-च्छटाः॥'

२. वही, श्लोक १२-१४ :

'विन्ध्येन्द्र-जयसिंहस्य राजसिंहस्य यः सुतः॥
विश्वनाथाभुतो नाम्ना नाटकं स करिष्यति।
स्वच्छन्दानन्द-सन्दोहमानन्द-रघुनन्दनम्॥
ममेदानीं चकास्तीदं स्फुरितं ब्रह्मणो वरात्।'

अभिनीत करना है। गुरु पढ़ाना स्वीकार करते हैं। शिष्य को तत्क्षण नाटक प्राप्त हो जाता है।

नेपथ्य से मङ्गल और कोलाहल सुनाई पड़ता है। राजा दिग्यान (दशरथ) ने भगवान् को पुत्ररूप में पाया है। उल्लासमग्न जन होला-खेल आदि आनन्दों में निमग्न हैं। आदि कवि यह सुन कर कहते हैं कि परावरेश्वर के ईश्वर का अभूतपूर्व अवतार हुआ है। मुनि-मण्डली अपराजिता (अयोध्या) को जा रही है, हम भी चलें।

विष्कम्भक के नाम से प्राप्त उपर्युक्त दो दृश्यों को भी वास्तव में प्रस्तावना के अंश ही कहना चाहिये, क्योंकि सूत्रधार यहीं तक उपस्थित है। इसके पश्चात् अङ्कारम्भ होता है।

प्रथम अङ्क

सचिव मञ्च पर आकर राजा दिग्यान (दशरथ) के स्वागत की तैयारी करता है। राजा पुत्रों का जन्म-संस्कार और नामकरण सम्पन्न कर सभा में आ रहे हैं। राजा आते हैं और सचिव के पूछने पर पुत्रों के नाम लिखकर बतलाते हैं, वे हितकारी (राम) नयङ्कुर (भरत), धराधर (लक्ष्मण) और अरिदर (शत्रुघ्न) हैं।

वन्दीजन यशोगान करते हैं। विदूषक, नटी और नर्तक प्रवेश करते हैं। नर्तक इन्द्रजाल करता है। नटी नृत्य करती है। विदूषक हास्य का वातावरण रखता है।

दूसरे दृश्य में राजा अन्तःपुर में जाकर कुशला (कौसल्या), काश्मीरी, (कैकयी) और सुहिता (सुमित्रा) तीनों रानियों के पुत्रों के कल्याणार्थ वैष्णवों और ब्राह्मणों के पूजन करने का आदेश देते हैं। रानियाँ पुत्रवधुओं के मुख देखने की लालसा राजा से प्रकट करती हैं।

तीसरे दृश्य में राजा के द्वारा सभी राजकुमार सभा में बुलाए जाते हैं, जिन्हें वर्षधर लाता है। पुत्रों को देखकर राजा कहते हैं कि पुत्र विवाह के योग्य हुए। इस प्रकार बाल्यकाल की समाप्ति की घोषणा हो जाती है। गुरु जगद्योनिज (वशिष्ठ) का सभा में सम्मान होता है। इसके पश्चात् सामान्य कथा के अनुसार मुनि भुवनहित (विश्वामित्र) आकर दशरथ से मिलते हैं और यज्ञ-रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाते हैं।

चौथे दृश्य में पथिक प्राकृत भाषा में राम-लक्ष्मण के आगमन की चर्चा करते हैं। विश्वामित्र राम को बला और अतिबला विद्या प्रदान करते हैं। घातिनी (ताडका) राक्षसी का वध होता है। उसका पुत्र घातिनेय (मारीच) अपने भाई धारुभुज (सुबाहु) के साथ काश्मीर से आकर यज्ञ नष्ट करता है।

मारीच उड़ जाता है और सुबाहु मारा जाता है। सिद्धाश्रम में रक्तपात होता है। मूर्च्छित विश्वामित्र को जगाकर विजय की सूचना दी जाती है।

पाँचवें दृश्य में पुत्रों का समाचार न मिलने से चिन्तित दशरथ को विश्वामित्र का शिष्य उपर्युक्त समाचार देता है।

छठे दृश्य में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से सीता-स्वयंवर की चर्चा करते हैं और मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं।

सातवें दृश्य में जनक को विश्वामित्र के आने का समाचार मिलता है जिसमें अहल्योद्धार का भी उल्लेख है। जनक विश्वामित्र का सम्मान कर राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते हैं। इसी समय दिक्शिरा (रावण) और घरासुर (वाणासुर) आते हैं। वे लंबा संवाद कर चले जाते हैं। राम पिनाक तोड़ते हैं। सीता जयमाला पहनाती हैं। जनक दशरथ को पत्रिका भेजते हैं।

आठवें दृश्य में दशरथ पत्रिका पाते हैं और जगद्योनिज (वशिष्ठ) की स्वीकृति लेकर बारात लेकर मिथिला को प्रस्थान करते हैं।

नौवें दृश्य में दशरथ का पत्रोत्तर जनक को मिलता है। बारात आती है। विवाह होता है। वशिष्ठ शाखोच्चार कर दक्षिणा में सीरकेतु (जनक) की कन्या ऊर्मिला को धराधर (लक्ष्मण) के लिये माँग लेते हैं। विश्वामित्र जनक के अनुज दर्भकेतु (कुशध्वज) की दो कन्याएँ जगद्भर (भरत) और अरिंदर (शत्रुघ्न) के लिये माँगते हैं। कुछ दिन बीतने पर मन्त्री जनक को बतलाता है कि रैणुकेय (परशुराम) आने वाले हैं, अतः बारात विदा कर दी जाय। विदा हो जाती है।

दसवें दृश्य में दशरथ को अयोध्या पहुँचने से पूर्व गौतम का वज्रदेशीय छात्र रैणुकेय के आगमन की सूचना देता है। उत्पात होते हैं और रैणुकेय आ जाते हैं। यहां चारों राजकुमार, वशिष्ठ और विश्वामित्र संवाद में भाग लेते हैं। अन्त में रैणुकेय राम को परम-पुरुष का अवतार मान कर स्तुति कर चले जाते हैं। मूर्च्छित दशरथ को जगाया जाता है।

ग्यारहवें दृश्य में बारात अयोध्या पहुँचती है। माताएँ परछन कर पुत्र-वधुओं का मुखदर्शन करती हैं।

द्वितीय अङ्क

इस अङ्क में राम के निर्वासन की कथा का नवीन आधार प्रदर्शित है। प्रथम दृश्य में गुरु (वशिष्ठ) से ब्रह्मकुब्जा (सरयू) बतलाती है कि वह पितामह (ब्रह्मा) का दर्शन करने गई थी। वहाँ इन्द्र आदि ने बतलाया है कि

रावण का वध करने के लिये राम पत्नी के साथ वन-विहार करना चाहते हैं। ब्रह्मा ने व्यवस्था करने की स्वीकृति दी है।

वशिष्ठ सरयू को समझाते हैं कि राम की शक्ति अचिन्त्य है। अपराजिता में उनका विहार नित्य है। वे दोनों कार्य (वन यात्रा भी) कर सकते हैं। वशिष्ठ को देववाणी से आदेश मिलता है कि वे जगद्भर और अरिदर को काश्मीर भिजवा दें और वाणी स्वयं कुटिला (मन्थरा) के कण्ठ में प्रवेश कर राम की वनयात्रा की व्यवस्था करेगी। वशिष्ठ आज्ञा मान कर योजना में सम्मिलित होते हैं।

दूसरे दृश्य में आदिकवि (वाल्मीकि) का शिष्य क्षीरवती (पयस्विनी) और कालिन्दी (यमुना) का वार्तालाप गुरु से बतलाता है। इस सूचना के अनुसार काश्मीरी ने उदार दशरथ से दो वर पाए हैं; एक से अपने पुत्र के लिये राज्य लिया और दूसरे से वधूवधू-सहित हितकारी (राम) को वन दिया। मन्त्री गङ्गातट तक राम को रथ द्वारा पहुँचा कर लौट गया और राजा ने प्राण त्याग दिये। वाल्मीकि दशरथ के शोक में डूब जाते हैं। शिष्य पुनः बतलाता है कि राम भास्कर क्षेत्र में याज्ञवल्क्य का दर्शन कर यमुना-पार आ गए हैं।

नेपथ्य के गीत से राम के आने की सूचना मिलती है। राम अपराजिता का समाचार पूछते हैं। वाल्मीकि ध्यान से जानकर बतलाते हैं कि जगद्भर (भरत) भाई (शत्रुघ्न) के साथ नगर में आ गए हैं। शेष समाचार वे ही आकर बतलाएँगे। वाल्मीकि राम को चित्रकूट तक पहुँचाने जाते हैं।

तीसरे दृश्य में चिन्तित काश्मीरी (कैकेयी) कुटिला (मन्थरा) से बतलाती है कि जगद्भर (भरत) आने वाले हैं। भरत प्रवेश करते हैं और कैकेयी से पूरा वृत्तान्त सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं तथा चेतना आने पर उसे कोसते हैं। अरिदर (शत्रुघ्न) मन्थरा को पीटते हैं। कैकेयी के रोकने पर उसे भी शिक्षा देने की बात कहते हैं। भरत कौशल्या को समझाते हैं कि यह सब उनकी सहमति से नहीं हुआ। सुमित्रा भरत को पिता की पारलौकिक क्रिया करने के लिए कहती है।

चौथे दृश्य में गुरु भरत को राज्य सँभालने के लिये कहते हैं किन्तु उनका परिताप देख कर राम को लौटाने के लिये वन चलने की स्वीकृति दे देते हैं।

पांचवें दृश्य में जयन्त काक के वेष में आकर सीता को चोंच मारने का दण्ड पाता है।

छठे दृश्य में भरत को ससैन्य आते देखकर लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं। राम उन्हें शान्त करते हैं। भरत आते हैं। शोक का वातावरण छा जाता है। भरत राम को लौटाने के आग्रह में अनशन भी करते हैं। राम उन्हें समझा

कर पादुका देकर लौटाते हैं। राम भी वह स्थान छोड़कर अनीर्ष्या (अनसूया) और सोमजनक (अत्रि) के आश्रम को जाते हैं।

छठे दृश्य में अनसूया सीता को वस्त्राभूषण देती हैं। अत्रि राम को दण्डकारण्य का मार्ग बतलाते हुए कहते हैं कि विशिखभङ्ग (शरभङ्ग) मुनि के आश्रम होते हुए जाना।

तृतीय अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में मैत्रावरुणि (अगस्त्य) का शिष्य उन्हें बतलाता है कि वह दस वर्षों तक राम के साथ अनेक मुनियों के आश्रमों में भ्रमण करता रहा। मार्ग में राम ने जवासुर के पुत्र (विराध) का वध किया और शरभङ्ग मुनि ने उनके समक्ष प्राणोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् राम आते हैं। अगस्त्य उनके निवासार्थ गोदावरी के तट पर पञ्चवटी का स्थान उपयुक्त बतलाते हैं और इन्द्र द्वारा प्रदत्त धनुष, कवच और दो अक्षय तूणीर देते हैं, साथ ही अरुण के पुत्र (जटायु) को दर्शन देने को कहते हैं।

दूसरे दृश्य में आरुणि (जटायु) राम को सीता की रक्षा करने का वचन देता है। पञ्चवटी में रमणीय कुटी निर्मित होती है। अयोध्या से हीरमणि शुक आकर राम को कुशलता का समाचार देता है और कहता है कि भरत नंदीग्राम में जटाजूट धारण कर रहते हैं तथा वहीं से गुरु की आज्ञानुसार राज्यकार्य करते हैं। इसी दृश्य में लक्ष्मण द्वारा दीर्घनखी (शूर्पणखा) के नाक-कान काटे जाते हैं।

तीसरे दृश्य में शूर्पणखा-वृत्तान्त से क्रुद्ध होकर राक्षस (खर राक्षस) सेना लेकर राम पर चढ़ाई कर देता है।

चौथे दृश्य में राक्षस के साथ राम के युद्ध का सविस्तर वर्णन है। इस युद्ध को लक्ष्मण और सीता एक कन्दरा से देख रहे हैं। चौदह सहस्र चौदह राक्षस मारे जाते हैं। अन्त में अगस्त्य राम की स्तुति करते हैं।

पाँचवें दृश्य में शूर्पणखा रावण की सभा में राक्षस-वध का समाचार और अपना अपमान बतलाती है। रावण मन में विचार करता है कि परम पुरुष का अवतार हुआ, मैं विरोध-मार्ग से मुक्ति लूँगा। दीर्घजठर (महोदर) के कथनानुसार सीता-हरण का निश्चय होता है।

छठे दृश्य में रावण मारीच को रत्नमय विचित्र मृग का रूप धारण करने के लिये तैयार कर लेता है।

सातवें दृश्य में लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम सीता को अग्नि को सौंप देते हैं। छाया रूप में सीता उनके साथ पर्णशाला में रहती है। सीता मृग

लाने का आग्रह करती हैं, लक्ष्मण लौट आते हैं। राम मृग के पीछे चले जाते हैं। नेपथ्य से 'हा वत्स धराधर' शब्द सुनकर सीता लक्ष्मण को राम की सहायता करने के लिये जाने को कहती हैं। लक्ष्मण कहते हैं कि यह छल है, राम के शब्द नहीं। सीता लक्ष्मण को कुल-कलङ्क और राम की मृत्यु का अभिलाषी कहती हैं। लक्ष्मण असह्य वचन सुनकर रेखा खींच कर चले जाते हैं। रावण मुनि-वेश में आकर रेखा से बाहर भिक्षा देने आई हुई सीता का अपहरण करता है। रक्षा के प्रयत्न में जटायु आहत होता है।

आठवें दृश्य में सीता को ढूँढते हुए राम और लक्ष्मण जटायु के समीप आते हैं। जटायु बतलाता है कि विंद मुहूर्त में रावण ने चोरी की है, अपने प्राणों के साथ-साथ उसे सीता को लौटाना होगा।[1] जटायु की मृत्यु होती है, राम विलाप करते हुए आगे बढ़ते हैं।

नौवें दृश्य में तपस्विनी किराती (शबरी) राम का आतिथ्य कर उन्हें सुग्रीव का पता बतलाती है और राम के समक्ष प्राणोत्सर्ग करती है। राम आगे बढ़ते हैं।

चतुर्थ अङ्क

इस अंङ्क के प्रथम दृश्य में नेतामल्ल (हनुमान्) राम और सुकण्ठ (सुग्रीव) की मित्रता कराते हैं। सीता के द्वारा आकाश से गिराये हुये आभूषण सुग्रीव द्वारा राम को दिये जाते हैं। परस्पर वार्ता होती है और वासवि (बालि) को मारने के लिए राम सुग्रीव के साथ प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दृश्य में बालि के पास रावण का पत्र आता है जिसमें निर्देश है कि राम-लक्ष्मण को पकड़ कर मेरे समीप भेज दो।[2] तार नामक मंत्री से चर्चा करता हुआ बालि सुग्रीव के साथ राम-लक्ष्मण को आते हुए देखता है। लक्ष्मण उसके और समीप आते हैं। परस्पर संवाद और परिचय होता है। बालि राम से युद्ध चाहता है। उनके ऊपर पर्वत का प्रहार करता है और एक ही बाण से मारा जाता है।

लक्ष्मण सुग्रीव को राज्य देकर भुजभूषण (अङ्गद) को युवराज बनाते हैं। राम ऋष्यमूक पर वर्षाकाल बिताते हैं। शरद् प्रकट होने पर लक्ष्मण सुग्रीव को समझाने जाते हैं।

---

१. पृ. ४६: '...विन्दमुहूर्त्ते मद्दिजामहार्षीत् ।
यस्तत्र मुष्णाति स खलु प्राणसहितं वस्तु ददाति ।'

२. पृ. ५३ : 'तौ विधृत्य समुद्दण्डौ दोर्दण्डोद्धत्य-मण्डितौ ।
कुमारौ सुकुमाराङ्गौ प्रेषणीयौ ममान्तिकम् ॥'

तीसरे दृश्य में उन्मत्त सुग्रीव को हनुमान् समझाते हैं और सैन्य बुलाते हैं। लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं। डरता हुआ सुग्रीव राम के समीप आता है।

चौथे दृश्य में वानरों को खोज के लिये भेजा जाता है। राम हनुमान् को अभिज्ञान-रूप अँगूठी देते हैं। वानर लौट आते हैं, केवल अङ्गद आदि नहीं आते। द्रविड देश की स्व-प्रकाशिनी (स्वयंप्रभा) तपस्विनी राम को प्रणाम कर चली जाती है। सुग्रीव कहते हैं कि उसे अङ्गद आदि वानर मिले होंगे, तभी आई है। गृध्र (सम्पाती) आकर राम से कहता है कि वानर मिले थे, मैंने उन्हें बतलाया है कि सीता लङ्का में हैं। हनुमान् समुद्र पार गये हैं।

पञ्चम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में रावण मन्त्री से कहता है कि उसने स्वप्न देखा है कि सीता का समाचार लेने आया हुआ एक वानर सीता के समीप शिंशिपा वृक्ष में छिपा है। फिर मैं सीता को भय देकर आया हूँ। राक्षसी (लङ्का) आकर बतलाती है कि राम का दूत वानर पुरी में प्रविष्ट हुआ है। वाटिकापाल आकर कहता है कि एक वानर वाटिका उजाड़ कर रक्षकों को मार रहा है। रावण मन्त्री को आदेश देता है कि वानर पकड़ा जाय।

दूसरे दृश्य में घोर युद्ध होता है। हनुमान इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार) को मार डालते हैं; वाटिका और सेना को विध्वस्त करते हैं; घनध्वनि (मेघ-नाद) उन्हें ब्रह्मास्त्र से बाँध डालता है।

तीसरे दृश्य में हनुमान् रावण के समक्ष लाये जाते हैं। भयानक (विभी-षण) की सम्मति से उनकी पूँछ में आग लगाई जाती है। लङ्का जलती है।

चौथे दृश्य में हनुमान् सीता को अँगूठी देते हैं और सीता राम के लिए अभिज्ञानार्थ चूडामणि देती हैं। हनुमान् चले जाते हैं।

पाँचवें दृश्य में अङ्गद आदि से मिलकर हनुमान् लङ्का का समाचार बतलाते हैं। अङ्गद कहते हैं कि हम सीता को साथ ले चलें। ऋक्षराज (जाम्बवान्) के समझाने से सब लोग किष्किन्धा को प्रस्थान करते हैं।

छठे दृश्य में हनुमान् आदि राम के समीप पहुँच कर सीता का वृत्तान्त बतलाते हैं और चूडामणि देते हैं। उसी समय राम वानर सेना के साथ प्रयाण करते हैं। समुद्र तट पर पहुँच कर राम शरण में आये हुए विभीषण का अभि-षेक कर देते हैं। सागर पर सेतु बँधता है। राम सेना को सागर पार करने का आदेश देते हैं।

षष्ठ अङ्क

इस दीर्घाकार अङ्क के प्रथम दृश्य में रावण कीर (शुक) राक्षस को भेज-कर वानर-सेना का समाचार प्राप्त करता है। वह स्वयं चन्द्रशाला से सेना को देखता है, फिर नृत्य देखने लगता है।

दूसरे दृश्य में राम सुवेल पर्वत पर स्कन्धावार स्थापित कराते हैं। चन्द्रमा के कलंक पर विविध कल्पनायें होती हैं। रावण की नृत्यशाला को लक्षित कर राम बाण छोड़ते हैं। प्रभात होता है और राम सेना को व्यूहबद्ध चलने का आदेश देते हैं।

तीसरे दृश्य में रावण चिन्तित है कि रात्रि में नृत्यशाला में छत्र, चामर और आभूषण अकस्मात् कैसे गिर गये। सुग्रीव रावण के समीप जाकर उससे मल्लयुद्ध करते हैं। विभीषण के परामर्श से अङ्गद रावण के समीप दूत के रूप में भेजे जाते हैं।

चौथे दृश्य में अङ्गद और रावण का संवाद होता है। अङ्गद के चरण रोपने का प्रसङ्ग भी वर्णित है। रावण वानरों को मारने का आदेश देता है।

पाँचवें दृश्य में राम और रावण के पक्षों से लड़ने वाले योद्धाओं का समर विस्तारपूर्वक वर्णित है। रावण के शक्ति-प्रहार से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान् सञ्जीवनी लेने जाते हैं, तब राम के आदेश से वे लौटते समय अयोध्या भी जाते हैं। भरत उन्हें राक्षस समझ कर बाण मार देते हैं, तब हनुमान् द्वारा साथ लाई हुई सञ्जीवनी से ही वशिष्ठ हनुमान को सचेत करते हैं और उन्हें उस ओषधि की पहचान करा देते हैं।

कुम्भकर्ण का कटा हुआ सिर हिमालय पर गिर कर उसे तोड़ डालता है। कबन्धपतन से भरतखण्ड के प्राणियों का सम्भावित नाश बचाने के लिए हनु-मान् उसे पवन-प्रवाह में फेंक देते हैं।[१]

सञ्जीवनी का प्रयोग अनेक बार किया जाता है। रावण मृत राक्षसों के शरीर समुद्र में डाल देता है।[२] अतः वे पुनः सजीव नहीं होते। मेघनाद को लक्ष्मण मारते हैं। इन्द्र के रथ पर चढ़ कर राम रावण से युद्ध करते हैं।

---

१. अंक ६ दृश्य ५ : 'स्वामीच्छामवगम्य मारुतसुतः चित्रं चकारोच्चकै-
रेतादृक्षतनुं प्रवाहपवने प्रोच्छाल्य तां प्राक्षिपत्।
एते भारतखण्डजा ननु यथा जीवा न नाशं गता
विश्वस्मिन् बलमीदृशं क्वचिदहो मादर्शि नाकर्ण्यपि ॥'

२. 'मृतानां यातुधानानां शरीराणि सरित्पतौ।
निक्षेपयति वैलक्ष्याद् दशशीर्षः क्षणे क्षणे ॥'

युद्ध का वर्णन प्रायः नेपथ्य से किया जाता है। सूत राम को बतलाता है कि रावण के हृदय में अमृतकुण्ड है। रावण का वध होने पर पुष्पवृष्टि होती है। मन्दोदरी आकर विलाप करती है।

लक्ष्मण बिभीषण का तिलक करते हैं। बिभीषण से आज्ञा लेकर हनुमान् सीता को लाते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, छाया समाप्त होकर वास्तविक सीता प्रकट होती हैं। सम्पूर्ण सेना पुष्पक विमान पर राम के साथ अयोध्या को प्रस्थान करती है। राम भरद्वाज के यहाँ ठहर जाते हैं। हनुमान् भरत को समाचार देने जाते हैं।

सप्तम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में भरत गुरु वशिष्ठ को बुलाकर कहते हैं कि कल अवधि बीत जायगी। राम का कोई समाचार नहीं मिला। अवधि बीतने पर मैं जीवित नहीं रह सकूँगा। अतः आपको राज्य सौंपता हूँ। गुरु कहते हैं कि शुभ शकुन हो रहे हैं। हनुमान् आकर भरत को राम के आगमन का समाचार देते हैं और कहते हैं कि कल सूर्योदय वेला में राम आएँगे। भरत स्वागत की तैयारी का आदेश देते हैं। हनुमान् से बात करते करते प्रभात हो जाता है। पुष्पक विमान दिखलाई पड़ जाता है। राम का स्वागत होता है। आकाश से मिलन का वर्णन है। गुरु मन्त्री को कहते हैं कि आज ही अभिषेक का शुभ मुहूर्त है। राजतिलक की तैयारी और मङ्गल-गीत होते हैं।

दूसरे दृश्य में महाराज श्रीराम की शोभायात्रा का सङ्केत है। राम सिंहासन पर बैठते हैं। देवगण भेंट देकर स्तुति करते हैं। वानरों और राक्षसों को उपहार मिलते हैं। हनुमान् को सीता अपना मुक्ताहार देती हैं। हनुमान् दाँतों से दबा कर मोतियों को फाड़ कर फेंक देते हैं। सुग्रीव के प्रश्न पर वे कहते हैं कि इनमें राम नाम अङ्कित नहीं है। सुग्रीव पूछते हैं कि तुम्हारा शरीर कहाँ नामाङ्कित है। हनुमान् छाती फाड़ कर दिखलाते हैं।

राजसभा में अगस्त्य प्रवेश करते हैं। वे रावण-पक्ष के मेघनाद और राम-पक्ष के हनुमान् की वीरता की विशेष प्रशंसा करते हैं। वे हनुमान् के शैशव की भी चर्चा करते हैं। सुग्रीव आदि अतिथि विदा किये जाते हैं। अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वों के गीत प्रारम्भ होते हैं। हनुमान् लौट आते हैं और बतलाते हैं कि उन्हें राम के समीप रहने की आज्ञा सुग्रीव ने दे दी है। राम उन्हें भी नृत्य देखने के लिए कहते हैं। नृत्य करने वाली पृथक् पृथक् अप्सराएँ नायिका-भेद के अनुकूल मुद्रा-प्रदर्शन करती हैं, जिसका गन्धर्व अपने

गीतों में वर्णन करते जाते हैं। अन्त में गोरन्ड (गोरे), अर्वदेशीय (अरब) और तुरुष्कदेशीय (तुर्क) नर्तक आते हैं और मरुदेशीया (मारवाड़ की) वेश्या आती है। इन सबको पुरस्कृत किया जाता है। राम भरत को राज्य-व्यवस्था, लक्ष्मण को कोश और शत्रुघ्नको सेना सौंपते हैं।[१]

तीसरे दृश्य में स्वर्धुनी (गङ्गा) ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) से प्रश्न करती है कि वह उदास क्यों है। सरयू कहती है कि ११ सहस्र वर्ष राज्य कर राम अयोध्या के कीट-पतङ्गों सहित अन्तर्हित हो गए हैं। गङ्गा कहती है कि क्यों छिपाती है, राम तेरे निकट अपराजिता में नित्य रहते हैं।

इसके पश्चात् सूत्रधार राम (रघुनन्दन) की स्तुति करता है और उनसे भक्ति के अतिरिक्त आनन्द-रघुनन्दन नाटक की कीर्ति और स्थायित्व की याचना करता है।[२] राम 'तथास्तु' कह कर महलों में चले जाते हैं। केवल इसी अन्तिम भाग में राम का नाम रघुनन्दन है, अन्यथा सर्वत्र हितकारी है।

४. वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव :—

आनन्द-रघुनन्दन का प्रणेता वाल्मीकि का सर्वथा ऋणी है। यह कहा जा सकता है कि जैसे उत्तररामचरित, अभिषेक, प्रतिमा, प्रसन्न-राघव, महावीर-चरित आदि नाटकों के लिये वाल्मीकि रामायण उपजीव्य ग्रन्थ रहा है, वैसे ही यह आनन्द-रघुनन्दन का भी आधार बना है। इसी प्रकार उपर्युक्त नाटकों के प्रणेताओं ने जिस प्रकार कहीं कहीं स्वतन्त्रता ग्रहण की है, वैसे ही विश्वनाथ-सिंह ने भी अनेक स्थलों पर मौलिकता प्रकट की है। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि विश्वनाथसिंह के समक्ष हिन्दी का महान् लोकप्रिय ग्रन्थ रामचरितमानस विद्यमान था, जिसके प्रभाव से वे दूर नहीं रह सके। विश्व-नाथसिंह रामभक्त थे और वे रामभक्त तुलसीदास की कथा-योजना से अधिक पृथक् नहीं हो सके। फिर भी ऐसे स्थल अनेक हैं जहाँ वाल्मीकि और तुलसी के काव्यों में कथात्मक भेद होने पर विश्वनाथसिंह ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है।

---

१. अङ्क ७।८९ : 'राज्यं रक्ष जगद्भर त्वमभयो राजन्वती भूरियं
येनोच्येत धराधर त्वमचलान् कोशांश्च मच्छासनात्।
सेनां सज्जय सादरामरिदर स्वार्थ्यां त्वमन्वर्थयन्
स्वच्छाराम-विहारमाचरयितुं गच्छामि कक्षान्तरम्॥'

२. 'प्रेमाप्नोतु तवोत्तमं भरपतिः श्रीविश्वनाथः कृती।'
तथा-'यावत् कीर्तिस्त्वदीया चरति कुवलये तावदास्तां रसस्य
प्राकट्यं नाटकं श्रीधर तव चरितं नन्ददानन्दमून्नः।'
। यह उल्लेख भरतवाक्य के स्थान में माना जा सकता है।

रामचरितमानस में परशुराम धनुर्भङ्ग के पश्चात् तुरन्त मिथिला में ही पहुँच जाते हैं किन्तु रामायण में वे दशरथ के अयोध्या जाते समय मार्ग में मिलते हैं।[१] आनन्दरघुनन्दन में भी मार्ग में मिलते हैं। रामचरितमानस में मारीच का स्वर सुनने पर सीता और लक्ष्मण के बीच कटूक्तियों का प्रयोग नहीं है, किन्तु रामायण में हैं[२] तथा आनन्दरघुनन्दन में भी हैं।[३] सीता-हरण के समय जटायु द्वारा बतलाया हुआ विन्दमुहूर्त भी रामायण में ही है।[४] सुवेल पर्वत पर चढ़ने पर सुग्रीव के उछल कर गोपुर शृङ्ग पहुँचने और रावण के साथ मल्लयुद्ध करने का प्रसङ्ग रामचरितमानस में नहीं है। यह प्रस्तुत नाटक में[५] रामायण से लिया गया है।[६] अभिषेक के पश्चात् रामायण की कथा के अनुसार राम लक्ष्मण को यौवराज्य देना चाहते हैं और उनके अस्वीकार करने पर भरत को देते हैं।[७] रामचरितमानस में यह प्रसङ्ग नहीं है किन्तु आनन्दरघुनन्दन में राम भरत को राज्यव्यवस्था सौंपते हैं। इसी प्रकार रामायण

१. बालकाण्ड : सर्ग ७४-७६।

२. आरण्यकाण्ड : स०४५।६-७, २४, ३२, :

'इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते।
लोभात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्॥
सुदुष्टस्त्वं वने नित्यं राममेकोनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥'

तथा—'धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे।'

३. अंङ्क ३ श्लोक ७७-७८ 'न प्रयास्युत्तरं दत्से श्रुत्वार्याह्वानमञ्जसा।
इममेवाभिलापं किमकार्यैः कुलपांसन॥'

तथा—'हा हन्त हन्त हत एव किलास्मि चण्डि
वज्रोपमा श्रवणयोरतिघोर-वाणी॥'

४. आरण्यकाण्ड : स० ६७।१२-१३ :

'येन याति मुहूर्तेन सीतामादाय रावणः।
विप्रणष्टं धनं क्षिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते॥
विन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ....।'

५. अङ्क ६ दृश्य ३।

६. युद्धकाण्ड : सर्ग ४०-४१।

७. वही : सर्ग १३०।९३ :

'सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद् भरतं महात्मा॥'

और आनन्द-रघुनन्दन में जयन्त का प्रसङ्ग चित्रकूट में भरतागमन से पूर्व है।[1] रामचरितमानस में पीछे है।

रामायण की कथा से हटकर प्रस्तुत नाटककार ने कई स्थलों में रामचरितमानस का अनुसरण किया है, जैसे शत्रुघ्न द्वारा मन्थरा (और कैकेयी को भी) दण्ड देना, रावण और बाणासुर, राम और परशुराम, अङ्गद और रावण के संवाद प्रस्तुत करना, पञ्चवटी में वास्तविक सीता का अग्नि में अन्तर्हित होना और छाया-सीता का प्रकट होना तथा रावण-वध के अनन्तर पुनः छाया का अग्नि में लोप होना और मूल सीता का प्रकट होना तथा राम का अभिषेक उत्तरकाण्ड (सप्तम अङ्क) में रखना, जो रामायण में युद्धकाण्ड में ही होजाता है।[2] सञ्जीवनी लाते समय हनुमान् का अयोध्या जाना भी इसी कड़ी में गिना जा सकता है।

प्रस्तुत नाटककार ने कुछ प्रसङ्ग मौलिक रूप में उपस्थित किये हैं। धातिनेय (मारीच) काश्मीर से आकर विश्वामित्र के आश्रम पर आक्रमण करता है और उसके साथी पारसीक भाषा में वार्तालाप करते हैं।[3] दशरथ को परशुराम के आगमन की सूचना गौतम मुनि का बङ्गीय छात्र देता है।[4] पञ्चवटी में राम के समीप हीरमणि शुक आता है और अयोध्या का समाचार देकर भरत का विरक्त जीवन बतलाता है।[5] विश्वनाथसिंह ने अनेक परवर्ती नाटककारों की भाँति यह आरोप समाप्त कर दिया है कि राम ने छिप कर बालि को बाण मारा। इस नाटक में सुग्रीव और बालि का युद्ध होता ही नहीं। इसके स्थान पर राम-लक्ष्मण स्वयं बालि के समीप पहुँचते हैं। बालि राम को जीतकर कीर्तिलाभ लेना चाहता है, अतः स्वयं युद्ध का आमन्त्रण देता है[6] और मारा जाता है। बालि के समीप रावण का पत्र आना

१. अयोध्याकाण्ड : सर्ग ९५ के पश्चात्—प्रक्षिप्त।
२. युद्धकाण्ड : सर्ग १२९–१३०।
३. अङ्क १ : 'धातिनेयः काश्मीरादतिवीरं चारुमुखं सहायमानया-मास। (आकाशे पारसीक—भाषया कोलाहलः।), साथ ही देखिये—हिन्दी आ० रघु० : पृ० १६ : फारसी में घोषणा।
४. हिन्दी आ० रघु० पृ० ३० : बंगला भाषा में सन्देश।
५. अङ्क ३ : पृ० ६७।
६. अङ्क ४ : पृ० ९३ : श्लोक ७–१७ :
'वासवि :—जगज्जयिल्ललामं त्वां जयेयं स्फूर्जदोजसम्।
... यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिनां बली ॥ १६ ॥

भी नयी बात है। हनुमान् द्वारा कुम्भकर्ण के कबन्ध का पवन-प्रवाह में फेंका जाना भी विश्वनाथसिंह की अपनी सूझ है।[१] उपर्युक्त परिवर्तन कवि ने अभिनेयता आदि कई दृष्टियों से किये होंगे तथापि यह काव्य मूलतः वाल्मीकि-रामायण पर ही आधारित है।

(ख) काव्यात्मक विश्लेषण

१— नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से ग्रन्थ का परीक्षण :

आनन्द-रघुनन्दन के प्रणेता ने इस ग्रन्थ को नाटक कहा है। हमें यहाँ इस बात का परीक्षण करना होगा कि शास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रन्थ नाटक के रूप में कहाँ तक खरा उतरता है।

दण्डी ने काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र भेद बतला कर मिश्र के अन्तर्गत नाटक बतलाया है। यहाँ मिश्र का अर्थ गद्य और पद्य से मिश्रित तथा प्राकृत आदि अनेक भाषाओं से मिश्रित भी है।[२] भामह ने नाटकादि काव्यों को अभिनेयार्थ प्रबन्ध कहा है।[३] हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन प्रेक्ष्य (अभिनेय) और श्रव्य दो रूपों में किया है तथा प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय (रासकादि) भेद किये हैं।[४] विश्वनाथ ने प्रेक्ष्य शब्द के स्थान पर दृश्य शब्द का प्रयोग किया है[५]। यही दृश्य शब्द पीछे प्रचलित हो गया।

इसी दृश्यकाव्य को भरत मुनि ने नाट्य कहा है। मनुष्य के सुखदुःख से समन्वित स्वभाव का अभिनय ही नाट्य है। देवताओं, राजाओं अथवा महापुरुषों के पूर्वकाल में किये हुए चरित्र का अनुकरण ही नाटक है।[६] धनञ्जय

हितकारी—आयुधः स्याः स्थितोऽहं ते मनुष्यवरवरः पुरः।
वायविः—कपीनामायुधं दन्ता नखाः द्रुमशिलादयः॥ १७॥
(इति लोलेन लाङ्गूलेन शैलमुत्पाट्य प्रहर्त्तुमिच्छति।)'

१. अङ्क ६ : घटकर्ण का युद्ध।
२. काव्यादर्शः १।११, ३१. ३७।
३. काव्यालङ्कारः १।१८।
४. काव्यानुशासनः अ०८।
५. साहित्य-दर्पणः ६।१।
६. नाट्यशास्त्र : अध्याय १।१२१,१२५

'योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख-समन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते॥
देवतानां मनुष्याणां राज्ञां लोकमहात्मनाम्।
पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत्॥'

ने लिखा है कि अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है, अर्थात् धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त प्रख्यात नायकों के जीवन की अवस्थाओं का जब कोई नट रङ्गमञ्च पर अनुकरण करता है, तब उसको इस अभिनय-क्रिया को नाट्य कहा जाता है। यह दृश्य होता है, अतः रूप कहा जाता है। राम आदि नायकों का नट पर सर्वथा आरोप हो जाने से नाट्य को रूपक कहते हैं। यह रसाश्रित होता है। इसके दस भेद हैं, जिनमें प्रथम नाटक है।[१]

आचार्यों का मत है कि नाटक की आधिकारिक कथावस्तु प्रख्यात (इतिहास-प्रसिद्ध) ही होनी चाहिए। कल्पित वस्तु को नाटक का आधार नहीं बनाया जा सकता। प्रख्यात वंश का राजर्षि या दिव्य अथवा दिव्यादिव्य कोटि का धीरोदात्त व्यक्ति नायक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। दिव्य होते हुए भी नराभिमानी पुरुष दिव्यादिव्य कहा जायगा, जैसे उत्तर-रामचरित में श्रीराम। शृङ्गार या वीर में से कोई एक अङ्गीरस होगा, किन्तु अन्य रसों का भी अङ्गरूप में समावेश होगा। निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस की भी सृष्टि होगी। कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होने चाहिए।[२] आनन्द-रघुनन्दन की मूल (आधिकारिक) कथा रामायण की प्रख्यात कथा है। धीरोदात्त एवं दिव्यादिव्य कोटि के श्रीराम उसके नायक हैं। इसमें वीर अङ्गीरस है तथा अन्य रसों के प्रयोग भी हुए हैं। इसमें सात अङ्क हैं। अतः यह नाटक कोटि का रूपक है। यह प्रकरण नहीं है, क्योंकि प्रकरण की कथावस्तु उत्पाद्य (कवि–कल्पित) और लौकिक होती है तथा नायक धीर-प्रशान्त कोटि का व्यक्ति–मन्त्री, ब्राह्मण या वणिक् होता है।[३] त्रोटक में प्रत्येक अङ्क में विदूषक रहता है, शृङ्गाररस अङ्गी होता है और दिव्य और मनुष्यपात्रों का समागम होता है[४]। आनन्द-रघुनन्दन

---

१. दशरूपक १।७-८ : 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते।
रूपकं तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्॥
नाटकं ···· ··· ··· ···· ··· ···· ···।'

२. दशरूपक ३।२३–२४ तथा साहित्यदर्पण ६।७-१० एवं वृत्ति।

३. दशरूपक ३।३९–४० :
'अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्।
अमात्य-विप्र-वणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्॥
धीरप्रशान्तं.........।'

४. साहित्यदर्पण : ६।२७३ : 'सप्ताष्ट-नव-पञ्चाङ्कंदिव्य-मानुष-संश्रयम्
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम्॥'

वृत्ति—'प्रत्यङ्कं सविदूषकत्वादत्र शृङ्गारोऽङ्गी।'.

के प्रमुख पात्र राम और सीता दिव्यादिव्य कोटि के हैं, वीर अङ्गी रस है और विदूषक का व्यापार सीमित है, अतः यह त्रोटक भी नहीं है। शेष रूपकों में से भाण, प्रहसन, व्यायोग, वीथी और अङ्क एकाङ्की होते हैं, समवकार ३ अङ्कों का और डिम एवं ईहामृग ४–४ अङ्कों के होते हैं।[१] सात अङ्कों के आनन्द-रघुनन्दन को इनमें भी नहीं गिना जा सकता।

भरतमुनि तथा अन्य सभी आचार्यों ने नाटककार से महती अपेक्षाएँ की हैं। नाटक में पाँचों सन्धियों का सुश्लिष्ट प्रयोग होना चाहिये। उसमें चारों वृत्तियाँ, चौंसठ अङ्ग, छत्तीस लक्षण एवं अलंकार होने चाहिये। इनके साथ सूक्ष्म तत्त्व यह है कि नाटक एक अत्यन्त रसमयी रचना होनी चाहिये तथा उसमें महान् चरित्र का उत्थान होना चाहिये।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक की रचना करना सामान्य क्षमता की वस्तु नहीं है। इसमें बुद्धि-तत्त्व और हृत्तत्त्व दोनों की महती आवश्यकता है। एक ओर कवि को कथा के विकास-क्रम का रूप सुयोजित रखना पड़ता है, जैसे पाँचों सन्धियों एवं सन्ध्यङ्गों को सुश्लिष्ट करना पड़ता है; दूसरी ओर उसे भावाभिव्यक्ति के माध्यम से संवादों को प्रभावी बना कर वातावरण के सहारे रसोन्मेष करना होता है। कथा के प्रमुख तत्त्वों को नाटककार अन्य काव्यों के क्रम से कथाकाव्यों या महाकाव्यों की भाँति नहीं प्रस्तुत कर सकता। उसे अपनी सीमाएँ और रङ्गमञ्च की सुविधाएँ देखते हुए केवल वही घटनाएँ सामने लानी होती हैं, जो सरस और प्रभावी बन सकें, शेष कथा की वह विष्कम्भक आदि के द्वारा सूचना-मात्र दे देता है। आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय के द्वारा नट उचित संवादों के बल पर मञ्च और परदों की पृष्ठभूमि में वह वस्तु प्रस्तुत करता है जो सामाजिक (दर्शक) के अन्तःकरण में त्वरित रसावर्जन कर सके। इन सब तत्त्वों का निर्देश नाटककार के हाथ में रहता है। भिन्न रुचियों के व्यक्तियों की भी तृप्ति नाटक में हो जाती है, अतः नाटक को काव्यों के मध्य सर्वाधिक रमणीय माना गया है। आचार्यों ने काव्य के इस भेद की ओर इसीलिये सबसे अधिक ध्यान देकर सूक्ष्म विवेचन किये हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि नाटक की सफलता नट और नाटककार

---

१. वही : ६।२२७–२६८।

२. नाट्यशास्त्र :

'पञ्चसन्धि-चतुर्वृत्ति-चतुःषष्ट्यङ्ग-संयुतम्।
षट्-त्रिंशल्लक्षणोपेतमलङ्कारोपशोभितम्॥'

दोनों पर निर्भर है। यदि नट कुशल अभिनेता नहीं है तो वह अभिज्ञान-शाकुन्तल जैसे नाटक के प्रति भी सामाजिक के मन में अच्छे भाव उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः नाटककार केवल पाठ्य काव्य की निर्मिति कर सकता है, अभिनय के निर्देश प्रस्तुत कर सकता है, रसोत्पादक संवाद और फलप्राप्ति की ओर अग्रसर होने वाली घटनाओं के दृश्य लिख सकता है; और यहीं उसके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है। नाटककार नाटक के पाठ्य रूप की सर्जना कर उसकी दृश्यता को नटों के अधीनस्थ कर देता है।

आनन्द-रघुनन्दन की कथावस्तु वाल्मीकि-रामायण पर आधारित होने से उसमें सन्धियाँ अपने आप सुश्लिष्ट रूप में विद्यमान हैं। प्रस्तुत नाटक के आरंभ में विष्कम्भ के प्रथम दृश्य में सूत्रधार को भेजी हुई पत्रिका में आदि कवि ने सूचित किया है कि दिङ्मूर्धा (रावण) से त्रस्त पृथ्वी की प्रार्थना से परम प्रभु अवतार लेंगे।[१] दूसरे दृश्य में आदि कवि मङ्गल कोलाहल सुनकर कहते हैं कि अयोध्या में प्रभु का अवतार हो गया।[२] ये सूचनाएं ही सम्पूर्ण नाटक का आधार हैं। यही स्वल्प, अदृष्ट हेतु के रूप में बीज की उत्पत्ति है। मुनिजन उत्सुक होकर अयोध्या जाते हैं,[३] अतः यह आरम्भावस्था है। नाटककार प्रथम अङ्क में शीघ्र ही कुमारों को तरुण रूप में उपस्थित कर देता है।[४] यातिनी (ताडका) और उसके पुत्र आदि राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिये

महारसं महाभोगमुदात्त-रचनान्वितम्।
महापुरुष-सत्कारं साध्वाचारं जनप्रियम्॥
सुश्लिष्ट-सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाश्रयम्।
मृदु-शब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम्॥'

साथ ही देखिये दशरूपक : १—७ : 'दशधैव रसाश्रयम्॥'

तथा ध्वन्यालोक : ३.१७—वृत्ति : 'अभिनेयार्थे तु सर्वथा रसबन्धेऽभिनिवेशः कार्यः।'

साथ ही देखिये हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ पृ० ३७१-७२।

१. विष्कम्भ : श्लोक ९-१० :
'दिङ्मूर्धोपद्रवाक्रान्ता ··· ··· ··· ···।
ततोऽवतारं परमः प्रभुर्भूम्यां ग्रहीष्यति॥'

२. वही, '····परावरेश्वरेश्वरावतारः समुदारः समभूदभूतपूर्वः।'

३. वही, '·······मुनिमण्डली·······अपराजितां·······गमिष्यतीति वयमपि गच्छामः।'

४. अङ्क १ : '····पुत्राः परिणय-योग्याः सञ्जाताः।'

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को माँग ले जाते हैं।[१] यज्ञ के समय कुमार अपने को राक्षस कुलान्तक घोषित करते हैं।[२] रावण धनुष को नहीं उठा पाता, जबकि राम उसे तोड़ देते हैं। परशुराम राम को ईश्वरावतार कह कर स्तुति करते हैं।[३] ये घटनाएँ बीज को स्पष्ट करती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रथम अङ्क में मुखसन्धि का स्पष्टीकरण और विकास होता है।

द्वितीय अङ्क में ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) वशिष्ठ को देवताओं की वार्ता सूचित करती है जिसके अनुसार राम रावण के वधार्थ सीता-सहित वन जाना चाहते हैं।[४] इससे कथा का विच्छिन्न सूत्र पुनः जुड़ता है। यह बिन्दु प्रकृति है। तृतीय अङ्क में शूर्पणखा के नाक-कान कटने, खरादि राक्षसों के संहार और सीताहरण में तत्वर-व्यापार-रूप यत्नावस्था सूचित होती है। यह प्रतिमुख सन्धि है, जिसमें बीज का उद्भेद लक्षित भी है और अलक्षित भी। रावण-वध की भूमिका तो पूर्णतः बन चुकी है किन्तु उसका व्यावहारिक रूप अनिश्चित है।

चतुर्थ अङ्क में राम-सुग्रीव की मैत्री होती है।[५] यहाँ से सानुबन्ध पताका अर्थप्रकृति मूल कथा के साथ अन्त तक चलती है। रावण-वध की सम्पूर्ति के लिये सुग्रीव और उनके साथी वानरों का रहना अनिवार्य हो जाता है। सीता के आभूषण मिल जाने से रावण का दक्षिण दिशा में जाना स्पष्ट हो जाता है।[६] यह प्राप्त्याशा अवस्था है क्योंकि सुग्रीव की सहायता मिलना निश्चित है। सुग्रीव का प्रमाद और आगे का कठिन कार्य अनिश्चितता भी उत्पन्न करते हैं। यहीं गर्भ-सन्धि चलती है, जिसमें दृष्ट-नष्ट बीज का अन्वेषण होता है, इसका विस्तार हनुमान् के यात्रारम्भ तक मानना चाहिए।

इसके आगे स्वयंप्रभा और सम्पाती का राम से मिलकर हनुमान् की लङ्का-

---

१. वही, श्लोक ५५-५६ :

'घातिका राक्षसी यागं समुता कुरुते क्रतौ।
धीरौ कुमारौ दीयेतां हितकारि-धराधरौ॥'

२. वही, 'रे रे क्षुद्राः इव आगच्छत तावदावां राक्षस-कुलान्तको धनुष्मन्तावागतौ भवावः।'

३. वही, श्लोक—९७ : 'जय पुरुष परेश ···।'

४. अङ्क २ दृश्य १ : 'दिक्कंधरोदरणाय विधि-विहित-हितकारी नाम परमपुमानवतीर्णः पुनरिदानीमङ्गनासङ्ग···।'

५. दृश्य १।

६. वही : 'रजनीचरो बलादपहरतीति पुनरेकस्मिन्नंशुकाञ्चले बद्धाभ्याभरणानि पातितानि।'

यात्रा सूचित करना[1] प्रकरी प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि कथासूत्र को आगे बढ़ाकर उनका लक्ष्य समाप्त हो जाता है। इसी कड़ी में हनुमान् द्वारा सीता की खोज कर लङ्कादहन द्वारा राक्षस-बल को थाह लेना और रावण को चिन्तित करना जोड़ा जा सकता है। पञ्चम अङ्क में ही सेना सागर पर सेतु बाँध कर उसे पार करती है *तथा विभीषण जैसा सहायक मिल जाता है। यह नियताप्ति अवस्था एवं अवमर्श सन्धि है।*

षष्ठ अङ्क में उपसंहृति या निर्वहण सन्धि है। रावण-वध का कार्य, प्रकृति और फलावस्था कहा जा सकता है। तपस्वियों और देवताओं का त्रास मिट गया है।[2] पृथ्वी रावण के अत्याचार से मुक्त हो गई है। यह राम की धर्मसिद्धि है। सीता की प्राप्ति को कामपूर्ति मान सकते हैं। आगे चलकर अयोध्या में राम का राज्याभिषेक अर्थ-सम्पूर्ति है। इस प्रकार त्रिवर्ग-सिद्धि होने से सम्पूर्ण फलसम्पत्ति की उपलब्धि हो जाती है। अवतार धारण करने का प्रयोजन सम्पूर्ण हो जाता है। *शास्त्र के मतानुसार इस निर्वहण सन्धि में* अद्भुत रस का भी प्रयोग हुआ है।[3]

प्रस्तुत नाटक में विष्कम्भक का एक ही प्रयोग किया गया है, जैसे कि कथावस्तु के आरम्भ में लिखा जा चुका है। यह प्रथम अङ्क के भी पूर्व है और वस्तुतः प्रस्तावना का ही अंश है। यदि इसे विष्कम्भक ही मानें तो यह भी शास्त्र के अनुकूल है, क्योंकि उसका लक्ष्य नीरस वस्तु-विस्तार का परित्याग करना है।[4]

विदूषक की उपस्थिति केवल नाटकारम्भ में दशरथ की राजसभा में है।

---

१. वही : दृश्य ४ : 'गृध्रः—महाराज् ! युष्मत् कृपापात्राणि वानरा मिलिताः ···सेतामल्लः · पारं प्रागाद् गरुत्मानिव··· ॥ ६३ ॥'

२. अङ्क ६ पृ० ७७: सुकण्ठ : 'दिङ्मूर्ध-मरणं-स्वामिन्नभूत्सर्वाऽभयङ्करम् ।
हन्तुं त्वयैव योग्योऽयं चराचर-विजिरः ॥'

३. पृ० ७२ : 'द्वयोरपि सुधीरादीदृक्षानां बाणानामुपादानं मञ्जुसिञ्जिनी-संयोजनमाकर्षण-प्रहरणं अपि न कोपि निरीक्षितुं शक्नोति ।
कोदण्ड-निःसरदशाञ्चित-काण्ड-माला-शल्याग्र-पुङ्ख वलिता नितरां विशाला ।
लग्ना द्वयोरपि धनुर्धरयोः शरीरेप्रोद्दण्ड-दण्ड पटलीव विभाति भूरि ॥'

४. दशरूपक : १।२८-२९ :
'आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्कं वा कार्ययुक्तितः ।
अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥
यदा सन्दर्शयेच्छेषं कुर्याद् विष्कम्भकं तदा ।'

यह विदूषक रामलीला के भाँड़ों की भाँति अश्लील शब्दों के प्रयोग कर कुत्सित हास्य उत्पन्न करता है। वह संस्कृत में वार्तालाप करता है।[१] वह अन्य नाटकों के विदूषकों की भाँति नायक का सखा नहीं है।

नाटककार ने अन्त में एक ओर सरयू के मुख से राम का महाप्रयाण सूचित कराया है दूसरी ओर गङ्गा के मुख से दार्शनिक मत प्रकट कराया है कि राम अयोध्या में नित्य वास करते हैं। यह गुप्त प्रसङ्ग सरयू छिपाए हुए थी और गङ्गा से सुनकर मुस्करा देती है। यहीं नाटक समाप्त होता है। इस प्रकार दर्शन के प्रभाव से दुःखान्त वस्तु को सुखान्त करने की चेष्टा की गई है। कवि चाहता तो वह राम के राज्याभिषेक के समय नृत्यवर्णन के अन्त में नाटक की समाप्ति कर भरतवाक्य प्रस्तुत कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। सूत्रधार अन्त में प्रकट होकर वरदान माँगता है जो भरतवाक्य की अपेक्षा फलस्तुति अधिक प्रतीत होती है।

युद्ध और वध के प्रसङ्ग रङ्गमञ्च पर नहीं आने चाहिए,[२] किन्तु इस नाटक में युद्ध का अत्यधिक विस्तार होने से ये दोष सम्भवतः अपरिहार्य होकर प्रस्तुत हो गए हैं।[३]

इस नाटक में अनेक स्थलों पर नारी-पात्र एवं दास-वर्ग भी संस्कृत का प्रयोग करते हैं।[४] इन व्यतिक्रमों के पश्चात् भी यह काव्य नाटक के न्यूनतम मूल्यों से हीन नहीं है।

२. संवादों की प्रभावात्मकता और अभिनेयता—

नाटककार ने आनन्द-रघुनन्दन में निम्नलिखित पात्रों की योजना की है—
पुरुष पात्र–१. दिग्यानराज (राजा दशरथ), २. हितकारी (राम),

---

१. दृश्य १ : 'भारी गङ्गा भवतीति।...अहमपि गङ्गास्नानं करोमि।'

२. दशरूपक : ३।३४–३६.
'दूराध्वानं वधं युद्धं....प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्।'

३. अङ्क ४ दृश्य २ : 'हितकारी शरं निस्सारयति। वासविः प्राण-प्रयाणं नाटयति।'

४. अङ्क १ दृश्य २ : 'देव्यः—
राजेन्द्र लालसास्माकं कदामोघां वधूजनान्।
निर्निरीक्ष्यामहे सान्द्रानन्दैर्नयन-नीरजैः॥'
तथा अङ्क १ दृश्य १ : 'नटी—हे नाथ! हे नाथ! प्राप्तास्मि।'
और अङ्क १ दृश्य ३ : 'वर्षवरः—'महाराज्ञि! चतुरः कुमारान् रत्नालङ्कार-वसनादिभिरलङ्कृतानाकारयति महाराजः।'

३. जगद्भर (भरत), ४. धराधर (लक्ष्मण), ५. अरिंदर (शत्रुघ्न), ६ जगद्योनिज (वशिष्ठ), ७. मुनमहित (विश्वामित्र), ८. घातिनेय (मारीच), ९. जनमोद (शतानन्द), १०. सीरकेतु (जनक), ११. धरासुर (बाणासुर), १२ दिक्शिराः (रावण), १३. रैणुकेय (परशुराम), १४. आदिकवि (वाल्मीकि), १५. वायस (काक-जयन्त), १६. सोमजनक (अत्रि), १७. मैत्रावरुणि (अगस्त्य) १८. आर्कणि (जटायु), १९. रासभ (खर राक्षस), २०. त्रिमुण्ड (त्रिशिराः), २१. दीर्घजठर (महोदर), २२. मुकण्ठ (सुग्रीव), २३ ऋक्षराज (जाम्बवान्), २४ वैतामल्ल (हनुमान्), २५. वासवि (बाली), २६. मुजगपग (अङ्गद), २७. गृध्र (सम्पाती), २८. इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार), २९. घनध्वनि (मेघनाद), ३०. भयानक (विभीषण), ३१. दधिवदन (दधिमुख), ३२. श्याम (नील) ३३. वैद्यकपि (सुषेण), ३४. घटकर्ण (कुम्भकर्ण), ३५. मानवान्तक (नरान्तक), ३६. सुरान्तक, ३७. अत्युदर, ३८. अतिपार्श्व, ३९. दीर्घदेह (अतिकाय), ४०. वृषभ, ४१. घट, ४२ मारनयन (मकराक्ष)।

इनके अतिरिक्त सूत्रधार, पारिपार्श्वक, सचिव, सभासद, वन्दीजन, नट, विदूषक, वर्षवर, द्वारपाल, पथिक, अमात्य, चार, प्रतीहार, शिष्य (अनेक), छात्र, शुक, चोर, चार मन्त्री, रावण का मन्त्री, कीर, वृक्षवाटिकापाल, सूत, गोरण्ड, अर्वदेशीय और तुरुष्कदेशीय मतंक, गन्धर्व भी हैं।

स्त्री पात्र—१. कुशला (कौशल्या), २. काश्मीरी (कैकयी), ३. सुहिता (सुमित्रा), ४. घातिनी (ताड़का), ५. देवी (जनक-पत्नी सुनयना), ६. ब्रह्म-कुण्डजा (सरयू), ७. महिजा (सीता), ८. कुटिला (मन्थरा), ९. अनीर्ष्या (अनसूया), १०. दीर्घनखी (शूर्पणखा), ११. किराती (शबरी), १२. सुषेण-तनया (तारा), १३. स्व-प्रकाशिनी (स्वयंप्रभा), १४. राक्षसी (लङ्का), १५. स्वर्धुनी (गङ्गा)।

इनके अतिरिक्त नदी (दो), सखी (अनेक), राक्षसी, मरुदेशीय बारवधूटी तथा उर्वशी आदि ३५ अप्सराएँ हैं।

पात्रों की इस भीड़ को देखते हुए स्पष्ट है कि नाटककार ने अभिनेयता और रङ्गमञ्च की सुविधा की दृष्टि से पात्र-योजना नहीं की। वह रामायण की राम-कथा से इतना अधिक प्रभावित है कि वह कथा के महत्त्वहीन अंशों को भी रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सका। नाटक के आरम्भ से पूर्व केवल एक बार विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। चूलिका (नेपथ्य)[1] का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। युद्धों का विवरण प्रायः सर्वत्र नेपथ्य

१. दशरूपक : १।६१ : 'अन्तर्जवनिका-संस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।'

से दिया गया है किन्तु उसका बहुत सा अंश संवादों के रूप में भी है। उदाहरण के लिये निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का इतना अधिक प्रयोग है कि रङ्गमञ्च पर लङ्का के विस्मयकारी युद्ध का संवादों के माध्यम से विस्तृत विवरण दिया गया है। रसात्मकता पीछे रह जाती है और कथात्मकता सामने आ जाती है। युद्ध करने वाले कितने ही राक्षस रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं।

नाटककार दृश्यों के विभाजन में भी सफलता से दूर रह गया है। उसका लक्ष्य दृश्य उपस्थित कर रस-सृष्टि करना नहीं, अपितु राम-कथा की कड़ियों को जोड़ना है। इस उद्देश्य से अनेक छोटे-छोटे दृश्य उपस्थित किये गए हैं, जो विष्कम्भक आदि की भाँति नीरस-वस्तु-विस्तर को सूचित कर तुरन्त समाप्त हो जाते हैं। कितने ही दृश्य ८-१० पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं।[1] दूसरी ओर कुछ दृश्य इतने लम्बे हैं कि वे सामाजिक को थका कर उसकी रुचि समाप्त कर सकते हैं।[2]

इस नाटक में रङ्गमञ्च से सम्बद्ध निर्देश केवल पात्रों के बाह्य अभिनय और संवादों से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें मञ्च की सज्जा में आवश्यक परिवर्तनों के सङ्केत नहीं हैं। किस स्थान में कौन-सी घटना हो रही है और उसके अनुसार मञ्च पर कैसे परिवर्तन अपेक्षित हैं, यह बात पूर्णतः सामाजिक की बोधगम्यता पर अथवा अभिनय के भावी दिग्दर्शकों पर छोड़ दी गई है।

इसी प्रकार कुछ स्थलों पर काल-मर्यादा का सम्पूर्णतः अतिक्रमण हुआ है। लक्ष्मण की मूर्च्छा पर राम विलाप कर रहे हैं। वैद्य के सुझाने पर हनुमान् दूर से ओषधि लाने के लिये राम से आज्ञा माँगते हैं। राम आज्ञा देकर उन्हें अयोध्या का समाचार लाने के लिये भी कहते हैं। हनुमान् उधर निकलते हैं और इधर राम कहते हैं कि बहुत विलम्ब हुआ। उनके इतना कहते ही ओषधि लिये हुए हनुमान् पुनः प्रवेश करते हैं[3] (जैसे वे दरवाजे से ही लौट आए हों)। इस कथित विलम्ब की अनुभूति सामाजिक के लिए असम्भव है, जब कि आगे चल कर राम विलम्ब का कारण भी पूछते हैं और हनुमान् बतलाते हैं कि वे अयोध्या

१. अङ्क १ दृश्य २५,६ तथा अन्यत्र।

२. अङ्क ६ दृश्य ५।

३. अङ्क ६ : 'हितकारी—याहि, वृत्तान्तमप्ययराजितायाः गृहीत्वैहायाहि।
त्रेतामल्लः—तथा (इति निष्क्रान्तः)।
हितकारी—महान् विलम्बो बभूव। नायातस्त्रेतामल्लः।
किन्नु कारणं स्यात्। (ततः प्रविशति त्रेतामल्लः।)'

में भरत के बाणों से आहत होकर मूर्छित हो गए थे और वशिष्ठ के उपचार करने से स्वस्थ होकर आए।

संवादों में पद्यों का अतिमात्र प्रयोग है। उन संक्षिप्त गद्यात्मक वाक्यों का अभाव है जो मर्म का स्पर्श करें। यही नहीं भावोद्रेक के समय पद्यों का प्रयोग अस्वाभाविक भी है। इन त्रुटियों को देखते हुए एक ही कारण समझ में आता है कि नाटककार का प्रमुख लक्ष्य है, ईश्वर के अवतार राम की कथा प्रस्तुत करना। उसने नाटक को मूलतः पाठ्य का रूप दिया है, प्रेक्ष्य का नहीं।

उपर्युक्त त्रुटियों के होते हुए भी अभिनेयता की दृष्टि से इस कृति को नितान्त असफल मानना उचित न होगा। नाटककार ने कथा को संक्षिप्त करने का प्रबल प्रयत्न किया है। प्रारम्भ का विष्कम्भ हमें सूचित करता है कि पृथ्वी की प्रार्थना पर रावणादि राक्षसों के विनाशार्थ अयोध्या में परेश का जन्म हुआ है। इस प्रकार राम-जन्म की विस्तृत भूमिका विष्कम्भ में सिमट जाती है। राम के वनगमन का सम्पूर्ण प्रसङ्ग आदिकवि की शिष्य के साथ हुई कुछ ही वाक्यों की चर्चा में सीमित कर दिया गया है। वीर और रौद्र रस की उद्भावना को लिये कवि जहाँ चित्रकूट में भरत के प्रवेश पर लक्ष्मण के ओजस्वी उद्गारों का विस्तार देता है, वहाँ वह राम और भरत के इस मिलन से उत्पन्न प्रश्नों को संक्षिप्त संवादों में ही निबटा देता है। इसी प्रकार सीता की खोज को भी संक्षिप्त किया गया है।

नाटक को जनरुचि के अनुकूल बनाने के लिये नाटककार ने रामलीला की शैली को अपनाते हुए कुछ विशिष्ट संवाद प्रस्तुत किये हैं। इनमें प्रयुक्त पद्यों को अंश रूप में भी पात्र बोलते हैं।

प्रथम संवाद रावण-बाणासुर की वार्ता के रूप में है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

'दिक्शिराः-भुजावरं बहून्नहो नु विस्मृतः परावराम्।
बाणासुरः—सहस्रबाहु-विक्रमं त्वमेव वेत्सि विष्टपे॥
दिक्०— धनुस्तुलायां सन्तोल्य लक्षय त्वं निजं बलम्।
त्रोटयिष्येऽहमेवेदं परावृत्य यदैष्यसि॥
बाणा०— इदं धनुर्गुरोरास्ते धत्ते वन्दन-योग्यताम्।
त्रोटयिष्यसि चेच्चापं करिष्ये कृत्यमस्ति यत्॥
दिक्०— धनुर्भङ्क्त्वा तथापि मदभङ्गं करोमि।
(इति परिकरं बद्ध्वा धावति)।

इस संवाद में सम्पूर्ण कथा के प्रतिनायक एवं खलनायक को अन्यायपूर्वक

कम्पित करने वाले रावण को बाणासुर के मुख से फटकार मिलना और धनुष तोड़ने में रावण का असफल होकर हास्यास्पद बनना लोकरुचि के अनुकूल हैं और अभिनेयता की दृष्टि से उसका महत्त्व है।

दूसरा संवाद परशुराम और राम का है, जिसमें लोकदृष्टि में क्रमशः पूज्यत्व प्राप्त करने वाले नायक राम को कटु वचन कहने वाले परशुराम का अन्त में मानभङ्ग होता है। उदाहरण के लिये एक अंश देखिये—

'रैणुकेयः—जानासि किं न मां त्वम्।
हितकारी—भार्गव भगवन्नवैमि किन्नेदम्॥
रैणु०—वेत्ति हृदन्धो न हि माम्।
हित०—प्रभवन्तं को न जानाति॥ १६०॥
रैणु०—मद्‌करवा पिनाकममयो बहु भाषमाणः
क्षिप्रं दिवं जिगमिषुः खलु दृश्यसे त्वम्।
हित०—बालेन खेलनवता कलितं विमर्न्नं
सद्योजनार्हमिदमत्र भवेत् कथं नु॥ १६१॥

... ...

शान्तममन्दं मुनिरिति पुनरपि गुरुनिन्दनं रटयति।
अरिदर देहि धनुर्मे पश्यामि करोति किं मुनिः कुपितः॥ १९०॥'

तीसरा महत्त्वपूर्ण संवाद है राम और बाली का। यदि बाली ने स्वयं राम से कहा हो कि तुम्हारे जैसे दशद्विजयी को जीत कर मैं बलवानों में बलवान् होना चाहता हूँ, साथ ही बाली ने स्वयं पहले प्रहार किया हो तो राम के शौर्य-प्रदर्शन का मूल्य निश्चित रूप से बढ़ जाता है और नाटकीय तत्त्व में वृद्धि होती है। बालि-वध के प्रसङ्ग में यह वस्तु मौलिक तथा अनेक नाटकों से समन्वित है।

'वासविः— को युवां भ्रातरौ भव्यौ।
धराधरः— आवां क्षत्रिय-नन्दनौ॥
वा० —ज्ञायते दर्शनेनैतत् सविशेषमुदाहर॥ १३॥
धरा० —दिग्यानराजसूनुर्हितकारी जगति गीत-सत्कीर्तिः।
वा० —(हितकारिणं निरीक्ष्य)
अतिसुन्दर-मृदुलाङ्गो
राक्षस-संहार-लब्ध-विजयोऽसि॥ १४॥

हितकारी—कस्त्वादृशोऽस्ति बलवान्
येन गृहीतं परं त्रिपुरंदरम् ।
बा० —प्रबलस्त्वमेव एक-
स्त्रिजगति जितवान् सहस्रभुज-अर्जुनम् ॥ १५ ॥
जगज्जयिल्ललामं रणे जयं स्फूर्जदाजसम् ।
यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिना बली ॥ १६ ॥
हित०— सायुधः स्याः स्थितोऽहं ते धनुःशरधरः पुरः ।
बा० —कौनामायुधं दन्ता नखा द्रुमशिलादयः ॥ १७ ॥
(इति लोल-लाङ्गूलेन धैर्यमुत्पाट्य निक्षिपति) ।'

चौथा विशिष्ट संवाद अङ्गद-रावण के बीच है। सीताहरण का कलङ्क अर्जित करने वाले शक्तिशाली रावण को निर्भयतापूर्वक कठोरतम अपशब्द कहनेवाला अङ्गद अवश्य ही लोकरुचि के अनुकूल पात्र होगा—

'भुजभूषणः—स्त्री-चोरः किल कुत्रास्ते ?
दिक्शिराः—नास्ति नेत्रद्वयं किमु ?
भुजभूषणः—निर्लज्ज किं त्वमेवासि ?
दिक्शिराः—कटु वक्तुं किमागतः ?'

उपर्युक्त कोटि के संवाद अभिनेयता की दृष्टि से अवश्य ही प्रभावी एवं आह्लादजनक माने जायेंगे।

नाटककार ने जानकी-रघुनन्दन में कुछ रोचक पत्र-व्यवहार प्रस्तुत किये हैं। पहली पत्रिका आदिकवि की है, जो शिष्य श्रुतधर (सूत्रधार) के समीप आती है। यह नाटक की भूमिका है और पद्यात्मक है। दूसरा पत्र जनक द्वारा दशरथ के नाम है, जिसमें बारात को आमन्त्रण है, तीसरा दशरथ द्वारा जनक के आमन्त्रण की स्वीकृति के रूप में है। पिछली शताब्दियों में महाराजाओं के मध्य चलने वाले पत्र-व्यवहार की गद्यात्मक शैली की छाया इन पत्रों में प्राप्त होने से ये जन-रुचि के अनुकूल हैं। इसी कड़ी में अधिक नाटकीय तत्त्व प्रकट करने वाला पत्र रावण का है, जो बाली की सभा में तार नामक मंत्री द्वारा पढ़ा जाता है। यह सर्वाधिक रोचक है—

'स्वस्ति श्री महाराजाधिराज-श्री कपिराज-श्रीमान्-निखर्व-श्रीवासवि-महावीर-रणधीर-महाशयेषु लङ्कातः श्री राक्षसेन्द्र-महीमहेन्द्र-श्रीविराज्मान-मानोन्नत-दिग्विजयि-श्री-श्री-दिविचरतः समाशिषः समुल्लसन्तु। भवदीय-कुशलमिह वर्तते नालीकजन्मा नालीलिखदेव। विशेषस्तावदिदानीम्। कापि राजकुमारी…

तौ विधृत्य समुद्दण्डो दोर्दण्डोद्दत्य-मण्डितौ ।
कुमारौ सुकुमाराङ्गौ प्रेषणीयौ ममान्तिकम् ॥ ७ ॥
इति शं स्तात् ।'

इस पत्र में रावण द्वारा बाली को आक्षेप लिखना और यह कहना कि 'हम दोनों का अकुशल ब्रह्मा ने लिखा ही नहीं' (अतः कुशल-प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं) एवं राम और लक्ष्मण को पकड़ कर लङ्का को भेज देने का निर्देश देना—ये उक्तियाँ एक ओर रावण के अभिमानी स्वरूप का अङ्कन करती हैं, दूसरी ओर उन्नीसवीं शती के सामाजिक के लिये आकर्षक और अनुरञ्जक हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने प्राचीन परम्परा के साथ नवीन परम्पराओं का योग किया है और बहुजन-समाज की रुचियों का समावेश कर नाटक को एक नयी दिशा दी है। नाटककार पाश्चात्य रङ्गमञ्च और नाट्यकला से परिचित या प्रभावित नहीं है। अतः आधुनिक दृष्टिकोण से इस नाटक का परीक्षण करना अन्याय होगा। पौर्वात्य नाट्यकला के सभी अङ्गों से अवश्य ही नाटककार परिचित है, साथ ही वह उसमें नवीनता का समावेश करता है, जिसमें राजपूत-संस्कृति की झलक है।

३. शैली—

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में प्रयुक्त रचना-शैली मध्यम श्रेणी की कही जा सकती है। उसमें प्राप्त भाषा और पदावली अवश्य ही अनेक स्थलों पर विवरणात्मक, नीरस और शिथिल है। कथात्मकता का आश्रय लेने से नाटककार ने बहुत सी सूक्ष्म वस्तु को दृश्यों के रूप में ग्रहण किया है, अतः घटनाओं के विवरण रस-हीन हैं। यह होने पर भी नाटक का आधे से अधिक भाग काव्यात्मक है। इस अंश में सरसता, सालङ्कारता एवं भावप्रवणता के दर्शन होते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा सशक्त, प्राञ्जल एवं प्रौढ़ है। रसों और भावों के अनुरूप दीर्घ-समास-युक्त, अल्प-समास-युक्त एवं समास-हीन पदावली के यथास्थान प्रयोग हुए हैं।

नाटक में वीर रस प्रधान रूप में लिया गया है। इसके अनुकूल ओज गुण, आरभटी वृत्ति और गौड़ी रीति के प्रदर्शन में कवि सफल हुआ है। ओज का परिपोष करने के लिये नाटककार ने रौद्र रस को अत्यन्त सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अद्भुत और भयानक रस की अभिव्यक्ति भी पूर्ण सफलता के साथ हुई है। शृङ्गार रस की विशेष निष्पत्ति के लिये कवि ने राम की राजसभा में अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वगीत प्रस्तुत किये हैं। हास्य, बीभत्स और करुण का स्पर्श-मात्र हुआ है। शान्त रस नाटक में निषिद्ध

होने से नहीं लाया गया। भक्ति और वात्सल्य का भी स्पर्श किया गया है। आवश्यकतानुसार सभी गुणों, वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग किये गए हैं। पत्रिकाओं और प्रकृति-वर्णनों में समासाढ्य उत्कलिकाप्राय शैली के गद्य प्रयुक्त हुए हैं। संवादों में छोटे-छोटे मर्मस्पर्शी गद्यवाक्य भी सुलभ हैं।

लक्ष्मण देखते हैं कि कुम्भकर्ण वानरों का संहार कर रहा है। उनके हृदय में वीर रस का सञ्चार होता है और वे निम्नलिखित उद्गार के रूप में अपना उत्साह प्रकट करते हैं—

'क्षुद्र-क्षुद्रान् कपीन् हंसि किमर्थं युद्ध-दुर्मदः।
मम सम्मुखमागच्छ रण-रङ्ग-रसं पिब ॥'[1]

परशुराम के आ जाने से बारात के अयोध्या की ओर बढ़ने में गतिरोध हो गया है; दशरथ मूर्च्छित पड़े हैं; राम के विनम्र वचन भी परशुराम पर कोई प्रभाव नहीं डालते; परशुराम कटु वचन कहते-कहते वसिष्ठ और विश्वामित्र की भी निन्दा करते हैं; तब राम के हृदय में वीर रस जागृत हो जाता और वे शत्रुघ्न से धनुष माँगते हैं—

'क्षान्तममर्षं मुनिरिति
पुनरपि गुरुनिन्दनं रटयति।
अरिदर देहि धनुर्मे
पश्यामि करोति किं मुनिः कुपितः ॥'[2]

बाली ने अजातिजयी राम को धनुष धारण किये हुए सामने पाया और उसके मन में राम को पराजित करने की इच्छा से उत्साह प्रकट हो गया—

'अगर्जविल्ललामं त्वां जयेयं स्फूर्जदोजसम्।
यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिनां बली ॥'[3]

उपर्युक्त उदाहरण युद्धवीर के प्रदर्शित किये गए हैं। अनेक आचार्यों ने दानवीर, धर्मवीर और दयावीर को भी गिना है।[4] नीचे इनके भी उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

विभीषण राम की शरण में आया हुआ है। कहीं यह राक्षसों की कपट

---

१. अङ्क ६, पृ० ७४।

२. अङ्क १।१९०।

३. अङ्क ४।१६।

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश टीका : निर्णयसागर : बम्बई : १९३६ : परि० ३।२३४ : 'स च दान-धर्म-युद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।'

नीति हो, इस आशंका से सुग्रीव आदि विभीषण को दण्डित करना चाहते हैं। शरणागत की रक्षा को धर्म मानने वाले राम का धर्मवीर और युद्धवीर का रूप इस अवसर पर एक साथ वर्णित होता है और वे कहते हैं—

'नो भोः मुकण्ठ शरणागत-पालकोऽहं
नैव स्वजेयमिह मित्रतया प्रपन्नम्।
कुन्ताम्यहं खलु कुल नखरस्य कोट्या,
किं कर्तुमीशत इमे मम कौणपौघाः ॥'[१]

चित्रकूट में वशिष्ठ राम से कहते हैं कि भरत की इच्छा पूरी करो (अयोध्या को लौट चलो)। तब राम अपनी धर्मवीरता से, पिता की आज्ञा को अन्तिम बात कह कर विनम्र दृढ़ता द्वारा उन्हें विवश कर देते हैं—

'माता-पित्रोरनुज्ञादावेवामुद् वन-सेवने।
यद्विचार्य भवान् ब्रूयात्तत्कुर्यां भगवन्नहम् ॥'[२]

समुद्र पार करने से पूर्व ही विभीषण को लङ्का का राज्य देने का सङ्कल्प राम की दानवीरता का परिचय देता है—

'सुकण्ठानय पाथोधेः पायः प्लवग-पार्थिव।
रक्षःपुरी-महाराज्य-महाराजं करोम्यमुम् ॥'[३]

सीता के प्रति अपराध करने वाले काक (जयन्त) ने राम के बाण के भय से जब उन्हीं को रक्षा के लिये आर्त्तभाव से पुकारा, तब राम को उस पर दया आ गई और उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। यह राम की दयावीरता का उदाहरण है—

'ममामोघः शरः काक नमोवाकेन किमवेत्।
दत्त्वा दृग्मं पाप-पाकं याहि नाकं यथासुखम् ॥'[४]

रावण को युद्ध के लिए आते हुए देख कर सुग्रीव की निम्नलिखित उक्ति में रावण का स्वरूपवर्णन रौद्र रस का सुन्दर उदाहरण है—

'धुन्वन् कोदण्ड-मौर्वीं करकमलगतं आनयन् बाणमेकं,
कर्णान्तायोग-नेत्रः स्फुरदिपुचियुगः शक्रनीलाद्रिशोभः।
यद्यायं वर्म-मध्ये समर-भर-महावीरदोत्फुल्ल वर्ष्मा,
नः पर्याप्नोति पश्यन् रजनिचर-पतिर्नन्द मन्दं हसन्निव ॥'[५]

परशुराम की निम्नलिखित उक्ति में भी रौद्र रस है। साथ ही इसमें ओज गुण, आरभटी वृत्ति, गौड़ी रीति एवं रूपक अलङ्कार द्रष्टव्य है—

---

१. अङ्क ५।५०। २. अङ्क २।५३। ३. अङ्क ५।५२।
४. अङ्क २ दृश्य ५। ५. अङ्क ६ पृ० ६९।

'कोदण्ड-ऊर्मिषु निमज्जये शिलीन्ध्रं
परशूर्मी सुभटतरून् प्रवाहयामि ।
प्रस्फूर्जत्प्रसमर-कोप-वाडवाग्नि-
ज्वालासु क्षितिप-सुतान् जुहोमि युष्मान् ॥'[1]

राम और रावण का विस्मयकारी द्वन्द्व-युद्ध अद्भुत रस की सृष्टि कर रहा है—

'मालवल्ले धनुर्मौर्व्यां मार्गणारोपणं द्वयो,
धारासारा उभयतो भाऊं नीरन्ध्रयन्त्यहो ॥'[2]

कुम्भकर्ण को देखकर आश्चर्य में पड़े हुए वानरों में उसके अद्भुत रूप की चर्चा होती है—

'शाखाभृङ्गणनगैः परिवीत-मूर्ति-
रभ्रङ्कषाचलशिरा विकराल-वक्त्रः ।
ब्रह्माण्ड-खण्ड-परिमण्डित-रोमकूपः
स्तूना महानिव घन समरे विभाति ॥'[3]

ताटका के निम्नलिखित स्वरूप-वर्णन में आरभटी वृत्ति के साथ भयानक रस की निष्पत्ति हुई है—

'एषा दीर्घ-शिरोरुहैर्घनजटामुद्घाटयन्ती स्फुटं
नेत्राङ्गार-शिखा-लता-समुदयैराच्छादयन्ती दिशम् ।
दष्ट-प्रान्तर-सन्धि-सङ्गत-नृणा रक्त वहन्ती गवा-
न्मीलत्कृत्तिपटा गलान्त्र-विकटा दृष्टा ध्रुवं पक्षिणी ॥'[4]

लङ्का के युद्ध के निम्नलिखित वर्णन में अनुप्रासों के योग के साथ बीभत्स का निदर्शन है—

'उन्मादानां कदम्बैर्भुवन-भय कृता भूरि मज्जोदकान्तं
निर्मज्जदयुन्मदानां तरलगतिजुषां मण्डलं योगिनीनाम् ।
माभूत् कशापोदमामोषनमिति कुरुते कालिकाट्टाट्टहासं
क्रन्दं क्रन्दं शृगाली कवलयति पलं द्रागशालीन-भावा ॥'[5]

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को बतलाते हैं कि जनक अपनी अयोनिजा (पृथ्वी-कर्षण से उत्पन्न) कन्या सीता का स्वयंवर रच रहे हैं। इस पर लक्ष्मण का निम्नलिखित प्रश्न शिष्ट हास्य उत्पन्न करता है—

---

१. अङ्क १।१८४। २. अङ्क ६ पृ० ७६। ३. अङ्क ६ पृ० ७३।
४. अङ्क १।६७। ५. अङ्क ६ पृ० ७२।

'भो गुरो! सा तावदयोनिजा राजकन्या पाषाणी किंवा दारुजा किं पुनः प्राचीन-धातुजा वा।'[१]

माधुर्य गुण का प्रयोग करुण और शृङ्गार रस के दोनों पक्ष (सम्भोग और विप्रलम्भ) के साथ किया जाता है। नाटक में इसके उदाहरण सुलभ हैं।

रावण की शक्ति के प्रहार से मूर्च्छित लक्ष्मण के जीवन की अवस्था सन्दिग्ध हो जाने से राम के निम्नलिखित उद्‌गारों में करुण रस के साथ भारती वृत्ति, वैदर्भी रीति एवं माधुर्य गुण द्रष्टव्य हैं—

'प्राणस्य ते मेऽत्र मृतं दशान्तरे
जीवाम्यहं चित्रमिदं धनुर्धर।
दृष्ट्वा यदा प्रक्ष्यति मां तव प्रसूः
कुत्रास्ति पुत्रस्तव सङ्ग-सङ्गतः॥
किमुत्तरं देयमथो मया तदा
विचे विधानं किमिदं तवाद्भुतम्॥'[२]

कैशिकी वृत्ति, पाञ्चाली रीति और माधुर्य गुण के साथ समासोक्ति और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों से युक्त निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त निशावर्णन में शृङ्गार के सम्भोग पक्ष का पूर्ण परिपोष है—

'रक्तां विलोक्य दिशं रुचिरां प्रतीचीं
मित्रागमं नु घृत-कुङ्कुम-पङ्क-रागाम्।
श्यामां जगद् विदधती च निशागतेयं-
मुत्कण्ठिता किमु निज प्रिय-सङ्गमाय॥
शृङ्गार-कान्ति-ललिताभरण-प्रसून-
सन्ध्या-शितांशु-किरणाहित-पद्धति-श्रीः।
कान्तः सुधाकर उपेत्य सुरंस्यतेऽत्र
पीयूषवर्षमुदमन् स करिष्यतीति॥
अमुना विहृत्य विधुना
रैणा निर्याति विरचनायेन।
ताराततिं हास-परा
मुदिता मधुरं द्विजाः स्वनन्तीमे॥'[३]

अप्सरा-नृत्य के वर्णन में कवि ने नायिका भेद प्रस्तुत किया है। इनमें से अभिसारिका का उदाहरण यहाँ दिया जाता है। इसमें अनुप्रासों के प्रयोग के साथ शृङ्गार रस प्रदर्शित है—

१. अङ्क १ १२। २. अङ्क ६ पृ० ७०। ३. अङ्क ३।३-८,१०।

'गङ्गा-तुङ्ग-तरङ्ग-गौर-वसना हारावली-शोभना
दृष्ट्वा दर्पण-बिम्बमिन्दु-वदना सर्वाङ्ग-शृङ्गारिणी ।
मन्दीकृत्य मुखेन्दुना हिमकरोद्योतं प्रयान्ती प्रियं
स्वीयां निन्दति गन्ध-सिन्धुर-गति प्राणेश-सङ्गातुरा ॥'[१]

इसी प्रकार गुप्ता नायिका के निम्नलिखित उदाहरण में परिपूर्ण भाव-व्यञ्जना है—

'वर्षत्युन्नत-वारिदे जलमुपादातुं प्रभु-प्रेषितां
स्निग्धाघ्य-स्तलिहामयं तु सुजनः प्रोत्थापयामास माम् ।
मद्दे जातमिहागता त्वमपि यन्नोवेदिहत्यो जनः
किं किं नो कथयेदमूः प्रियसखि त्वं मे सहायाधुना ॥'[२]

ऋष्यमूक पर्वत पर वास करते समय राम के इस कथन में विरहावस्था सुन्दर रूप में व्यञ्जित हुई है; इसमें सात्वती वृत्ति और वैदर्भी रीति है—

'मल्लिकाङ्गानि स्पृष्ट्वा,
स्पृशं सकल रवं सत्पुत्ताङ्गुलि ।
विरहेण दह्यमाना
तनुमेतां शिशिरय त्वरया ॥'[३]

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को तपोवन की ओर जाते देख माता का वात्सल्य पश्चात्ताप के रूप में फूट पड़ता है—

'व्रजति मम कुमारावेव आदाय योगी
कथमहह वितीर्णौ प्राणसारौ नृपेण ।
मृदुनि कुसुम-तल्पे शेरतौ यौ वसन्तौ
वनभुवि नु भवेतां तौ कथं सौख्यवन्तौ ॥'[४]

तपस्विनी किराती के निम्नलिखित उद्गारों में भक्ति-रस के अन्तर्गत दास्य भाव प्रस्फुटित है—

---

१. अङ्क ७।७९ : देखिये दशरूपक २।२८ :
'कामार्त्ताभिसरेत्कान्तं सारयेद् वाभिसारिका ।'
भानुदत्त के अनुसार यह ज्योत्स्नाभिसारिका है ।
(देखिये रसमञ्जरी : चौखम्बा : बनारस : १९०४ : पृ० १७७) ।

२. अङ्क ७।५७ : परोढ़ा नायिका के ६ भेदों में से प्रथम गुप्ता है । यह उदाहरण गुप्ता के प्रथम प्रभेद वृत्तसुरतगोपना का है—
रसमञ्जरी : पृ० ६९ : 'गुप्ता त्रिधा । वृत्तसुरतगोपना-।'

३. अङ्क ४।४३ । ४. अङ्क १।५८ ।

'यं वीक्ष्य राक्षसा अपि
मुह्यन्त्यद्धावसङ्कुरं रुचिरम्।
यं संस्मरतः स्फुरति
श्रावण-सन्ध्येव मानसं शम्भोः ॥
विचरन् कर्दंष्यतीह
त्रिभुवन-भर्त्ता धरावरेण समम्।
मम शिरसि विश्वनाथः
शिशिरं च करं करिष्यति कृपालुः ॥'[१]

ऊपर कुछ अलङ्कारों का निर्देश किया जा चुका है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। कवि ने शब्दालंकारों के रमणीक प्रयोग किये हैं। अनुप्रास की छटा निम्नलिखित श्लोक में दर्शनीय है--

'वञ्चत्पञ्चवटी सरिद्-वरतटी-निष्ठा विमारयुद्मटी
भूता राग-रजः करी सन्दृशा दृश्या सुखाम्भोधरी।
सन्तापारमटी भटी सुमलतावेगी सुपर्णोत्पटी
कल्यो याति घटीव यत्र रचिता कान्ता कुटी स्वनंटी ॥'[२]

रावण-वध के पश्चात् राम के दर्शनार्थ उत्कण्ठिता सीता के वर्णन में उपमालङ्कार देखिये--

'चातकीव तृषिताम्बुद-मर्वं
पूर्णचन्द्रमिव चारु चकोरी।
द्रष्टुमुत्सहत उत्कलिकार्त्ता
स्वामिनं स्वमथ राजकुमारी ॥'[३]

परशुराम की इस उक्ति में अनुप्रास के साथ रूपक की संसृष्टि द्रष्टव्य है--

'कारयसि किं दशामिह-
मवनिप-मर्माटवी-दव-ज्वाला।
चित्रा कुठार-धारा
हित-रिपु-दारासि-नोर-विस्तारा ॥'[४]

राम के द्वारा ऋष्यमूक पर्वत के वर्णन में अपह्नुति का प्रयोग किया गया है--

---

१. अङ्क ३।१०१-१०२। २. अङ्क ३।२।
३. अङ्क ६ पृष्ठ ८५। ४. अङ्क १।६३।

'ननु कलयति घण्टा-किङ्किणीनां निनादं
स्वगत-विरथ-पंक्तिर्दन्तशानिम्बकानाम् ।
शिरसि लसित-धातु-श्रेणि-शृङ्गारशाली
न हि गिरिरयमास्ते किन्तु मत्त-द्विपेन्द्रः ॥'[१]

राम के द्वारा मुख से सुवेल पर्वत पर चन्द्र-कलङ्क-वर्णन के रूप में विरह की ध्वनि से पूर्ण अपह्नुति का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

'न श्यामता शशिनि शुभ्रतरैरभिराम-
श्यामा-वियोग-जनित-स्मर-बाण-रवै. ।
रन्ध्रीकृतं हृदयमस्य तदन्तरिसं
सलक्ष्यते सजल-नीरद-नील-कान्ति ॥'[२]

राम को देखकर परशुराम का कथन अनुप्रास एवं सन्देह का उदाहरण है—

'अहो कामः स्याच्चेत् स्मरहरधनुर्नामि कथनात्
विदूरं यातः स्यात्कर-कमल-बद्धाञ्जलि-पुटः ।
रसस्त्रस्नादात्मा प्रभवति न कर्तुं करबलाद्-
गुणाकृष्ट कष्टादपि जगति शृङ्गार-वणितिः ॥
हरि' स्याच्चेच्चक्र प्रभृति-रमणीयायुध-धरः
चतुर्बाहुस्त्वोद्द् नृपतिषु च राजेत् क इतरः ।
मनोहारो हारो रुचिर-रुचि-धारी प्रति-तनू-
रुहं कोयं भाति प्रकट-हितकारि-व्यतिकरात् ॥'[३]

रावण द्वारा अपनी शक्ति की प्रशंसा में प्रकट किये हुए उद्गार में अनुप्रास के साथ अत्युक्ति अलङ्कार देखिये—

'मद् दोर्दण्ड-प्रचण्ड प्रहृति परिदलत्कालदण्डः सदण्डोऽ-
गाद्-ब्रह्माण्डादखण्डाद्-भुवन-भय-विधायि चण्डांशु-डिम्भः ।
ब्रह्माण्डाखण्ड-भाण्डे प्रसृतमतितरां प्रेक्ष्य चण्ड-प्रतापं
मार्तण्डः कादिशीकः सरति दशदिशो मौनमास्थाय मन्दम् ॥'[४]

कोमल-कान्त पदावली में ऋष्यमूक के वर्णन के रूप में कवि का वर्षाकालीन प्रकृति-चित्रण द्रष्टव्य है—

'प्रसृमर-मद-धारो निर्झरैर्निर्झरद्भिः-
र्नव-किसलय लोलद्राजि-राजत्कुच-श्रीः ।

---

१. अङ्क ४।२८ । २. अङ्क ६।७ । ३. अङ्क ११।५८-५९ ।
४. अङ्क ११।०२ ।

अनुवहति वतानां चामर-श्रेणि-शोभां
स्तवक-भर-नतानां चक्रवालैर्लतानाम् ॥'[1]

गद्यों के क्षेत्र में चूर्णक शैली के प्रभावकारी लघु वाक्य भी मिलते हैं—

'मर्यादायामतीतायां न स्थास्यन्ति मत्प्राणाः ।'[2]

'इदानीं वनितानां विश्वासमिह जगति किमिति कोऽपि करिष्यतीति ।'[3]

'अस्यै फलं दत्त्वा त्वामपि प्रबोधयिष्यामि ।'[4]

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ने दीर्घ-समास-युक्त चमत्कारपूर्ण गद्यों के भी प्रयोग किये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'पुरुहूत-हरितिनिर्गच्छन् हरिदश्वः प्रकाशमासादयन्नयं दक्षिणस्यां दिशि कृपणीकृतारि-विशारदानन्त-शारदा-नारद-शारदारविन्द-कुन्द-कान्ति-सन्तानपरिमाण-दीधिति-प्रतान-वितान-विडम्बमान-दिगन्तरालमकाल-कुवलयिनी-वल्लभा-खण्डमहामण्डलमिदमुद्दाम-मार्तण्ड-मण्डलोद्योत-मण्डली-कुण्डलीकुर्वाणमपूर्वं लोचन-गोचरी भवति । (पुनर्नेपथ्ये) जगन्नाथ ! पुष्पकं नाम विमानमिदम् ।'[5]

प्राकृत भाषा में भी गद्यों के प्रयोग प्राप्त हैं। एक वन्य पथिक स्त्री की भाषा (मागधी) देखिये—

'अइ सहि अइ भइणि अइ माए एक्को पहिओ समाआदो तम्मुहादो सुणिदं जारिसा बम्हांड-भण्डोअरे ण सुणिदा तारिसा जुअल कुमार आगच्छन्ति ।'[6]

४. प्रमुख चरित्र—

वाल्मीकि ने रामायण में राम का जो उदार एवं महान् चरित्र स्थापित किया है, उससे प्रभावित हो कर भारत के सहस्रों कवियों ने विभिन्न भाषाओं में एवं संस्कृत में रामकथा को काव्य-बद्ध किया है। उन्हीं काव्यों में से एक विश्वनाथसिंह का आनन्द-रघुनन्दन नाटक है। अपनी सीमाओं में बँध कर नाटककार ने राम का चित्राङ्कन किया है, साथ ही उसने अन्य चरित्रों का चित्रण किया है।

(१) हितकारी

इस नाटक में राम को हितकारी नाम दिया गया है। हितकारी धीरोदात्त

---

१. अङ्क ७।२६। २. अङ्क ७ पृ० १। ३. अङ्क २ पृ० २७।
४. अङ्क २ पृष्ठ २९। ५. अङ्क ७ दृश्य १।
६. अङ्क १ पृ० ९ : संस्कृत रूप—
'अयि सखि ! अयि भगिनि ! अयि मातः ! एकः पथिकः समागतः। तन्मुखाच्छ्रुतम्। यादृशो ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरे न श्रुतो तादृशो युगल-कुमारो आगच्छतः।'

नायक के समस्त गुणों से पूर्ण है। वे दिव्य परेश ब्रह्म के अवतार हो कर भी अदिव्य मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करते हैं और लोकधर्म के अनुकूल बन जाते हैं। उनके जन्म लेते ही एक ओर देवताओं और दूसरी ओर मुनि-मण्डली को हर्ष होता है।

विश्वामित्र राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए राम और उनके साथ लक्ष्मण को ले जाते हैं।[१] राम घातिनी तथा उसके पुत्रों घातिनेय और चारुभुज को परास्त कर एक सुरक्षा का वातावरण निर्मित करते हैं। राम का दिव्य स्वरूप भी साथ ही साथ प्रकट होता है। उनके स्पर्श से शिलामयी अहल्या पुनः नारी-रूप प्राप्त करती है।[२] उनका रूप देखकर जनक प्रसन्न हो जाते हैं[३] और जन-समाज राम को सीता के योग्य घोषित कर देता है।[४] जिस धनुष को रावण भी नहीं हिला सका था, उसे राम ने क्षण भर में तोड़ कर असीम शक्ति का परिचय दिया।[५] धनुर्भङ्ग को सुन कर परशुराम प्रचण्ड वेग से आते हैं। वे राम को देख कर चकित रह जाते हैं।[६] उनके साथ राम अत्यन्त विनम्रता का व्यवहार करते हैं और उनके काटने के लिए हाथ आगे कर [illegible] हैं।[७] परशुराम वशिष्ठ और विश्वामित्र का अपमान करते हैं, तब राम की कोपाग्नि धधक उठती है और वे धनुष माँगते हैं।[८] अन्त में परशुराम उन्हें ईश्वर मान कर प्रणाम करते हैं।

---

१. अङ्क १।५६ : 'क्रतु संरक्षणार्थाय त्रिलोकी-वीर-शेखरौ।
धीरौ कुमारौ दीयेतां हितकारि-धराधरौ॥'

२. वही, १।८६ : 'शतमोदः—
पाषाणी पुत्तलीं चक्रे पिता दृष्ट्वा स मत्प्रसूम्।
शापोद्धारोऽपि तेनोक्तोवतीर्णः पुरुषः परः॥'

३. १।९१ : 'धनुर्बाणधरौ धीरौ कोटि-कन्दर्प-सुन्दरौ।'

४. १।९३ : 'महिजा-हितकारिणोर्द्वयोर्य
विधिना काम-रति-द्वयायुतानि।

५. अङ्क १।१२१ : 'आश्चर्यमाश्चर्यमिदं निरीक्ष्यतां
गृहीतमुत्थापितमप्यदर्शि नो। धनुः ··· ··· ॥'

६. वही, १।१६० :
'मनोहारी हारी रुचिर-रुचि-धारी प्रततनुरुहं कोऽयम् ?'

७. वही, १।१६२ : 'हस्तौ गृहाण भृगुनन्दन विश्ववन्द्य
किं स्वामिना परिजनस्य भवेद् विवादः।'

८. वही, १।१९०।

हितकारी (राम) वन में जाते हैं तब मुनिजन उन्हें देख कर अपना अहोभाग्य मानते हैं और उनका आतिथ्य करते हैं।[१] राम का सात्त्विक क्रोध शत्रु के शरण आते ही दूर हो जाता है। जयन्त (वायस) ने सीता को चोंच मार कर राम को चुनौती दी, बाण छूटा, किन्तु विकल वायस ने जैसे ही शरण माँगी, उसे क्षमा मिल गई।[२]

भरत को सैन्य-सहित आते देखकर जब लक्ष्मण क्रोध करते हैं, तब शान्त, निःस्पृह एवं दूरदर्शी हितकारी (राम) उन्हें बतलाते हैं कि 'भरत का मेरे प्रति तुम्हारे समान ही प्रेम है, मुझे राजधानी ले जाने के लिए आ रहे होंगे।[३]' भरत के निवेदन और वशिष्ठ के सङ्केत पर भी राम वन से लौटना नहीं चाहते, अपितु माता-पिता की आज्ञा पर दृढ़ रहते हैं[४] और पादुका देकर भरत को लौटा देते हैं।

शूर्पणखा की सूचना पर जब राक्षस सेना-सहित राम पर चढ़ दौड़ता है तब वे अत्यन्त शूरता का परिचय देते हैं। वे अकेले चौदह सहस्र राक्षसों को मार गिराते हैं। ऐसी महासत्त्वता उनमें अनेक बार प्रकट हुई है।

राम का दिव्य रूप यहाँ भी प्रकट होता है। वे सीता को अग्नि-प्रवेश करा कर छाया सीता को साथ रख लेते हैं। यहीं मानुषाभिमानी रूप पुनः प्रत्यक्ष होता है और छाया सीता का हरण होने पर राम अत्यन्त विकल हो कर उन्माद-ग्रस्त हो जाते हैं।[५]

राम मित्रता की उच्चाई पर विश्वास करते हैं; वे सुग्रीव को विपत्ति से

---

१. अङ्क २ दृश्य २ :
'गुरुः (वाल्मीकिः)—अहोभाग्यमहोभाग्यं पाद्यार्घ्यादिकमानय''''।'

२. वही, दृश्य ५।

३. अङ्क २।४८ :

'श्यर्थं किमर्थमतिरोषमरं करोषि
यस्त्वादृशीं मयि रतिं तु दधाति सोऽपि।
मत्सङ्गमाय नगरीं प्रति मां च नेतुं
स्यादागतः स्वजन-सैन्य-जनैः समेतः॥'

४. अंक २।५३ : 'माता-पित्रोरनुज्ञादावेवाभूद् वनसेवने।'

५. उदाहरणार्थ अङ्क ३ दृश्य ८ : '(अशोकमवलोक्य)—
मन्मथ-सायक-नायक-सुखदायकमस्ति ह्यवादमुतं नाम।
कथयाशोक कृपाञ्जौं तरुवर मह्यं सखे नरवराय॥ ९१॥'

मुक्त करने का आश्वासन देते हैं[१] और स्वयं वालि से युद्ध कर उसे मारते हैं। (इस नाटक के अनुसार सुग्रीव को वालि से नहीं लड़ना पड़ता।) हनुमान लङ्का से लौटकर जब सीता का समाचार देते हैं, तब उसी क्षण राम सेना को चलने की आज्ञा देते हैं।[२] इससे उनकी कार्य-तत्परता सूचित होती है।

विभीषण आकाश से 'शरण' बोलता है, तब राम उस समय अपने सबसे समर्थ सहायक मित्र सुग्रीव की बात न मान कर विभीषण को शरण में ले लेते हैं[३] और उसे लङ्का का राज्य देकर अद्भुत धर्मवीरता का परिचय देते हैं।

सुवेल पर्वत पर पहुँचने पर राम को पता चलता है कि रावण निश्चिन्त भाव से नृत्य देख रहा है। राम बाण मार कर उसके चामर, छत्र और आभूषण गिरा देते हैं[४] और रस-भङ्ग हो जाता है।

अपने अनुजों के प्रति राम का प्रेम अत्यन्त गम्भीर है। रावण लक्ष्मण पर ब्रह्मशक्ति का प्रहार कर देता है। लक्ष्मण के प्राण संकट में हैं। राम लक्ष्मण को गले लगाकर विकल हो जाते हैं। वे कहते हैं कि 'तुम्हारी माँ को क्या उत्तर दूंगा। इस कठिन समय में भरत ही सहायता कर सकते थे।'[५] इसी प्रकार युद्ध समाप्त होने पर राम विभीषण से कहते हैं कि 'वनवास की अवधि

---

१. अङ्क ४ दृश्य १ : 'हितकारी···मा कृथाः शोकम्। स्वप्नारी-हारिण-मेकेनैव शरेण हनिष्यामि।'

२. अङ्क ५ दृश्य ६ : 'हित०—(विचार्य) विजयमुहूर्तमिदानीमेवास्तीति।'

३. अङ्क ५ श्लोक ५० : 'नैव त्यजेयमिह मित्रतया प्रपन्नम्।'

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६४) : 'नाट्यशालायामभि-मणि-सिंहासने निषण्णस्य मे चामर-चतुष्टयमनर्घ-रत्नप्रचुरमातपत्रं सर्वाङ्गीणान्याभरणानि चाकस्मादेव निकृत्तान्यपतन्।'

५. अङ्क ६ : (पृष्ठ ७१) :

'हितकारी—(धराधरमुत्थाप्यालिङ्ग्यवाष्पावरुद्ध-कण्ठ)
प्राणस्य ते मेऽत्र भृशं दशान्तरे जीवाम्यहं चित्रमिद धनुर्धर।
दृष्ट्वा यदा प्रक्ष्यति मां तव प्रसूः क्वास्ति पुत्रस्तव सङ्ग-सङ्गतः॥
किमुत्तरं देयमथो मया तदा, विधे विधानं किमिदं तवाद्भुतम्।
हा भ्रातरं वीर जगद्भरं विना कः स्यात्सहायः समयेऽत्र दारुणे॥'

बीतने में दो ही दिन शेष हैं। मैं अयोध्या न पहुँचूँगा तो भरत प्राण त्याग देंगे।'[१]

राम अयोध्यावासियों को तो प्राण-प्रिय हैं ही, सुग्रीव आदि साथियों को भी इतने प्रिय है कि राम अपने अभिषेक-समारोह के पश्चात् जब उनको विदा करते हैं तब वे रो पड़ते हैं।[२]

इस प्रकार राम का चित्रण शील, शक्ति, सौन्दर्य के प्रतीक रूप में तो हुआ ही है, साथ ही करुणा, मैत्री, परोपकार, उत्सर्ग, धीरता, नीतिमत्ता, प्रेम आदि सभी मानवोचित गुणों से उन्हें परिपूर्ण बतलाया गया है। प्रस्तुत नाटक में वीर अङ्गी रस होने से राम की वीरता को अनेकशः विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२. धराधर—

लक्ष्मण को कवि ने धराधर नाम दिया है, क्योंकि वे शेष के अवतार हैं। काव्य के आरम्भ से अन्त तक लक्ष्मण की उपस्थिति नायक राम के साथ निरन्तर रही आती है।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में लक्ष्मण भी राक्षसों को मारते हैं। जनक की औरस कन्या ऊर्मिला लक्ष्मण को ब्याही जाती है।[३] परशुराम के प्रसङ्ग में लक्ष्मण पृथक् रूप से एक ही बार परशुराम को उत्तर देते हैं कि 'आपने जब पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन किया था, तब हितकारी जैसा कोई क्षत्रिय नहीं था। आज आपको उसका पौरुष ज्ञात हो जायगा।'[४]

इस कथन से राम के पराक्रम के प्रति लक्ष्मण के मन में प्रारम्भ से ही दृढ़ आस्था सूचित होती है।

चित्रकूट में भरत के सेना-सहित पहुँचते ही लक्ष्मण को सन्देह होता है

---

१. अङ्क ६ (पृ० ९१) : 'प्राप्वा न तां, यदि तदा स जगद्भरः स्राक्।
प्राणांस्त्यजेद् व्यसनमेतदुदेति घोरम्॥'

२. अङ्क ७ दृश्य २ :
'(सुकण्ठो वाष्पावरुद्धकण्ठो भ्रातॄन् चतुरः प्रणम्य ससैन्यो निष्क्रान्तः।)'

३. अङ्क १ दृश्य ९ : 'जगद्योनिजः ---- --- राजन् सीरकेतो! ···
आत्मीयां दुहितरमूर्मिलां वितर धराधराय।'

४. अङ्क ३।१७० :
निः सप्तवारं पृथिवीं चकार निःक्षत्रियां हन्त यदा भवान् सः।
न क्षत्रियोऽभूद्धितकारि-तुल्यस्त्वमद्य विज्ञास्यसि पौरुषं तत्॥'

कि भरत राम को मारने आए हैं। उन्हें यह विचार इतना उत्तेजित कर देता है कि वे शीघ्र ही भरत का वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनकी समझ में राम के साथ पहले ही अन्याय हुआ है, जिसे समाप्त कर राम को राजा बनाने का अब समय आ गया है।[१]

लक्ष्मण राक्षस के साथ हुए युद्ध में अपने रहते राम को नहीं लड़ने देना चाहते। वे अपने उज्ज्वल चरित्र पर उँगली उठाने पर सीता को भी 'चण्डी' कहते हैं[२]। राम के मुख से सुग्रीव के प्रमाद का सङ्केत पाते ही लक्ष्मण उसी क्षण सुग्रीव को मार डालने के लिए उद्यत हो जाते हैं।[३]

लङ्का में लक्ष्मण मेघनाद तथा अनेक राक्षसों का संहार करते हैं और रावण-कुम्भकर्ण के साथ युद्ध में अप्रतिम शूरता का परिचय देते हैं। अन्त में अयोध्या में कोश के अधिकारी बनाए जाते हैं।[४] वास्तव में सम्पूर्ण कथा में लक्ष्मण के बिना राम की कल्पना ही नहीं हो सकती।

३. जगद्भर—

दशरथ के द्वितीय पुत्र भरत, जिनका नाम नाटक में जगद्भर रखा गया है, निश्छल, निःस्पृह, त्यागशील एवं राम के प्रति निष्ठावान् पात्र के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। सरस्वती के आदेश से वशिष्ठ राम को वनवास दिलाने की योजना में सम्मिलित होकर भरत को काश्मीर (केकय देश) भिजवाते हैं।[५] दशरथ की मृत्यु के पश्चात् लौटने पर भरत को कैकेयी के राम-विरोधी कृत्य का ज्ञान होता है। वे माता को हीन दृष्टि से देखते हुए उसे कटु वचन

---

१. अङ्क २ : श्लोक ३४–४७ :
'स्वामिन्नाज्ञां प्रदेहि द्रुतमुदितमनास्तौ तु धृत्वा कराभिः
सङ्ग्राम्योत्करेण प्रविष्ट-कुटिला-जिह्विका कर्तयेयम्।
स्व-क्रोधाग्नि ज्वलन्तं कृशतर-कुशला-शोकवह्नि च नियंत्-
काश्मीरी-बाष्प-पूर-प्रसृमर-सरितामंसु निर्वापयेयम् ॥ ४७ ॥'

२. अङ्क ३ दृश्य ७ : '(सखेदं कर्णौ पिधाय)—
हा हन्त हन्त हत एव किलास्मि चण्डि··· ॥ ७८ ॥'

३. अङ्क ४।४१ : 'विस्मृत्य तं दारं पीत्वा मैरेयमनिशं भृशम्।
सुन्दरीभिर्विहरसे रहसीत्यमहो कथम् ॥'

४. अङ्क ७।८९।

५. अङ्क २ दृश्य १ : 'यत्त्वमिदानीमवनीन्द्रस्य दिव्यानस्य यत्वान्तिकं जगद्वीरं जगद्भरं अरिदरं च राजकुमारं प्रेषय काश्मीरम्।'

कहते हैं।[१] वाल्मीकि और तुलसी के समान ही विश्वनाथसिंह ने भी भरत का चरित्राङ्कन किया है। आनन्द-रघुनन्दन में यह विशेषता है कि वनवास की अवधि के अन्तिम दिन भरत राम के वियोग में इतने विकल हो उठते हैं कि वे गुरु को बुलाकर कहते हैं कि अवधि बीतने पर मेरे प्राण नहीं रहेंगे इसलिए राज्य आपको सौंपता हूँ।[२] राम के प्रति भरत के मन में इतना उच्च भाव है कि जब शत्रुघ्न मन्थरा को पीटते हैं, तब भरत कहते हैं कि नारी का वध होने पर मुझे राम से भय लगता है।[३] राम भरत की योग्यता मानते हैं। *अन्त में राज्य का सञ्चालन भरत को ही सौंपते हैं, जिससे भूमि राजन्वती* कहलाए।[४]

५. अरिदर—

शत्रुघ्न को नाटक में अरिदर नाम दिया गया है। अन्य रामकथाओं की अपेक्षा इस नाटक में शत्रुघ्न के चरित्राङ्कन की अधिक चिन्ता की गई है। परशुराम के कटु वचन सुन कर शत्रुघ्न स्वयं उनका मान-मर्दन करने के लिए तैयार हो जाते हैं।[५] वे मन्थरा को अनर्थों की जड़ मान कर उसके केश खींचते हैं और कैकेयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं।[६] चित्रकूट में जब

---

१. अङ्क २।११ : 'हितकार्यपकारिण्याश्छिन्द्या स्याद्रसना तव।
माता ममापि काश्मीरि कुर्यां किं पतिघातिनि ॥'

२. अङ्क ७ दृश्य १ : '....मर्यादायामतीतायां न स्थास्यन्ति मत्प्राणाः।....
इतोऽहं प्राज्यं राज्यमाचार्याय....अत्रभवते प्रतिपादयामि।'

३. अङ्क २।१२ : 'नारीवधे कृते वत्स भयं मे हितकारिणः।'

४. अङ्क ७।८९ :
'राज्यं रक्ष जगद्भर त्वमभयो राजन्वती भूरियं, येनोच्येत....।'

५. अङ्क १।१७४ : 'हन्त प्रयातु सगुरुर्नगरीं नरेन्द्रः
सार्यश्च स्वजन-सैन्यजनैः समेतः।
आयामि तावदहमप्यघुनैव भङ्क्त्वा
डिम्भो यथा मणिकमुग्रमुनेर्मदं द्राक्॥'

६. अङ्क २ (पृ० २९) :
'आः पापे! त्वमेव सर्वानर्थस्य कारणमसि।
(इति केशान् गृह्णाति)....।
अस्यै फलं दत्वा त्वामपि प्रबोधयितास्मि
(इति श्रुत्वैव काश्मीरी सभयं निष्क्रान्ता)

राम अयोध्या को लौटने के लिए स्वीकृति नहीं देते, तब शत्रुघ्न स्वयं राम से निवेदन करते हैं कि उन्हें भी राम अपने साथ रखें और उनसे सेवा लें। वे कहते हैं कि 'हे आर्य ! हम आपके बच्चे हैं।'[१] अन्त में शत्रुघ्न जैसे वीर को अयोध्या का सेनापतित्व दिया जाता है।[२]

५. प्रेतामल्ल—

राम और लक्ष्मण के पश्चात् सम्भवतः नायक पक्ष के सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र हनुमान हैं, जिन्हें इस नाटक में प्रेतामल्ल कहा गया है। पताका के रूप में चलने वाली कथा में वे अवश्य ही सर्वातिशायी हैं। हनुमान सुग्रीव के मन्त्री हैं और जब सुग्रीव राम के कार्य को भूल कर विलास-मग्न हो जाते हैं, तब हनुमान ही उन्हें प्रबोधन देते हैं।[३] राम और सुग्रीव की मैत्री कराकर दोनों के कार्य सिद्ध कराने का श्रेय हनुमान को ही है।[४] सुग्रीव भी उन्हें 'प्रवीणतम' मानते हैं।[५] हनुमान ने सागर पार करते समय दुर्दम्य रौद्र रूप धारण किया, जिसे राम से ऋष्यमूक पर सम्पाती बतलाता है।[६] सीता की खोज का दुष्कर कार्य उन्होंने अत्यन्त सफलता के साथ सम्पन्न कर सर्वप्रियता अर्जित की और राम उनके ऋणी हो गये।[७] लङ्का के युद्ध में हनुमान का शौर्य-प्रदर्शन अद्भुत था। कुम्भकर्ण के जिस शरीर (कबन्ध) के भूमि पर गिरने से भरतखण्ड के

१. अङ्क २ (पृ० ४१):

'मां तु सहैव गृहीत्वा प्रविशतु गहनं वनं भवानधुना।
आवां तवार्य वत्सौ सम्भूयारण्य-सेवनं कुर्वः॥'

२. अङ्क ७।८९ : 'सेनां शत्रुघ्न सादरामिदिर स्वार्यां त्वमन्वर्यमन्।'

३. अङ्क ४।३५।३६ :

'सपदि सकल-कार्यं येन सम्पादितं ते
प्रबलमिह कथं तं हन्त विस्मृत्य मत्तः।
मनसि तव विनाशं कीशनाथात्र बुद्ध्वा
वयमिह सचिवास्ते शोचयामः सदैव॥'

४. अङ्क ४।२ : 'हे विश्वनाथ ! तव सोऽस्ति सखित्व-योग्यः।'

५. अङ्क ४ : दृश्य १ :

'प्रेतामल्ल ! त्वं प्रवीणतमोऽसि, गत्वा परीक्ष्य प्रत्यागच्छ।'

६. अङ्क ४।६१ :

'रेणूकृत्य त्रिकूटं वियति विततवन् दर्शये चित्रमत्र
क्रोध-भ्राष्ट्रे विमर्घोद्धत-रजनिचरान् भस्मभावं नयामि।'

७. अङ्क ५।३४ : त्वद्दानोचितमत्र वस्तु विधिना नाकारि लोकत्रये।'

प्राणियों का नाश हो जाना था, उसे हनुमान ने आकाश के पवन-प्रवाह में फेंक दिया; ऐसा अद्भुत उनका बल था।[१] उन्होंने सञ्जीवनी लाकर लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की।[२] राम अयोध्या पहुँचने से पूर्व हनुमान को भेज कर भरत की मनोवृत्ति का पता लगाते हैं। हनुमान नीतिज्ञ हैं और वे भरत को राम के समान मान कर ही उनका सम्मान करते हैं।[३] वानरों और राक्षसों को अयोध्या से विदाई हो जाने पर वे सुग्रीव के दूत के रूप में अयोध्या में ही रहे जाते हैं।[४] नाटक में हनुमान राम की दास्य-भक्ति के प्रतीक हैं,[५] जैसे रामचरितमानस में है।

६. वासवि—

इन्द्र का पुत्र, किष्किन्धा का शासक बाली, जिसे यहाँ वासवि नाम दिया गया है, इस नाटक में पूर्णतः प्रतिनायक रावण के पक्ष का पात्र प्रतीत होता है। बाली के निकट रावण पत्र भेज कर अपेक्षा करता है कि वह राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लङ्का भेज देगा।[६] तार मन्त्री के इस प्रश्न पर कि अब आपकी रावण के साथ मैत्री क्यों है, बाली कहता है कि रावण को अस्त्र-शस्त्र में जीतने वाला व्यक्ति त्रैलोक्य में नहीं है।[७] इसी समय राम-लक्ष्मण बाली के समीप आते हैं, तब बाली स्वयं राम से युद्ध कर उन्हें जीत लेने की इच्छा करता है।[८] ऐसा प्रतीत होता है कि रावण के उपर्युक्त निर्देश की पूर्ति के लिए ही बाली राम के साथ युद्ध करता है, यद्यपि स्वयं मारा जाता है। कथा के अंश को इस प्रकार मोड़ देकर बालि वध को जन-रुचि के अधिक अनुकूल बना दिया गया है।

---

१. अङ्क ६ : 'विश्वस्मिन् बलमीदृशं क्वचिदहो नादर्शि नाकर्ण्यपि ॥'

२. अङ्क ६ : युद्ध-प्रकरण, दृश्य ३।

३. अङ्क ७।११ : 'त्वं विश्वनाथ हितकारि-समो ममासि
दासस्त्वास्मि जगतीजन-गीत-कीर्तेः ॥'

४. अङ्क ७।४९ : 'उपकण्ठे महाराज सुकण्ठस्तव यां सखा।
दौत्येन वस्तुमुत्कण्ठा-कुण्ठितः प्राहिणोत् सदा ॥'

५. अङ्क ४।२ : 'ज्ञातोऽसि नाथ हितकारि-पदाभिधेय-
स्त्वं व्यस्मरः किमिति दासमिहान्तिकस्थम् ॥'

६. देखिये पीछे अध्याय ६ (ख-२)।

७. अङ्क ४।९ : 'त्रिलोक्यामस्त्र-शस्त्रेण विजेता तस्य नेक्ष्यते।'

८. अङ्क ४।१६-१७ : देखिये पीछे अध्याय ६(क)।

७. दिक्शिरस्—

रावण को नाटक में दिक्शिरस् नाम दिया गया है। यह प्रतिनायक है। काश्मीर (केकय) देश से आकर तिरहुत में विश्वामित्र के आश्रम पर आक्रमण करनेवाला और पीछे पञ्चवटी में मृग-रूप से राम को कपट जाल में उलझा कर सीता-हरण का कारण बननेवाला धातिनेय (ताटका-पुत्र मारीच) रावण का वशवर्ती है। उसी प्रकार चौदह सहस्र राक्षसों की सेना का प्रमुख और जनस्थान को आतङ्कित रखने वाला राक्षस (खर) भी रावण का आज्ञाकारी है। रावण दैत्येन्द्र बाणासुर के रोकने पर उसकी उपेक्षा करते हुए शङ्कर का धनुष तोड़ने के लिए उद्यत हो जाता है।[1] उसके अनाचारों से कम्पित पृथ्वी की प्रार्थना पर उसका वध करने के लिए परमेश्वर ने राम-रूप में अवतार लिया है।[2] वह अपने मन्त्री से, जो नयी योजनाएँ बतलाता है, वे उसके प्रबल अहङ्कार और अद्भुत पराक्रम की सूचनाएँ देती हैं। वह समुद्र का सारा पानी निकलवा कर उसमें मन्दाकिनी का मधुर जल भरना चाहता है; कैलाश को लङ्का में ला कर इष्टदेव शङ्कर के प्रीत्यर्थ उन्हें शेषनाग को आभूषण-रूप में अर्पित कर देना चाहता है। वह कहता है कि कुम्भकर्ण समुद्र को चादर की तरह ओढ़ कर सो जाय।[3] हनुमान जब मेघनाद द्वारा बाँध कर रावण की सभा में पहुँचाए जाते हैं, तब वे रावण के द्वारपाल की आज्ञाएँ प्रसारित करते हुए सुनते हैं--'अग्नि! तुम शीघ्र रसोई बनाओ, पवन! तुम सुगन्धियुक्त बहते हुए मार्ग स्वच्छ करो, वरुण! स्नान के लिए गङ्गा का जल लाओ, कुबेर! तुम दौड़ कर निधि लाओ, जो दान के काम आवे।' हनुमान मन में कहते हैं कि ऐसी आज्ञा तो जगदीश्वर की भी नहीं सुनी।[4]

जब सीता की खोज कर हनुमान किष्किन्धा लौटते हैं, तब वे राम के पूछने पर रावण का संक्षेप में उपयुक्त चित्रण करते हैं—'पर्वत के शृङ्गों के सदृश रावण

---

१. अङ्क १ पृ० १५ तथा अङ्क १।१०२।

२. अङ्क १।९-१०, देखिये नाटक का वस्तु-तत्त्व।

३. अङ्क ३, पृष्ठ ४२।

४. अङ्क ५।१० :

'पाकागारं कृशानो व्रज कलय परा-पाक-निष्पत्तिमारा-
दध्वानं शोधयित्वा परिवह पवन त्वं वहन्मुग्ध-गन्धम्।
गङ्गा-पाथः पवित्रं त्वरितमुपहर स्नान-सिद्ध्यै जलेश
त्वं धावं धावमद्याऽऽनय धनद निधिं नित्य दान-प्रवृत्त्यै॥
...ईदृशी तावदाज्ञा जगदीश्वरस्यापि न श्रुता।'

के ऊँचे मस्तक आकाश को छूते हैं, उसके बाहुदण्ड सर्प के शरीर के समान सुदृढ़ हैं, उसकी छाती पर स्वर्ग के हाथी ऐरावत के दाँतों और इन्द्र के वज्र के प्रहारों के चिह्न सुशोभित हैं, उसके जैसे कुशल शिष्य को स्वयं देवगुरु शङ्कर ने सारे शास्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा दी है।'[१]

बाली जैसा पराक्रमी भी रावण के साथ मैत्री बनाए रखना चाहता है।[२] जब रावण के साथ युद्ध करने के लिए लक्ष्मण प्रस्थित होते हैं, तब स्वयं राम उन्हें सावधान करते हुए रावण को त्रैलोक्य-विजयी कहते हैं।[३] सेनाओं का कोलाहल रावण के लिए नूपुर-ध्वनि की भाँति मनोरञ्जक है।[४] रावण की युद्ध-शैली और शक्ति की अनेकशः प्रशंसा होती है। अन्त में उसकी मृत्यु पर सुग्रीव राम से कहते हैं कि इसे आप ही मार सकते थे।[५]

रावण का एक अन्तर्निहित रूप है, जिसमें वह मोक्ष-प्राप्ति के लिए राम से विरोध करता है। वह सीता को लक्ष्मी मानते हुए भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए लङ्का ले आता है।[६] वह युद्ध में मरे हुए राक्षसों को समुद्र में फिकवाता जाता है, जिससे वे मोक्ष के अधिकारी हो जायँ और सञ्जीवनी की सुगन्धि से पुनर्जीवित न हों।[७]

उपर्युक्त पुरुष पात्रों के अतिरिक्त सुकण्ठ (सुग्रीव), भयानक (विभीषण),

---

१. अङ्क ४।४२ :
'शीर्षाण्यभ्रङ्कषाणि क्षितिधर-शिखर-श्रेणि-शोभाधराणि
भ्राजन्ते बाहुदण्डा भुजग-परिवृढादभ्र-भोगायमानाः।
चक्र-स्वर्दन्ति-दन्ताशनि-निहित-किण-ग्रन्थि-नेपथ्य-वक्षा
यं दक्षं शास्त्रमस्त्रं सकलसुरगुरुः पाठयामास शम्भुः ॥'

२. अङ्क ४:७,९।

३. अङ्क ६ (पृष्ठ ६९) : 'त्रैलोक्य-विजयी वीरः कृतशत्रुः परन्तपः।
सावधानतया युद्धं धर युद्ध-धुरन्धर ॥'

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६१) : 'सेना-ध्वनिमुपाकर्ण्यामन्दं नन्दति मन्मनः।
यथा नवीन-नारीणां रतौ नूपुर-निःस्वनम् ॥'

५. अङ्क ६ (पृष्ठ ७६) : 'हन्तुं त्वयैव योग्योऽयम्।'

६. अङ्क ३।६६ : 'श्रियं पतितपाजन्यामागतायां पुरे भृशम्।
भवेत् सपरिवारस्य मम मोक्षाधिकारिता ॥'

७. अङ्क ६ (पृ० ७६) : 'मृतानां यातुधानानां शरीराणि सरित्पतौ।
निक्षेपयति वैलक्ष्याद् दशग्रीवः क्षणे क्षणे ॥'

भुजभूषण (अङ्गद), घनध्वनि (मेघनाद[१], घटकर्ण (कुम्भकर्ण) आदि भी महत्वपूर्ण पात्र हैं, किन्तु उनके चित्रण परम्परात्मक हैं।

स्त्री पात्र—(१) महिजा

नाटककार ने स्त्री पात्रों के चरित्राङ्कन की बहुत कम चिन्ता की है, तथापि कथा की नायिका सीता, जिसे नाटक में महिजा कहा गया है, उदात्त रीति से चित्रित हुई है। इस चित्रण में परम्परा के साथ-साथ कवि की अपनी प्रतिभा का भी योग हुआ है।

विश्वामित्र के शब्दों में सीता लक्ष्मी के समान है।[१] [redacted] एक अयोनिजा राजकन्या है। उसकी असामान्यता इसी से स्पष्ट है कि शङ्कर का धनुष तोड़नेवाला ही उसके साथ विवाह कर सकता है। धनुर्भङ्ग के अवसर पर सीता को देख कर लक्ष्मण कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने समुद्र का मन्थन कर लक्ष्मी को प्राप्त करने में व्यर्थ परिश्रम किया, वास्तव में उन्हें पृथ्वी का मन्थन करना था (जिससे वे पृथ्वी की कन्या सीता को पा सकते)।[२] राम के शब्दों में सीता कृशाङ्गी है, उसकी आभा स्वर्ण की आभा के समान है,[३] उसका रूप नेत्रों को शीतल करने वाला है।[४]

भक्त कवियों को सीता का अपहरण सह्य नहीं है। उनके अनुसार पञ्चवटी में मूल सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती है, जिन्हें रावण-वध के पश्चात् अग्निदेव न्यास की भाँति राम को लौटाते हैं। सीता की छाया का ही अपहरण होता है।[५] यही बात आनन्द-रघुनन्दन में है। राम के कण्ठस्वर में मारीच का 'हा धराधर!' शब्द सुन कर छाया सीता विकल होकर लक्ष्मण को कटु-वचन कहती है।[६] वाल्मीकि-रामायण में सीता का यहाँ भी एक ही स्वरूप है और वह विकल होकर लक्ष्मण को 'भरत से मिल कर राम के विरुद्ध गुप्त

---

१. अङ्क १ (पृ० १२) : 'यादृशी सिन्धुसुता तादृशी साऽस्ति राजदुहिता।'

२. अङ्क १ (पृ० १८) : 'आलोकयेमामहं धर्क्षे निर्मथ्य क्षीरधिं हरिः।
श्रियं निष्कासयामास न ममन्थ महीं कथम्॥'

३. अङ्क ३।९० : 'तरङ्गिणि कृशाङ्गी त्वं कृशाङ्गी महिजाऽपि मे।
दृष्टा चेत्कथय त्वं तामष्टापद-समद्युतिम्॥'

४. अङ्क ६ (पृ० ८९) : 'महिजां मामिहानीहि हिमानीमिव नेत्रयोः।'

५. रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड :
'तौ लगि करहु अगिनि महँ बासा। जौ लगि करउँ निसाचर-नासा॥'

६. अङ्क ३ : 'न प्रयास्युत्तरं दत्से……।'

षड्यन्त्र करने वाला' कहती है।[१] वाल्मीकि की सीता का कथन अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक एवं स्त्री-जनोचित है, किन्तु भक्त कवि सीता की दिव्यता की रक्षा करना चाहते हैं।

प्रस्तुत नाटक में अपहृत सीता की वेदना का भी प्रभावी चित्रण है। रावण-वध का समाचार सुन कर सीता की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो जाती है।[२] इसी प्रकार राम भी सीता को खो कर उन्मत्त हो जाते हैं।[३]

काश्मीरी—

प्रस्तुत नाटक में कैकयी को काश्मीरी कहा गया है। आदि कवि (वाल्मीकि) का शिष्य उनसे क्षीरवती (पयस्विनी) और कलिन्दजा (यमुना) की परस्पर वार्ता बतलाता है। कलिन्दजा के मत के अनुसार कैकयी ने राम को निर्वासित कर ऐसा दुष्कृत्य किया है कि अब संसार में स्त्रियों पर कोई विश्वास नहीं करेगा।[४] आगे चल कर नाटक में कैकयी कुटिला (मन्थरा) से चर्चा कर रही है कि सब कार्य ठीक रहा। इसी समय भरत आते हैं और पूरा समाचार सुन कर वे भी कैकयी को अपशब्द कहते हैं।[५] शत्रुघ्न तो कैकयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं और कैकयी को भाग जाना पड़ता है।[६] इस प्रकार कैकयी को नाटक में विशुद्ध षड्यन्त्रकारिणी ही रहने दिया गया है।

अन्य स्त्री पात्रों में कुशला (कौशल्या) और दीर्घनखी (सूर्पणखा) महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु इनके कार्य परम्परात्मक हैं।

---

१. आरण्यकाण्ड : सर्ग ४५।६,२४।

२. अङ्क ६ (पृ० ८९) :

'चातकीव तृषिताम्बुद-पर्वं पूर्णचन्द्रमिव चारु-चकोरी।
दृष्टुमुत्सहत उत्कलिकार्त्ता स्वामिनं स्वमय राजकुमारी॥'

३. अङ्क ४।४१ : महिलाङ्गानि स्पृष्ट्वा स्पृश पवन त्वं ममाङ्गानि।'

४. अङ्क २ (पृ० २७) : 'इदानीं वनितानां विश्वासमिह जगति किमिति कोऽपि करिष्यतीति।'

५. अङ्क २।११ : 'हितकार्यपकारिण्याश्छिन्ना स्याद्रसना तव।
माता ममासि काश्मीरि कुर्यां किं पतिघातिनि॥'

६. अङ्क २ पृ० २९ : '···त्वामपि प्रबोधयिताऽस्मि।
. (इति श्रुत्वैव काश्मीरी ससभ्रमं निष्क्रान्ता।)'

(ग) तुलनात्मक रूप

१. हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की प्रस्तुत संस्कृत नाटक पर छाया

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, विश्वनाथसिंह ने पहले हिन्दी में आनन्द-रघुनन्दन नाटक लिखा और पीछे इसी नाम से संस्कृत नाटक लिखा। दोनों नाटकों की कथावस्तु में कहीं अन्तर नहीं है। अङ्कों और दृश्यों में सम्पूर्ण समानता है। संवाद भी वही के वही हैं। इस प्रकार संस्कृत नाटक को एक प्रकार से हिन्दी नाटक का अनुवाद कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(हिन्दी)—नृप—ये कुशला ! तुम जथार्थनामा हो। सौतिन को बुलाइ सतकारो, जाते सब सुतन से वे सम सनेह करें।[१]

(संस्कृत)—दिग्यानराजः—अये कुशले ! त्वं यथार्थाभिधानासि। सपत्नीराहूय सत्कारमाचर, येन निखिलेषु विश्रुतनयेषु सविनयेषु तनयेषु ताः समस्ताः समानं प्रेमाणमाचरेयुः।

(हिन्दी)—नृप—(ससम्भ्रमं) अरे मुनि तो आय ही गए। अर्घ-अर्घ ! पाद्य-पाद्य ![२]

(सं०)—राजा—(ससम्भ्रमं) अहो ! मुनिस्त्वागत एव। पाद्यमर्घ्यं-मधुपर्कादि त्वरितमानीयताम्।

कहीं यह अनुवाद गद्य से पद्य में परिणत कर दिया गया है—

(हि०)—मुनि...जग्य रछन के हितकारी, डीलधराधर दोऊ कुमार दीजै।[३]

(सं०)—मुनि :—क्रतु-संरक्षणार्थाय त्रिलोकी-वीर-शेखरौ।
धीरौ कुमारौ दीयेतां हितकारि-धराधरौ॥

पद्यों के अनुवाद सर्वत्र पद्यों के रूप में ही प्राप्त हैं, किन्तु संस्कृत में अधिक सामग्री है—

(हि०)—रैणुकेय—(सक्रोधं)

कोदण्ड-मौर भांइ तोरि देहुं मुनि-वृन्द को।
कुठार-वीचि मो बहाय सैन-वृन्द-वृन्द कौं॥
कुमार चारि जारि देहुं क्रोध वाडवाग्नि में।
जो लेहुं संभु वैर यों तो सांच जामदग्नि मैं॥

---

१. आ० रघु० : अङ्क १ पृ० ९। २. वही, पृ० ११।
३. वही, पृ० १२। ४. वही अङ्क १ पृ० ३६।

(सं०)—रेणुकेयः—(सक्रोधं)

कोदण्ड-भ्रमिषु निमज्जये क्षितीन्द्रं
परशूर्मौ सुभट-तरून् प्रवाहयामि।
प्रस्फूर्जत्-प्रसृमर-चाप-वाडवाग्नि-
ज्वालासु क्षितिप-सुतान् जुहोमि युष्मान्॥
बाणौघैस्तिमिमिरुदारमाददामि
स्वच्छन्दान् रघु-निमि-वंश-मेष सङ्घान्।
गृह्णीयां प्रसममिदं पुरारि-चैरं
तर्हि स्यां भुवि विदितः स जामदग्न्यः॥

(हि०)—याके शील सुवश सो नैनन।
सकुचत चलति, मंजु मुख मोरति,
उर अति प्रेम, सुलति कछु बैनन॥
कीन्हेउ पति अपकार गनत नहिं,
पग परि परि आपुहिं समुझावे।
विश्वनाथ प्रभु समुझन लायक,
यह सुकिया को अनुपम भावे॥[१]

(सं०)—शीलं वचोऽतिवावमाति नयनात् सङ्कोच साचीभवद्-
वस्त्रं याति वचोभिराहत-गुणैः प्रेम स्फुटत्यान्तरम्।
नो मन्तुं गणयत्यथ प्रणमति स्वीयं प्रियं प्रेयसी
तादात्म्येन तदेक-तान-हृदया शातोदरी शोभते॥

यत्र तत्र गद्यात्मक संवादों में भी संस्कृत में विशेष प्रकार से शब्द-प्रयोग हैं—

(हि०)—शिष्य—पूजन की तैयारी करो। देखो नहीं तो गुरु चले आवे हैं।[२]

(सं०)—शिष्य :—पूजन-सामग्री क्रियताम्। किन्नहि दृश्यते सद्यः समुद-यन्ननवद्य-हृद्य-गद्य पद्य-प्रभृत्यखिल-विद्या-तपोभारैर्गुरुरधावस्मद्-गुर्रुनिज-निकेतनमागच्छतीति। य एषः·····।

हिन्दी के संवादों में यत्र तत्र फारसी, मराठी, अरबी, बंगला, भोजपुरी, मारवाड़ी, अंगरेजी भाषाओं के भी प्रयोग हैं, किन्तु संस्कृत में इन सबके स्थान

१. आ० रघु० अङ्क ७ : पृ० १४१ : उर्वशी के स्वकीया-नृत्य पर गन्धर्व-गीत।

२. वही, : अङ्क १ : विष्कम्भक : पृष्ठ ३।

पर संस्कृत भाषा ही है। प्राकृत भाषा के संवाद, गीतों के ताल-धुन आदि तथा 'प्रविशति', 'निष्क्रान्तः' आदि रङ्गमञ्च के निर्देश दोनों नाटकों में समान हैं। सङ्गीत की धुनों में अक्षर समान हैं, मात्रा-लेखन में कुछ अन्तर है—

(हि०)—ताल त्रिपुटा—ति-ऐं-ऐं-आ ति ऐं-ऐं-आ ध-ध-पा
ध-ध-पा प-ग-ग-रे ग-ग-ध-ध।[१]

(सं०)—तालत्रिपुटः......ध-ध-पः प-ग-ग-रि...।

२. राम पर लिखे गये अन्य संस्कृत नाटकों के साथ सामान्य तुलना—

रामकथा को आधार बनाकर लिखे गए संस्कृत नाटकों के सम्बन्ध में कामिल बुल्के ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।[२] इन नाटकों में कथानक की दृष्टि से कितने ही परिवर्तन हुए हैं और नये पात्रों की सृष्टि हुई है। उत्तर-राम-चरित और कुन्दमाला में रावण-वध और राज्याभिषेक के पीछे का राम का जीवन चित्रित है, जिसका प्रमुख अङ्ग है सीता के निर्वासन पर आधारित कथा। अन्य अनेक नाटकों में राम के राज्याभिषेक तक की कथा आधार बनी है।

कुछ नाटकों में शृङ्गार रस को अधिक महत्त्व देने के लिए मूल कथा में परिवर्तन किये गये हैं, जैसे बाल-रामायण में रावण का विरह-वर्णन,[३] मैथिली-कल्याण में राम-सीता का पूर्वानुराग,[४] महानाटक में राम-सीता के सम्भोग शृङ्गार का अश्लील वर्णन[५] तथा महावीर चरित में विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण की सीता, उर्मिला से भेंट।[६]

अनेक नाटकों में पात्रों द्वारा अन्य पात्रों के रूप धारण करने के प्रसङ्ग प्रस्तुत किये गये हैं, जैसे महावीर-चरित में शूर्पणखा मन्थरा बन कर मिथिला पहुँच जाती है। उसके पास कैकेयी का जाली पत्र रहता है, जिसमें कैकेयी ने वर के बल पर राम का वनवास माँगा है। अतः राम वहीं भरत को पादुका देकर सीता-लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान करते हैं।[७] यही बात अनर्घराघव में है। बालरामायण में मायामय राक्षस, शूर्पणखा और परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकेयी और मन्थरा का रूप धारण कर राम-वनवास का कारण बनते हैं। महानाटक में रावण अपने हाथों में दसों सिर लिये हुए राम के रूप में सीता के निकट अपहरण के लिए जाता है। इसी प्रकार आश्चर्य-चूडामणि में

१. आ० रघु० : पृष्ठ ८।
२. रामकथा—उत्पत्ति और विकास : हिन्दी परिषद् : विश्वविद्यालय प्रयाग : १९५० : पृष्ठ १८७–१९२।
३. अङ्क १। ४. अङ्क ११४। ५. अङ्क २। ६. अङ्क १।
७. अङ्क ४।

रावण और उसका सारथी राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर सीताहरण करते हैं। इसी नाटक में शूर्पणखा सीता के रूप में राम के समीप आती है।

प्रतिमा नाटक में भरत लक्ष्मण के अनुज हैं। राम-वनवास के समय शत्रुघ्न अयोध्या में रहते हैं। कैकेयी ने महर्षि-शाप की रक्षा करने के लिए वसिष्ठ और वामदेव से परामर्श लेकर राम को वनवास दिलाया है। भरत ने लङ्का के युद्ध का समाचार पाकर रावण के विरुद्ध सेना सञ्चालित की; जनस्थान में रावण-वध के पश्चात् लौटते हुए राम से उनकी भेंट होती है। वहीं राम का अभिषेक कर सभी पुष्पक विमान से लौटते हैं। अभिषेक नाटक में सेतु नहीं बाँधा जाता, किन्तु समुद्र ही विभक्त हो जाता है। अनर्घराघव और बालरामायण में भी कैकेयी का दोष-निवारण होता है।

ऊपर निर्दिष्ट शृङ्गारात्मक प्रसङ्ग या पात्रों के रूप-परिवर्तन अथवा कथा-परिवर्तन आनन्द-रघुनन्दन में समाविष्ट नहीं किये गए हैं।

महावीरचरित में विवाह के पश्चात् मिथिला में ही परशुराम का आगमन होता है।[1] आनन्द-रघुनन्दन में परशुराम के चल देने की सूचना अवश्य ही मिथिला में मिलती है; जिसे पाकर जनक शीघ्र ही दशरथ को विदा कर देते हैं, जिससे परशुराम के आगमन के पहिले ही वे अयोध्या पहुँच जायँ। दशरथ बारात-सहित मार्ग में रहते हैं, तभी परशुराम आ जाते हैं।[2]

महावीर-चरित में माल्यवान की प्रेरणा से बाली राम को मारने चलता है। उसे इस बात का पश्चात्ताप भी है तथापि वह राम से द्वन्द्व-युद्ध करता है, परिणाम-स्वरूप आहत होता है। मरते समय वह सुग्रीव को राम के हाथों सौंपता है।[3] महानाटक में सप्त तालों का राम के द्वारा वेध किये जाने पर क्रोध-पूर्वक बाली राम के समीप आता है[4] और मारा जाता है। अनर्घराघव के अनुसार कबन्ध को लक्ष्मण ने मारा और उसी समय धनुष की कोटि से

१. अङ्क २। २. अङ्क १ पृष्ठ : १३-२५।

३. जीवानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ५: पृष्ठ १८४ :
'बाली—मदनेन माल्यवता पौलस्त्य-मैत्री-दिवसमनुस्मार्य तत्रभवतो रघुध्वजस्य निधने नियुक्तोऽस्मि। अहो, ग्रहः।'

४. जीवानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ४। ६७ :
'श्रुत्वा हतान् समर-मूर्ध्नि स सप्त तालान्
रामेण दीनहृदयेन विनापराधम्।
कोपानल-ज्वलित हृत्कमलोऽप बाली
लङ्कावतारमगमद् गिरि-गह्वराद् सः॥'

दुन्दुभि का कङ्काल बिखेर दिया। इसी निमित्त कुपित बाली राम-लक्ष्मण के समीप पहुँचा और द्वन्द्व-युद्ध में राम द्वारा मारा गया।[१] इन्हीं नाटकों की परम्परा को स्वीकार कर विश्वनाथसिंह ने आनन्द-रघुनन्दन में बालि-वध का प्रसङ्ग नये रूप में लिया है। इस नाटक में रावण बाली को पत्र भेज कर निर्देश देता है कि बाली राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लङ्का भेज दे। उसी समय सुग्रीव की मित्रता निभाते हुए राम-लक्ष्मण स्वयं बाली के समीप आते हैं। बाली स्वयं युद्ध का प्रस्ताव कर द्वन्द्व में राम के द्वारा मारा जाता है।[२] इस प्रसङ्ग में उपर्युक्त तीनों नाटकों की अपेक्षा आनन्द-रघुनन्दन रामायण के अधिक निकट है।

राम पर लिखित अनेक नाटकों में, विशेषतः महानाटक में विस्तृत वर्णन और संवाद हैं। इनके अनेक स्थलों पर कथा-प्रवाह में गति-रोध उत्पन्न हुआ है। आनन्द-रघुनन्दन में भी यह शैली प्राप्त होती है।

उपर्युक्त तीनों नाटकों में से किसी में सीता के छाया-रूप की चर्चा नहीं है किन्तु आनन्द-रघुनन्दन में है।

अभिषेक नाटक में राम-लक्ष्मण के मायामय कटे शीश सीता को दिखाये जाते हैं। आनन्द-रघुनन्दन में रावण सीता को राम की मृत्यु सूचित करता है। सीता दुःखी होती हैं, उसी समय दूत रावण को वानरों के नये आक्रमण की सूचना देता है। रावण वहाँ से हट कर युद्ध की योजना बनाता है। सरमा राक्षसी यह सुन-समझ कर सीता से बतला देती है और उन्हें आश्वस्त करती है।[३] अभिषेक नाटक में अग्नि-परीक्षा के समय अग्निदेव प्रकट होकर सीता के लक्ष्मी होने की बात कहते हैं। आनन्द-रघुनन्दन में छाया-सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती हैं और अग्निदेव न्यासरूप में पञ्चवटी में प्रविष्ट-मूल सीता को प्रकट कर राम को सौंप देते हैं।[४]

प्रसन्न-राघव, आश्चर्य-चूडामणि और अद्भुत-दर्पण नाटकों में अद्भुत रस को विशेष स्थान मिला है। यही बात आनन्द-रघुनन्दन में भी है।

---

१. काव्यमाला ह : निर्णयसागर : बम्बई। १९०८ : अङ्क ५।२५ : पृष्ठ २०१ :

'दुन्दुभिं नाम दैत्येन्द्रं निक्षिपेय कपीश्वरः।
तस्य कङ्काल-कूटोऽयं कुमारेण विलोडित॥
तन्निर्मित्तजन्मा सम्प्रति बालिनो महानभियोगः सम्भाव्यते।'

२. अङ्क ४ : पृष्ठ ५३-५६।

३. अङ्क ६ : पृष्ठ ८१।   ४. वही, पृष्ठ ८६।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि आनन्द-रघुनन्दन नाटक में मूलतः कथात्मक आधार वाल्मीकि-रामायण से ही ग्रहण किया गया है और अंशतः रामचरित-मानस से। भक्ति और अवतारवाद रामचरित-मानस से ग्रहण किये गये हैं। केवल बालिवध में आदर्शवादी प्रभाव और अद्भुत रस की विशेषता के लिए उपर्युक्त सम्बद्ध नाटक उत्तरदायी हैं। रामचरित-मानस का एक प्रमुख आधार अध्यात्म-रामायण है, जिसे इस नाटक का भी उसी अंश में आधार माना जा सकता है।

३. रामकथात्मक संस्कृत रूपक

आनन्द-रघुनन्दन नाटक का समग्र भाव से मूल्याङ्कन करने के लिए हमें यहाँ दो पक्षों पर विचार करना होगा। पहला है, भारतीय काव्य-सृष्टि पर रामकथा का प्रभाव और दूसरा, नाटकीय दृष्टि से आनन्द-रघुनन्दन की सफलता।

बृहद्धर्म-पुराण में रामायण को समस्त काव्यों का मूल कहा गया है—

'रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहास-पुराणयोः॥'[१]

भोज ने लिखा है कि वे रामायण को उपस्थिति में भी रामकथा को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।[२] हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में लिखते हैं—

'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥'

कामिल बुल्के ने ठीक ही लिखा है कि 'मानव-हृदय को द्रवीभूत करने की जो शक्ति रामकथा में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारत की समस्त आदर्श भावनाएँ रामकथा में, विशेषतः मर्यादा-पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र-चित्रण में केन्द्रीभूत हो गई हैं।'[३]

प्राचीन काल में भी रामायण पाठ्य की अपेक्षा गेय एवं प्रयोज्य काव्य था। उत्तररामचरित नाटक में भवभूति ने लिखा है कि आदि कवि ने उत्तर-कथा को भरत मुनि के समीप भेजा था; उद्देश्य यह था कि अप्सरायें उसका प्रयोग (अभिनय) करें।[४] यह उल्लेख रामायण की कथा को अभिनेय बनाने की रुचि की प्राचीनता प्रदर्शित करता है।

पीछे रामकथा पर आधारित कुछ नाटकों की चर्चा हुई है। रामायण की यह उपजीव्यता पिछली शतियों में कभी समाप्त नहीं हुई। इस अवधि में रचित अनेक नाटकों के मध्य १७ वीं शती में लिखित यज्ञनारायण के

१. अध्याय २५।२८।
२. चम्पूरामायण : बालकाण्ड : श्लोक २ : 'वाल्मीकि-गीत-रघु……।
३. रामकथा : उत्पत्ति और विकास : प्रयाग : १९५०।
४. अङ्क ७।

रघुनाथ-विलास, राजचूड़ामणि के आनन्दराघव और अतिरात्रयज्वन् के कुश-कुमुद्वतीय की विशेष चर्चा की जा सकती है। इसके पश्चात् १८ वीं और १९ वीं शतियों में वेङ्कट-कृष्ण का कुशलव-विजय तथा राम कवि के ललित राघवीय और पादुका-पट्टाभिषेक नाटक विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। प्रधानी वेङ्कट-सूर्पति का वीर-राघव-विजय व्यायोग एवं सीता-कल्याण वीथी तथा रामचन्द्र का जामदग्न्य-विजय व्यायोग इन्हीं शतियों की देन है।[1] १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में रचित विश्वनाथसिंह के आनन्द-रघुनन्दन नाटक को इसी परम्परा को बढ़ाने वाला माना जा सकता है।

राम के मर्यादा-पुरुषोत्तम रूप में क्रमशः अवतारी रूप का योग हुआ। इसकी सम्पूर्ति रामचरितमानस में हुई। विश्वनाथसिंह ने इसी परम्परा को माना; अयोध्या में राम के नित्य विहार को स्वीकार किया;[2] सीता के छाया-रूप और रावण की विरोध-भक्ति को मान्यता दी। इसी विशिष्ट सिद्धान्त को उन्होंने नाटक का कलेवर प्रदान किया। रामायण में प्राप्त कथा में यह महत्वपूर्ण मोड़ इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। साथ में माधुर्यभाव की भी झलक है।

संस्कृत नाटकों की परम्परा में आनन्द-रघुनन्दन निम्न कोटि का नाटक नहीं है। यह ठीक है कि इस नाटक में अभिज्ञान-शाकुन्तल की रसवत्ता, उत्तर रामचरित की हृदय-द्रावकता, वेणीसंहार का ओज और महानाटक की प्राञ्जल-पदयोजना नहीं है; किन्तु इनके अतिरिक्त संस्कृत के सैकड़ों रूपक उपलब्ध हैं, जिनके साथ आनन्दरघुनन्दन को गिना जा सकता है। इनके समान रसात्मकता, हृदय-द्रावकता, ओज एवं प्रौढ़-पदावली सब कुछ आनन्दरघुनन्दन में प्राप्त है। अन्य अनेक नाटकों की भाँति ही यह नाटक भी भारती की श्री-वृद्धि करता है। इस नाटक को समग्र रूप में देखने से विदित होता है कि नाटककार मध्यम श्रेणी के कवियों में स्थान पा सकता है; क्योंकि नाटक की रचना में प्राप्त कथावस्तु सुयोजित है; उसमें अध्ययनशीलता की झलक है; रचयिता की लक्ष्यनिष्ठता एवं एकतानता आदि से अन्त तक व्याप्त है और लोकरुचि का पर्याप्त समावेश है। इस नाटक का मूल्य इसलिए और भी बढ़ जाता है कि यह संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल की, १९ वीं शती की रचना है। इस नाटक की रचना करने के कारण आधुनिक युग के संस्कृत कवियों के मध्य अवश्य ही विश्वनाथ सिंह को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ है।

---

१. हि० क्ला० सं० लिट्० : दृश्यकाव्य।

२. आनन्दरघुनन्दनम् : अङ्क २ दृश्य १ : पृष्ठ २६ : सरयू के प्रति वशिष्ठ का वचन-'सकल-दिव्य-सामग्री-राजि-राजितायामपराजितायां हितकारिणः चकास्ति विहारः सनातन-प्रकारः। स त्वचिन्त्य-शक्तिः।'

उपसंहार

बघेलखण्ड की संस्कृत काव्यधारा ने पिछली अन्तिम शताब्दियों में संस्कृत साहित्य के भाण्डार की श्रीवृद्धि की है। इस कृतित्व को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शासकीय परिवर्तनों ने संस्कृत के प्रति भारतीय रुचि को समाप्त नहीं किया। १६ वीं शती में वीरभानूदय जैसे महाकाव्य और १९ वीं शती में आनन्द-रघुनन्दन जैसे नाटक की रचना मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में अवस्थित बघेलखण्ड अञ्चल को अविस्मरणीय एवं अनुपेक्षणीय गौरव प्रदान करती है; साथ ही वह संस्कृत के प्रति निष्ठा और आत्मीयता रखने वाले विद्वत्समाज के स्वाभिमान का पोषण करती है। पाश्चात्य आलोचकों के स्वर में स्वर मिला कर भोज के पश्चात् संस्कृत को मृत बतलाने वाले अनभिज्ञ लेखकों और वक्ताओं को मत-परिवर्तन के लिए विवश करने वाले ऐसे सैकड़ों काव्यों की सृष्टि भारत में होती आई है, होती रहेगी।

प्रस्तुत काव्यधारा को वेग प्रदान करने वाले अन्य ग्रन्थ वीरभद्रचम्पू, सङ्गीत-रघुनन्दन, रामचन्द्राह्निक और जगदीशशतक हैं। ये सभी कृतियाँ रसमयी एवं हृद्य हैं।

वीरभानूदय, वीरभद्रचम्पू, बघेलवंशवर्णनम् तथा रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध, ये चार काव्य इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। रीवा के बघेल राजवंश तथा सोलहवीं-सत्रहवीं शती के आञ्चलिक इतिहास के विषय में, जिसका सम्बन्ध तत्कालीन भारतीय शासन से भी है, ये ग्रन्थ प्रामाणिक एवं मूल्यवान् सूचनाएँ देते हैं। अनेक सूचनाएँ ऐसी हैं, जो अभी तक अज्ञात थीं। विशेषता यह है कि इन ग्रन्थों का मूल्य साहित्यिक भी है।

लघु-काव्यों के क्षेत्र में हमें प्रशस्तियाँ और स्तुतियाँ मिलती हैं और वे गीतिकाव्य मिलते हैं, जो संस्कृत-गीतिकाव्य को अभिनव रूप में तरङ्गित कर देते हैं। इस भावधारा के प्रमुख पोषक हैं विश्वनाथसिंह और उनके साथ उनके पुत्र रघुराजसिंह। बघेलखण्ड की काव्यधारा को समग्र रूप में देखने पर विश्वनाथसिंह ऐसे कवि के रूप में प्राप्त होते हैं, जिन्होंने अकेले इस क्षेत्र में नाटक, चम्पू और गीतिकाव्य की सर्जना की। अतः विविधता की दृष्टि से उन्हें प्रथम माना जा सकता है। काव्य सौन्दर्य को देखने पर सर्वप्रथम पद्मनाभ मिश्र, द्वितीय वीरभानूदय का कर्ता माधव, तृतीय विश्वनाथसिंह

और चतुर्थ रघुराजसिंह को गिनना होगा। इसके पीछे भानुकर[1], वीरभद्रदेव और रूपणि आते हैं।

पञ्च महाकाव्यों के साथ अश्वघोष, भास, भवभूति, विशाखदत्त, शूद्रक और भट्ट नारायण के नाटक आदि काव्यों में अब तक हमारी दृष्टि प्रायः सीमित रही है। अब हमें अपना कार्य-क्षेत्र व्यापक करना होगा। आज यह जानना पहले से कहीं आवश्यक है कि विख्यात कवियों के अतिरिक्त छोटे-छोटे मठों, केन्द्रों एवं ग्रामकोष या जनपदीय अञ्चलों में संस्कृत के कब कैसे रचनाकार हुए। प्रकाशित ग्रन्थों को छोड़कर हमें वेठनों में बंधी हुई, दीमकों द्वारा समाप्त की जाती हुई, आज उपलब्ध, किन्तु कल न मिल सकने वाली उपेक्षित पाण्डुलिपियों के बस्ते खोलने होंगे। पिछली अनेक शताब्दियों की संस्कृत-सर्जना की प्रवृत्ति का यथार्थ परिचय हमें तभी मिलेगा। इस खोज के बिना हमारा संस्कृत-साहित्य का इतिहास अधूरा है। इसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर हमारा यह अल्प प्रयास कर्मठ चिन्तकों के समर्थन की अपेक्षा रखता है। इति शम्।



१. यह निष्कर्ष भानुकर की केवल सम्बद्ध रचनाओं पर आधारित है, अन्यथा रसमञ्जरी आदि ग्रन्थों में इसकी काव्यकला उत्कृष्ट है।

परिशिष्ट—१

(क) एकत्रा बान्धोगढ़ (जमाबन्दी १)

[यह बघेली भाषा में लिखा हुआ बघेल शासन का लेखा-पत्र (हिसाब) है, जिसे जमाबन्दी कहा जाता है। एकत्रा शब्द जमाबन्दी का सूचक है। यह कागज बान्धवगढ़ (जिला शहडोल) के किले में स्थित कार्यालयों में था। अतः इसे 'एकत्रा बान्धोगढ़' नाम से स्थानीय इतिहासकारों ने उल्लिखित किया है। लेखा-पत्र के बीच में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख हैं और बघेलों की वंशावली भी। अन्तिम उल्लिखित तिथि माघ सुदि० संवत् १७८९ है। अतः १७३२ ई० के निकट कुछ ही पीछे यह लेखा-पत्र लिखा गया होगा। बान्धव-गढ़ के कार्यालय से यह कागज महाराजा के निजी कार्यालय (खासगी) में रीवा लाया गया। २० जुलाई, सन् १८९९ ई० को इस कागज को महाराजा ने दीवान के कार्यालय में भिजवाया। १४ नवम्बर, १८६६ ई० को यह दीवान के कार्यालय से लेखा-विभाग (एकाउण्ट आफिस) में आया। यह सूचना निम्नलिखित उल्लेख के अन्त में है। रीवा-नरेश महाराजा गुलाबसिंह (१९१८-१९४० ई०) के आदेश से यह कागज टाइप कराया गया। इसकी १०० पृष्ठों की एक टाइप प्रति रीवा-सचिवालय के पुस्तकालय में मुझे सन् १९५५ ई० में देखने को मिली। निम्नलिखित अंश इसी टाइप प्रति से उद्धृत किये गये हैं। प्राप्त जमाबन्दियों में यह प्राचीनतम है।]

\+ \+ \+ \+

छत्रनाथ देव कै राज लिया अमल सिर है।

रीमा का किला सलेमसाह पातसाह बनवाबा संवत् ७७६ (?) के साल। बैसाख वदि ५ बुधे कहं किले मे नेइ मे। विक्रमाजीत दे किले साएं।

\+ \+ \+ \+

तकसीम परगने माफिक फरमान जहांगीरसाह का राजा विक्रमाजीत को जागीर का तलब सं० १६६१ के साल—कुछ परगने १६८१ सं० के। गुढ़े के परगने कै तकसीम लिखा सावन वदि ८ सं० १७७० के मुकाम रीवा।

\+ \+ \+ \+

वंशावली—

बघेलन के औलादि लिखा जबतें गुजरात ते आये।

पुरखा ठाकुर कहामे लागि। पुरखा ३, जैसिंहदेव १, बीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३।

गुजरात ते आए पुरिखा तीनि में हैं, कर्णदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६।

कालिजरहिं आइ दुइ भाई भर राजा के चाकर में, बीसलदेव ७ जेठे, भीमल लहुरे गहोरहिं आए। पुरिखा सात भरि गहोरा रहे। ठाकुर कहावै लागि। भीमलदेव गहोरा के लोधिन कहं मारि के गहोरा छंड़ाइ लीन्हेंनि, पुनि गहोरा फेरि राज कालिंजर के भीमलदेव का दीन्हेंनि।

भीमलदेव। रानिकदेव भीमलदेव के। बलनदेव रानिकदेव के। दलकेश्वर देव बलनदेव के। मलकेश्वर देव दलकेश्वर देव के। रार्यसिंह तथा बरियारसिंह देव मलकेश्वरदेव के। बोल्लारदेव राजा में बरियारदेव के।

बोल्लारदेव ते राजा भें। पठान पातसाह राजा कीन्ह। उरहारि सब लीन्हेंनि गहुरवारन का देस मुढावडेरा। राजा में गहोरा में।

राजा सिंहदेव··· । राजा सिंहदेव (नि) बेनी मह गरसारा पाथर कै कोल्ह महं पैठि के बीज देइ के बेनीमह बहराइ दीन्हेंनि। इह दसा कै के की हमारि सन्तानि अउँ राज्य करें, सं० १३६५ माघ वदी १० सोमे कहे (?)।

बीरमदेव १ संग्रामदेव २। राजा बीरमदेव के बेटा अठारहि। जेठे राजा नरहरि देव में। १३ रानी बहुरिया। १७ और बेटा कुंअर।

राजा नरहरिदेव के बेटा २, भेददेव जेठे, फूंदीकुंअर लहुरे। राजा भेददेव थानहिं आए। थान छंड़ाइ लीन्हेंनि। थान बैठाइन संवत् १४७२ के साल मह।

सारिवाहनदेव जेठे। अमयचंद, लखिमीचंद, बाहरराइ, भारथीचंद, नबेति। राजा सारिवाहनदेव के जन्म सं० १४९२। जेठे राजा विरसिंहदेव। बाबू भागमल केउटी के। बाबू भीलमदेव लूक-भरका के।...जैतसिंह उदेकर्न ते। परतापसिंह ते ४ बेटा....हराइ (बाहरराइ) ते दुरजनसिंह...सूरतसिंह।

राजा विरसिंहदेव का जन्म सं० १५२४ के साल में। देवता राजा में की रानी चारि भुजा देखा। देखि कै आनि सासु सों कहिनि। जो देखैं दोऊ जनी तौ चतुर्भुजी मूर्ति देखि कै गईं। जेठे राजा बीरमानदेव, लहुरे जमुनो-मान देव मेहर के। तेके सूर्जमान, सुजानसिंह, कीरतिसिंह।

राजा बीरमानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल।

राजा रामचन्द्र देव का जन्म सं० १५९२ के साल। सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक। बेटा २, जेठे राजा बीरभद्र, गोपतिराय खवासिन के।

राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का। संवत् '' —के साल राज्याभिषेक। जेठे राजा विक्रमादित्य, जिर्जोधन लहुरे गेरुवा और परदवाँ के।

राजा विक्रमादित्य का जन्म संवत् १६३० के साल। संवत् १६४६ के साल राज्याभिषेक। बेटा ३, अमरसिंहदेव जेठे; इन्द्रदेवसिंह पथरहट के, सरूपसिंहदेव चोरहटा के।

राजा अमरसिंह देव का जन्म सं० १६६० के चैत्र सुदि सोमे मह। सं० १६७३ के साल राज्याभिषेक। जेठे समरसिंह का जन्म सं० १६७८ माद्र बदि ८।

राजा अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ के साल। राज्याभिषेक —। मानसिंह, भावसिंह, जसवंतसिंह (गुढ), रघुनाथसिंह (गिरवा) — संग्रामसिंह, राजसिंह, जुझारसिंह (रामनगर) —।

राजा भावसिंहदेव का जन्म सं० १७०० के सावन बदि १४ महं। संवत् १७३२ के राज्याभिषेक। सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ देवलोक। १६ रानी— गजसिंह, मुकुन्दसिंह, अनिरुद्ध सिंह।

राजा अनिरुद्धसिंह देव का जन्म भा सं० १७३३ के साल। सं० १७४९ के साल राज्याभिषेक। श्री महाराजा भावसिंह अपने आगे राज्य बैठाइन, राज्याभिषेक कीन। पुनः सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ कहं राजा भावसिंह देव कुरसी प्राप्त में और राजा अनिरुद्धसिंह सं० १७५१ के पौष सुदि १२ कहं जूझें।

महाराजा अवधूतसिंह देव का जन्म सं० १७५१ के माद्र सुदि १२ कहं। सं० १७५२ के कातिक महं राज्याभिषेक। अजीतसिंहदेव का जन्म माद्र सुदि ८,१७८८ के साल। मानसिंह माद्र सुदि ८, १७८९।

\+ + + +

एकआ के बन्द कटे रहे हैं सब, तेहूँ ते बेवरा सब नहीं लिखा। जौन समुझि परा है सो लिखा है।

यह कागज दफ्तर बान्धोगढ़ में रहा है। सो अब कागज दफ्तर कोठी में आया तब मिला। सो दफ्तर खासगी हजुर से जनाब दीवान साहब बहादुर के इजलास में आया ता० २० जुलाई सन् ९५ ई० को। औ इजलास दीवान साहब बहादुर से सरिश्ता अकौन्टन्टी में आया ता० १४ नवम्बर सन् ९६ ई०।

(ख) वंशावली बांधोपति (जमाबन्दी २)

(यह भी एकत्रा बान्धोगढ़ की भाँति लेखपत्र है। यह रीवा सचिवालय के मुहाफिस खाने में था। इसका लेखन-काल संदिग्ध है। इसकी प्रतिलिपि श्री रामभद्र गोड़ मानपुर, जिला शहडोल के पास है। इसका प्रारंभिक अंश, जो श्री गोड़ के द्वारा पत्र के रूप में दिनांक ८-११-५९ को मेरे पास भेजा गया था, निम्नलिखित रूप में है—)

वंशावली बांधोप (ति)।

गुजराति मा भे पुरिया तीनि, १ जैसिंहदेव, १ वीरमदेव १ व्याघ्रदेव भाई करनदेव।

करनदेव के वंशावली गुजराति मा तीनि, करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १।

कालिंजर आइ दुइ भाई भर राजा वीसलदेव के चाकर भे। गहोरा जागीरि पाइनि। ठाकुर के खिताब पाइनि। लोधिन का मारिनि। गहोरा अमल भा। वीसलदेव जेठ, भीउमल लहुर।

गहोरा रहे पुरिषा ७, भीउमलदेव १ रतिहरदेव १...।

(जमाबन्दी खास जमुना ते नरबदा भरि करिया आम ते टेढ़ा आम भरि अब कालिंजर छेंका रहा सेरसाह ते सं० १६०२ ।)

\+ + + +

(ग) वंशावली (जमाबन्दी ३)

(इस जमाबन्दी में प्राप्त वंशावली भी उपर्युक्त श्री रामभद्र गोड़ के पास सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि भरतपुर, जिला सीधी (म० प्र०) के श्री भानुसिंह बाघेल ने मेरे पास ३०-३-६३ को भेजी थी। श्री बाघेल ने लिखा था कि गोड़ जी इसे १७५१ वि० की लिखी मानते हैं। साथ ही, आपने लिखा था कि यह वंशावली जयसिंह देव (राज्य० १८०९-३४ ई०) पर्यन्त है। अतः वास्तव में यह १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विश्वनाथसिंह के कार्यालय में लिखाई गई होगी, जो एकत्रा के अतिरिक्त किसी पूर्वलेख की प्रतिलिपि होगी। इसके कुछ अंश, जो एकत्रा बान्धोगढ़ से भिन्नता लाते हैं, नीचे दिये जाते हैं।

वंशावली बांधोपती के।

गुजराति मा पुरिषा तीनि। १ जैसिंहदेव २ वीरमदेव ३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव के बांधो।

व्याघ्रदेव के वंशावली। ४ पुत्र करनदेव ५ सोहागदेव ६ सारंगदेव।

कालिंजर आइ भर राजा वीसलदेव के चाकर में। गहोरा जागीर पाइन। तिवारी मिलाइ कै आधा राज देइ काहीं हाँसा। लोविन का मारिनि। गहोरा अमल मा। गहोरा रहे पुरिषा ७, विसालदेव, मोममलदेव, रनिकदेव, बलनदेव, दलकेश्वरदेव, मलकेश्वरदेव, वरियारदेव।

वोलारदेव पठानन मारा। अंतर्वेद अमल मा। पातसाह का कोनी लगाइ हरिहार सहिजना ते रानी मड़ई मरि सब लीन्हेंनि। गहरवारन का देस मुद्धावडेरा पातसाह दीन राजा में गहोरा में। वोलारदेव ते राजा भें। पठान पातसाह राजा कीन्ह।

राजा वीरमदेव—पाठे पर अमल मा।

राजा भैंददेव भाई फूंदीदेव। जिन विजैगिरि का हाथी दैजे लीन्ह। राजा दाने काएँ चौहानहि मारि कै थान छंड़ाय लीन आपन थान बैठाइ दिहिनि। बांधोपति शक सं० १६३४ के साल। पुत्र···सारिवाहनदेव जेठ, लखमीचन्द, चन्देसनि हाँसा पाइनि कसौटा, लहुरे भाई अमयचंद, निरयोवट, बाहेर ओर गहरराइ, मारलीचंद। पातसाहि चढ़ि आवा।

राजा सारिवाहनदेव पुत्र में चारि, जेठे विरसिंहदेव, बाबू मीमलदेव, बाबू नागमलदेव, बाबू उदैकर्नदेव। चार बेटा मितरहाई ते, जैतसिंह, परतापसिंह, दुर्जनसिंह, सूरतसिंह।

राजा वीरसिंहदेव···।

राजा वीरभानदेव···। भाई बाबू अमुनीभान, मैहर दीन। राजा रामदेव ते अमल। अमुनीभान कै वंसावली ७ पुरिखा। बाबू अमुनीभान १, केन्द्र·· २, ···३,··· सिंह ४, मुक्तानसिंह ५, कीरतिसिंह ६, समरसिंह ७ ते जागा छूटि। सूर्यभान मेदिनीराय का सोहागपुर बवसीस गांउ ८४। प्राग मा पुरिखा ११ रहें। सं० १८६६ मा गोपालसिंह ते जागा छूटि। पातसाह भागि आवा। पठानन ते रार भै।

राजा रामचन्द्रदेव...। सेमीतहन का अपमान मा, पातसाह के इहां गे। प्राग के किला कै यूनि मै, तब कालिंजर छेंकि गा। पातसाह चढ़ि आवा। जमुना पार डेरा में। राजि का काऊ मा। जमुना ते नरमदा भरि करिया आम ते टेढ़ा आम भरि। औ अमल छूटिगा, नानकार पावा परिहारी २८,००,००० बरसें का बदला परदमा १२,००;०००)। राज अवलेखा मा सं० १६०८ मा। पुत्र में दुइ, राजा वीरभद्र औ ओपतराय खवासिन के पाइन वोड़ा ८ गांउ।

परिशिष्ट—२

तारीखी मुहम्मदी का एक उल्लेख

[रीवा के मौलवी ऐयाज अली खाँ ने दिनांक २८-३-६० को अपनी डायरी से निम्नलिखित उल्लेख लिखवाया था। यह मोहम्मद बिहामिद खानी द्वारा ८४२ हिजरी (१४३८ ई०) में लिखित 'तारीखी-मुहम्मदी' नामक इतिहास ग्रन्थ के पृष्ठ ४०२ में प्राप्त ७९८ हिजरी (१३९५ ई०) का विवरण है।]

कालपी के सुलतान नासिरुद्दीन महमूदशाह ने ७९८ हिजरी में हमीरपुर को लूटा। रामराज से सुलह हुई। उसके बाद वह बहादुर बघेलों के गहोरा पर चढ़ा। रास्ते में सेमौनी और मथुरा को लूटा। गहोरा के मुकद्दम वीरम (बीरम) ने सामना किया। उसके पास काफी फौज थी और वह बड़ा ताकतवर था। लेकिन वह पहले ही हमले में हार गया। बहुत से लोग गिरफ्तार किये गये। इस लड़ाई में महमूदशाह का बेटा तातार खाँ भी था। बीरम को पकड़ कर मोहम्मदाबाद (कालपी) में पश्चिमी दरवाजे पर दरिया के किनारे खड़ा कर दिया। बीरम ग्वालियर की तरफ भाग गया। उसकी सिन्धा के बोलम से दोस्ती थी। बोलम ने महमूद से सुलह कर ली। थोड़े अरसे के बाद बीरम ने फिर तैयारी की और कड़ा में फौज जमाई। महमूद ने दूसरी बार गहोरा पर चढ़ाई की और उसे नेस्तनाबूद कर दिया। बहुत सी लूट मिली। बाद में सुलह हो गई।

परिशिष्ट—३

शिलालेख

[वीरभानूदयकाव्य के साथ प्रारम्भ में प्रकाशित अपने समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिसिस पृ० १७) में डा० हीरानन्द शास्त्री ने करवी में पड़े हुए एक गहोरा-शिलालेख का उल्लेख किया है। यह १३६० ई० का सतीलेख इस समय प्रयाग सङ्ग्रहालय में है। १९-२-३६ को उतारे हुए इसके अंकन (प्रिंट) की प्रतिलिपि भूतपूर्व आचार्य अख्तर हुसेन निजामी, रीवा ने मेरे समीप १४-७-६४ को भेजी थी। इसके कुछ पठनीय अंश निम्नलिखित रूप में साभार प्रस्तुत किये जाते हैं।]

(१) संवत (त्) १४१७ समये। जेष्ठ (ज्येष्ठ) वदी १३ बुद्धे (धे) महा।

(२) राजाधिराज श्री वल्लालदेवराज्ये। ~ अद्यो (मी)

(३) नायक⋯तस्य वंसे (शे) सुपुत्र महराजनामा

(४) ⋯⋯ दमाग्यात्परमेश्वर-बैकूल्यात् स

(५) तो⋯ सरगलोक⋯तः तदयं क्ष (?) त्र

(६) पश्चात्⋯अरीन्द्रजान् यावत्तावग्निज (?)

(७) मणेरतो मकव (?)⋯ वो ले सिंहदेव हुगा (स्ता) त (त्)।

परिशिष्ट—४

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (छाया-चित्र के दो पृष्ठ)

प्रथम प्रति (बस्ता ३९।८ : सं० को० भा०) का प्रथम पृष्ठ

श्रीगणेशायनमः ॥ विश्वेशानामधीशस्त्विदचिदुदितया स्वीय-कृत्याखिलान्त-र्यामी स्वामी जनानां सुरचित-सकलः सर्वकर्त्ताप्यकर्त्ता। उद्धर्त्ता भृत्यमृत्योः करयुग-विलसद्बाण-बाणासनश्रीश्चञ्चच्चापल्तडित्वानिव स यरणिजा-जानिरव्याद-भयात् ॥ १ ॥ अपि च। कल्याणं कलयन्तु शंकरधनुर्मौर्वी-समाकर्षणात् काठिन्य-प्रतिभासि-पाणि-लसिताः रमाङ्गुलि-श्रेणयः। श्रोणीमोरुह-मध्य-संपुट-मिलत्सं-वर्तिका-संभ्रमा यासूदर्मृगविभा विभाति महिजा-जानेः कटाक्षच्छटाः ॥ २ ॥ देवेन्द्रवन्द्य-विलसच्चरणारविन्दमानन्द-सान्द्रमुदितेन्दिरमानमामः। यस्य प्रसाद-रजसा सहसा शिलापि बाला बभूव विमला कमलायताक्षी ॥ ३ ॥ ध्यायन्ती ध्येयरूपं हृदय-सरसिजे ध्येयनामोद्गृणन्ती वाचा वाचामधीशा तदमलचरितं वीणया वादयन्ती। शुभ्रा शुभ्रांशु-शुभ्राशुक-कुसुम-लसन्मौक्तिकाभूषिताङ्गी संस्कुर्याद् वाक्यभंगीं मम वदन-सरोजात संगीत-भृंगीम् ॥ ४ ॥ (नान्द्यन्ते) सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण । मारिष ! महाराजकुमारस्य नाटकरणाज्ञा ममाशोवेतादृशि समये यत् सहायकस्त्वं मिलितः तन्महत्कार्यमासीत्। मारिषः—भोः—सूत्रधार तावत् (दम)···· ····

\+ \+ \+ \+

तृतीय प्रति (बस्ता ३९।८।२ : स० को० भा०) का अन्तिम पृष्ठ

सूत्रधार :—(चूडाचुवदंशलिपंकजं प्रणम्य) चित्तं निर्मलतां प्रयातु निखिला नश्यन्तु कामादयः पुण्यं पाणितलावलंबमिह नः कुर्याः विवेक-प्रवम्। त्वत्पादाब्ज-(मिलन्)-मिलिन्द-पदवी स्याद्देवदेव प्रभो। प्रेमाप्नोतु समो (वो) त्तमं नरपतिः श्रीविश्वनाथः कृती ॥ यावत्कीर्तिस्त्वदीया चलति कुवलये ताव-दास्ता रसौघ-प्राकट्यं नाटकं श्रीधर तव चरितं नंदनानंद-मूलं (न्म:)। यः (स:) स्यात् सौभाग्यशाला(लो) विरति-वर-मतिर्यः पठेत् पाठयेद्वा स्वद्रूपं विश्वनाथः कलयतु हृदये दोयतां सद्वरोऽयम् ॥ श्रीरघुनंदनः—तथास्तु। सूत्रधारः (प्रणम्य सहर्षं निष्क्रान्तः।) श्रीरघुनन्दनः-आगच्छत । गृहान् गच्छामः। (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) ॥ सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) कांडः (ऽंकः) ॥ सिद्धिश्री-महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपापात्राधि-कारि-श्रीविश्वनाथसिंहजूदेव-कृतमानंद-रघुनन्दन-नाम-नाटकं सम्पूर्णम् ॥ शुभं भूयात् ॥

सन्दर्भ-ग्रंथ

(क) संस्कृत (प्रकाशित)

१. अग्निपुराणम् ।
२. अप्पयदीक्षित : कुवलयानन्दम् ।
३. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : अभिनवगुप्त-कृत लोचन-व्याख्या सहित ।
४. उदयन : किरणावली : विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ।
५. उदयप्रभ सूरि : सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी ।
६. ऋग्वेद : दशम-९० : पुरुष-सूक्त ।
७. कल्याणवर्मा : सारावली ।
८. केशव मिश्र : तर्कभाषा : आचार्य विश्वेश्वर : चौखम्बा ।
९. केशव मिश्र : तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् ।
१०. गदाधर भट्ट : रसिकजीवनम् ।
११. गोविन्दजित् : सम्यालङ्करणम् ।
१२. गोविन्दभट्ट (अकबरी कालिदास) : रामचन्द्र-यशःप्रबन्ध ।
१३. जगन्नाथ शास्त्री पदे : सम्मानाङ्क : बड़ोदा ।
१४. जयदेव : गीतगोविन्दम् ।
१५. जयदेव : चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा, वाराणसी ।
१६. जयदेव : चन्द्रालोक : राकागम टीका : चौखम्बा : वाराणसी ।
१७. जयदेव : चन्द्रालोक : शरदागम टीका : पद्मनाभ मिश्र ।
१८. जयदेव : प्रसन्नराघव-नाटकम् ।
१९. त्रिपाद् विभूति—महानारायणोपनिषद् ।
२०. दण्डिन् : काव्यादर्शः ।
२१. दण्डिन् : दशकुमारचरितम् : (पूर्वपीठिका) : चौखम्बा : वाराणसी ।
२२. धनञ्जय : दशरूपकम् (हिन्दी व्याख्या) ।
२३. निश्शङ्क शार्ङ्गदेव : सङ्गीत-रत्नाकर : हरिनारायण आप्टे ।
२४. नीलकण्ठ : अद्भुतदर्पण नाटक ।
२५. पद्मनाभ मिश्र : किरणावली-भास्कर : गोपीनाथ कविराज ।
२६. पद्मनाभ मिश्र : प्रशस्तपाद भाष्य की सेतु व्याख्या : चौखम्बा : वाराणसी ।

२७. पद्मनाभ मिश्र : वीरभद्रचम्पू ।
२८. परब—काशीनाथ पाण्डुरङ्ग : सुभाषित-रत्न-भाण्डागारम् ।
२९. पाञ्चरात्र-परम-संहिता : गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज ।
३०. प्रगल्भ मिश्र : खण्डन-खण्ड-खाद्य की खण्डन-दर्पण टीका ।
३१. प्रियादास : सुसिद्धान्तोत्तमम् : काशी ।
३२. बाणभट्ट : कादम्बरी (पूर्वभाग) ।
३३. बालचन्द्र सूरि : वसन्तविलास महाकाव्यम् : बड़ोदा ।
३४. बृहद्धर्मपुराणम् ।
३५. ब्रह्मगुप्त : ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त : काशी ।
३६. भरत : नाट्यशास्त्रम् ।
३७. भवभूति : उत्तर-रामचरित-नाटकम् ।
३८. भवभूति : महावीरचरितम् ।
३९. भास : अभिषेकनाटकम् ।
४०. भास : प्रतिमा-नाटकम् ।
४१. भानुजिदीक्षित : अमरकोष की व्याख्यासुधा टीका ।
४२. भानुदत्त : रस-तरङ्गिणी ।
४३. भानुदत्त : रस-मञ्जरी : चौखम्बा ।
४४. भामह : काव्यालङ्कार : काशी संस्कृत सिरीज ।
४५. भोजराज : चम्पूरामायणम् : चौखम्बा ।
४६. मम्मट : काव्यप्रकाश ।
४७. माधव कवीन्द्र : वीरभानूदयकाव्यम् : हीरानन्द शास्त्री ।
४८. मुरारि : अनर्घराघवम् ।
४९. मेरुतुङ्गाचार्य : प्रबन्ध-चिन्तामणि ।
५०. रघुराजसिंह : जगदीशशतकम् : मूलमात्रम् ।
५१. रघुराजसिंह : जगदीशशतकम् : रङ्गाचार्य-टीका ।
५२. रघुराजसिंह : नर्मदाष्टकम् ।
५३. रघुराजसिंह : शम्भुशतकम् ।
५४. रघुराजसिंह : सुधर्मविलास
५५. राजशेखर : काव्यमीमांसा ।
५६. राजशेखर : बालरामायणम् ।
५७. राजशेखर सूरि : प्रबन्धकोश : जिनविजयमुनि ।
५८. रामचन्द्र भट्ट : रसिकरञ्जनम् ।

५९. रामाश्रम : सिद्धान्तचन्द्रिका : चौखम्बा।
६०. रुद्रट : काव्यालङ्कार : नमिसाधु की व्याख्या।
६१. रूपणि शर्मा : बघेलवंशवर्णनम् : सम्पादक-राजीवलोचन अग्निहोत्री।
६२. लक्ष्मणभट्ट : पद्यरचना।
६३. वामन : काव्यालङ्कार-सूत्रम्।
६४. वाल्मीकि-रामायणम्।
६५. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : जीवानन्द विद्यासागर।
६६. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : दुर्गाप्रसाद द्विवेदी।
६७. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : पी. वी. काणे।
६८. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : रामचरण तर्कवागीश।
६९. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शालग्राम शास्त्री।
७०. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शिवदत्त कविरत्न।
७१. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : हरिदत्त सिद्धान्तवागीश :
७२. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : आवनसिंह : सतना : १९०८
७३. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : रामचन्द्र शास्त्री।
७४. वेणीदत्त : पद्यवेणी : प्राच्यवाणी कलकत्ता।
७५. वैशेषिकदर्शनम् : चौखम्बा।
७६. शक्तिभद्र : आश्चर्यचूडामणिनाटकम् : कुप्पुस्वामी।
७७. शिवताण्डवस्तोत्रम्।
७८. शील-हनुमन् : महानाटकम् : कलकत्ता।
७९. श्रीमद्भागवतम् : गोरखपुर।
८०. सुधाकर द्विवेदी : गणक-तरङ्गिणी।
८१. सुन्दरदेव : सूक्तिसुन्दर।
८२. सुभाषित-सार-समुच्चय।
८३. सुभाषित-हारावली।
८४. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी।
८५. हरिभास्कर : पद्यामृत-तरङ्गिणी।
८६. हेमचन्द्र : काव्यानुशासनम्।

(ख) संस्कृत (अप्रकाशित)

(अ) कलकत्ता : रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

१. वीरभद्रदेव : दशकुमार-पूर्व-कथासार : (१५८० ई० के निकट) क्र० जो०।९३६८ : प्रतिलिपि।
२. शम्भुदास पण्डित : सार-सङ्ग्रह : क्र० ३१।ए।

(आ) रामवन सतना :– तुलसी सङ्ग्रहालय :

३. रघुराज सिंह : यादवेन्द्राष्टकम्।
४. रघुराज सिंह : लोकनाथाष्टकम्।
५. विश्वनाथ सिंह : अध्यात्म-रामायण : ध्वनि-प्रकाशिका टीका (१८३४-५४)।
६. ,, रामगीता की प्रबोधिका टीका (१८२०-३४)।
७. ,, रामचन्द्राह्निकम् (१८३४-५४)।

(इ) टीका : सरस्वती-कोष-भाण्डार : किला :

८. पद्मनाभ मिश्र : वीरभद्रदेव-चम्पू (१५७७ ई०) : उदयपुर की प्रतिलिपि।
९. प्रियादास : चतुःश्लोकी भागवत (१८००-१८१८)।
१०. ,, दीक्षासार-निर्णय ,, ।
११. ,, भक्तिप्रभा (१८०७)।
१२. ,, वैष्णवसिद्धान्त (१८००-१८१८)।
१३. ,, श्रुति-सूत्र-तात्पर्यामृत (१८१३)।
१४. ,, सुमत-निर्णय (१८१५)।
१५. ,, सुसिद्धान्तोत्तम (१८००-१८१८)।
१६. बलभद्र सिंह : कृष्ण विवरण (१६ वीं शती-पूर्वार्द्ध)
१७. ,, ब्रह्मसूत्र-भाष्य (१८१८)।
१८. ,, लोचन-ग्रन्थ (१९ वी शती-पूर्वार्द्ध)।
१९. ,, वृत्तिबोध ,, ।
२०. रघुराज सिंह : रघुराज-मङ्गल-चन्द्रावली (१८५०-८० ।
२१. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (१८३५ ई० के निकट) : ३ प्रति—क्र० ३६।८ : ३६।८।१ : ३६।८।२।
२२. ,, ज्योत्स्ना—सुमार्ग की टीका (१८१७)।
२३. ,, तत्त्वमस्यर्थ-सिद्धान्त-भाष्य (१८३४-५०)।

२४. विश्वनाथ सिंह : धनुर्विद्या (१८४०) ।
२५. „ धर्मशास्त्र (विनयशुल्लोकी) (१८३४-५४) ।
२६. „ निकुञ्जगक्षी-वेदस्तुति-टीका (१८२०-५४) ।
२७. „ राधावल्लभीय मत-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्य : (१८४०-४१) ।
२८. „ रामचन्द्राह्निकम् (१८३४-५४) ।
२९. „ राम-मन्त्रार्थ-निर्णय (१८३४-५०) ।
३०. „ वासुदेव-सहस्रनाम (१८३४-४२) ।
३१. „ सर्वसिद्धान्तम् (१८०९-३४) ।
३२. „ सङ्गीत-रघुनन्दनम् (१८२०-३४) : ६ प्रति : क्र० १५४।१३।१-२-३-४ तथा १५४।१४ और ६।७३ ।

(ई) रीवा-शिक्षासागर पुस्तकालय :

३३. विश्वनाथ सिंह : राधावल्लभीय-मत-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् ।
३४. „ रामपरत्वम् (१८४०) ।
३५. „ रामरहस्य-त्रयार्थ (१८३४-३७) ।
३६. „ सर्वसिद्धान्तम् (अपूर्ण) ।

(उ) अन्यत्र :

३७. अग्निहोत्री-रघुवरराम : अग्निहोत्रि : कुल-वंशावली (१८२८ ई०) ।
३८. विश्वनाथ सिंह : वाल्मीकीय रामायण की तात्पर्य-तरणि टीका (१८३४-४५) : नन्दकिशोर पोद्दाचार्य : रीवा ।

(ग) हिन्दी (प्रकाशित)

१. व्रजवेश कवि : वंशावली : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, १८१६ ई० ।
२. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (डा०) : मुगलकालीन भारत ।
३. कपिलदेव पाण्डे (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, चौखम्बा ।
४. कामिल बुल्के (फादर) : रामकथा-उत्पत्ति और विकास ।
५. कृपाराम गणपतराम भट्ट : बाघेला-वृत्तान्त ।
६. गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का इतिहास ।
७. गोस्वामी तुलसीदास : रामचरितमानस ।
८. जयसिंह देव : हरिचरित चन्द्रिका (पूर्वार्द्ध) ।
९. दुर्गादास कवि : अज्ञातस्नेह या नायक-रायसा ।
१०. नागेन्द्रनाथ वसु : हिन्दी विश्वकोष भाग १९ ।

११. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत आलोचना।

१२. ब्रजरत्नदास : मासिर-उल-उमरा, हिन्दी अनुवाद।

१३. भगवानदास गुप्त (डा०) : महाराजा छत्रसाल बुन्देला।

१४. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत।

१५. यादवेन्द्रसिंह : रीवा राज्य का इतिहास।

१६. युगलदास (कवि) : विश्वनाथसिंह-चरित्र।

१७. रघुराजसिंह : आनन्दाम्बुनिधि (भाषा-भागवत)।

१८. रघुराजसिंह : जगन्नाथ शतक।

१९. ,, भक्तिविलास।

२०. ,, मृगयाशतक (शिकारशतक)।

२१. ,, रघुराजविलास (पदावली)।

२२. ,, रामरसिकावली (भक्तमाला)।

२३. ,, रामस्वयंवर।

२४. ,, रुक्मिणी-परिणय।

२५. ,, विष्णुसहस्रनाम (पद्य)।

२६. राजीवलोचन अग्निहोत्री : संस्कृत साहित्य को बान्धव नरेशों की देन।

२७. रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य) : हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२८. रामप्यारे अग्निहोत्री : कसोटा के बाघेलों का इतिहास।

२९ ,, विन्ध्यप्रदेश का इतिहास।

३०. विजयेन्द्र स्नातक (डा०) : राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य।

३१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय-विमर्श।

३२. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन नाटक (हिन्दी)।

३३. शकुन्तला दूबे (डा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास।

३४. श्यामसुन्दरदास (आचार्य) : प्राचीन लेख-मणिमाला।

३५. सिलारपुरिया : दतिया पुस्तकालय।

३६. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १-२।

(घ) हिन्दी (अप्रकाशित)

(अ) सरस्वती कोष-भाण्डार, रीवा में उपलब्ध :—

१. गंगाराम तुलाराम चौबे : संगीत-रत्नाकर की सेतु (ब्रजभाषा) टीका (१८२०-५०)।

२. रघुराजसिंह : परम-प्रबोध-नाटक (खण्डित), ५१६८।

३. ,, : विनय-पत्रिका (१८५०) : दो प्रति ५-६७-१ : ८५/६१६।

४. रघुराजसिंह : विनय-प्रकाश (खण्डित) ।
५. „ ध्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका (भागवत की टीका) : एकादश-द्वादश स्कन्ध (१८५० ई०) ।
६. लक्ष्मणसिंह (रविन्द्र) : कृष्णायन : षोडश खण्ड : (१९ वीं शती-पूर्वार्द्ध) ।

(आ) अन्यत्र :

७. रघुराजसिंह : सुन्दरशतक (हनुमतशतक) । १८४७ ई० : तुलसी-सङ्ग्रहालय : रामवन ।
८. „ तात्पर्यदीपिका (वाल्मीकि-रामायण की हिन्दी टीका) ।
९. विहामिद खानी : तारीखी मुहम्मदी (हिन्दी अनुवाद) : मौलाना ऐयाज अली : घोघर : रीवा ।
१०. वंशावली १. एकत्रा बांधोगढ़ : (जमाबन्दी) : परि० १ (क)
११. वंशावली २. जमाबन्दी : परि० १ (ख)
१२. वंशावली ३. जमाबन्दी : परि० १ (ग)
१३. वंशावली ४. शिवदीन कवि : १९१४ वि० (१८५७ ई०) : म्ब० अम्बिकेश भट्ट : रीवा ।

(ङ) हिन्दी-निबन्ध

राजीवलोचन अग्निहोत्री :

१. जयसिंहदेव की रचनाएँ : विन्ध्यभूमि ।
२. रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ : विन्ध्यशिक्षा ।
३. विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ : मध्यप्रदेश-सन्देश ।

(च) अंग्रेजी (प्रकाशित)

1. A Collection of Prakrit and Sanskrit Inscriptions in the Bhavanagar Archaeological Department.
2. Aitchison—C. U. : Rewa Under the Crown—Treaties and Sanads with British Government (1800–1930) Delhi : 1933.
3. Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.
4. Beveridge–H : Akbarnamah of Abul Fazl : 1907.
5. Beveridge–H : Humayun-namah of Gulbadan Begam.
6. Beveridge–H : Jahangir-namah : 1909.
7. Bhandarkar–R. G. : Report of the Second Tour : 1904-6 Bombay.

8. Blochmann : Ain-i-Akbari of Abul-Fazl. Calcutta : 1873.
9. Bombay Gazetteer.
10. Briggs : Tarikhe-Ferishta.
11. Buhlar : Epigraphica-Indica : Vol. XXVI.
12. Catalogue of Manuscripts existing in Oudh.
13. Catalogue of Manuscripts in Kashmir.
14. Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library Mysore & Supplement.
15. Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Ulwar State.
16. Chaudhuri-J. B. Muslim Patronage to Sanskrit Learning : Vol. I : Second Edition : Pracyavani. Calcutta : 1954.
17. Cunningham—A. Archaeological Survey Reports of India : Vol. XXI.
18. Eggling : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the India Office, London : Vol. VII.
19. Elliot & Dowson : History of India : Vols. I-VI.
20. Erskin : Babar & Humayun : Part II.
21. Faizi-Sirhindi : Akbarnamah.
22. Gladwin : Ain-e-Akbari of Abul-Fazl.
23. Glory of Bandho : Rewa : 1948.
24. Habibullah : The Foundation of Muslim Rule in India (1200-1290) : 1945.
25. Hunter : Imperial Gazetteer of India.
26. Johar : Humayun-namah (Memoirs of Humayun).
27. Kane—P. B. : History of Dharmasastra : Vol. I : Poo... - 1930.
28. Keith—A. B. (Dr.) : A History of Sanskrit Literature : Oxford : 1928.
29. Krishnamachariar-M. : History of Classical Sanskrit Literature : Madras : 1937.
30. Lowe-W. H. : Al-Badaoni : Vols. I & II : 1884.
31. Luward-Captain : Rewa State Gazetteer : 1910.
32. Majumdar-A. K. : Chaulukyas of Gujrat : Bharatiya Vidya Studies IV-Bombay : 1956.
33. Majumdar-B. C. : Orissa in the Making.
34. Menaria-M. L. : Catalogue of Manuscripts in the Library of H. H. the Maharana of Udaipur.

35. Mitra-R. L. : A Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaner.
36. Mitra-R. L. : Notices of Sanskrit Manuscripts : Calcutta : 1871.
37. Munshi-K. M. : Glory that was Gurjar Desa : Bharatiya Vidya Bhavan : Bombay : 1954.
38. Nambier-Raghavan : An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute of Baroda : Part II-1950.
39. Parekh-Bhai Manilal C. : Sri Vallabhacharya : Rajkot : 1943.
40. Peterson : Reports of the Operations in Search of Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.
41. Polemann-H. E. : Census of Indic Manuscripts in U.S.A. and Canada, 1938.
42. Rai : Successors of Shershah : 1934.
43. Raverty : Tabkat-Nasiri of Minhaz-Uddin of 1260 A. D.
44. Ray-H. C. : Dynastic History of Northern India Vol. II. Calcutta : 1936.
45. Satyasray-Ranjit Sing : Origin of the Chalukyas : Calcutta : 1938.
46. Shastri-H. P. (M. M.) : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal Calcutta : Vol. IV-1923.
47. Shastri-H. P. (M. M.) : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta : Vol. VII : 1934.
48. Shastri-P. P. S. : Catalogue of Manuscripts in the Palace Library of Tanjore.
49. Shelat-J. M. : Akbar : Parts I & II : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay.
50. The Struggle for Empire : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay : 1957.
51. Utgikar : Collected Works by R. G. Bhandarkar.

(छ) अंग्रेजी-निबन्ध

1. Barua-B. K. : 'Purušottam Gajapati of Orissa in Early Assamese Literature' : All India Oriental Confe-

rence: B. H. U. XII-Session: 1943-44: Ed. A. S. Altekar.

2. Chakravarti C : 'Sanskrit Works of Maharaja Viśvanātha Simha' : Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal-Calcutta : Vol. V : 29th Oct. 1939.
3. Chaturvedi-G. D. : 'Note on Gaṅgārāma son of Tulārāma : Annals : Poona : Vol. XXXIV.
4. Gode-P. K. : 'A Contemporary Manuscript of Bhānujī Dīkṣitas Vyākhyāsudhā' : Journal of the University of Bombay : Vol. XI Part II : Sept. 1942.
5. Gode-P. K. : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta—Author of the Rasa-Mañjarī' : Indian Culture : Vol. III : 1937 : pp. 151-56.
6. Gode-P. K. 'Date of Sāhitya-Sudhā, a commentary on the Rasa-Taraṅgiṇī of Bhānudatta' : Calcutta Oriental Journal : Vol. I : 1934 : pp. 217-220.
7. Gode-P. K. : 'Identification of Vīrabhānu, The Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 254-258.
8. Gode-P. K. : 'Rāmchandra Bhatta, a Protege of King Pahārasimhadeva son of King Vīrasimhadeva of Bundelkhand' : Adyar Library Bulletin Vol. XVIII-Part I & II : p. 2.
9. Gode-P. K. : 'Sābājī Pratāparāja.........' : Annals of the B. O. R. I. Poona : Vol. XXIV-Part III-IV : 1944 : pp. 156-164.
10. Gode-P. K. : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa-Between 1813 and 1853' : New Indian Antiquary : B. O. R. I. Poona Vol. IX-Nos. 4-6 : April-June : 1947.
11. Gode-P. K. : 'Some Data for the Identification of Vīrabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 197-199.
12. Gode-P. K. : 'Terminus ad quem for the date of Bhānudatta, the Author of the Rasa-Mañjarī' : Annals : Poona : Vol. XVI-1935-pp. 147-148.
13. Gode-P. K. : 'Vīrabhānūdaya-Kāvyam' Annals : Poona : Vol. XXVII-Part 182 : 1947 : pp. 163-165.

14. Katre-S. : 'Kalyāṇa Varman's Sārāvalī—Fresh Light on Its Date' : All India Oriental Conference : B. H. U. XII-Session : 1943-44 : Ed. A. S. Altekar.

15. Nizami-A. H. : Baghelas in Gujarat' : The Rewa Information : Vol. I-Part 3 : July, 1947.

16. Nizami-A. H. : 'Genealogical Sources of the Baghela Dynasty of Rewa' : Ninth History Congress : Annamalainagar : Dec. 1945 : pp. 150-153.

17. Nizami-A. H. : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasimha of Rewa' : Journal of the Gangānātha Jhā Research Institute, Allahabad, Vol. VIII-Part IV : Aug. 1951.

18. Nizami-A. H. : 'Note on Maihar' : Bharatiya Vidya, Bombay : Vol. VI-No. 2 : Feb. 1945.

19. Nizami-A. H. : 'The Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Vikram University : Part II-May, 1958.

20. Nizami-A. H. : 'The Malikzada Dynasty of Kalpi' M. P. History Congress : Bhopal : April 11, 1957.

21. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'Some Baghela Rulers and the Sanskrit Poets Patronised by them' : Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume : Ahmedabad : pp. 48-54.

22. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Poet Bhānukara', Annals Poona : Vol. XXVII-1936.

23. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Sūkti-Sundara of Sundaradeva' : Calcutta Oriental Journal : Feb. 1936 : pp. 133-144.

24. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Vaiṣṇava Philosopher Priyādāsa and His Works' : Indian Historical Quarterly; Calcutta : Volume XVI : 1940.

25. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Critical Analysis of the Vīrabhānūdaya Kādyam' : Published with the Kāvya : Baroda : 1938.

26. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Bihar and Orissa Research Society : 1930.

27. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' : Baroda; 1925.

अवशिष्ट

१ से ७ अध्यायों में वर्णित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और पाण्डुलिपियों की सूचना प्राप्त है, जिनका सम्बन्ध बघेलखण्ड की संस्कृत-वाग्धारा के साथ होना अनुमित है। इनकी स्थिति सन्देहास्पद है और जानकारी विलम्ब से मिली, अतः यहाँ पृथक् रूप से इनका नामोल्लेख-मात्र किया जा रहा है।

निम्नलिखित चार पाण्डुलिपियाँ रीवा से १९५५–५६ ई० में नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेजी गईं—

१. शुद्धिभास्कर (खण्डित)—कर्मकाण्ड का यह ग्रन्थ पद्मनाभ मिश्र द्वारा रचित बतलाया जाता है। इसका लिपिकाल १७०६ वि० (१६५० ई०) है।

२. वीरसिंहावलोक—यह ज्योतिष-ग्रन्थ बघेल-नरेश वीरसिंहदेव की कृति कही जाती है।

३. सिद्धान्तचन्द्रिका (पूर्वार्द्ध)—रामाश्रमाचार्य की इस कृति का लिपिकाल १९२६ वि० है।

४. शब्देन्दुशेखर—कहा जाता है कि यह ग्रन्थ १८४२ वि० में नागोजी भट्ट द्वारा चँदिया (जिला शहडोल) में लिखा गया।

कुछ अन्य संबद्ध पाण्डुलिपियाँ निम्नलिखित हैं—

१. राधाविनोद-काव्यम्—सरस्वती-कोषभाण्डार रीवा में प्राप्त यह १९ श्लोकों का लघु कृष्णकाव्य है। पुरुषोत्तम ब्राह्मण के पुत्र जनार्दन का ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र इसका रचयिता है।

२. सभ्याभरण—यह नीतिपरक कृति ९ उल्लासों में भाण्डार में सुरक्षित है। इसमें व्याकरण-सूत्रों पर विद्वत्ता प्रदर्शित की गई है। विश्वनाथ का पुत्र एवं शिष्य इसका प्रणेता है। पाण्डुलिपि पर 'महाराज-भावसिंहस्येदं' लिखा है।

३. अवधूतग्रन्थ—भाण्डार में ६ पत्रों में लिखित ७९ श्लोकों का यह वेदान्त-ग्रन्थ प्राप्त है। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'दत्तात्रय-गोरक्षसंवादे स्वात्मसंवृत्युपदेशे अवधूतग्रन्थे प्रथमे प्रकरणम् ।'

भ्रम से इसे महाराज अवधूतसिंह की रचना लिखा गया है।

४. पञ्चकोश-विवेक (व्याख्या-सहित)—विद्यारण्य मुनि की यह कृति रामकृष्ण की व्याख्या के साथ भाण्डार में रखी हुई है।

५. अमरकण्टक-माहात्म्य—आफ्रे की सूची के प्रथम भाग में पृ० २६ पर कूर्मपुराण के अंश के रूप में अमरकण्टक-माहात्म्य का उल्लेख है।

६. रामचन्द्रोदय—उक्त सूची में पृ० ४०५ पर पुरुषोत्तम मिश्र की कृति रामचन्द्रोदय का नाम है। परिचय में लिखा है कि यह कवि राधाचरित के कवि का पितामह हो सकता है। हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार वीरसिंहदेव बघेल के सभासद रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित लिखा।

रामवन, जिला सतना (म० प्र०) के तुलसी-संग्रहालय में संरक्षित पाण्डुलिपियाँ अनुसन्धेय हैं। इनमें से दो ग्रन्थ यहाँ उल्लेखनीय हैं—

१. काव्य-कल्पद्रुम (अपूर्ण)—यह सन्त कवि के पुत्र दिनेश द्वारा रीवा में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में लिखा गया। इसमें सन्त द्वारा रचित साहित्य-रत्नाकर का उल्लेख है। ग्रन्थ में ६६ पृष्ठ हैं; एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री कविराज-राजि-मुकुटालङ्कार-हीर-श्रीसन्त-कवीश्वरात्मज-रीवा-निवासि-वन्दीजन-दिनेश-कविराजकृत-काव्यकल्पद्रुम-नाम-ग्रन्थे काव्यकारणकार्य-वर्णनं नाम प्रथमं प्रकरणम्।'

२ मधुर-रामायण—यह हिन्दी काव्यग्रन्थ दोहे चौपाइयों में ४ काण्डों में २९१ पृष्ठों में है। *काण्डों के नाम पूर्व खण्ड, दक्षिण खण्ड, पश्चिम खण्ड, और* उत्तर खण्ड हैं। प्रथम द्वितीय खण्ड में प्रारम्भ में संस्कृत ग्रन्थ आदि-रामायण का मूल देकर एक अध्याय का अर्थ व्रजभाषा पद्य में है, फिर दोहे चौपाइयों में रामकथा है।

ग्रन्थ का लिपिकाल कार्तिक शुक्ल ९ संवत् १९०३ है। लिपिकार रीवा निवासी शंभूनाथ प्रधान है। ग्रन्थकार माधवदास प्रसाद महाराज विश्वनाथ सिंह का शिष्य था—

गंगा प्रसाद जू को नामी कासीराम पुत्र
माधो मेरो नाम रीवाँ नगर नेवास है।
महाराज विश्वनाथसिंह को सिखायो पाल्यो
मधुररामायन सो रच्यो सहुलास है॥
आदि रामायन को अर्थ चारो खंडन में
पंचरात्र पदुम पुराण मत खास है।
मानो कै विस्वास अंत नासै भवत्रास
भयो रास कै विलास सीताराम जू को वास है॥

—:o:—

पुष्पाञ्जलिः

पवित्रे सारवावारे मिश्रग्रामे द्विजातयः ।
न्यवसन् मिश्रजातीया यज्वानो शास्त्रसेविनः ॥ १ ॥
तद्वंश्यो वैनदासस्तु विश्वनाथं समाश्रितः ।
अर्चितः काशिराजेन वेदौली-ग्राममावसत् ॥ २ ॥
तदन्वये समुद्भूतो बलभद्र उपाग्निः ।
काश्याः प्रस्थाय विप्रोऽसौ रेवा-नगरमाश्रितः ॥ ३ ॥
रम्ये देशे बघेलानां प्रजास्तस्य महात्मनः ।
प्रतिष्ठां प्रापिता धीरा निवसन्त्यग्निहोत्रिणः ॥ ४ ॥
तस्मिन् कुले समुत्पन्नो रामनारायणः सुधीः ।
ग्रामे रजरवारे च गुरुत्वं येन प्रार्जितम् ॥ ५ ॥
पुण्यात्तदङ्गजन्माऽहं नाम्ना राजीवलोचनः ।
जातः काव्यानुसन्धित्सुर्हेतुस्तत्र परम्परा ॥ ६ ॥
बान्धवाद्रौ गह्वोरायां रेवापुर्यां प्रशासताम् ।
बघेलखण्ड-भूपानामपि तेषां सभासदाम् ॥ ७ ॥
प्रास्फुरन् संस्कृता वाचो विदुषां शरदः शतम् ।
सन्ति तन्निर्मिता ग्रन्था ग्रन्थागारेषु सञ्चिताः ॥ ८ ॥
हस्तलेख-स्वरूपेण निबद्धा वेष्टनेषु ते ।
कालक्रमेण तेषाञ्च शङ्क्यते कीटभक्षणम् ॥ ९ ॥
एषु लभ्येत भारत्या यात्रावृत्तं यथाक्रमम् ।
अङ्किताः पूर्वजातानामिह प्रज्ञाश्च भावनाः ॥ १० ॥
सम्प्रधार्य मनस्येवं कार्यमद्यैव सुस्थितैः ।
ग्रन्थानां सारपूर्णानां प्रकाशन-समीक्षणम् ॥ ११ ॥
तस्मान्महाप्रबन्धानां विहाय परिशोधनम् ।
बघेलखण्ड-काव्यानां मया सारोऽनुसंहितः ॥ १२ ॥
विशुद्धिरत्र लक्ष्येत गुरूणां सुहृदाञ्च सा ।
श्यामिका या प्रतीयेत सा मेऽल्पज्ञस्य सर्वथा ॥ १३ ॥
अयं पुष्पाञ्जलिर्न्यस्तश्चरणेषु मनीषिणाम् ।
भूयात् प्रीत्यै चिरं तेषां रसज्ञानां शिवात्मनाम् ॥ १४ ॥